पतंजल : योग-सूत्र

(भाग—3)

ओशो

('योग: दि अल्फा एक दि ओमेगा' शीर्षक से ओशो द्वारा अंग्रेजी में दिए गए सौ अमृत प्रवचनों में से तृतीय बीस प्रवचनों का हिंदी अनुवाद)

धर्म की जड़ें साधना में है, योग में है। योग के अभाव में साधु का जीवन या तो मात्र अभिनय हो सकता है। या फिर दमन हो सकता है। दोनों ही बातें शुभ नहीं है।

योग न भोग है, न दमन है। वह तो दोनों जागरण है। अतियों के द्वंद्व में से किसी को भी नहीं पकड़ना है। द्वंद्व का कोई भी पक्ष द्वंद्व के बाहर नहीं है। उसके बाहर जाना उनमें से किसी को भी चून कर नहीं हो सकता। जो उनमें से किसी को भी चुनता है और पकड़ता है। वह उसके द्वारा ही चुन और पकड़ लिया जाता है।

योग किसी को पकड़ना नहीं है। वरन समस्त पकड़ को छोड़ना है। किसी के पक्ष में किसी को नहीं छोड़ना है। बस बिना किसी पक्ष के, निष्पक्ष ही सब पकड़ छोड़ देनी है। पकड़ ही भूल है। वह कुएं में यां खाई में गिरा देती है। वह अतियों में द्वंदों में और संघर्षों में ले जाती है। जबकि मार्ग वहां है, जहां कोई अति नहीं है। जहां दुई नहीं है। जहां कोई संघर्ष नहीं है। चुनाव न करे वरन चुनाव करने वाली चेतना में प्रतिष्ठित हों। द्वंद्व में न पड़े, वरन द्वंद्व को देखने वाले 'ज्ञान' में स्थिर हों। उसमें प्रतिष्ठा ही प्रज्ञा है। और वह प्रज्ञा ही प्रकाश में जाने का द्वार है। वह द्वार निकट है।

और जो अपनी चेतना की लो को द्वंद्वों की अतियों से मुक्त कर लेते है, वह उस कुंजी को पा लेते है। जिससे सत्य का वह द्वार खुलता है।

ओशो

प्रवचन 41 - योग है परम मिलन

योग—सूत्र:

(साधनपाद)

प्रकाशक्रियास्थितिशीलं भूतेन्द्रियात्मकं भोगापवर्गार्थं दृश्यम्।।18।।

दृश्य, जो कि प्राकृतिक तत्वों से और इंद्रियों से संघटित होता है, उसका स्वभाव होता है—प्रकाश थिरता सक्रियता और निष्क्रियता। और द्रष्टा को अनुभव उपलब्ध हो तथा अंतत: मुक्ति फलित हो, इस हेतु यह होता है।

विशेषाविशेषलिङ्गमात्रालिङ्गानि गुणपर्वाणि।।19।।

ये तीन गुण--प्रकाश (थिरता) सक्रियता और निष्क्रियता — इनकी चार अवस्थाएं हैं : निश्चित, अनिश्चित, सांकेतिक और अव्यक्त।

द्रष्टादृशिमात्र: शुद्धोउपि प्रत्यानुपश्य।।20।।

द्रष्टा यद्यपि शुद्ध चेतना है, फिर भी मन की विकृतियों के मध्यम से वह देखा करता है।

तदर्थ एव दृश्यस्यात्मा।।21।।

दृश्य का अस्तित्व होता है मात्र द्रष्टा के लिए।

कृतार्थं प्रति नष्टमप्यनटं तदन्यसाधारणत्वात् ।।22।।

यद्यपि दृष्य उसके लिए मृत हो जाता है जिसने मुक्ति पा ली है। फिर भी बाकी दूसरों के लिए वह जीवित रहता है, क्योंकि यह सर्वनिष्ठ होता है।

स्वस्वामीशक्त्योः स्वरूपोपलब्धि हेतुः संयोगः।।23।।

द्रष्टा और दृश्य साथ—साथ होते है, ताकि प्रत्येक का वास्तविक स्वभाव जाना जा सके।

तस्य हेतुः अविद्या।। 24।।

इस संयोग का कारण है अविद्या, अज्ञान।

वैज्ञानिक मानस सोचा करता था कि अव्यक्तिगत ज्ञान की, विषयगत ज्ञान की संभावना है। असल में वैज्ञानिक दृष्टिकोण का यही ठीक—ठीक अर्थ हुआ करता था।' अव्यक्तिगत ज्ञान' का अर्थ है कि ज्ञाता अर्थात जानने वाला केवल दर्शक बना रह सकता है। जानने की प्रक्रिया में उसका सहभागी होना जरूरी नहीं है। इतना ही नहीं, बल्कि यदि वह जानने की प्रक्रिया में सहभागी होता है तो वह सहभागिता ही ज्ञान को अवैज्ञानिक बना देती है। वैज्ञानिक ज्ञाता को मात्र द्रष्टा बने रहना चाहिए, अलग —थलग बने रहना चाहिए, किसी भी तरह उससे जुड़ना नहीं चाहिए जिसे कि वह जानता है।

लेकिन अब बात ऐसी नहीं रही। वितान प्रौढ़ हुआ है। इन थोड़े से दशकों में, पिछले तीन—चार दशकों में विज्ञान अपने भ्रमपूर्ण दृष्टिकोण के प्रति सचेत हुआ है। ऐसा कोई ज्ञान नहीं जो अव्यक्तिगत हो। ज्ञान का स्वभाव ही है व्यक्तिगत होना। और ऐसा कोई ज्ञान नहीं जो असंबद्ध हो, क्योंकि जानने का अर्थ ही है संबद्ध होना। केवल दर्शक की भांति किसी चीज को जानने की कोई संभावना नहीं है; सहभागिता अनिवार्य है। इसलिए अब सीमाएं उतनी स्पष्ट नहीं रही हैं।

पहले कवि कहा करता था कि उसके जानने का ढंग व्यक्तिगत है। जब एक कवि किसी फूल को जानता है तो वह उसे पुराने वैज्ञानिक ढंग से नहीं जानता। वह बाहर—बाहर से ही देखने वाला नहीं

होता। किसी गहरे अर्थ में वह वही बन जाता है : वह उतरता जाता है फूल में और फूल को उतरने देता है अपने में, और एक गहन मिलन घटता है। उस मिलन में फूल का स्वरूप जाना जाता है।

अब विज्ञान भी कहता है कि जब तुम किसी चीज को ध्यानपूर्वक देखते हो तो तुम सहभागी होते हों—चाहे कितनी ही छोटी क्यों न हो वह सहभागिता, लेकिन फिर भी तुम सहभागी होते हो। कवि कहा करता था कि जब तुम किसी फूल की तरफ देखते हो तो वह फिर वही फूल नहीं रहता जैसा कि वह तब था जब किसी ने उसकी ओर देखा न था, क्योंकि तुम उसमें प्रवेश कर चुके हो, उसका हिस्सा बन चुके हो। तुम्हारी दृष्टि भी अब उसका हिस्सा हो जाती है; पहले वह वैसा न था। जंगल में किसी अज्ञात पगडंडी के किनारे खिला एक फूल, जिसके पास से कोई गुजरा नहीं, वह एक अलग ही फूल होता है; फिर अचानक कोई आ जाता है जो देखता है उसकी तरफ—वह फूल अब वही न रहा। फूल बदल देता है द्रष्टा को, और दृष्टि बदल देती है फूल को। एक नई गुणवत्ता प्रवेश कर गई।

लेकिन यह ठीक था कवियों के लिए—कोई भी उनसे बहुत तार्किक और वैज्ञानिक होने की आशा नहीं रखता—लेकिन अब तो विज्ञान भी कहता है कि यही प्रयोगशालाओं में घट रहा है : जब तुम निरीक्षण करते हो तो निरीक्षण की वस्तु वही नहीं रह जाती, उसमें देखने वाला शामिल हो जाता है और गुणवत्ता बदल जाती है। अब भौतिकशास्त्री कहते हैं कि जब कोई उन्हें देख नहीं रहा होता तो परमाणु अलग ही ढंग से व्यवहार करते हैं। जैसे ही तुम उन्हें देखते हो, वे तुरंत अपनी गतिया बदल देते हैं। बिलकुल ऐसे ही जैसे कि जब तुम अपने स्नानगृह में होते हो तो तुम एक अलग ई व्यक्ति होते हो, फिर अचानक ही तुम्हें लगता है कि चाबी के छेद से कोई देख रहा है —तत्क्षण तुम बदल जाते हो। परमाणु भी जब अनुभव करता है कि कोई देखने वाला है, तो फिर वह वही नहीं रहे जाता; वह अलग ही ढंग से गति करने लगता है। यही थीं सीमाएं : विज्ञान को समझा जाता था बिलकुल अव्यक्तिगत, कला थी विज्ञान और धर्म के मध्य में और समझा जाता था कि उसकी आशिक सहभागिता होती है; और धर्म था समग्र सहभागिता।

एक कवि देखता है फूल को, तब ऐसी झलकियां मिलती हैं जब वह भी खो जाता द्वै, फूल भी खो जाता है। लेकिन ये केवल झलकियां ही होती हैं, कुछ क्षणों के लिए मिलन घटता है, और—फिर वे अलग हो जाते हैं, फिर वे पृथक हो जाते हैं। जब एक रहस्यदर्शी, एक धार्मिक व्यक्ति फूल को देखता है तब क्या घटता है? तब सहभागिता समग्र होती है, आशिक नहीं होती। ज्ञाता और ज्ञेय दोनों खो जाते हैं; बच रहती है केवल वह ऊर्जा जो दोनों के बीच आंदोलित हो रही होती है। अनुभूति बच रहती है, अनुभव करने वाला नहीं बचता, न ही अनुभव की विषय—वस्तु बचती है। विपरीतताए खो जाती हैं, विषय और विषयी मिट जाते हैं, सारी सीमाएं खो जाती हैं।

धर्म एक समग्र सहभागिता है। कविता या कला या चित्रकला आशिक सहभागिता है।

विज्ञान बिलकुल भी भागीदार न था। अब बात ऐसी नहीं है। विज्ञान को वापस कविता के, धर्म के ज्यादा निकट आना पड़ा है। अब सारी सीमाएं एक—दूसरे में घुल—मिल गई हैं। केवल पचास वर्ष पहले तक वैज्ञानिक ढंग से प्रशिक्षित व्यक्ति हंस देता पतंजलि पर, खिलखिला कर हंस पड़ता शंकर और वेदांत पर और अपने भीतर सोचता कि ये लोग पागल हो गए हैं। अब असंभव है पतंजलि पर हंसना। वे ज्यादा ठीक सिद्ध हो रहे हैं।

जैसे—जैसे विज्ञान ज्यादा गहरे विकसित होता जाता है, योग ज्यादा प्रामाणिक और ज्यादा सत्य मालूम हो रहा है। क्योंकि योगी की सदा यही दृष्टि रही है. कि अस्तित्व अखंड है। पृथकता, सीमाओं का विभाजन कामचलाऊ है—यह अज्ञानवश है। इसकी जरूरत है; यह एक आवश्यक प्रशिक्षण है। तुम्हें गुजरना ही है इसमें से, तुम्हें भोगना है इसे और अनुभव करना है इसे—लेकिन तुम्हें गुजर जाना है इसमें से। यह कोई घर नहीं है; यह केवल एक मार्ग है। यह संसार पृथकता का, वियोग का मार्ग है। यदि तुम गुजर जाते हो इसमें से और तुम समझने लगते हो पूरे अनुभव को, तो मिलन और विवाह पास आता जाता है—और पास, और पास। और एक दिन अचानक ही तुम विवाहित होते हो, संपूर्ण सृष्टि से मिलन होता है और सारे वियोग मिट जाते हैं। और उस मिलन में ही आनंद है। इस अलगाव में पीड़ा है, क्योंकि यह अलगाव झूठा है। अलगाव है, क्योंकि तुम्हें बोध नहीं है। तुम्हारे अज्ञान में ही उसका अस्तित्व है। यह एक स्वप्न की भांति है।

तुम सोए हुए हो : फिर तुम स्वप्न देखते हो हजारों चीजों के, और सुबह वे सभी तिरोहित हो जाती हैं। और अचानक तुम हंसने लगते हो स्वयं पर ही। सारी बात ही इतनी बेतुकी मालूम पड़ती है। तुम्हें विश्वास नहीं आता कि ऐसा हुआ कैसे! तुम्हें विश्वास नहीं आता कि तुम भ्रांति में कैसे पड़ गए, जैसे कि वह सब वास्तविक हो! तुम्हें विश्वास नहीं आता कि ऐसा कैसे संभव हुआ कि तुम मन में तैरते उन चित्रों द्वारा इतने अभिभूत हो गए! वे विचारों के बुदबुदों के सिवाय और कुछ नहीं थे। और वे कैसे लगते थे—यथार्थ, ठोस, और वास्तविक!

ऐसा ही घटता है जब कोई सत्य के अनुभव में उतरता है! लेकिन सत्य जाना जाता है गहरी सहभागिता द्वारा। यदि तुम सहभागी नहीं होते तो तुम सत्य को बाहर—बाहर से ही जानोगे, किसी अजनबी की भांति, किसी बाहरी व्यक्ति की भांति। तुम इस घर के पास आ सकते हो; तुम घर के चारों तरफ घूम सकते हो; और तुम घर के बारे में कुछ बातें जान भी लोगे। लेकिन तुम घूमते रहे बाहर ही, सतह पर ही। तुमने दीवारों को बाहर से ही देखा। तुम घर को भीतर से नहीं जानते। कभी—कभी, रात के अंधेरे में आए चोर की भांति, तुम घर में प्रवेश भी कर सकते हो।

कवि चोर होता है। वैज्ञानिक अजनबी बना रहता है। धार्मिक आदमी मेहमान होता है; वह रात के अंधेरे में नहीं आता है : वह घर में चोरी से नहीं आता है। हालाकि कुछ बातों को चोर की भांति भी जाना जा सकता है, इसलिए कवि बेहतर होगा उस वैज्ञानिक व्यक्ति से जो कि बाहर—बाहर ही घूमता रहा और कभी भीतर नहीं आया। तो कवि भी थोड़ा—बहुत जान लेगा जिसे एक वैज्ञानिक कभी नहीं

जान सकता, क्योंकि कवि प्रवेश कर चुका है घर में—चाहे रात में ही सही, अंधेरे में ही सही, चाहे अनिमंत्रित ही, अतिथि के रूप में नहीं, सामने के द्वार से नहीं।

धार्मिक आदमी घर में प्रविष्ट होता है अतिथि की भांति। वह उसे अर्जित करता है। और वह न केवल घर के बारें में ही जानता है, बल्कि मालिक के बारे में भी जानता है—क्योंकि वह मेहमान होता है। वह न केवल उस भौतिक घर के बारे में जानता है, बल्कि वह उस अभौतिक मालिक के बारे में भी जानता है जौ कि वस्तुत: केंद्र है घर का। वह घर के मालिक को भी जानता है।

विज्ञान जानता है केवल पदार्थ को। कला को कई बार झलकें मिलती हैं अभौतिक की। क्योंकि चोर भी देख सकता है मालिक को, लेकिन मालिक सोया हुआ होगा। वह भी देख सकता है उसका चेहरा, लेकिन केवल अंधकार में, क्योंकि वह भयभीत होता है, सदा भयभीत होता है कि कहीं कुछ गड़बड़ न हो जाए। वह चोर होता है और सदा भयभीत होता है और कैप रहा होता है। लेकिन जब तुम घर में अतिथि की भांति आमंत्रित होकर आते हो, तुमने उसे अर्जित किया होता है, तो मालिक तुम्हारा आलिंगन करता है; तुम्हारा स्वागत करता है। तब तुम जानते हो सत्य के अंतरतम केंद्र को।

भारत में हमारे पास कवि के लिए दो शब्द हैं। किसी अन्य भाषा में कवि के लिए दो शब्द नहीं हैं, क्योंकि कोई जरूरत नहीं पडी। एक ही शब्द पर्याप्त होता है। वही इशारा कर देता है काव्य की घटना की तरफ—'कवि' पर्याप्त है। लेकिन संस्कृत में हमारे पास दो शब्द हैं : 'कवि' और 'ऋषि'। और भेद बहुत सूक्ष्म है और समझने जैसा है।'कवि' वह है जो चोर की भांति आता है। वह सहभागी तो होता है, इसलिए वह कवि है। लेकिन उसका ज्ञान होता है टुकड़ों में। किन्हीं खास क्षणों में जैसे कि कोई चोर घर के भीतर हो और अचानक आकाश में बिजली कौंध जाए और वह सारे घर को

भीतर से भी देख सके—लेकिन ऐसा होता है क्षण भर को ही। फिर बिजली खो जाती हैं और हर चीज स्वप्नवत हो जाती है।

तो कभी—कभी कवि का सामना हो जाता है सत्य से, लेकिन इसी तरह जैसे कि उसने उसे अर्जित न किया हो। इसीलिए कई बार आश्चर्य करोगे तुम; तुम किसी की कविता पढ़ते हों—कोई भी कविता, किसी की भी—वह तुम्हें छूती है, तुम्हारे हृदय में उतर जाती है, तुम आंदोलित हो जाते हो और तुम मिलना चाहते हो इस आदमी से जिसमें कि ये पंक्तियां अवतरित हुई हैं। लेकिन जब तुम उस आदमी से, उस कवि से मिलते हो, तो — तुम्हें निराशा होती है—वह एकदम सामान्य आदमी होता है—साधारण, कुछ खास नहीं। अपनी कविता की उड़ान में वह बड़ा असाधारण था, लेकिन यदि. तुम मिलते हो उस कवि से तो वह साधारण ही होता है। क्या हुआ? तुम नहीं मान सकते कि ऐसा सुंदर काव्य पैदा हो सकता है एक साधारण आदमी से!

ऐसा इसलिए होता है क्योंकि कवि कोई स्थायी निवासी नहीं होता मंदिर का। वह चोर होता है। कई बार वह प्रवेश करता है, लेकिन अंधेरे में ही। निश्चित ही, चारों ओर घूमने से तो बेहतर है यह; कम से

कम उसे एक झलक तो मिलती है। बस वह उस झलक के गीत गाता है। उसके हृदय में सतत एक टीस बनी रहती है उस आंतरिक झलक के लिए जिसे उसने एक बार देखॉ है। वह फिर—फिर उसी के गीत गाता है, लेकिन अब यह उसका अनुभव नहीं है। यह अतीत की बा_त हो गई—एक स्मृति, एक स्मरण, कोई वास्तविकता नहीं।

'ऋषि' वह कवि है जिसका स्वागत हुआ है मेहमान की भांति। ऋषि शब्द का अर्थ है द्रष्टा, और कवि शब्द का भी अर्थ है द्रष्टा। उन दोनों का ही अर्थ होता है : वह जिसने कि देख लिया। तो भेद क्या है? भेद यह है कि ऋषि ने उसे अर्जित किया होता है। वह दिन के प्रकाश में प्रविष्ट हुआ घर में, वह सामने के दरवाजे से प्रविष्ट हुआ। वह कोई अनिमंत्रित मेहमान नहीं है; वह किसी दूसरे के घर में अनधिकार प्रवेश नहीं कर रहा है। वह निमंत्रित है। मालिक ने उसका स्वागत किया। वह भी गीत गाता है, लेकिन उसका गीत पूरी तरह से अलग होता है साधारण कवि से।

उपनिषद ऐसे ही गीत हैं, वेद ऐसे ही गीत हैं—वें आए हैं ऋषियों के हृदयों से। वे कोई साधारण कवि न थे, वे असाधारण कवि थे। असाधारण इस अर्थ में कि उन्होंने अर्जित किया था उस झलक को; वह कोई चुराई हुई चीज न थी। लेकिन ऐसा केवल तभी संभव होता है जब तुम सीख लेते हो कि पूरे प्राणों से सहभागी कैसे होना है—यही है योग। योग का अर्थ है सम्मिलन; योग का अर्थ है विवाह; योग का अर्थ है जोड़। योग का अर्थ है : फिर से निकट कैसे आना, पृथकता को कैसे मिटा देना, सारी सीमाओं को कैसे विलीन कर देना, उस अवस्था तक कैसे आ जाना जहां ज्ञाता और ज्ञेय एक हो जाएं। यही है योग की खोज।

इन थोड़े से दशकों में विज्ञान और— और सजग हुआ है कि सारा ज्ञान व्यक्तिगत होता है। योग कहता है कि ज्ञान मात्र व्यक्तिगत होता है और जितना ज्यादा व्यक्तिगत होता है, उतना बेहतर होता है। तुम्हें उससे एकात्म हो जाना होगा : .तुम्हें फूल हो जाना होगा; तुम्हें चट्टान हो जाना होगा; तुम्हें चांद हो जाना होगा; तुम्हें सागर, रेत हो जाना होगा। तुम जहां कहीं देखो, तुम्हें विषय और विषयी दोनों हो जाना होगा। तुम्हें सम्मिलित होना होगा। तुम्हें सहभागी होना होगा। केवल तभी जीवन स्पंदित होता है, जीवन अपनी लय के साथ स्पंदित होता है। तब तुम उस पर कुछ आरोपित नहीं कर रहे होते।

विज्ञान आक्रमण है, कविता चोरी है और धर्म सहभागिता है।

अब हम पतंजलि के इन सूत्रों को समझने की कोशिश करें।

दृश्य जो कि प्राकृतिक तत्वों से और इंद्रियों से संघटित होता है उसका स्वभाव होता है— प्रकाश (थिरता), सक्रियता और निष्क्रियता। और द्रष्टा को अनुभव उपलब्ध हो तथा अंततः मुक्ति फलित हो इस हेतु वह होता है।

पहली बात जो समझने जैसी है वह यह है कि यह संसार इसलिए है ताकि तुम्हें मुक्ति फलित हो सके। बहुत बार यह प्रश्न उठा है तुम में. 'यह संसार क्यों है? इतनी ज्यादा पीड़ा क्यों है? यह सब किसलिए है? इसका प्रयोजन क्या है?' बहुत से लोग मेरे पास आते हैं और वे कहते हैं, 'यह मूलभूत प्रश्न है कि हम आखिर है ही क्यों? और अगर जीवन इतनी पीड़ा से भरा है, तो प्रयोजन क्या है इसका? यदि परमात्मा है, तो वह इस सारी की सारी अराजकता को मिटा क्यों नहीं देता? क्यों नहीं वह मिटा देता इस सारे दुख भरे जीवन को, इस नरक को? क्यों वह लोगों को विवश किए चला जाता है इस में जीने के लिए?

योग के पास उत्तर है। पतंजलि कहते हैं, 'द्रष्टा को अनुभव उपलब्ध हो तथा अंततः मुक्ति फलित हो, इस हेतु यह होता है।’

यह एक प्रशिक्षण है? पीड़ा एक प्रशिक्षण है, क्योंकि बिना पीड़ा के परिपक्व होने की कोई संभावना नहीं। यह आग है, सोने को शुद्ध होने के लिए इसमें से गुजरना ही होगा। यदि सोना कहे, क्यों? तो सोना अशुद्ध और मूल्यहीन ही बना रहता है। केवल आग से गुजरने पर ही वह सब जल जाता है जो कि सोना नहीं होता और केवल शुद्धतम स्वर्ण बच रहता है। मुक्ति का कुल मतलब इतना ही है : एक परिपक्वता, इतना चरम विकास कि केवल शुद्धता, केवल निर्दोषता ही बचती है, और वह सब जो कि व्यर्थ था, जल जाता है।

इसे जानने का कोई और उपाय नहीं है। कोई और उपाय हो भी नहीं सकता इसे जानने का। यदि तुम जानना चाहते हो कि तृप्ति क्या है, तो तुम्हें भूख को जानना ही होगा। यदि तुम बचना चाहते हो भूख से, तो तुम तृप्ति से भी बच जाओगे। यदि तुम जानना चाहते हो कि गहन तृप्ति क्या होती है, तो तुम्हें जानना होगा प्यास को, गहन प्यास को। यदि तुम कहते हो, 'मैं नहीं चाहता मुझे प्यास लगे', तो तुम प्यास के बुझने की, उस गहन तृप्ति की सुंदर घड़ी को चूक जाओगे। यदि तुम जानना चाहते हो कि प्रकाश क्या है, तो तुम्हें गुजरना ही पड़ेगा अंधेरी रात से। अंधेरी रात तुम्हें तैयार करती है जानने के लिए कि प्रकाश क्या है। यदि तुम जानना चाहते हो कि जीवन क्या है, तो तुम्हें गुजरना होगा मृत्यु से। मृत्यु तुम में जीवन को जानने की संवेदनशीलता निर्मित करती है।

वे विपरीत नहीं हैं, वे परिपूरक हैं। ऐसा कुछ नहीं है संसार में जो कि विपरीत हो; हर चीज परिपूरक है।'यह' संसार अस्तित्व रखता है ताकि तुम जान सको 'उस' संसार को।'इसका' अस्तित्व है 'उसको' जानने के लिए। भौतिक है आध्यात्मिक को जानने के लिए; नरक है स्वर्ग तक आने के

लिए। यही है प्रयोजन। और यदि तुम एक से बचना चाहते हो तो तुम दोनों से बच जाओगे, क्योंकि वे एक ही चीज के दो पहलू हैं। एक बार तुम इसे समझ लेते हमे तो कोई पीड़ा नहीं रहती. तुम जानते हो कि यह एक प्रशिक्षण है, एक अनुशासन है। अनुशासन कठिन होता है। कठिन होगा ही, क्योंकि केवल तभी उससे सच्ची परिपक्वता आएगी।

योग कहता है कि यह संसार एक ट्रेनिंग स्कूल की भांति है, एक पाठशाला। इससे बचो मत और इससे भागने की कोशिश मत करो। बल्कि जीओ इसे, और इसे इतनी समग्रता से जीओ कि इसे फिर से जीने को विवश न होना पड़े तुम्हें। यही है अर्थ जब हम कहते हैं कि एक बुद्ध पुरुष कभी वापस नहीं लौटता। कोई जरूरत नहीं रहती। वह गुजर गया जीवन की सभी परीक्षाओं से। उसके लौटने की जरूरत न रही।

तुम्हें फिर—फिर उसी जीवन में लौटने को विवश होना पड़ता है, क्योंकि तुम सीखते नहीं। बिना सीखे ही तुम अनुभव की पुनरुक्ति किए चले जाते हो। तुम फिर—फिर दोहराते रहते हो वही अनुभव—वही क्रोध। कितनी बार, कितने हजारों बार तुम क्रोधित हुए हो? जरा गिनो तो। क्या सीखा तुमने इससे? कुछ भी नहीं। फिर जब कोई स्थिति आ जाएगी तो तुम फिर से क्रोधित हो जाओगे—बिलकुल उसी तरह जैसे कि तुम्हें पहली बार क्रोध आ रहा हो!

कितनी बार तुम पर कब्जा कर लिया है लोभ ने, कामवासना ने रूम फिर कब्जा कर लेंगी ये चीजें। और फिर तुम प्रतिक्रिया करोगे उसी पुराने ढंग से—जैसे कि तुमने न सीखने की ठान ही ली हो। और सीखने के लिए राजी होने का अर्थ है योगी होने के लिए राकँई होना। यदि तुमने न सीखने का ही तय कर लिया है, यदि तुम आंखों पर पट्टी ही बांधे रखना चाहते हो, यदि तुम फिर—फिर दोहराए जाना चाहते हो उसी नासमझी को, तो तुम वापस फेंक दिए जाओगे। तुम वापस भेज दिए जाओगे उसी कक्षा में जब तके कि तुम उत्तीर्ण न हो जाओ।

जीवन को किसी और ढंग से मत देखना। यह एक विराट पाठशाला है, एकमात्र विश्वविद्यालय है।'विश्वविद्यालय' शब्द आया है 'विश्व' से। असल में किसी विश्वविद्यालय को स्वयं को विश्वविद्यालय नहीं कहना चाहिए। यह नाम तो बहुत विराट है। संपूर्ण विश्व ही है एकमात्र विश्वविद्यालय। लेकिन तुमने बना लिए हैं छोटे—छोटे विश्वविद्यालय और तुम सोचते हो कि जब तुम वहां से उत्तीर्ण होते हो तो तुम जान गए सब, जैसे कि तुम बन गए ज्ञानी!

नहीं, ये छोटे—मोटे मनुष्य—निर्मित विश्वविद्यालय न चलेंगे। तुम्हें इस विराट विश्वविद्यालय से जीवन भर गुजरना होगा।

पतंजलि कहते हैं, '.. अनुभव उपलब्ध हो तथा अंततः मुक्ति फलित हो..।'

अनुभव मुक्ति लाता है। जीसस ने कहा है, 'सत्य को जान लो और सत्य तुम्हें मुक्त कर देगा।' जब भी तुम किसी बात को सजग होकर, होशपूर्वक, पूरी तरह ध्यान देते हुए अनुभव करते हो कि क्या घट रहा है —ध्यान दे रहे होते हो और साथ—साथ सहभागी हो रहे होते हो—तो वह अनुभव मुक्तिदायी होता है। तुरंत कोई चीज उमगती है उसमें से : एक अनुभव, जो सत्य बन जाता है। तुमने उसे शास्त्रों से उधार नहीं लिया होता; तुमने उसे किसी दूसरे से उधार नहीं लिया होता। अनुभव उधार नहीं लिया जा सकता; केवल सिद्धात उधार लिए जा सकते हैं।

इसीलिए सारे सिद्धात गंदे होते हैं, क्योंकि वे बहुत से हाथों से गुजरते रहते हैं—लाखों हाथों से। वे गंदे नोटों की भांति होते हैं। अनुभव सदा ताजा होता है—सुबह की ओस जैसा ताजा, सुबह खिले गुलाब की भांति ताजा। अनुभव सदा निर्दोष और कुंआरा होता है, किसी ने कभी छुआ नहीं है उसे। तुम पहली बार उसके सामने आए हो। तुम्हारा अनुभव तुम्हारा है, वह किसी दूसरे का नहीं है, और कोई उसे दे नहीं सकता तुम्हें।

बुद्ध पुरुष मार्ग दिखा सकते हैं, लेकिन चलना तो तुम्हें ही है। कोई बुद्ध पुरुष तुम्हारी जगह नहीं चल सकता है; ऐसी कोई संभावना नहीं है। कोई बुद्ध पुरुष अपनी आंखें तुम्हें नहीं दे सकता कि तुम उनके द्वारा देख सको। और यदि कोई बुद्ध पुरुष तुम्हें आंखें दे भी दे, तो तुम बदल दोगे आंखों को—आंखें तुम्हें न बदल पाएंगी। जब आंखें तुम्हारे ढांचे में बिठाई जाएंगी, तो तुम्हारा ढांचा आंखों को ही बदल देगा, लेकिन आंखें तुम्हें नहीं बदल सकतीं। वे अंश हैं; तुम एक बहुत बड़ी घटना हो।

मैं अपना हाथ तुम्हें उधार नहीं दे सकता। यदि मैं दूं भी, तो स्पर्श मेरा न रहेगा, वह तुम्हारा होगा। जब तुम छुओगे और स्पर्श करोगे कुछ—चाहे मेरे हाथ द्वारा ही—तो वह तुम्हीं स्पर्श कर रहे होओगे, मेरा हाथ न होगा। सत्य को उधार पाने की कोई संभावना नहीं है। अनुभव मुक्त कर्ता है।

रोज मुझसे लोग मिलते हैं और कहते हैं, 'कैसे कोई क्रोध से मुक्त हो? कैसे कोई काम से, वासना से मुक्त हो? कैसे कोई मुक्त हो इससे, कैसे कोई मुक्त हो उससे?' और जब मैं कहता हूं 'इसे जीओ', तो उन्हें धक्का लगता है। वे मेरे पास आए थे उन बातों का दमन करने की किसी विधि की खोज में। और यदि वे भारत में किसी दूसरे गुरु के पास गए होते तो उन्हें अपना दमन करने के लिए कोई न कोई विधि मिल गई होती। लेकिन दमन कभी मुक्ति नहीं बन सकता, क्योंकि दमन का अर्थ है अनुभव से बचना। दमन का अर्थ है अनुभव की तमाम जड़ों को ही कांट देना। दमन कभी भी मुक्ति नहीं बन सकता। दमन सब से बड़ा बंधन है जो. तुम कहीं पा सकते हो। तुम जीते हो एक पिंजरे में। अभी एक दिन एक नए संन्यासी ने मुझसे कहा, 'मैं पिंजरे में बंद जानवर जैसा अनुभव करता हूं।' इसकी पूरी संभावना है कि उसका मतलब यही शा कि वह चाहता था कि मैं उसकी मदद करूं ताकि जानवर मर जाए, क्योंकि हम 'जानवर' तभी कहते हैं जब हम निंदा करते हैं। वह शब्द ही निंदित है।

लेकिन जब मैंने संन्यासी से कहा, 'ही, मैं तुम्हारी मदद करूंगा। मैं तोड़ दूंगा पिंजरा और पूरी तरह स्वतंत्र कर दूंगा जानवर को,' तो उसे थोड़ा धक्का लगा; क्योंकि जब तुम कहते हो जानवर, तो तुमने उसकी निंदा, उसका मूल्यांकन कर ही दिया होता है। यह कोई महज तथ्य नहीं है। पशु या पशुता शब्द में ही तुमने वह सब कुछ कह दिया जो तुम कहना चाहते थे। तुम उसे स्वीकार नहीं करते। तुम उसे जीना नहीं चाहते।

इसीलिए तुमने पिंजरा बना लिया है। वह पिंजरा है—चरित्र। सारे चरित्र पिंजरे हैं, कारागृह हैं, तुम्हारे चारों ओर बंधी जंजीरें हैं। और चरित्र वाला आदमी कैदी आदमी है। वास्तविक रूप से जागा हुआ व्यक्ति चरित्र वाला व्यक्ति नहीं होता है। वह जीवंत होता है। वह पूरी तरह जागा हुआ होता है, लेकिन उसका कोई चरित्र नहीं होता, क्योंकि उसके आस—पास कोई पिंजरा नहीं होता। वह सहजस्फूर्त भाव से जीता है। वह जागा हुआ जीता है इसलिए कोई गलती नहीं हो सकती, लेकिन उसकी सुरक्षा के लिए कोई पिंजरा नहीं होता आस—पास।

पिंजरा सजगता का झूठा विकल्प है। यदि तुम सोए—सोए जीना चाहते हो तो तुम्हें चरित्र की जरूरत है, ताकि चरित्र तुम्हें मार्ग—निर्देश दे सके। तब तुम्हें सजग रहने की जरूरत नहीं होती। जैसे, तुम कोई चीज चुराने ही वाले हो—कि चरित्र एकदम रोक देता है तुम्हें वह कहता है, 'नहीं! यह गलत है! यह पाप है! तुम सडोगे नरक में! क्या तुम भूल गए सारी बाइबिल? क्या तुम भूल गए सभी दंड जिन्हें भुगतना पड़ता है आदमी को?' यह 'है चरित्र। यह रोक देता है तुम्हें। तुम चोरी करना चाहते हो, चरित्र एक रुकावट बन जाता है।

सजग व्यक्ति भी चोरी नहीं करेगा, लेकिन यह उसका चरित्र नहीं है; और यही है चमत्कार और सौंदर्य। उसके पास कोई चरित्र नहीं है और फिर भी वह चोरी नहीं करेगा?ँ क्योंकि उसके पास बोध है। ऐसा नहीं है कि वह भयभीत है पाप से—पाप जैसा कुछ है ही नहीं। ज्यादा से ज्यादा कह सकते हो कि गलतियां हैं। पाप जैसा तो कुछ है ही नहीं। वह दंड से भयभीत नहीं है, क्योंकि दंड कहीं भविष्य में नहीं मिलता। ऐसा नहीं है कि पापों के लिए दंड मिलता है। असल में पाप ही दंड है।

ऐसा नहीं है कि तुम आज क्रोधित होते हो और दंड तुम्हें कल मिलेगा या अगले जन्म में मिलेगा—कोरी बकवास है यह सब। तुम अपना हाथ आग में अभी डालते हो, तो क्या सोचते हो कि वह अगले जन्म में जलेगा? जब तुम अपना हाथ आग में डालते हो, तो वह अभी जलता है; वह तत्क्षण जलता है। हाथ का वहा रखा जाना और उसका जल जाना साथ—साथ घटता है। एक क्षण का भी अंतराल नहीं होता। जीवन का भविष्य में कोई विश्वास नहीं, क्योंकि जीवन केवल वर्तमान में है। ऐसा नहीं है कि पापों की सजा भविष्य में मिलेगी, पाप ही सजा हैं। सजा अंतर्निहित है : तुम चोरी करते हो और तुम्हें सजा मिल जाती है। उस चोरी करने में ही तुम सजा पाते हो—क्योंकि तुम ज्यादा बंद हो जाते हो : तुम ज्यादा भयभीत हो जाओगे, तुम संसार का सामना न कर पाओगे। निरंतर तुम एक अपराध— भाव अनुभव करोगे, कि तुमने कुछ गलत किया है, किसी भी घड़ी तुम पकड़े जा सकते हो।

तुम पकड़े ही गए हो! हो सकता है कभी किसी ने तुम्हें पकड़ा न हो और किसी न्यायालय ने तुम्हें कभी सजा न दी हो—और कहीं कोई पारलौकिक न्यायालय नहीं है—लेकिन फिर भी तुम पकड़े गए हो। तुम स्वयं के द्वारा ही पकड़े गए हो। इसे कैसे भूल पाओगे तुम? कैसे तुम क्षमा करोगे स्वयं को? कैसे तुम उस बात को अनकिया कर दोगे जिसे कि तुमने किया है? वह तुम्हारे चारों ओर छाई रहेगी। यह बात छाया की भांति तुम्हारा पीछा करेगी। किसी प्रेत की भांति यह तुम्हारे पीछे पड़ी रहेगी। यह स्वयं ही एक सजा है।

तो चरित्र तुम्हें गलत बातें करने से रोकता है, लेकिन वह तुम्हें उनके बारे में सोचने से नहीं रोक सकता। लेकिन चोरी करना या उसके बारे में सोचना एक ही बात है। सचमुच हत्या कर देना और उसके बारे में सोचना एक ही बात है। क्योंकि जहां तक तुम्हारी चेतना का प्रश्न है तुमने वह बात कर ही दी है —यदि तुमने उसके बारे में सोचा है। वह कृत्य न बनी क्योंकि चरित्र ने तुम्हें रोक लिया, यदि चरित्र वहा न होता तो वह बात कृत्य बन गई होती।

तो असल में चरित्र ज्यादा से ज्यादा यही करता है : वह रोक लगा देता है विचार पर; वह उसे कृत्य मैं नहीं बदलने देता। यह समाज के लिए ठीक है, लेकिन तुम्हारे लिए जरा भी ठीक नहीं है। यह समाज की सुरक्षा करता है; तुम्हारा चरित्र समाज की सुरक्षा करता है। तुम्हारा चरित्र दूसरों की सुरक्षा करता है, बस इतना ही। इसीलिए प्रत्येक समाज जोर देता है चरित्र पर, नैतिकता पर, ऐसी ही चीजों पर; लेकिन वह तुम्हारी सुरक्षा नहीं करता।

तुम्हारी सुरक्षा केवल होश में हो सकती है। और यह होश कैसे पाया जाता है? दूसरा कोई रास्ता नहीं सिवाय इसके किं जीवन को उसकी समग्रता में जीया जाए।

'द्रष्टा को अनुभव उपलब्ध हो तथा अंततः मुक्ति फलित हो, इस हेतु यह होता है।'

'दृश्य, जो कि प्राकृतिक तत्वों से और इंद्रियों से संघटित होता है, उसका स्वभाव होता है..।'

तीन गुण। योग तीन गुणों में विश्वास करता है. सत्य, रजस, तमस। सत्व वह गुण है जो चीजों को स्थिर बनाता है, रजस वह गुण है जो सक्रियता देता है; और तमस का गुणधर्म है अक्रिया। ये तीन आधारभूत गुण हैं। इन तीनों के द्वारा यह सारा संसार अस्तित्व में है। यह है योग की त्रिमूर्ति।

अब भौतिकशास्त्री भी योग के साथ राजी होने को तैयार हो गए हैं। उन्होंने परमाणु को तोड़ लिया है और उन्हें पता चला है तीन चीजों का. इलेक्ट्रान, न्यूट्रान, प्रोट्रान। ये तीनों वही तीन गुण हैं : एक की गुणवत्ता है प्रकाश की—सत्व, स्थिरता; दूसरे की गुणवत्ता है रजस की—क्रिया, ऊर्जा, शक्ति, और तीसरे की गुणवत्ता है अक्रिया की—तमस। सारा संसार बना है इन तीन गुणों से; और इन तीन गुणों से गुजरना पड़ता है सजग व्यक्ति को। उसे अनुभव लेना होता है इन तीनों गुणों का। और यदि तुम उनको एक लयबद्धता में अनुभव करते हो, जो कि वास्तविक अनुशासन है योग का.....।

हर कोई इन्हें अनुभव करता है. कई बार तुम आलस्य अनुभव करते हो, कई बार तुम ऊर्जा से भरा हुआ अनुभव करते हो; कई बार तुम अच्छा और हलका अनुभव करते हो, और कई बार तुम अशुभ और बुरा अनुभव करते हो; कई बार तुम अंधकार होते हो और कई बार तुम सुबह का उजाला होते हो। तुम्हें प्रतीति होती है इन तीनों गुणों की। उनकी घड़ियां निरंतर आती रहती हैं; तुम एक चक्र में घूमते रहते हो; लेकिन वे अनुपात में नहीं होते।

एक आलसी आदमी नब्बे प्रतिशत आलसी होता है। वह सक्रिय भी होता है—उसे होना ही पड़ेगा, क्योंकि आलस्य का जीवन जीने के लिए भी उसे थोड़ा काम तो करना होगा। उसकी सारी सक्रियता बस इतनी ही होती है—उसकी निष्क्रियता को सहारा देने के लिए। और उसे लोगों के साथ थोड़ा भला भी रहना पड़ता है, .अन्यथा तो लोग बहुत ही बुरी तरह पेश आएंगे उसके साथ। लोग बरदाश्त नहीं करेंगे उसकी निष्क्रियता को।

क्या तुमने ध्यान दिया? जो लोग बहुत सक्रिय नहीं होते .उदाहरण के लिए, बहुत मोटे लोग सदा मुस्कुराते रहते हैं। यह बात उनके लिए एक रक्षी—कवच होती है। वे जानते हैं कि वे लड़ नहीं सकते। वे जानते हैं कि यदि लड़ाई हो जाए तो वे बच कर भाग नहीं सकते, दौड़ नहीं सकते। तुम बहुत मोटे लोगों को सदा मुस्कुराते हुए देखते हो—प्रसन्न! कारण क्या है? क्यों पतले व्यक्ति दुखी मालूम पड़ते हैं, और क्यों मोटे व्यक्ति कभी बहुत दुखी नहीं मालूम पड़ते, सदा प्रसन्न दिखते हैं?

मनस्विद और शरीर—शास्त्री कहते हैं कि यह बात मोटे व्यक्ति के लिए एक सुरक्षा है, क्योंकि जीवन—संघर्ष में उनके लिए सदा लड़ने की भाव—दशा में रहना बहुत कठिन होगा, जिसमें कि दुबले—पतले लोग सदा ही रहते हैं। वे लड़ सकते हैं—यदि दूसरा आदमी कमजोर है तो वे पीट देंगे उसे; यदि दूसरा आदमी शक्तिशाली है तो वे बच कर भाग निकलेंगे। वे दोनों बातें कर सकते हैं, और मोटा आदमी इन दोनों में से कुछ भी नहीं कर सकता, तो वह मुस्कुराता रहता है; वह हर किसी के साथ अच्छा बना रहता है। यह उसकी सुरक्षा है, ताकि दूसरे उसके साथ अच्छा व्यवहार करें।

आलसी व्यक्ति सदा भले होते हैं। उन्होंने कभी कोई पाप नहीं किया, क्योंकि पाप करने के लिए भी व्यक्ति को थोड़ा सक्रिय होना पड़ता है। तुम किसी आलसी आदमी को हिटलर नहीं बना सकते, असंभव है। तुम किसी आलसी आदमी को नेपोलियन या सिकंदर नहीं बना सकते। यह असंभव है। आलसी आदमियों ने कोई बड़ा पाप नहीं किया है. वे कर नहीं सकते। एक तरह से वे बहुत भले लोग होते हैं, क्योंकि पाप करने के लिए भी उन्हें सक्रिय होना होगा—वह बात उनके अनुकूल नहीं पड़ती।

फिर सक्रिय व्यक्ति हैं, असंतुलित; वे सदा कुछ न कुछ करते रहते हैं। उन्हें कहीं पहुंचने की कोई चिंता नहीं होती; उन्हें केवल यही चिंता होती है कि तेजी से चलते रहें। उन्हें बिलकुल चिंता नहीं होती कि वे कहीं पहुंच रहे हैं या नहीं—इसका कोई सवाल ही नहीं है। यदि वे तेजी से चल रहे हैं तो फिर ठीक है। मत पूछना कि 'कहा जा रहे हो तुम?' वे कहीं नहीं जा रहे हैं; वे तो बस जा रहे हैं। उनका

कोई लक्ष्य नहीं है। उनके पास केवल ऊर्जा है कुछ न कुछ करते रहने के लिए। ये लोग संसार के खतरनाक लोग हैं—आलसी लोगों से ज्यादा खतरनाक। इस दूसरी श्रेणी से ही आए हैं सारे एडोल्फ हिटलर, मुसोलिनी, नेपोलियन, सिकंदर। सारे उपद्रवी आते हैं इस दूसरी श्रेणी से, क्योंकि उनके पास ऊर्जा होती है—एक बेचैन ऊर्जा।

फिर तीसरी तरह के लोग हैं, जिन्हें ढूंढ निकालना दुर्लभ है : कहीं कोई लाओत्सु बैठा होता है मौन—अकर्मण्य नहीं—निश्चेष्ट। न सक्रिय, न अकर्मण्य—निष्क्रिय; ऊर्जा से भरा—पूरा, एक ऊर्जा—कुंड, लेकिन मौन बैठा हुआ। क्या तुमने ध्यान से देखा है किसी को शांत—मौन बैठे हुए, ऊर्जा से आपूरित? तुम एक आभामंडल अनुभव करते हो उसके चारों ओर, जीवंतता से दीप्तिमान, लेकिन फिर भी शांत—कुछ न करते हुए, मात्र होने में थिर।

और योग है इन तीनों के बीच संतुलन पा लेना। यदि तुम इन तीनों के बीच संतुलन पा लो तो अचानक तुम इनके पार चले जाते हो। यदि कोई एक गुण ज्यादा होता है बाकी दो गुणों से तो वही तुम्हारी समस्या बन जाता है। यदि तुम सक्रिय कम और आलसी ज्यादा हो तो आलस्य तुम्हारी समस्या बन जाएगा. तुम उसके द्वारा पीड़ा पाओगे। यदि सक्रियता ज्यादा है आलस्य से तो तुम अपनी सक्रियता द्वारा दुख पाओगे। और तीसरा कभी ज्यादा नहीं होता, वह सदा कम ही होता है, लेकिन यदि यह सिद्धांततः संभव भी हो—कि कोई जरूरत से ज्यादा अच्छा हो—तो यह बात भी एक दुख बन जाएगी उसके लिए, यह भी एक असंतुलन निर्मित करेगी। एक सम्यक जीवन संतुलन का जीवन होता है।

बुद्ध के पास आठ सिद्धात हैं अपने शिष्यों के लिए। प्रत्येक सिद्धात के आगे वे जोड़ देते हैं एक शब्द—सम्यक। यदि वे कहते हैं 'होशपूर्ण होओ' तो केवल 'स्मृति' नहीं कहते; वे कहते हैं, 'सम्यक स्मृति'। अंग्रेजी में सदा इसका अनुवाद किया जाता रहा है 'राइट मेमोरी'। यदि वे कहते 'श्रम', तो वे सदा यही कहते, 'सम्यक श्रम'।'सम्यक' का अर्थ है संतुलन।'सम्यक' का अर्थ है समता। समाधि के लिए भी, ध्यान के लिए भी बुद्ध कहते हैं, 'सम्यक समाधि'। समाधि भी अति हो सकती है, और तब यह खतरनाक हो जाएगी। अच्छाई भी अति हो सकती है, और तब यह खतरनाक हो जाएगी।

समता मुख्य तत्व होना चाहिए। जो कुछ भी करो, तुम सदा संतुलित रहना रस्सी पर चलते आदमी की भांति, निरंतर संतुलन बनाए रखना। यही है सम्यकत्व, संतुलन का तत्व। वह व्यक्ति जो परम मिलन को, परम योग को उपलब्ध होना चाहता है, उसे गहन संतुलन में रहना होता है। संतुलन में तुम तीनों गुणों के पार चले जाते हो। तुम गुणातीत हो जाते हो : तुम इन तीनों गुणों का अतिक्रमण कर जाते हो। तुम अब इस संसार के हिस्से नहीं रहते; तुम इसके पार चले जाते हो।

ये तीन गुण—प्रकाश (थिरता), सक्रियता और निष्क्रियता—इनकी चार अवस्थाएं हैं: निश्चित अनिश्चित सांकेतिक और अव्यक्ता

इन तीनों गुणों की चार अवस्थाएं हैं। पहली को पतंजलि कहते हैं, निश्चित। तुम इसे पदार्थ कह सकते हो; यह तुम्हारे आस—पास की सर्वाधिक निश्चित चीज है। फिर है अनिश्चित, तुम इसे मन कह सकते हो; वह भी वहां है, निरंतर तुम्हें उसकी अनुभूति होती है, फिर भी वह एक अनिश्चित तत्व है। तुम निश्चित नहीं कह सकते कि मन क्या है। तुम जानते हो उसे, तुम निरंतर जीते हो उसे, लेकिन तुम उसे परिभाषित नहीं कर सकते। पदार्थ को परिभाषित किया जा सकता है लेकिन मन को नहीं। और फिर है 'सांकेतिक'। अनिश्चित से भी ज्यादा सूक्ष्म है सांकेतिक : यह है आत्मा। तुम केवल संकेत दे सकते हो उसका। तुम यह भी नहीं कह सकते कि वह अपरिभाषित है। यह भी सूक्ष्म ढंग से उसे परिभाषित करना ही हुआ, क्योंकि यह बात भी एक परिभाषा हो जाती है। यह कहना कि कोई चीज अपरिभाषित है—तुमने परोक्ष रूप से उसे परिभाषित कर ही दिया; तुमने कुछ कह ही दिया उसके बारे में। तो यही है अस्तित्व की सूक्ष्म पर्त जो आत्मा है, जो सांकेतिक है। और फिर इसके पार है सूक्ष्मतम, जो है 'अव्यक्त'—असांकेतिक—जो अनात्मा है।

तो पदार्थ, मन, आत्मा, अनात्मा—ये चार अवस्थाएं हैं इन तीन गुणों की।

यदि तुम गहन आलस्य में हो तो तुम पदार्थ की भांति छई हो। आलस्य से भरा आदमी करीब—करीब पदार्थ होता है, जड़ जीवन होता है उसका, तुम उसे जीवंत नहीं देखते। फिर है दूसरा गुण—मन। यदि रजस गुण बहुत ज्यादा हो, तो तुम मन से बहुत ज्यादा भर जाते हो। तब तुम बहुत ज्यादा सक्रिय होते हो—मन निरंतर सक्रिय रहता है, क्रिया से घिरा रहता है, निरंतर नई—नई व्यस्तताओं की खोज में रहता है।

एवरेस्ट की चोटी पर पहुंचने वाले पहले आदमी एडमंड हिलेरी से किसी ने पूछा, 'क्यों? आखिर क्यों आपने इतना खतरा उठाया?' वह कहने लगा, 'क्योंकि एवरेस्ट मौजूद था, तो आदमी को चढ़ना ही था।' वहा कुछ है नहीं...। चांद पर क्यों जा रहा है आदमी? क्योंकि चांद है। कैसे तुम बच सकते हो उससे? तुम्हें जाना ही है। सक्रियता से भरा आदमी निरंतर काम की खोज में रहता है। वह बिना काम के नहीं रह सकता। यह उसकी समस्या है। बिना काम के वह नरक में होता है; काम में तल्लीन होकर वह भूल जाता है स्वयं को।

यदि तमस, अक्रिया बहुत हो, तो तुम पदार्थ की भांति हो जाते हो। यदि रजस बहुत हो तो तुम मन हो जाते हो. मन है सक्रियता। इसीलिए मन पागल हो जाता है। फिर यदि सत्व बहुत ज्यादा हो जाए तो तुम आत्मा हो जाते हो। लेकिन वह भी एक असंतुलन है। यदि ये तीनों ही संतुलन में हों तो फिर

आती है चौथी बात : अनात्मा। वही है तुम्हारा वास्तविक अस्तित्व जहां 'मैं ' की अनुभूति भी अस्तित्व नहीं रखती! इसीलिए इसे 'अनात्मा' कहा गया है।

ये हैं चार अवस्थाएं—तीन हैं असंतुलन की और चौथी है संतुलन की। पहली निश्चित है, दूसरी अनिश्चित है, तीसरी सांकेतिक है, चौथी सांकेतिक भी नहीं, अव्यक्त है। और यही चौथी सब से अधिक वास्तविक है। पहली सब से अधिक वास्तविक मालूम पड़ती है क्योंकि तुम जीते हो पहली में। दूसरी बहुत निकट मालूम पड़ती है क्योंकि तुम जीते हो मन में। तीसरी थोड़ी दूर मालूम पड़ती है, लेकिन तुम समझ सकते हो उसे। चौथी तो बिलकुल अविश्वसनीय मालूम पड़ती है—अनात्मा? ब्रह्म कहो, या परमात्मा, या तुम जो भी नाम दे दो इसे, बहुत दूर मालूम पड़ता है, करीब—करीब असंभव मालूम पड़ता है; और जो सबसे ज्यादा सच है।

द्रष्टा यद्यपि शुद्ध चेतना है फिर भी मन की विकृतियों के माध्यम से वह देखा करता है।

और वह चौथी अवस्था, चाहे तुम उसे उपलब्ध भी हो जाओ—जब तक तुम देह में हो तब तक तुम्हें अपने अस्तित्व की सभी पर्तों का उपयोग करना होगा। बुद्ध भी जब तुम से बात करते हैं तो उन्हें मन के द्वारा ही बात करनी पड़ती है। बुद्ध भी जब चलते हैं तो उन्हें शरीर के द्वारा चलना पड़ता है। लेकिन अब, जब एक बार तुम जान लेते हो कि तुम मन के पार हो, तो मन तुम्हें कभी धोखा नहीं दे सकता। तुम उसका उपयोग कर सकते हो और तुम उसके द्वारा कभी उपयोग नहीं किए जाते। यही अंतर होता है। ऐसा नहीं. है कि बुद्ध मन का उपयोग नहीं करते, वे करते हैं। वे मन का उपयोग करते हैं; मन तुम्हारा उपयोग करता है। ऐसा नहीं है कि वे देह में नहीं जीते हैं, वे जीते हैं। तुम घसिटते हों—देह मालिक होती है और तुम गुलाम होते हो। बुद्ध होते हैं मालिक; देह होती है गुलाम। एक समग्र क्रांति, एक समग्र रूपांतरण घटित होता है—जो ऊपर होता है वह नीचे चला जाता है और जो नीचे होता है वह ऊपर आ जाता है।

दृश्य का अस्तित्व होता है मात्र द्रष्टा के लिए।

यह योग का या वेदांत का चरम शिखर है. 'दृश्य का अस्तित्व होता है मात्र द्रष्टा के लिए।' जब द्रष्टा खो जाता है, तो दृश्य भी खो जाता है, क्योंकि वह तो केवल द्रष्टा के मुक्त होने के लिए ही था। जब मुक्ति घट जाती है तो उसकी आवश्यकता नहीं रहती।

यह बात बहुत से प्रश्न उठा देगी। क्योंकि बुद्ध पुरुष—उनके लिए दृश्य तिरोहित हो चुका है, लेकिन तुम्हारे लिए वह अभी भी है। एक फूल है, तुम में से कोई बुद्धत्व को उपलब्ध हो जाता है. उसके लिए वह फूल तिरोहित हो चुका, लेकिन तुम्हारे लिए वह अभी भी है। तो यह कैसे संभव है कि किसी के लिए वह तिरोहित हो जाता है और तुम्हारे लिए वह बना रहता है?

यह बिलकुल ऐसा ही है : रात तुम सभी सो जाते हो, तुम सभी स्वप्न देखने लगते हो, फिर एक आदमी जाग जाता है—उसकी नींद टूट जाती है, उसका स्वप्न खो जाता है—लेकिन बाकी सभी के स्वप्न जारी रहते हैं। उसके स्वप्न के तिरोहित होने की घटना तुम्हारे स्वप्नों के टूटने में किसी प्रकार से मदद नहीं करती; वे चलते रहते हैं। इसीलिए बुद्धत्व व्यक्तिगत होता है। एक व्यक्ति जाग जाता है; बाकी सब अपने— अपने अज्ञान में जीए जाते हैं। वह दूसरों की मदद कर सकता है जाग जाने में। अपनी नींद से तुम बाहर आ सको उसके लिए मदद के उपाय वह तुम्हारे चारों ओर निर्मित कर सकता है, लेकिन जब तक तुम अपनी नींद से बाहर नहीं आ जाते तब तक तुम्हारे स्वप्न बने रहेंगे।

'दृश्य का अस्तित्व होता है मात्र द्रष्टा के लिए।'

यद्यपि दृश्य उसके लिए मृत हो जाता है जिसने मुक्ति पा ली है फिर भी बाकी दूसरों के लिए यह जीवित रहता है क्योंकि यह सर्वनिष्ठ होता है।

भारत में हमने स्वप्न और तुम्हारी तथाकथित वास्तविकता के बीच केवल एक भेद किया है, और यह है वह भेद. कि स्वप्न निजी वास्तविकता हैं और यह वास्तविकता जिसे कि तुम संसार कहते हो एक सार्वजनिक स्वप्न है, बस इतना ही। जब तुम स्वप्न देखते हो तो तुम निजी संसार के स्वप्न देखते हो। रात में तुम निजी संसार को जीते हो; तुम किसी और को नहीं बुला सकते अपने स्वप्न में साझीदार होने के लिए। तुम्हारा निकटतम मित्र या तुम्हारी पत्नी या तुम्हारी प्रेयसी भी बहुत दूर होते हैं। जब तुम स्वप्न देख रहे होते हो तो तुम अकेले ही स्वप्न देख रहे होते हो। तुम किसी को नहीं ले जा सकते वहां; वह एक निजी संसार है। तो फिर यह संसार क्या है? क्योंकि भारत में हम ने इस संसार को भी स्वप्नवत कहा है। यह एक सामूहिक स्वप्न है। हम सब एक साथ स्वप्न देखते हैं, क्योंकि हमारे मन एक ही ढंग से काम करते हैं।

कभी नदी पर जाओ। अपने साथ एक सीधी छड़ी ले जाना। तुम जानते हो कि छड़ी सीधी है। उसे डुबाना नदी में तत्क्षण तुम देखोगे कि वह टेढ़ी हो गई है, मुड़ गई है। बाहर निकालना उसे; तुम देखते हो कि वह सीधी ही है। फिर पानी में डालना उसे; वह फिर मुड़ जीती है। अब तुम अच्छी तरह जानते

हो कि छड़ी सीधी ही रहती है, लेकिन तुम्हारे मन का ढंग और प्रकाश—किरणों का व्यवहार एक धोखा निर्मित कर देता है—एक भ्रम—कि वह मुड़ गई है। तुम जानते भी हो कि वह सीधी ही है, तो भी वह पानी के भीतर मुड़ी हुई ही दिखेगी। तुम्हारा ज्ञान काम न आएगा। तुम अच्छी तरह, खूब अच्छी तरह जानते हो कि वह मुड़ी हुई नहीं है, लेकिन वह दिखेगी मुड़ी हुई—क्योंकि आंखों का और प्रकाश की किरणों का व्यवहार ऐसा है कि भ्रम निर्मित हो जाता है। फिर अपने कुछ मित्रों को ले जाना अपने साथ : तुम सभी उसे मुड़ा हुआ देखोगे। यह एक सामूहिक भ्रम है। इसी तरह संसार एक सामूहिक स्वप्न है।

द्रष्टा और दृश्य साथ— साथ होते हैं ताकि प्रत्येक का वास्तविक स्वभाव जाना जा सके।

इस संयोग का कारण है अविद्या अज्ञान।

इस स्वप्नवत संसार के साथ जुड़ना, देह के साथ जुड़ना, मन के साथ जुड़ना—जो कि तुम हो नहीं—एक आवश्यकता है। इस जोड़ के द्वारा तुम तैयार होओगे ज्यादा बड़े जोड़ के लिए। इस जोड़ के द्वारा तुम जान लोगे कि यह जोड़ झूठा है। जिस दिन तुम जान लोगे कि यह जोड़ झूठा है, परम मिलन घटित होगा।

जब संसार से तुम्हारा तलाक हो जाता है तो परमात्मा से तुम्हारा विवाह हो जाता है। जब तुम्हारा विवाह होता है संसार के साथ, तो परमात्मा से तुम्हारा तलाक हो जाता है। इसीलिए सारे संत—मीरा, चैतन्य, कबीर, पश्चिम में थेरेसा—वे सभी बात करते हैं विवाह की भाषा में, दूल्हा और दुलहन की भाषा में। और वे सभी प्रतीक्षा कर रहे हैं परम मिलन की।

इस प्रतीक का बहुत उपयोग किया गया है। मनस्विद तो इस विषय में संदेह भी करते हैं कि क्यों रहस्यदर्शी संत प्रेम, विवाह, आलिंगन, चुंबन आदि प्रतीकों का प्रयोग करते हैं! भारत में तो संभोग तक का प्रयोग किया गया है प्रतीक के रूप में : जब परम मिलन घटित होता है तो आनंद का चरम शिखर अनुभव होता है—व्यक्ति का समग्र के साथ परम संभोग, लहर का सागर के साथ परम मिलन होता है। क्यों ये लोग यौन प्रतीकों का प्रयोग करते हैं? मनस्विद संदेह करते हैं कि जरूर कहीं कामवासना का दमन रहा होगा।

वे गलत हैं। कामवासना का कोई दमन नहीं है, लेकिन कामवासना इतनी बुनियादी घटना है कि धर्म कैसे बच सकता है उससे? उसका प्रयोग करना पड़ता है। और संभोग एकमात्र गहनतम घटना है जहां तुम स्वयं को पूरी तरह से खो देते हो। तुम ऐसी कोई और घटना नहीं जानते जिसमें तुम इतनी समग्रता से अपने को खो देते होओ। और परमात्मा में या अस्तित्व में व्यक्ति स्वयं को पूरी तरह

खो देता है—अनात्मा हो जाता है। संभोग में उसकी एक हलकी सी झलक मिलती है तुम्हें। तो विवाह के प्रतीक का, दूल्हा—दुलहन के प्रतीक का प्रयोग करना अच्छा है।

संसार से विवाहित रहने पर परमात्मा से तुम्हारा तलाक हुआ रहता है। गुजरो संसार के अनुभव से—समृद्ध होओ, मुक्त होओ—अचानक तुम जान जाते हो कि यह विवाह एक भ्रम था, एक स्वप्न था। अब तुम्हारे सच्चे विवाह की तैयारी हो रही है। प्रियतम तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है।

आज इतना ही।

प्रवचन 42 - साधना, बुद्धत्व और सहभागिता

प्रश्न सार:

1—बुद्ध पुरुष दैनंदिन जीवन में समग्ररूपेण कैसे भाग लेते हैं?

2—तामसिक, राजसिक और सात्विक व्यक्तियों के लिए——कौन सी ध्यान विधियां अनुकूल होती है? आप हमेशा सक्रिय ध्यान की विधि ही क्यों देते हैं?

3—बुद्धत्व व्यक्तिगत है, तो क्या बुद्धत्व के बाद भी व्यक्तित्व बना रहता है?

4—हम कहां से आए और हमारा होना कैसे घटित हुआ?

5—आपने मुझे भ्रमित, सुस्त और पागल जैसा बना दिया है। अब मैं श्रद्धा भी अनुभव नहीं करता। मैं क्या करूं? कहां जाऊं?

6—कई बार स्नान करने और कपड़े बदलने की आदत के बारे में कुछ कहें।

7—आप निरंतर ताओत्सु पर ही क्यों नहीं बोलते रहते?

8—क्या वर्नर एरहार्ड बुद्धत्व के निकट है?

पहला प्रश्न :

बुद्ध पुरुष दैनंदिन जीवन में समग्ररूपेण कैसे भाग लेते हैं?

'कैसे' की इसमें कोई बात ही नहीं है। जब तुम होशपूर्ण होते हो तो 'कैसे' की कोई जरूरत नहीं रहती। जब तुम जागे हुए होते हो तो तुम सहज—स्फूर्त रूप से जीते हो, किसी योजना को मन में नहीं रखते, क्योंकि अब मन ही नहीं होता। बुद्ध पुरुष क्षण— क्षण प्रतिसंवेदन करते हैं—जैसी स्थिति होती है। कोई योजना नहीं, 'कैसे करें'—इसकी कोई धारणा नहीं, कोई विधि नहीं, वे केवल प्रतिसंवेदन करते हैं। उनका प्रतिसंवेदन किसी अनुगूंज की भांति होता है। तुम पहाड़ पर जाते हो, तुम आवाज करते हो, और पहाड़ियां उसे गुंजा देती हैं। क्यों? तुमने कभी सोचा कि पहाड़ियां कैसे गूंजती हैं? वे प्रतिसंवेदित होती हैं। जब तुम सितार बजाते हो तो क्या सितार के पास कोई 'कैसे' जैसी बात होती है? तुम्हारे मन में कोई विधि और कई बातें हो सकती है—कि क्या बजाना है, क्या गाना है—लेकिन सितार? वह तो बस प्रतिसंवेदित करता है तुम्हारी अंगुलियों को।

एक बुद्ध पुरुष होता है शून्य, खाली। तुम आते हो उसके पास; वह प्रतिसंवेदन करता है। इस 'प्रतिसंवेदन' शब्द को स्मरण रखना। यह प्रतिक्रिया नहीं है; यह प्रतिसंवेदन है। जब तुम प्रतिक्रिया करते हो तो तुम्हारे मन में विचार रहता है—कैसे, क्या! जब तुम प्रतिक्रिया करते हो तो वह किसी पूर्व—निर्धारित धारणा से निकलती है। जब तुम किसी बुद्ध पुरुष के पास जाते हो, तो वे किसी पूर्व—निर्धारित धारणा से उत्तर नहीं देते, उनके पास कोई धारणा होतीं ही नहीं। उनमें कोई पूर्वाग्रह नहीं होता, कोई धारणा नहीं होती, कोई वैचारिक सिद्धात नहीं होते। वे प्रतिसंवेदित होते हैं। वे उस परिस्थिति के प्रति प्रतिसंवेदन करते हैं।

एक दिन एक आदमी बुद्ध के पास आया और उसने पूछा, 'क्या ईश्वर है?' बुद्ध ने उसकी ओर देखा और कहा, 'नहीं।' और उसी दिन दोपहर को एक दूसरा आदमी आया। उसने पूछा, 'क्या ईश्वर है?' बुद्ध

ने उसके भीतर झांका और कहा, 'ही।' और उसी दिन सांझ एक तीसरा आदमी आया। उसने पूछा, 'क्या ईश्वर है?' और बुद्‌ध मौन रहे, उन्होंने कोई उत्तर नहीं दिया।

यदि उनके मन में कोई निर्धारित दृष्टि रही होती, तो उत्तर में एक संगति होती, क्योंकि वह स्थिति के प्रति प्रतिसंवेदन नहीं होता, वह सदा मन की धारणा से आता; वह बिलकुल संगत होता। यदि वे नास्तिक होते, उनका ईश्वर में कोई विश्वास न होता, तो प्रश्नकर्ता कोई भी हो उससे कुछ

अंतर न पड़ता। असल में बंधी—बधाई धारणा रखने वाला व्यक्ति कभी तुमको नहीं देखता, परिस्थिति को नहीं देखता। उसके पास एक जड़ विचार होता है, सच पूछा जाए तो उसे अपनी ही धुन होती है। बुद्‌ध ने तीनों आदमियों से कह दिया होता, 'नहीं' —यदि वे नास्तिक होते। यदि वे आस्तिक होते तो उन्होंने तीनों आदमियों से कह दिया होता, 'ही।' असल में जब तुम्हारे पास कोई निश्चित धारणा होती है, कोई दृष्टिकोण होता है, कोई पूर्वाग्रह, कोई बंधा हुआ ढांचा होता है—मन होता है —तो व्यक्ति, वह जीवंत स्थिति अप्रासंगिक हो जाती है; तब तुम परिस्थिति की ओर नहीं देखते।

अन्यथा प्रतिसंवेदन बिलकुल ही अलग होंगे। एक गहन आंतरिक संगति होगी—अस्तित्व की संगति, उत्तरों की नहीं। बुद्‌ध वही हैं जब उन्होंने कहा नहीं। बुद्‌ध वही हैं जब उन्होंने कहा ही। बुद्‌ध वही हैं जब उन्होंने कुछ नहीं कहा और चुप रह गए। लेकिन स्थितियां भिन्न—भिन्न थीं।

इन तीनों स्थितियों में बुद्‌ध का शिष्य आनंद उपस्थित था। वह उलझन में पड़ गया। वे तीनों आदमी कुछ जानते न थे उन दो उत्तरों के विषय में जो बुद्‌ध ने दिए थे, लेकिन आनंद मौजूद था तीनों ही स्थितियों में। जब रात को बुद्‌ध शय्या पर विश्राम के लिए लेटने वाले थे तो आनंद ने कहा, 'एक प्रश्न है। आपने एक ही प्रश्न का उत्तर तीन ढंग से क्यों दिया—परस्पर विरोधी ढंग से, विरोधाभासी ढंग से?'

बुद्‌ध ने कहा, 'मैंने तुम्हें कोई उत्तर नहीं दिया—तुम चिंता मत करो। तुम अपना प्रश्न पूछ सकते हो और मैं तुम्हें उत्तर दूंगा। वे उत्तर तुम्हें नहीं दिए गए थे। तुम बीच में क्यों आए?'

उत्तर स्थिति के अनुकूल दिया जाता है। जब स्थिति बदल जाती है, उत्तर बदल जाता है। यह एक प्रतिसंवेदन है।

बुद्‌ध ने कहा, 'वह पहला पूछने वाला आदमी नास्तिक था। वस्तुत: वह जिज्ञासु था ही नहीं। जब मैंने उसे देखा तो उसके पास एक निश्चित धारणा थी—वह पहले से ही तय कर चुका था, निष्कर्ष पर पहुंच चुका था। एक निष्कर्ष था उसके पास कि कहीं कोई ईश्वर नहीं है। वह आया था केवल मुझसे पुष्टि पाने के लिए, ताकि वह कह सके लोगों से कि बुद्‌ध का भी विश्वास वही है जो मेरा विश्वास है कि कहीं कोई ईश्वर नहीं है। इसलिए मुझे उसे नहीं कहना पड़ा।

'जो आदमी दोपहर को आया, वह भी एक निष्कर्ष लिए आया था। वह आस्तिक था, पक्का परंपरागत आस्तिक—उसका विश्वास था कि ईश्वर है। वह भी उसी मतलब से आया था, मेरा समर्थन पाना चाहता था।

'तीसरा आदमी जो आया, वह बिना किसी धारणा के आया था, उसका कोई निष्कर्ष नहीं था। वह जिज्ञासु था। वह किसी बात में विश्वास नहीं रखता था : वह किसी भी निष्कर्ष पर नहीं पहुंचा था। वह रास्ते पर था; वह शुद्‌ध था। मुझे उसके साथ मौन ही रहना पड़ा। अब, यदि तुम्हारे पास भी वही प्रश्न है, तो तुम पूछ सकते हो।'

प्रतिसंवेदन सदा ही अलग होगा, और फिर भी गहरे तल पर अंतस सत्ता की एक अनवरत धारा उससे बहती होगी। बुद्‌ध पुरुष सदा व्यक्ति में, स्थिति में झांकते हैं। स्थिति ही निर्णय लेती है, न कि बुद्‌ध पुरुष का मन; उनके पास मन होता ही नहीं।

तो तुम पूछते हो, 'बुद्‌ध पुरुष दैनंदिन जीवन में समग्ररूपेण कैसे भाग लेते हैं?

यदि तुम कोशिश करते हो समग्र रूप से भाग लेने की, तो वह समग्र न होगा : कोई प्रयास कभी भी समग्र नहीं हो सकता। कोई विधि, कोई तरकीब कभी समग्र नहीं हो सकती, क्योंकि तुम करने वाले होओगे, तुम तो उससे अलग रह जाओगे। तुम समग्र होने की कोशिश कर रहे होओगे। तुम कोशिश कैसे कर सकते हो समग्र होने की? तुम विश्रांत हो जाओ, केवल तभी समग्रता पैदा होती है। तुम प्रवाह के साथ बहो, तभी तुम समग्र होते हो।

समग्रता कोई अनुशासन नहीं है। सारे अनुशासन आशिक होते हैं। इसलिए जो आदमी बहुत ज्यादा अनुशासित होता है, वह कभी नहीं पहुंच पाएगा सत्य तक, क्योंकि वह सदा बोझ लिए रहेगा—निरंतर कुछ न कुछ करते हुए. स्थूल या सूक्ष्म, सतह पर या गहराई में, लेकिन रहेगा वह सदा कर्ता ही। नहीं, बुद्‌ध पुरुष कर्ता नहीं हैं। असल में जब तुम विश्रांति में होते हो, तब होने का दूसरा कोई ढंग ही नहीं बचता—एकमात्र जो ढंग बचता है, वह है समग्र रूप से सहभागी होने का। उसमें कोई 'कैसे' नहीं होता। लेकिन तुम्हारे मन में प्रश्न उठता है, क्योंकि तुम जानते नहीं कि सजगता क्या है। यह ऐसे ही है जैसे कोई अंधा आदमी पूछे, 'जिन लोगों के पास आंखें हैं, वे हाथ में लकड़ी लिए बिना कैसे ढूंढ लेते हैं अपना रास्ता?' यदि तुम उससे कहो कि उन्हें कोई जरूरत नहीं किसी लकड़ी की, कि उन्हें कोई जरूरत नहीं ढूंढने की, तो वह विश्वास न कर पाएगा। वह हंसेगा। वह कहेगा, 'तुम मजाक कर रहे हो। यह कैसे संभव हो सकता है? क्या आप यह कहना चाहते हो कि आंख वाले लोग बिना टटोले ही चलते—फिरते हैं?' अंधा आदमी इसे नहीं समझ सकता है। उसके पास इसका कोई अनुभव नहीं है। वह सदा टटोलता ही रहा है और तब भी बार—बार ठोकर खाता रहा है और गिरता रहा है। वह किसी भांति सँभले रहने की कोशिश करता रहा है। बुद्‌ध पुरुष संभालते नहीं हैं। वे अपने को छोड़ देते हैं, और हर चीज अपने आप ही ठीक होती है।

दूसरा प्रश्न:

कृपया समझाएं कि तामसिक राजसिक और सात्विक व्यक्तियों के लिए ध्यान की कौन— कौन सी विधियां अलग— अलग रूप से अनुकूल होती हैं। आप हमेशा सक्रिय ध्यान की विधि ही क्यों देते हैं?

सक्रिय विधि असल में बड़ी अदभुत विधि है। यह किसी खास प्रकार के व्यक्ति से संबंधित नहीं है; यह सभी की मदद कर सकती है। जो आदमी तमस से, आलस्य से, निष्क्रियता से भरा है, यह उसे बाहर ले आएगी उसके तमस से। यह उसमें इतनी अधिक ऊर्जा भर देगी कि तमस टूट जाएगा; सारा न भी टूटे, तो भी उसका एक हिस्सा तो टूटेगा ही। यदि तामसी व्यक्ति इसे कर सके तो यह बहुत चमत्कार कर सकती है, क्योंकि तामसी आदमी में असल में ऊर्जा का अभाव नहीं होता। ऊर्जा तो होती है, लेकिन सक्रिय स्थिति में नहीं होती, सक्रिय दशा में नहीं होती। ऊर्जा गहरी नींद में पड़ी होती है। सक्रिय ध्यान एक अलार्म की भांति काम, कर सकता है : वह निष्क्रियता को सक्रियता में बदल सकता है; वह ऊर्जा को गतिशील कर सकता है; वह तामसी व्यक्ति को तमस के बाहर ला सकता है।

दूसरे प्रकार का व्यक्ति, राजसिक प्रकार का, जो कि बहुत सक्रिय होता है—असल में जरूरत से ज्यादा सक्रिय होता है, उसके भीतर इतनी ऊर्जा होती है कि उसे सूझता नहीं कि वह क्या करे, एक ऊर्जा का उफनता आवेग होता है—सक्रिय विधि उसे मदद देगी निर्भार होने में, हलके होने में। सक्रिय विधि के बाद वह निर्भार अनुभव करेगा। और जीवन में सक्रियता के लिए जो उसकी उत्तेजना है, निरंतर पागलपन है, वह धीमा पड़ जाएगा। व्यस्त रहने की उसकी दौड़ तिरोहित हो जाएगी।

निश्चित ही, उसे तमस में जीने वाले व्यक्ति से ज्यादा लाभ मिलेगा, क्योंकि तामसिक व्यक्ति को तो पहले सक्रिय बनाना पड़ता है। वह सीढ़ी के निम्नतम तल पर जीता है। लेकिन एक बार वह सक्रिय हो जाए, तो सब संभव हो जाता है। एक बार वह सक्रिय हो जाए, तो वह दूसरे प्रकार का हो जाएगा; अब वह राजसिक हो जाएगा।

और सात्विक आदमी को सक्रिय ध्यान बहुत सहायता देता है। वह जड़ता में नहीं जीता; उसकी ऊर्जा को ऊपर लाने की कोई जरूरत ही नहीं होती। वह पागलपन की हद तक सक्रिय भी नहीं होता, तो किसी कैथार्सिस की, किसी रेचन की कोई जरूरत नहीं होती उसको। वह संतुलित होता है, दूसरे दोनों प्रकारों से कहीं ज्यादा शुद्ध, दूसरे दोनों प्रकारों से ज्यादा प्रसन्न, दूसरे दोनों प्रकारों से ज्यादा हल्का। तो सक्रिय ध्यान उसकी मदद कैसे करेगा? वह उत्सव बन जाएगा उसके लिए। वह बस बन जाएगा एक गीत, एक नृत्य, समग्र के साथ एक सहभागिता। सब से ज्यादा लाभ उसे ही मिलेगा।

यही है जीवन का विरोधाभास। जीसस कहते हैं, 'जिनके पास है, उन्हें और मिलेगा; और जिनके पास नहीं है, उनसे वह भी ले लिया जाएगा जो उनके पास है।' तामसी व्यक्ति को ज्यादा दिए जाने की जरूरत है, लेकिन उसे ज्यादा दिया नहीं जा सकता, क्योंकि उसकी ग्रहण करने की क्षमता नहीं है। सक्रिय ध्यान, अधिक से अधिक, उसे उसके तमस के बाहर सीढ़ी के दूसरे तल तक ले आएगा; और वह भी इस शर्त के साथ कि वह सम्मिलित हो। लेकिन इतनी सक्रियता भी उसके लिए कठिन हो जाती है कि वह सम्मिलित होने का निर्णय ले।

ऐसे लोग आते हैं मेरे पास—उनके चेहरों से तुम समझ सकते हो कि वे गहरी नींद में सोए हैं, गहन निद्रा में पड़े हैं—और वे कहते हैं, 'हमें नहीं चाहिए ये सक्रिय विधियां, हमें कोई शांत ढंग बताइए।' वे शांति की बात करते हैं। वे कोई ऐसा ढंग चाहते हैं जिसे वे बिस्तर पर लेटे हुए ही कर सकें! या ज्यादा से ज्यादा वे बड़े प्रयास से बैठ सकते हैं। वह भी पक्का नहीं है कि वे बैठ सकेंगे। फिर सक्रिय ध्यान तो उन्हें बहुत ज्यादा सक्रिय मालूम पड़ता है। यदि वे पूरी तरह सम्मिलित होते हैं तो उन्हें मदद मिलेगी; निश्चित ही दूसरे प्रकार के लोगों जितनी तो न मिलेगी, क्योंकि दूसरे प्रकार का आदमी तो पहले से ही जी रहा होता है दूसरे तल पर। उसमें पहले से ही कुछ बात होती है; उसे ज्यादा मदद मिलेगी। वह इस विधि के द्वारा विश्रामपूर्ण होगा, हल्का होगा, निर्भार होगा। धीरे— धीरे वह सरकना शुरू कर देगा प्रथम तल की ओर, उच्चतम की ओर।

सात्विक व्यक्ति, जो निर्मल है, निर्दोष है, सब से ज्यादा मदद पाएगा। उसके पास बहुत कुछ है, उसकी मदद की जा सकती है। प्रकृति का नियम करीब—करीब बैंक जैसा है. यदि तुम्हारे पास धन नहीं है, तो वे नहीं देंगे। यदि तुम्हें जरूरत है धन की तो वे हजारों शर्तें खड़ी कर देंगे, यदि तुम्हें जरूरत नहीं है धन की तो वे तुम्हें देने के लिए आतुर होंगे। यदि तुम्हारे पास अपना ही काफी है तो वे जितना तुम चाहो उतना देने के लिए सदा तैयार रहते हैं। प्रकृति का नियम ठीक इसी तरह का है : तुम्हें ज्यादा दिया जाता है जब तुम्हें जरूरत नहीं होती। तुम्हें कम दिया जाता है, जब तुम्हें जरूरत होती है।

अस्तित्व ले लेता है यदि तुम्हारे पास कुछ नहीं होता, और अस्तित्व हजार—हजार ढंग से दे देता है यदि तुम्हारे पास कुछ होता है।

ऊपर—ऊपर से तो ऐसा लगता है जैसे कि यह विरोधाभासी हो—गरीब को तो ज्यादा मिलना चाहिए।'गरीब' से मेरा मतलब है तामसिक व्यक्ति। संपन्न व्यक्ति को, सात्विक व्यक्ति को तो बिलकुल दिया ही नहीं जाना चाहिए। लेकिन नहीं, जब तुम्हारे पास एक निश्चित समृद्धि होती है तो तुम ज्यादा समृद्धि को अपनी ओर खींचने के लिए चुंबकीय शक्ति बन जाते हो। गरीब आदमी दूर हटाता है; वह समृद्धि को आने नहीं देता अपने पास। गहरे तल पर, गरीब व्यक्ति इसलिए गरीब होता है, क्योंकि वह समृद्धि को आकर्षित नहीं करता। उसके पास कोई चुंबकीय आकर्षण नहीं समृद्धि को

अपनी तरफ आकर्षित करने के लिए; इसीलिए वह गरीब होता है। किसी ने उसे गरीब बनाया नहीं है। वह गरीब है, क्योंकि वह आकर्षित नहीं करता; उसके पास चुंबकीय आकर्षण नहीं है।

ये सीधे—साफ आर्थिक नियम हैं कि यदि तुम्हारी जेब में कुछ रुपए हों, तो वे रुपए दूसरे रुपयों को तुम्हारी जेब में खींच लेंगे। यदि तुम्हारी जेब खाली है तो जेब भी खो जाएगी, क्योंकि कोई दूसरी जेब जिसमें काफी ज्यादा है, तुम्हारी जेब को आकर्षित कर लेगी। तुम जेब भी खो दोगे। जितने ज्यादा तुम समृद्ध होते हो उतने ही और ज्यादा समृद्ध तुम बनते जाते हो। तो मूल आवश्यकता तुम्हारे भीतर कुछ होने की है।

तामसिक व्यक्ति के पास कुछ नहीं होता। वह तो बस एक मिट्टी का लोंदा होता है। वह निष्क्रिय जीवन जीता है। राजसिक आदमी मिट्टी का लोंदा नहीं होता; वह एक सक्रिय ऊर्जा होता है। तेज सक्रिय ऊर्जा के साथ बहुत संभावना होती है। असल में ऊर्जा के सक्रिय हुए बिना किसी चीज की संभावना नहीं होती। लेकिन फिर उसकी ऊर्जा पागलपन बन जाती है—वह अति पर चली जाती है। बहुत ज्यादा सक्रिय होने के कारण वह बहुत कुछ खो देता है। बहुत ज्यादा सक्रिय होने के कारण वह नहीं जानता कि क्या करे और क्या न करे। वह कुछ न कुछ करता ही रहता है। वह उलटी बातें किए चला जाता है : एक हाथ से वह कुछ करेगा, दूसरे हाथ से उसे अनकिया कर देगा। वह करीब—करीब पागल होता है। सदा स्मरण रहे कि पहले प्रकार का व्यक्ति, तामसिक व्यक्ति, कभी पागल नहीं होता। इसीलिए पूरब में पागलपन ज्यादा नहीं फैला है। तुम्हें बहुत ज्यादा मनोविश्लेषण की आवश्यकता नहीं है, तुम्हें बहुत ज्यादा पागलखानों की आवश्यकता नहीं है। नहीं, पूरब में लोग मिट्टी के लोंदों की भांति हैं, कैसे तुम पागल हो सकते हो? तामसिक में पागलपन की संभावना ही नहीं होती। तुम कुछ करते ही नहीं कि पागल होओ।

पश्चिम में पागलपन करीब—करीब सामान्य बात हो गई है। अब केवल मात्रा का ही अंतर है सामान्य और असामान्य लोगों के बीच। जो पागलखाने के भीतर हैं और जो पागलखाने के बाहर हैं, वे सभी एक ही नाव में सवार हैं—सिर्फ मात्रा का अंतर है। और हर कोई सीमा पर खड़ा है. जरा सा धक्का, और तुम भीतर हो जाओगे। कोई भी चीज गलत हो सकती है—और हजारों बातें हैं तुम्हारे जीवन में। कोई भी चीज गलत हो सकती है, और तुम भीतर हो जाओगे। पश्चिम राजसिक है—बहुत ज्यादा गति है। गति ही लक्ष्य है. चलते रहो, कुछ न कुछ करते रहो। और अब तक कोई ऐसा समाज नहीं बना जो सात्विक व्यक्तियों का हो, अब तक ऐसा संभव नहीं हुआ।

भारत का दावा है, पूरब का दावा है कि वे सात्विक लोग हैं। वे सात्विक नहीं हैं; वे तामसिक हैं। बहुत कम, कभी—कभार कोई बुद्ध होते हैं या कोई कृष्ण होते हैं—उससे कुछ सिद्ध नहीं होता। वे अपवाद हैं; वे सिर्फ नियम को सिद्ध करते हैं। पूरब तामसिक है—बहुत धीमी गति है, बिलकुल जड़, गतिहीन।

मैं अपने गांव जाता था। तो मैं वर्षों के बाद जाता और हर चीज लगभग वही होती। स्टेशन पर मुझे वही कुली मिलता, क्योंकि एक ही कुली है वहां। वह का होता जा रहा है, पर है वही आदमी। मुझे वही तांगे वाला मिलता, क्योंकि बहुत थोड़े तांगे हैं वहां, और उनमें से एक सदा मुझ पर अधिकार दिखाता, कि मैं उसकी सवारी हूं। और वह बहुत मजबूत आदमी है, इसलिए कोई लड़ नहीं सकता उससे, तो वह पकड़ लेता मुझे और जबरदस्ती बिठा देता मुझे अपने तांगे में। और फिर वही चीजें सामने आती चली जातीं, जैसे कि मैं स्मृति में यात्रा कर ' रहा हूं वास्तविक संसार में नहीं। मुझे वही—वही आदमी सड़क पर मिलते। कई बार कोई मर गया होता और वही बहुत बड़ी खबर होती। अन्यथा, संसार चलता वर्तुल में : वही सब्जी वाला होता, वही दूध वाला होता—हर चीज वही! लगभग स्थिर ही।

पश्चिम में कोई चीज स्थिर नहीं है, और हर चीज नया समाचार है। तुम कुछ समय बाद घर लौटो—हर चीज बदल गई होती है। हो सकता है तुम्हारी मां तुम्हारे पिता को तलाक दे चुकी हो, हो सकता है तुम्हारा पिता किसी दूसरी स्त्री के साथ भाग गया हो; घर जैसा वहां कोई घर नहीं होता—परिवार का कोई अस्तित्व ही नहीं है!

मैं अमरीकी ढंग के जीवन के विषय से संबंधित एक लेख पढ़ रहा था। लगभग हर आदमी अपना काम बदल लेता है तीन वर्षों में; अपना शहर भी बदल लेता है तीन वर्षों में। हर चीज बदलती रहती है। और लोग जल्दी में हैं। और लोग ज्यादा से ज्यादा तेज दौड़ रहे हैं। और कोई फिक्र नहीं करता कि कहां जा रहे हो तुम।

और सात्विक समाज कहीं है नहीं। केवल बहुत थोड़े से व्यक्ति कई बार इतने संतुलित होते हैं कि तमस और रजस बिलकुल एक ही अनुपात में होते हैं। उनके पास पर्याप्त ऊर्जा होती है सक्रिय होने के लिए, और उनके पास पर्याप्त समझ होती है विश्राम करने के लिए। वे अपने जीवन को एक लयबद्धता बना लेते हैं : दिन में वे सक्रिय रहते हैं; रात को वे विश्राम करते हैं।

पूरब में दिन में भी वे विश्राम करते हैं। पश्चिम में रात में भी वे सक्रिय रहते हैं—अपने सिरों में, स्वम्नों में। सारे पश्चिमी स्वप्न दुख—स्वप्न बन गए हैं। पूरब में तुम्हें ऐसी आदिवासी जातियां मिल सकती हैं जो नहीं जानतीं कि स्वप्न क्या होता है। यह बिलकुल सच है। मैं भारत की कुछ आदिवासी जातियों के संपर्क में आया हूं. यदि तुम उनके स्वप्नों के विषय में पूछो तो वे कहते हैं, ' आपका मतलब क्या है?' बहुत कम ऐसा होता है, और जब ऐसा होता है तो यह गांव की एक बड़ी खबर होती है कि किसी को स्वप्न आया। क्योंकि लोग तो स्वप्न—रहित विश्राम कर रहे होते हैं। पश्चिम में तो नींद असंभव हो गई है, क्योंकि स्वप्न इतने चल रहे हैं और इतनी तीव्रता से चल रहे हैं, कि हर चीज कंपित हो रही है। कोई चीज संतुलन में नहीं मालूम पड़ती। पूरब में हर चीज मुर्दा है।

सत्व तभी संभव है जब रजस और तमस दोनों संतुलन में होते हैं। जब तुम जानते हो कि कब काम करना है और कब विश्राम करना है; जब तुम जानते हो कि दफ्तर को दफ्तर में ही कैसे छोड़ आना है

और उसे घर में लिए नहीं आना है; जब तुम जानते हो कि आफिस के मन को आफिस में ही कैसे छोड़ आना है और फाइलों को घर साथ नहीं लाना है—तब सत्य घटता है। सत्व है संतुलन; सत्य है समत्व।

सात्विक आदमी के लिए सक्रिय विधियां आश्चर्यजनक रूप से सहायक होंगी, क्योंकि वे उसके जीवन में न केवल शांति ही लाएंगी, बल्कि आनंद भी लाएंगी। शांत तो वह पहले से है ही, क्योंकि संतुलन लाता है एक मौन, एक शांति। लेकिन शांति एक नकारात्मक घटना है—जब तक कि वह नृत्य न बन जाए, एक गीत न बन जाए, एक आनंद न हो जाए, वह काफी नहीं है। अच्छा है मौन होना, अच्छा है शांत होना, लेकिन उसी से संतुष्ट मत हो जाना, क्योंकि अभी बहुत कुछ तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है।

शांत होना तो उस आदमी जैसा है जिसकी डाक्टरों ने जांच—पड़ताल की और उन्होंने उसमें कुछ गलत नहीं पाया। लेकिन यह कोई स्वास्थ्य नहीं है। हो सकता है तुम बीमार न होओ, लेकिन जरूरी नहीं है कि तुम स्वस्थ भी हो। स्वास्थ्य की तो एक अलग ही सुवास है, एक ओज है। रोग के न होने का प्रमाणपत्र स्वास्थ्य नहीं है। स्वास्थ्य एक विधायक घटना है। तुम आनंदित होते हो उससे; तुम पुलकित होते हो उससे। इतना काफी नहीं है कि तुम्हें कोई रोग नहीं है। स्वास्थ्य केवल अभाव नहीं है रोग का, वह स्वयं एक मौजूदगी है।

एक शांत व्यक्ति, एक सात्विक व्यक्ति शांत तो होता है; वह बड़ी शांत जिंदगी जीता है। शांत, पर कोई मुस्कुराहट नहीं। शांत, पर ऊर्जा का कोई उमडाव नहीं। शांत, लेकिन कुछ आभा नहीं। शांत, पर अंधकार; प्रकाश नहीं उतरा होता उसमें। एक सात्विक व्यक्ति बिलकुल शांत हो सकता है, लेकिन उस शाति में वह नाद, वह अनाहत नाद, वह दिव्य गान नहीं उतरा होता। सक्रिय ध्यान उसकी सहायता करेगा नाचने में, नृत्य को उसके हृदय तक लाने में, गान को उसके अस्तित्व के रोएं—रोएं तक लाने में।

निश्चित ही, सात्विक व्यक्ति को सबसे ज्यादा सहायता मिलेगी, सबसे ज्यादा लाभ मिलेगा। लेकिन कुछ किया नहीं जा सकता, यही नियम है। यदि तुम्हारे पास है, तो तुम्हें और ज्यादा दिया जाएगा; यदि तुम्हारे पास नहीं है, तो जो तुम्हारे पास है वह भी ले लिया जाएगा।

तीसरा प्रश्न:

आपने कहा कि बुद्धत्व व्यक्तिगत होता है लेकिन क्या बुद्धत्व के बाद भी व्यक्तित्व बना रहता है?

नहीं, बुद्धत्व के बाद व्यक्तित्व नहीं बना रहता, लेकिन बुद्धत्व व्यक्तिगत होता है। तुम्हें इसे ऐसे समझना होगा : नदी मिल जाती है सागर में। जब मिल जाती है तो नदी खो जाती है—उस नदी का कोई व्यक्तित्व नहीं बचता, लेकिन केवल वैयक्तिक नदी ही सागर में मिलती है। तुम बुद्धत्व के सागर में व्यक्ति की तरह उतरते हो. तुम अपनी पत्नी को या अपने मित्र को साथ नहीं ले जा सकते—कोई उपाय नहीं है। तुम अकेले जाते हो। कोई किसी को साथ नहीं ले जा सकता।

कैसे तुम किसी को अपने साथ ले जा सकते हो? जब तुम ध्यान करते हो तो तुम अकेले ही ध्यान करते हो। जिस क्षण तुम आंखें बंद करते हो और शांत हो जाते हो, हर कोई तिरोहित हो जाता है —पत्नी, मित्र, बच्चे। निकटतम लोग भी निकट नहीं रहते; निकटतम भी अब एकदम दूर हो जाते हैं। तुम्हारे गहन मौन में, आत्यंतिक केंद्र में, तुम अकेले ही होते हो। यही एकाकी सत्ता मिलेगी सागर में।

तो बुद्धत्व व्यक्तिगत होता है। निश्चित ही, बुद्धत्व के बाद व्यक्तित्व तिरोहित हो जाता है, कोई व्यक्तित्व नहीं बच रहता। तो याद रखना इसे तुम्हारा भीतर जाना सामूहिक नहीं हो सकता; तुम संगठन की भांति भीतर नहीं उतर सकते, तुम संप्रदाय की भांति भीतर नहीं डूब सकते। तुम नहीं कह सकते, 'सारे ईसाइयो! चले आओ,' या ' आओ, हिंदुओं! मैं चला बुद्धत्व की ओर—और मैं सारे हिंदुओं को अपने साथ ले जाऊंगा।'

कोई किसी दूसरे को नहीं ले जा सकता। यह बात नितांत अकेले में घटती है। और यही इसका सौंदर्य है, यही इसकी शुद्धता है। अपने परिपूर्ण एकाकीपन में तुम निर्वाण—सागर में उतरते हो। अभी एक क्षण पहले तुम नदी थे, बस क्षण भर पहले तुम एक व्यक्ति थे—वैयक्तिकता के शिखर थे, गौतम थे—और बस क्षण भर बाद कुछ नहीं बचता। तुम नदी की भांति नहीं रहते; तुम सागर हो जाते हो। तुम अब यह भी नहीं कह सकते, 'मैं हूं।' सागर ही है, नदी खो गई है।

तुम इसे दो ढंग से कह सकते हो. एक तो ढंग यह है कि नदी खो गई है—यह बौद्ध ढंग है; या तुम कह सकते हो कि नदी सागर हो गई है—यह दूसरा ढंग है, वेदांत का ढंग है। लेकिन दोनों एक ही बात कह रहे हैं।'नदी सागर हो गई है" या 'नदी खो गई है; केवल सागर है", ये एक ही बात को कहने के दो ढंग हैं।

चौथा प्रश्न:

हम कहां से आए हैं और हमारा होना कैसे घटित हुआ है?

कहीं से भी नहीं। फ्राम नोव्हेअर! और यह शब्द 'नोव्हेअर' दो शब्दों में बांटा जा सकता है, तब यह बन जाता है—'नाउ हिअर'। ये दो संभाव्य उत्तर हैं। दोनों सच हैं। क्योंकि दोनों का अर्थ एक ही है। तुम 'नोव्हेअर' से आते हो या तुम 'नाउ हिअर' से आते हो।

जब तुम पूछते हो, 'कहा से?' तो तुम जानना चाहते हो शुरुआत के विषय में। लेकिन कोई शुरुआत है नहीं। तुम सदा से हो, तुम सदा रहोगे। अस्तित्व आदिहीन है, अंतहीन है। ऐसा नहीं है कि कभी वह शुरू हुआ। ऐसा संभव नहीं, क्योंकि यदि अस्तित्व कभी, किसी तारीख को, किसी दिन शुरू हुआ—जैसा कि ईसाई कहते हैं कि यह जीसस से चार हजार चार वर्ष पहले शुरू हुआ—तो इसका अर्थ हुआ कि समय अस्तित्व से पहले भी था। यह बात मूढ़तापूर्ण होगी, क्योंकि समय अस्तित्व का ही हिस्सा है। इसका अर्थ हुआ कि अवकाश, स्पेस अस्तित्व के पहले था—अन्यथा कहो रखोगे तुम इस नई रचना को? और स्पेस अस्तित्व का ही हिस्सा है।

वैज्ञानिक कहते हैं, वस्तुत: अवकाश और समय, स्पेस और टाइम ही अस्तित्व है। इसलिए समय शुरू नहीं हो सकता, क्योंकि तब दूसरे समय की आवश्यकता होगी। तब तुम पूछोगे, 'कब

शुरू हुआ यह समय?' चार हजार चार वर्ष पहले? सोमवार को, सुबह छह बजे? तब तो समय पहले से ही था; अन्यथा कैसे तुम जानते कि यह सोमवार है, और कैसे पता चलता तुम्हें कि इतवार गुजर गया, और कैसे तुम जानते कि सुबह के छह बजे हैं? नहीं, समय की कोई शुरुआत नहीं हो सकती, क्योंकि तब दूसरे समय की आवश्यकता पड़ती है। और यदि तुम कहते हो, 'ठीक है, हम दूसरे समय को मान लेते हैं।' तब इस दूसरे समय की शुरुआत नहीं हो सकती। फिर उससे आगे एक और समय की आवश्यकता होगी। तुम एक अनंत कम में जा पड़ते हो। तुम एक निरर्थक तर्कजाल में पड़ जाते हो जिससे कुछ हल नहीं होता।

तो शुरुआत कहीं है नहीं। और यदि शुरुआत नहीं है तो कोई अंत नहीं हो सकता, क्योंकि जो चीज कभी शुरू नहीं हुई, वह समाप्त नहीं हो सकती। कैसे होगी वह समाप्त?

तो तुम कहीं से नहीं आते। यह एक उत्तर हुआ कि तुम कहीं से नहीं आते; तुम सदा से यहीं हो। इससे एक दूसरी और ज्यादा संगत बात आती है. 'नोव्हेअर' को तोड दो 'नाउ हिअर' में।

मैंने एक कहानी सुनी है। एक नास्तिक था, और वह वकील था और बहुत तार्किक था। और अपने विश्वास की घोषणा करने के लिए उसने बड़े—बड़े अक्षरों में दीवार पर लिख रखा था, ताकि जो भी आए जान ले—उसने बड़े—बड़े अक्षरों में दीवार पर लिख रखा था 'गॉड इज नोव्हेअर' ईश्वर कहीं नहीं है। फिर वह पिता बना; उसके घर एक बच्चा पैदा हुआ। और उस बच्चे ने लिखना—पढ़ना शुरू किया। लेकिन इतने बड़े शब्द 'नोव्हेअर' का उच्चारण उसके लिए कठिन था। तो वह बच्चा पढ़ता था—वह

'गॉड इज' पढ़ सकता था लेकिन वह 'नोव्हेअर' नहीं पढ़ सकता था, वह बहुत बड़ा शब्द था। तो उसने उसे दो में तोड़ दिया। वह पढ़ता था. 'गॉड इज नाउ हिअर।' और मैंने सुना है कि एक दिन पिता ने यह सुना और वह रूपांतरित हो गया। अचानक कुछ पिघलने लगा उसमें. वह' बच्चा एक संदेश ले आया था।

तो इस शब्द को दो में तोड़ दो; बच्चे बन जाओ। जब मैं कहता हूं 'नोव्हेअर' तो कोशिश करो ' नाउ हिअर' सुनने की। या तो तुम कहीं से नहीं आते हो और या तुम हर घड़ी, हर क्षण, अभी और यहीं पैदा होते हो। क्षण— क्षण है जन्म। क्षण— क्षण मरते हो तुम और तिरोहित होते हो, और क्षण— क्षण तुम फिर से जन्मते हो। तुम एक प्रक्रिया हो, एक बहाव हो, कोई वस्तु नहीं; वस्तु जन्मती है, और जब वह चुक जाती है तो मर जाती है। नहीं, तुम कोई वस्तु नहीं हो। तुम ठहरे हुए नहीं हो। तुम एक प्रक्रिया हो, नदी की भांति एक बहाव हो। हर क्षण तुम फिर—फिर नए हो रहे हो; हर क्षण तुम पुनरुज्जीवित हो रहे हो। हर क्षण तुम मरते हो, और हर क्षण तुम पुनरुज्जीवित होते हो।

यदि तुम वर्तमान क्षण के प्रति सजग हो जाओ तो तुम इस घटना के प्रति भी सजग हो जाओगे. कि हर क्षण तुम अंधेरे में विलीन हो जाते हो, तुम तिरोहित हो जाते हो, और फिर बाहर आ जाते हो नए होकर। हर क्षण घट रही है यह बात, लेकिन तुम सजग नहीं हो इसीलिए तुम चूक जाते हो। उस अंतराल को देखने के लिए बड़ी गहन सजगता चाहिए।

और तब तुम प्रश्न का दूसरा हिस्सा नहीं पूछोगे, '.... हमारा होना कैसे घटित हुआ है?'

तुम सदा से हो। यह होना ही है तुम्हारा अस्तित्व। तुम सदा से विकसित हो रहे हो, सदा—सदा से, कोई अंत नहीं है इसका। ऐसा मत सोचना कि कोई समय आएगा जब तुम संपूर्ण हो जाओगे

और कोई विकास नहीं होगा—क्योंकि वह तो मृत्यु होगी। ऐसा कोई समय नहीं आता। व्यक्ति रूपांतरित होता रहता है—एक संपूर्णता से दूसरी संपूर्णता तक।

जाओ हिमालय। तुम्हें एक शिखर दिखाई पड़ता है, और कोई शिखर दिखाई नहीं पड़ते। जब तुम उस शिखर पर पहुंचते हो तो अचानक दूसरे शिखर तुम्हें दिखाई पड़ते हैं। जब तुम उन शिखरों पर पहुंचते हो तो और कई शिखर तुम्हें दिखाई पड़ने लगते हैं। जितने ज्यादा विकसित होते हो तुम, उतना ज्यादा तुम देखते हो कि विकसित होने की और संभावना है। जितना ज्यादा सृजन होता है तुम्हारा, उतने ज्यादा द्वार खुलते हैं तुम्हारे सृजन के—नए परिदृश्य, नए मार्ग, नए आयाम।

जीवन एक सतत गति की घटना है, एक सातत्य है। तुम ऐसे बिंदु पर कभी नहीं पहुंचते जब तुम कह सको, 'अब मैं पूर्ण हो गया।' और यदि तुम मांग करते हो ऐसी घड़ी की तो तुम मांग कर रहे हो आत्महत्या की। ऐसा कभी मत चाहना। बहाव के साथ बहे जाना। यदि तुम जुड़े रह सको बहाव से, प्रक्रिया से, तो वह बड़ी सुंदर बात है. बार—बार जन्म लेना, बार—बार नए होना। यदि तुम पूर्ण होना

चाहते हो, जड़ चट्टान की भांति, तब कुछ बनने की जरूरत नहीं। तुम मृत्यु की मांग कर रहे हो : तुम जीवन के प्रेम में नहीं हो; तुमने जीवन को जीया नहीं, जाना नहीं।

जीयो जीवन को, स्वीकार करो जीवन को, वर्तमान क्षण के प्रति सजग रहो, और सारे रहस्य तुम्हारे सामने तुम्हारी सजगता द्वारा ही आविष्कृत हो जाएंगे। दूसरा कोई उपाय नहीं है।

तुम कहीं से नहीं आए हो और कहीं नहीं जा रहे हो। तुम सदा मध्य में हो; तुम सदा मार्ग पर हो। असल में मैं कहना चाहूंगा कि तुम ही मार्ग हो, क्योंकि मार्ग तुम से कहीं अलग अस्तित्व नहीं रखता। जब मैं कहता हूं कि तुम विकसित हो रहे हो, तो गलत मत समझ लेना मेरी बात—तुम सोच सकते हो कि तुम अलग हो और तुम विकसित हो रहे हो। नहीं; तुम्हीं हो विकास, तुम्हीं हो विकास की प्रक्रिया, तुम से अलग कुछ भी नहीं है।

फिर अचानक, इस होने की सारी प्रक्रिया में, होने के इस तेज भंवर में, तुम पा लेते हो वह शून्यता—तुम्हारे अपने भीतर। और वह अंतराकाश बहुत अदभुत है। वह अंतराकाश वही है जिसे हम परम आशीष कहते हैं।

पांचवां प्रश्न :

आपने मुझे पूरी तरह भ्रमित और सुस्त बना दिया है मैं पागल जैसा हो गया हूं। अब तो मैं श्रद्धा भी अनुभव नहीं करता अब मुझे बताएं कि मैं क्या करूं? कहां जाऊं?

यह प्रश्न है 'स्वभाव' का। तुम्हारा भी जरूर सामना हुआ होगा उसके पागलपन से। अब वह स्वयं भी इसके प्रति सजग हुआ है—यह एक सुंदर घड़ी है।

यदि तुम भ्रमित हो सकते हो, तो इससे इतना ही प्रकट होता है कि तुम बुद्धिमान हो। केवल एक जड़बुद्धि व्यक्ति भ्रमित नहीं हो सकता; केवल एक मूढ़ व्यक्ति भ्रमित नहीं हो सकता। यदि तुम्हारे पास थोड़ी बुद्धि है तो तुम भ्रमित हो सकते हो। एक बुद्धिमान व्यक्ति ही भ्रमित हो सकता है। इसलिए भ्रमित होने से डरो मत। जरूर तुम्हारे पास थोड़ी सी बुद्धि है। अब बुद्धि बढ़ रही है, परिपक्व हो रही है।

भ्रांति सदा से थी, लेकिन तुम सजग न थे, इसलिए तुम उसे जानते नहीं थे। अब तुम सजग हो और तुम जान सकते हो। यह बिलकुल ऐसा ही है. तुम एक अंधेरे कमरे में रहते हो। वहां जाले लगे हैं, चूहे

दौड़ते रहते हैं जहां—तहां, कोनों में धूल इकट्ठी है। और अचानक मैं दीया लिए आ जाता हूं तुम्हारे कमरे में। तो तुम कहते हो, 'बुझाइए अपना दीया, क्योंकि आप गंदा किए दे रहे हैं मेरा कमरा। यह ऐसा कभी न था; अंधेरे में हर चीज कैसी सुंदर थी!'

मैं कैसे तुम्हें भ्रमित कर सकता हूं? मैं यहां तुम्हारी सारी भ्रांति मिटाने के लिए हूं। लेकिन मिटाने की इस प्रक्रिया में पहला चरण यही होगा कि तुम्हें अपनी भ्रांति के प्रति सजग होना होगा। यदि तुम्हारा कमरा साफ किया जाना है, तो पहला काम यही होगा कि कमरे को वैसा देखा जाए जैसा कि वह है; अन्यथा कैसे तुम साफ करोगे उसे? यदि तुम मानते हो कि वह साफ ही है—और जो धूल के ढेर वहां जम चुके हैं उनका तुम्हें कभी पता ही नहीं चला अंधेरे में, और मकडिया क्या—क्या चमत्कार करती रहीं तुम्हारे कमरे में, और कितने सांप—बिच्छू अपने घर बना चुके हैं वहा—यदि तुम अंधेरे में गहरी नींद सोए रहते हो, तब तो कोई समस्या ही नहीं है। समस्या केवल उसी आदमी के लिए है जिसकी बुद्धि विकसित हो रही है।

इसलिए जब तुम मेरे पास आते हो और मुझे समझते हो तो पहली बात, पहला सामना होगा भ्रांति से। अच्छा लक्षण है यह। ठीक मार्ग पर हो तुम, बढ़ते चलो। चिंता मत करना। यदि भ्रांति है, तो स्पष्टता भी संभव है। यदि तुम भ्रांति को नहीं देख सकते, तब कोई संभावना नहीं है स्पष्टता की। बस इसे देखो. कौन कह रहा है कि तुम भ्रमित हो। भ्रमित मन तो यह भी नहीं कह सकता कि 'मैं भ्रमित हूं।' तुम एक ओर खड़े एक द्रष्टा मात्र हो—तुम भ्रांति को अपने चारों ओर छाया देखते हो, धुएं की भांति। लेकिन यह कौन है जो देख रहा है कि भांति है? सारी आशा इसी बात में निहित है कि तुम्हारा एक हिस्सा—निश्चित ही बहुत छोटा हिस्सा, लेकिन वह भी काफी है शुरू में—तुम्हें सौभाग्यशाली अनुभव करना चाहिए कि तुम्हारा एक हिस्सा ध्यान दे सकता है और देख सकता है सारी भ्रांति को। अब इसी हिस्से को और बढ़ने देना। भ्रांति से भयभीत मत हो जाना; अन्यथा तुम इस हिस्से को दबाने में लग जाओगे कि यह फिर से सो जाए ताकि तुम फिर से सुरक्षित अनुभव कर सको।

मैं स्वभाव को बहुत पहले से जानता हूं। वह भ्रमित नहीं था, यह सच है—क्योंकि वह पूरी तरह मूढ़ था। वह हठी था, जिद्दी था। वह करीब—करीब 'सब कुछ' जानता था, बिना जाने हुए! अब पहली बार उसका एक हिस्सा बुद्धिमान, सचेत, सजग हो रहा है; और वह हिस्सा देख रहा है आस—पास चारों तरफ : वहा भ्रांति ही भ्रांति है।

सुंदर है यह बात। अब दो संभावनाएं हैं : या तो तुम इस हिस्से की सुनते हो जो कह रहा है कि सब भ्रमित है, और तुम इसे विकसित करते हो—यह एक प्रकाश—स्तंभ बन जाता है। और उस प्रकाश में सारे उलझाव विलीन हो जाएंगे। या फिर तुम घबड़ा जाते हो और भयभीत हो जाते हो —तुम भागना शुरू कर देते हो इस हिस्से से जो कि सजग हो चुका है, तुम इसे फिर से धकेलना शुरू कर देते हो अंधेरे में। तब तुम फिर से ज्ञानी हो जाओगे. जिद्दी, हठी, हर चीज एकदम साफ—सुथरी, कोई उलझाव

नहीं। केवल वही आदमी जो ज्यादा जानता नहीं, केवल वही आदमी जो सजग नहीं है—बिना भ्रम के रह सकता है।

एक असली सजग आदमी तो देखेगा, झिझकेगा—हर कदम पर झिझकेगा—क्योंकि कुछ भी निश्चित नहीं है। लाओत्सु कहता है, 'विवेकशील व्यक्ति बहुत ध्यान—पूर्वक चलता है, जैसे कि हर कदम पर मृत्यु का भय हो।'

एक विवेकशील व्यक्ति सजग हो जाता है भ्रांति के प्रति; यह है पहला चरण। और फिर आता है दूसरा चरण. जब विवेकशील आदमी इतना बोधपूर्ण हो जाता है कि सारी ऊर्जा प्रकाश बन जाती है, तो अब वही ऊर्जा जो भांति निर्मित कर रही थी और भ्रांति में व्यय हो रही थी, बचती ही नहीं; वह विलीन हो जाती है। सारी भ्रांति मिट जाती है; अचानक एक नई सुबह होती है। और जब अंधकार बहुत ज्यादा होता है, तो ध्यान रहे कि सुबह करीब होती है। लेकिन तुम भाग सकते हो।

'आपने मुझे पूरी तरह भ्रमित.।'

बिलकुल ठीक है बात, यही तो मैं कर रहा हूं। तुम्हें इसके लिए धन्यवाद देना चाहिए।

'... और सुस्त बना दिया है।'

ही, यह भी ठीक है। क्योंकि मैं जानता हूं स्वभाव को। वह रजोगुणी प्रकृति का है—बहुत ज्यादा सक्रिय। जब वह पहले—पहले आया मुझ से मिलने तो पूरा भरा हुआ था ऊर्जा से। अति सक्रिय—रजोगुणी प्रकृति का था। अब ध्यान और समझ उसकी सक्रियता को मध्यम सुर तक, संतुलित अवस्था तक ला रहे हैं। एक रजोगुणी व्यक्ति जब संतुलित हो रहा होता है, तो वह सदा अनुभव करेगा कि वह सुस्त हो रहा है। यह उसका दृष्टिकोण होता है। वह सदा अनुभव करेगा कि कहां चली गई उसकी ऊर्जा? वह सुस्त हो गया है! क्या हो रहा है उसे? वह यहां आया था बड़ा योद्धा बनने के लिए और सारे संसार को जीत लेने के लिए, और मैं कुल इतना ही कर रहा हूं कि उसे अति सक्रियता से, व्यर्थ की भाग—दौड़ से वापस लौटा रहा हूं।

पश्चिम में तुम्हारे पास एक कहावत है कि खाली मन शैतान का घर है। इसे गढ़ा है रजोगुणी व्यक्तिउयों ने। यह सच नहीं है, क्योंकि खाली मन घर है परमात्मा का। शैतान वहां काम नहीं कर सकता, क्योंकि खाली मन में शैतान बिलकुल प्रवेश ही नहीं कर सकता। शैतान तो केवल सक्रिय मन में प्रवेश कर सकता है। तो खयाल में ले लेना इसे. रजोगुणी मन घर है शैतान का। अति सक्रियता है, तो तुम्हारी सक्रियता का शैतान फायदा उठा सकता है।

तुमने दो विश्वयुद्ध देखे हैं। वे रजोगुणी व्यक्तियों की देन हैं। यूरोप में जर्मनी रजोगुणी है, बहुत ज्यादा सक्रियता है। पूरब में जापान रजोगुणी है, बहुत ज्यादा सक्रियता है। और ये दोनों स्रोत बन गए दूसरे विश्वयुद्ध की सारी मूढ़ताओं के। बहुत ज्यादा सक्रियता!

जरा सोचो, जर्मनी आलसी व्यक्तियों से, सुस्त व्यक्तियों से भरा होता तो क्या करता हिटलर? तुम उनको दाएं मुड़ने के लिए कहते, और वे खड़े हैं। तुम उनसे घूम जाने के लिए कहते, और वे खड़े हैं। असल में तब तक तो वे बैठ चुके होते और सो गए होते।

एडोल्फ हिटलर बिलकुल मूढ़ मालूम पड़ेगा तामसिक लोगों के बीच। और वह बिलकुल विक्षिप्त मालूम पड़ेगा सात्विक समाज में—बिलकुल पागल लगेगा। सात्विक समाज में लोग पकड़ लेंगे उसे और चिकित्सा करेंगे उसकी। तामसिक समाज में वह एकदम मूड़ मालूम पड़ेगा, नासमझ। लोग आराम कर रहे हैं और तुम नाहक घूम रहे हो झंडे लेकर नारे लगाते हुए—और कोई तुम्हारा अनुयायी नहीं; अकेले हो! लेकिन जर्मनी में वह नेता बन गया, 'फ्यूहरर', जर्मनी का सब से महान नेता, क्योंकि लोग रजोगुणी थे।

स्वभाव रजोगुणी प्रकृति का था, क्षत्रिय वृत्ति का, लड़ने को तैयार, क्रोधित होने को सदा ही तैयार; अब थोडा शांत हुआ है। वह दौड़ रहा था एक सौ मील प्रति घंटा की रफ्तार से, और मैं उसे ले आया हूं दस मील प्रति घंटा तक। निश्चित ही वह सुस्त अनुभव करता है। यह आलस्य नहीं है, यह सक्रियता की विक्षिप्तता को सामान्य अवस्था तक ले आना है, क्योंकि केवल वहीं से संभव हो पाएगा सत्व; अन्यथा वह संभव नहीं हो पाएगा। तुम्हें संतुलन पाना होगा रजोगुण और तमोगुण के बीच, आलस्य और गति के बीच। तुम्हें जानना होगा कि आराम कैसे करना है और तुम्हें जानना होगा कि सक्रिय कैसे होना है

केवल विश्राम करना सदा आसान है, और केवल सक्रिय होना भी आसान है। लेकिन इन दोनों विपरीत ध्रुवों को जानना और उनके बीच संतुलन करना और एक लय निर्मित करना बहुत कठिन है—और वह लय ही सत्व है।

'आपने मुझे पूरी तरह भ्रमित और सुस्त बना दिया है।'

सच है।

'मैं पागल जैसा हो गया हूं।'

बिलकुल सच है। तुम सदा से हो। अब तुम जानते हो इसे—और यह उस आदमी का लक्षण है जो पागल नहीं है। एक पागल आदमी कभी नहीं जान सकता कि वह पागल है। जाओ पागलखाने; जरा पूछो वहां। कोई पागल नहीं कहता, 'मैं पागल हूं।' प्रत्येक पागल मानता है कि सिवाय उसके सारा संसार पागल है—यही है परिभाषा पागलपन की। तुम्हें ऐसा कोई पागल नहीं मिल सकता जो कहे, 'मैं पागल हूं।' यदि उसके पास इतनी बुद्धि हो कहने की कि वह पागल है, तो फिर वह बुद्धिमान ही हुआ, फिर वह पागल न हुआ। पागल व्यक्ति कभी स्वीकार नहीं करता। पागल व्यक्ति बहुत ही

जिद्दी होते हैं। डाक्टर के पास जाने के लिए भी वे राजी नहीं होते। वे कहते हैं, 'क्यों? किसलिए? क्या मैं पागल हूं? कोई जरूरत नहीं है, मैं बिलकुल ठीक हूं। तुम जा सकते हो।'

मुल्ला नसरुद्दीन एक मनस्विद के पास गया और उसने कहा, ' अब कुछ करना पड़ेगा—चीजें मेरे वश के बाहर हो गई हैं। मेरी पत्नी पूरी तरह पागल हो गई है, और वह सोचती है कि वह रेफ्रिजरेटर बन गई है।'

वह मनस्विद भी थोड़ा चौंका। उसके सामने भी ऐसी कोई समस्या अभी तक नहीं आई थी। उसने कहा, 'यह तो गंभीर बात है। जरा विस्तार से बताओ मुझे।'

उसने कहा, 'बताने के लिए ज्यादा कुछ है नहीं। वह रेफ्रिजरेटर बन गई है, वह मानती है कि वह रेफ्रिजरेटर है।'

मनस्विद ने कहा, 'लेकिन यदि यह केवल मानना ही है तो इसमें कुछ बुरा नहीं। निर्दोष बात है। मानने दो उसे। वह कोई और उपद्रव तो नहीं खड़ा कर रही है?'

नसरुद्दीन ने कहा, 'उपद्रव? मैं बिलकुल सो ही नहीं पाता, क्योंकि रात भर वह मुंह खोल कर सोती है—और रेफ्रिजरेटर की रोशनी के कारण मैं सो नहीं सकता।'

अब कौन पागल है? पागल आदमी कभी नहीं सोचते कि वे पागल हैं। स्वभाव, यह सौभाग्य की बात है कि तुम सोच सकते हो, 'मैं पागल हूं।' यह तुम्हारे भीतर का बुद्धिमान हिस्सा है जो इसे देख रहा है। हर कोई पागल है। जितनी जल्दी तुम देख लो इसे, उतना शुभ है।

'अब तो मैं कोई श्रद्धा भी अनुभव नहीं करता।'

अच्छा है। क्योंकि जब तुम थोड़े सजग होते हो तो श्रद्धा अनुभव करना कठिन हो जाता है। बहुत सी अवस्थाएं हैं। एक अवस्था है जब लोग संदेह अनुभव करते हैं। फिर वे संदेह का दमन करते हैं क्योंकि श्रद्धा से बहुत आशा बंधती है. 'समर्पण करो, और तुम सब कुछ पाओगे।' मैं तुम्हें आशा दिए जाता हूं 'समर्पण करो, और तुम्हारा बुद्धत्व निश्चित है।' श्रद्धा बड़ी आशापूर्ण मालूम पड़ती है। तुम्हें लोभ पकड़ता है। तुम कहते हो, 'ठीक है, तो हम श्रद्धा करेंगे और समर्पण करेंगे।' लेकिन यह श्रद्धा नहीं है, यह लोभ है—और भीतर गहरे में तुम संदेह छिपाए रहते हो। तुम भीतर— भीतर संदेह करते रहते हो। तुम सजग रहते हो कि श्रद्धा ठीक है, लेकिन बहुत ज्यादा श्रद्धा भी नहीं करनी है। क्योंकि कौन जाने, यह आदमी क्या चाहता हो, मूर्ख ही बना रहा हो, धोखा दे रहा हो! तो तुम श्रद्धा करते हो, लेकिन तुम आधे—आधे मन से श्रद्धा करते हो। और कहीं भीतर संदेह बना ही रहता है।

जब तुम ध्यान करते हो, जब तुम्हारी समझ थोड़ी बढ़ती है, जब तुम मुझे निरंतर सुनते हो, और मैं कई दिशाओं से, कई आयामों से तुम पर चोट करता रहता हूं—तो मैं तुम्हारे अस्तित्व में कई छिद्र

बना देता हूं। मैं चोट करता रहता हूं तुम्हें तोड़ता रहता हूं। मुझे तुम्हारा सारा ढांचा तोड़ना है। मुझे तुम्हें तोड़ना है; केवल तभी तुम पुनर्निर्मित हो सकते हो। और कोई उपाय नहीं है। मुझे तुम्हें पूरी तरह मिटा देना है, केवल तभी नया सृजन संभव है।

तो मैं मिटाए जाता हूं; फिर तुम्हें थोड़ी समझ आती है—समझ की झलकें मिलती हैं। उन झलकों में तुम देखोगे कि तुम श्रद्धा भी नहीं करते; संदेह वहा छिपा हुआ है। पहले तुम संदेह करते हो। दूसरी सीढ़ी पर तुम गहरे छिपे संदेह सहित श्रद्धा करते हो। तीसरी सीढ़ी पर तुम सजग हो जाते हो भीतर छिपे हुए संदेह और ऊपर—ऊपर की श्रद्धा के प्रति—और तुम एक साथ श्रद्धा और संदेह कैसे कर सकते हो? तो तुम झिझकते हो, तुम भ्रम में पड़ जाते हो।

इस जगह से दो संभावनाएं खुलती हैं : या तो तुम संदेह को पकड़ लेते हो, वह पहली अवस्था है—जैसे तुम मेरे पास आए थे; या फिर तुम में श्रद्धा विकसित होती है और तुम सारे संदेह गिरा देते हो। यह एक बहुत ही तरल अवस्था होती है। यह दो ढंग से विकसित हो सकती है. या तो तुम नीचे उतर जाते हो जहां तुम फिर से संदेहों से भर जाते हों—झूठी श्रद्धा भी मिट चुकी होती है; या तुम में श्रद्धा का विकास होता है और श्रद्धा एक सुदृढ़ आधार बन जाती है, संदेह का दमित हिस्सा खो जाता है। तो यह अवस्था बहुत नाजुक होती है और व्यक्ति को बहुत सावधानी और सजगता से बढ़ना होता है।

'अब मुझे बताएं कि मैं क्या करूं? कहा जाऊं?'

एक बार तुम मेरे पास आ गए तो अब कहीं कोई जगह नहीं है जाने के लिए। वैसे तुम कहीं भी जा सकते हो, लेकिन तुम्हें वापस आना पड़ेगा। मेरे पास आना खतरनाक है : फिर तुम कहीं भी जा सकते हो, लेकिन सब जगह मैं तुम्हें घेरे रहूंगा। तो कोई जगह नहीं है जाने के लिए।

और कुछ नहीं है करने के लिए। बस, सजग रहो सारी स्थिति के प्रति। क्योंकि यदि तुम कुछ करने लगे, यदि तुम कुछ करने के लिए आतुर होने लगे, तो तुम सब कुछ गड़बड़ कर दोगे। जो जैसा है उसे वैसा ही रहने दो। उलझाव है, पागलपन है, श्रद्धा जा चुकी है—केवल प्रतीक्षा करना और देखना और बैठे रहना किनारे पर और नदी को थिर होने देना अपने आप। वह थिर होती है अपने से ही; तुम्हें कुछ करने की जरूरत नहीं है।

बहुत कर लिया तुमने—अब विश्राम करो। बस प्रतीक्षा करो और देखो कि कैसे नदी थिर होती है। वह साफ नहीं है; कीचड़ है उसमें और सूखे पत्ते तैर रहे हैं सतह पर—कूद मत पड़ना उसमें। तुम आतुर हो रहे हो उसमें कूद पड़ने के लिए कुछ करने के लिए, ताकि पानी साफ हो सके—जो कुछ भी तुम करोगे, तुम और ज्यादा कीचड़ मचा दोगे। कृपा करके इस प्रलोभन को रोकना। किनारे पर ही रुकना, नदी में मत उतरना, और बस देखते रहना।

यदि तुम देखते रह सको बिना कुछ किए ही... और करना सब रो बड़ा मोह है मन का। मन कहता है, 'कुछ न कुछ करो; अन्यथा चीजें कैसे बदलेंगी?' मन कहता है. 'केवल प्रयास से ही, केवल कुछ करने से ही कुछ बदल सकता है।' और यह बात तर्कपूर्ण, आकर्षक, भरोसे की मालूम पड़ती है—और यह बिलकुल गलत है। तुम कुछ नहीं कर सकते। तुम्हीं हो समस्या। और जितना अधिक तुम कुछ करते हो, उतना ज्यादा तुम अहंकार अनुभव करते हो; 'मैं' मजबूत हो जाता है; अहंकार शक्तिशाली हो जाता है।

कुछ करो मत, केवल देखो। देखने से अहंकार तिरोहित होता है, करने से अहंकार मजबूत होता है। बस साक्षी बने रहो। स्वीकार करो इसको—बिलकुल मत लड़ना इससे। यदि उलझाव है तो गलत क्या है? बस एक बादलों भरी शाम, बादलों से घिरा आकाश—बुरा क्या है? आनंदित होओ। बहुत ज्यादा सूर्य भी अच्छा नहीं; कई बार जरूरत होती है बादलों की। क्या बुरा है इसमें? सुबह धुंध से भरी है और तुम धुंधला— धुंधला अनुभव करते हो। क्या बुरा है इसमें? धुंध का भी आनंद मनाओ। जैसी भी स्थिति हो, तुम देखो, प्रतीक्षा करो, और आनंदित होओ। स्वीकार करो। यदि तुम स्वीकार कर लेते हो इसे, तो वही स्वीकार रूपांतरित कर जाता है, वही स्वीकार क्रांति कर देता है।

जल्दी ही तुम देखोगे कि तुम बैठे हो वहां, नदी खो गई—केवल कीचड़ ही नहीं, बल्कि पूरी नदी खो गई। अब कोई धुंध वहां नहीं है, बादल तिरोहित हो चुके, और एक खुला आकाश, एक विराट आकाश उपलब्ध है।

लेकिन धैर्य की जरूरत पड़ेगी। इसलिए यदि तुम जोर देते हो कि 'अब मुझे बताएं, मैं क्या करूं?' तो मैं कहूंगा, 'धैर्य रखो।' यदि तुम जोर देते हो कि 'मैं कहा जाऊं?' तो मैं तुम्हें कहूंगा, 'और निकट आओ मेरे।'

छठवां प्रश्न:

रोज कई बार स्नान करने और कपड़े बदलने की ब्राहमणों की आदत के बारे में आप कुछ कहेंगे? क्या वर्तमान संन्यासी के लिए यह उचित होगा?

ब्राहमण पागल हो गए हैं। वे पीड़ित हैं नियमों से, रूढ़ियों से, विक्षिप्तता से। साफ रहना

अच्छा है, लेकिन निरंतर सफाई में लगे रहना पागलपन है। और मन अतियों में डोलता है। तुम या तो गंदे रहते हो, तब तुम नहाते ही नहीं

एक इतालवी संन्यासिनी को मैं जानता था। वह एक कैम्प में साथ थी। मैं बहुत चकित हुआ, वह कभी स्नान ही नहीं करती थी! तो मैंने पूछा और उसने बताया कि साल में एक बार वह स्नान करती है। और वह चकित होकर पूछने लगी, 'क्या यह काफी नहीं है—साल में एक बार स्नान?' और फिर ब्राह्मण हैं जो कुछ और कर ही नहीं रहे—बस, केवल स्नान कर रहे हैं!

एक आदमी को मैं जानता हूं वह करीब का रिश्तेदार है, थोड़ा सनकी आदमी है। वह सारी जिंदगी अविवाहित ही रहा। केवल एक बात को छोड़ कर हर ढंग से अच्छा आदमी है। और वह एक बात भी निर्दोष है, किसी का नुकसान नहीं होता, लेकिन उसका पूरी तरह नुकसान हो गया है। वह गरीब आदमी है, क्योंकि ज्यादा उसने कभी कमाया नहीं। अपने पिता द्वारा छोड़ी गई संपत्ति पर ही जीया है। और उसे बहुत कंजूसी से जीना पड़ता है, क्योंकि उसके पास कुछ ज्यादा नहीं है और जो है उसे पूरी जिंदगी चलाना है। और कमाने के लिए उसके पास समय नहीं है उस सनक के कारण; और वह सनक है सफाई। दिन भर वह अपना घर साफ करता रहता है। साफ करने के लिए कुछ है नहीं : एक छोटा सा कमरा है, वह उसे ही साफ करता रहता है। फिर वह स्नान करेगा। और यह उसकी सनक का हिस्सा है कि यदि वह किसी स्त्री के लिए देख ले, तो फिर स्नान करेगा, क्योंकि वह कुंआरा है, बाल ब्रह्मचारी, कि स्त्री की छाया मात्र अशुद्ध कर जाती है उसे!

वह पानी लाने के लिए एक सार्वजनिक नल पर जाता है। वह एकदम सुबह चला जाता है जिससे कि रास्ते में कोई उसे मिले नहीं, क्योंकि अगर कोई स्त्री राह से गुजर जाए तो वह फिर से साफ करेगा अपना बर्तन। पानी फेंक देगा, बर्तन साफ करेगा, फिर से पानी लाएगा। और कभी—कभी ऐसा हुआ कि तीस, चालीस, साठ बार गया होगा वह पानी भरने—पूरे दिन! और तुम किसी का आना—जाना तो रोक नहीं सकते, और लोग गुजर रहे हैं, और उतनी ही स्त्रियां हैं जितने कि पुरुष। कठिन है बात। और वह चूक सकता नहीं—वह तो तलाश ही रहा है स्त्रियों को। यदि वह बहुत दूर से भी देख ले किसी स्त्री को, तो तुरंत.। सारा दिन व्यर्थ हो जाता है। वह इतनी सफाई से रहता है, लेकिन क्या करेगा इस सफाई का? सारा जीवन व्यर्थ गया।

स्मरण रहे कि संतुलन सदा ठीक है। गंदे भी मत रहो; गंदगी से भी मत जुड़ जाओ। अब हिप्पी सम्मोहित हैं गंदगी से। यह एक प्रतिक्रिया है। यह कोई स्वतंत्रता नहीं है, क्योंकि प्रतिक्रिया कभी स्वतंत्रता नहीं हो सकती। ईसाइयत बहुत ज्यादा जोर देती है स्वच्छता पर। उनके पास एक मुहावरा है कि क्लीनलीनेस इज नेक्स टु गॉडलीनेस। उन्होंने बहुत ज्यादा जोर दिया स्वच्छता पर, अब नई पीढ़ी ने, आधुनिक पीढ़ी ने विद्रोह कर दिया है इसके विरुद्ध। अब हिप्पी स्नान नहीं करते। वे कोई फिक्र नहीं करते कपड़ों को धोने की—जैसे कि गंदगी ही उनकी साधना हो गई है; गंदे रहना उनका अनुशासन हो गया है। वे सोचते हैं कि वे समाज के पुराने ढांचे से पूरी तरह मुक्त हो गए हैं।

नहीं, तुम मुक्त नहीं हो गए हो। प्रतिक्रिया, विद्रोह कोई क्रांति नहीं है। तुम दूसरी अति पर जा सकते हो, लेकिन तुम उसी ढांचे में बने रहते हो। वे सफाई के पीछे पागल थे; तुम गंदे होने के पीछे पागल हो। और यदि मुझ से पूछते हो, अगर एक ही रास्ता हो. व्यक्ति को अति चुननी ही पड़ती हो तो मैं स्वच्छता की अति चुनूंगा, कम से कम वह स्वच्छ तो है। लेकिन मैं सदा संतुलन के पक्ष में हूं।

और कोई दूसरा तुम्हारे लिए अनुशासन नहीं दे सकता। तुम्हें अपने शरीर को, अपने संतुलन को अनुभव करना होगा—क्योंकि अस्वच्छता, गंदगी एक बोझ बन जाती है तुम्हारे शरीर पर, तुम्हारे चित्त पर। स्वच्छता किसी दूसरे के लिए या समाज के लिए नहीं है, वह तुम्हारे ही लिए है—हलका अनुभव करने के लिए है, प्रसन्न अनुभव करने के लिए है, शुद्ध और साफ अनुभव करने के लिए है। एक अच्छा स्नान तुम्हें पंख दे देता है। एक अच्छा स्नान, और तुम थोड़ी दिव्यता पा लेते हो, पृथ्वी का हिस्सा नहीं रहते; तुम थोड़ी उड़ान भर सकते हो। अच्छा स्नान जरूरी है।

और कोई दूसरा तुम्हारे लिए नियम नहीं बना सकता; अपने शरीर को तुम्हें ही समझना पड़ेगा। कई बार तुम बीमार होते हो और स्नान की कोई जरूरत नहीं होती, क्योंकि स्नान झंझट पैदा कर सकता है; तो स्नान से बंध मत जाना। कई बार स्थिति ऐसी नहीं होती कि तुम स्थान कर सकी; तो इसको लेकर पागल मत हो जाना—अपराध मत अनुभव करना। इसमें ऐसा कुछ नहीं है कि अपराध अनुभव करो; स्नान करना कोई पुण्य नहीं है, स्नान न करना कोई पाप नहीं है। अधिक से अधिक यह स्वास्थ्यप्रद है।

और तुम्हें अपने शरीर का खयाल रखना है; शरीर मंदिर है ईश्वर का। उसे स्वच्छ होना चाहिए; उसे सुंदर होना चाहिए। तुम्हें उसमें रहना है; तुम्हें उसके साथ रहना है। यह कई ढंग से तुम्हें प्रभावित करेगा। एक स्वच्छ शरीर में, एक स्वस्थ मंदिर में एक स्वच्छ मन के घटने की और होने की संभावना ज्यादा होती है। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि ऐसा जरूरी है। मैं इतना ही कह रहा हूं कि संभावना है—एक स्वच्छ शरीर में ज्यादा संभावना है। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि अस्वच्छ शरीर में कोई संभावना नहीं है स्वच्छ मन के लिए, संभावना है, लेकिन यह बात थोड़ी कठिन होगी, प्रकृति के विरुद्ध होगी।

ध्यान आंतरिक स्नान है चेतना का, और स्नान शरीर के लिए ध्यान है।

सातवां प्रश्न :

आप निरंतर लाओत्सु पर ही क्यों नहीं बोलते रहते?

यदि तुम मुझे समझते हो तो मैं सदा ही लाओत्सु पर बोल रहा हूं। यदि तुम मुझे नहीं समझते, तो जब मैं लाओत्सु पर बोलता हूं वह भी किसी काम का न होगा। असल में मैं किसी दूसरे के साथ कभी न्यायपूर्ण नहीं होता—पतंजलि, जीसस, महावीर, बुद्ध। नहीं, मैं बिलकुल न्यायपूर्ण नहीं होता, मैं हो नहीं सकता। लाओत्सु चले ही आते हैं। मैं निरंतर लाओत्सु पर बोल रहा हूं। जब मैं पतंजलि पर बोल रहा होता हूं जब मैं बुद्ध पर या जीसस पर बोल रहा होता हूं तो यदि तुम मुझे समझ सको तो लाओत्सु निरंतर एक अंतर— धारा बने रहते हैं। लेकिन यदि तुम मुझे नहीं समझते, तो यह प्रश्न खड़ा होता है, 'आप निरंतर लाओत्सु पर ही क्यों नहीं बोलते रहते?'

लाओत्सु मेरे लिए कोई विषय नहीं हैं, पतंजलि हैं। मैं जब पतंजलि पर बोलता हूं तो मैं पतंजलि पर बोलता हूं। मैं जब लाओत्सु पर बोलता हूं तो मैं लाओत्सु पर नहीं बोलता हूं; मैं जो बोलता हूं वह लाओत्सु ही है। और भेद बड़ा है, बहुत बड़ा है।

अंतिम प्रश्न :

क्या वर्नर एरहार्ड बुद्धत्व के निकट हैं?

पूछा है माधुरी ने। एरहार्ड उतना ही निकट है जितना कि माधुरी। हर कोई उतना ही निकट है जितना कि एरहार्ड। असल में बुद्धत्व एक छलांग है, कोई क्रमिक घटना नहीं है—एक ही कदम में यात्रा पूरी हो जाती है। यह ऐसे ही है जैसे तुम आंखें बंद किए बैठे हो, और तुम आंखें खोलते हो और सूर्य सामने है, सारा संसार अपूरित है प्रकाश से। कोई आंखें बंद किए बैठा है : तब भी संसार आलोकित है प्रकाश से और सूर्य मौजूद है, केवल वही आंखें बंद किए बैठा है। और यदि इससे वह आनंदित हो रहा है तो इसमें कुछ गलत नहीं है, एकदम ठीक है; लेकिन यदि वह दुखी है तो मैं कहता हूं कि तुम आंखें क्यों नहीं खोल लेते?

अज्ञान और ज्ञान के बीच भेद बस आंखें खोलने का ही है। भेद कुछ ज्यादा नहीं है, यदि तुम आंखें खोलने के लिए तैयार हो। तुम आंखें खोलने के लिए तैयार नहीं हो, तो भेद बहुत ज्यादा है।

एरहार्ड उतना ही निकट है जितना कि कोई और, लेकिन लगता है कि बुद्धि एक रुकावट है उसके लिए। ठीक ऐसे ही जैसे कि बुद्धि तुम्हारे लिए, करीब—करीब तुम सभी के लिए एक रुकावट है।

उसने बात समझ ली है। एकदम ठीक समझ ली है उसने बात, लेकिन बौद्धिक रूप से। जब मैंने पिछली बार उसके थोड़े से वक्तव्यों पर बात की, तो मैंने उन सभी को ठीक बताया। वे सभी बिलकुल सही हैं, लेकिन मैंने उसके बारे में कोई बात नहीं कही है। जो कुछ उसने कहा है, एकदम ठीक है। लेकिन तुम लाओत्सु का अध्ययन कर सकते हो, बौद्धिक रूप से तुम समझ भी सकते हो और तुम वही बातें दोहरा भी सकते हो। जहां तक शब्दों का संबंध है वे सही हैं, लेकिन वह स्वयं बौद्धिक रूप से जुड़ा हुआ लगता है; अस्तित्वगत रूप से नहीं जाना है उसने। और यही समस्या है।

और यही सब से बड़ी समस्या है जिसका सामना व्यक्ति को करना होता है। मेरी हर बात तुम समझ लेते हो, तुम दूसरों को भी समझा सकते हो, लेकिन बुद्धत्व उतना ही दूर रहेगा जितना कि सदा था। बौद्धिक रूप से समझने का प्रश्न ही नहीं है, यह बात है समग्र समझ की—तुम्हारा पूरा अस्तित्व उसे समझता है, केवल तुम्हारा मस्तिष्क ही नहीं। तुम्हारा हृदय समझता है उसे। और केवल तुम्हारा हृदय ही नहीं—तुम्हारा रक्त और तुम्हारी हड्डियां, तुम्हारे मांस—मज्जा को समझ आती है बात। कोई चीज छूटती नहीं, तुम्हारा संपूर्ण अस्तित्व उस बोध में नहा जाता है, उस समझ में स्नान कर लेता है। तब एक सुगंध उठती है, तब एक नृत्य घटित होता है, तब तुम खिल उठते हो।

और केवल एक कदम उठता है और यात्रा पूरी हो जाती है। तुम्हारे और मेरे बीच दूरी केवल एक कदम की है—दूरी ज्यादा नहीं है। दो कदमों की भी जरूरत नहीं है।

लेकिन भूलो एरहार्ड को। बस अपनी फिक्र कर लो, क्योंकि एरहार्ड तो अपने लिए ही एक समस्या है, तुम्हारा इससे क्या लेना—देना कि उसकी फिक्र करो? तुम केवल अपनी फिक्र कर लो। क्या तुम्हें बहुत बार ऐसा अनुभव नहीं हुआ कि तुम मुझे पूरी तरह समझ गए हो, और फिर—फिर तुम चूक जाते हो? क्यों? यदि तुम मुझे समझ लेते हो, तो फिर तुम क्यों चूकते हो?

तुम मुझे समझ लेते हो बौद्धिक रूप से, शाब्दिक रूप से, सैद्धातिक रूप से, लेकिन तुम्हारा अस्तित्व उसमें सम्मिलित नहीं होता। तो जब तुम मेरे निकट होते हो तो तुम समझ लेते हो, जब तुम दूर जाते हो तो समझ खो जाती है। तुम फिर अपने उसी पुराने रंग—ढंग में, तुम्हारे उसी पुराने संसार और ढांचे में लौट जाते हो। जब तुम मेरे साथ होते हो तो तुम स्वयं को भूल जाते हो और हर चीज स्पष्ट हो जाती है, एकदम पारदर्शी। मुझ से दूर होकर तुम फिर अपने अंधेरे में जा पड़ते हो और हर चीज उलझ जाती है और कोई चीज साफ नहीं रहती।

बस एक कदम। और वह कदम अपने पूरे प्राणों से उठाना होता है। तुम बस बैठे हो और कल्पना कर रहे हो कि तुमने कदम उठा लिया है। तुम बैठे रह सकते हो और तुम कल्पना किए चले जा सकते हो एक महायात्रा की। यदि तुम ऐसा ज्यादा देर तक करते रहे तो यात्रा इतनी वास्तविक लगने लगती है, इतनी सत्य मालूम होने लगती है कि तुम किसी बुद्ध पुरुष की भांति बोलने भी लग सकते हो—लेकिन उससे कुछ हल नहीं होगा।

तुम्हें जागना ही होगा। यह कोई कल्पना नहीं है; यह कोई विचार नहीं है; यह है स्वयं की उपलब्धि।

आज इतना ही।

प्रवचन 43 - ज्ञान नहीं—जागरण

योग—सूत्र:

(साधनापाद)

तदाभावात्संयोगाभावो हानं तद्दृशे: कैवल्यम्।। 25।।

अज्ञान के विर्स्जन द्वारा द्रष्टा और दश्य का संयोग विनष्ट किया जा सकता है।

यहीं मुक्ति का उपाय है।

विवेकख्यातिरविप्लवा हानोपाय:।। 26।।

सत्य और असत्य के बीच भेद करने के सतत अभ्यास द्वारा अज्ञान का विसर्जन होता है।

तस्य सप्तधा प्रान्तभूमि: प्रज्ञा।। 27।।

संबोधि की परम अवस्था उपलब्ध होती है सत चरणों में।

अज्ञान की अवस्था ही कारण है सारी भ्रांतियों का, सारे भ्रमों का, सभी मिथ्या प्रतीतियों का। लेकिन ज्यादा जानना ज्ञान की अवस्था नहीं है। अज्ञान कारण है, लेकिन ज्ञान—जानकारी के अर्थ में—कोई उपाय नहीं है। तुम ज्यादा से ज्यादा जान सकते हो, लेकिन तुम वही रहते हो। ज्ञान एक व्यसन बन जाता है। तुम उसे इकट्ठा करते चले जाते हो, लेकिन जो इकट्ठा कर रहा है वह वही का वही बना रहता है। तुम ज्यादा जानते हो, लेकिन 'तुम' ज्यादा होते नहीं।

और अज्ञान का मूल कारण केवल तभी मिट सकता है जब तुम विकसित होओ, जब तुम्हारा होना मजबूत हो, जब तुम्हारी स्व—सत्ता जागे। सारी पीड़ा का मूल कारण अज्ञान है, लेकिन तथाकथित ज्ञान उपचार नहीं है—जागरण है उपचार।

यदि तुम इस सूक्ष्म भेद को नहीं समझते, तो पहले तो तुम अज्ञान में खोए हो, फिर तुम ज्ञान में खो जाओगे—और कुछ ज्यादा ही खो जाओगे। उपनिषदों में सर्वाधिक क्रांतिकारी वचनों में से एक वचन है। वह वचन यह है कि अज्ञान में तो लोग भटकते ही हैं, लेकिन ज्ञान में वे और भी गहरे अर्थों में भटक जाते हैं। अज्ञान तो भटकाता ही है, ज्ञान और भी ज्यादा भटका देता है।

तो अज्ञान ज्ञान का अभाव नहीं है। यदि वह ज्ञान का अभाव होता तो चीजें बहुत आसान होतीं—और सस्ती होतीं। तुम ज्ञान उधार ले सकते हो; तुम स्वयं का होना उधार नहीं ले सकते। ज्ञान तो तुम चुरा भी सकते हो; तुम स्व—सत्ता को नहीं चुरा सकते। तुम्हें उसमें विकसित होना होता है।

इस बात को कसौटी की तरह याद रखना : जब तक तुम किसी चीज को स्वयं के भीतर विकसित नहीं करते, तब तक वह तुम्हारी कभी नहीं होती। जब तुम भीतर विकसित होते हो, केवल तभी कोई चीज तुम्हारी होती है। तुम किसी चीज पर मालकियत कर सकते हो, लेकिन उस मालकियत से भ्रांति में मत पड़ जाना। वह चीज तुमसे अलग ही बनी रहती है, वह तुम से छीनी जा सकती है। केवल तुम्हारी अंतस सत्ता नहीं छीनी जा सकती तुम से। तो जब तक तुम्हारी अंतस सत्ता में ही ज्ञान न घट जाए, अज्ञान नहीं मिट सकता।

अज्ञान ज्ञान का अभाव नहीं है; अज्ञान है होश का अभाव। अज्ञान एक प्रकार की निद्रा है, एक प्रकार की मूर्च्छा है, एक प्रकार का सम्मोहन है; जैसे कि तुम नींद में चल रहे हो, नींद में काम कर रहे हो। तुम नहीं जानते कि तुम क्या कर रहे हो। तुम आलोकित नहीं हो; तुम्हारा सारा अस्तित्व अंधकार में डूबा है। तुम जान सकते हो प्रकाश के विषय में, लेकिन प्रकाश के विषय में वह ज्ञान

कभी प्रकाश न बनेगा। उलटे, वह एक अवरोध बन जाएगा प्रकाश की ओर गति करने में, क्योंकि जब तुम बहुत कुछ जान लेते हो प्रकाश के संबंध में तो तुम भूल जाते हो कि प्रकाश घटित नहीं हुआ है तुम्हें। तुम अपने ही ज्ञान द्वारा धोखा खा जाते हो।

यह ऐसे ही है जैसे कि तुम एक अंधेरी कोठरी में रह रहे हो। तुमने प्रकाश के विषय में सुना है, लेकिन तुमने प्रकाश देखा नहीं है। और तुम प्रकाश के विषय में सुन कैसे सकते हो? उसे केवल देखा जा सकता है। कान माध्यम नहीं हैं प्रकाश को जानने का; आंखें हैं माध्यम। और तुमने सुन लिया है प्रकाश के बारे में। और बार—बार प्रकाश की बातें सुन कर तुम्हें लगता है कि तुम जानते हो प्रकाश को। तुम जानते हो उसके बारे में, लेकिन किसी के बारे में जानना उसे जानना नहीं है। तुमने सुना है। और कैसे तुम सुन सकते हो प्रकाश को? यह तो ऐसा ही होगा जैसे कोई कहे कि उसने देखा है संगीत को। यह बात बड़ी बेतुकी होगी।

फिर प्रकाश की बातें सुन—सुन कर मन और लोभी हो जाता है। तुम शास्त्रों में खोजते हो। तुम जाते हो और खोजते हो बुद्धिमान वृद्धों को। तुम्हें शायद कोई मिल भी जाए जिसने देखा हो, लेकिन जब वह उसके बारे में कुछ कहता है, तो तुम्हारे लिए वह सुनी हुई बात हो जाती है।

भारत में प्राचीनतम शास्त्र श्रुति के नाम से जाने जाते हैं. वह जिसे कि सुना गया है। सुंदर है यह बात। सचमुच सुंदर है यह। सत्य सुना कैसे जा सकता है? और सारे प्राचीनतम शास्त्र श्रुतियां और स्मृतियां कहलाते हैं। श्रुति का अर्थ है 'सुना हुआ' और स्मृति का अर्थ है 'स्मरण रखा हुआ'। तुमने सुना है और स्मृति में रख लिया है। तुमने रट लिया है।

लेकिन सुन कर तुम सत्य को कैसे जान सकते हो? तुम्हें उसे अनुभव करना होता है। वस्तुत: तुम्हें उसे जीना होता है। गुफा में, अंधेरे में जीने वाला आदमी प्रकाश के बारे में बहुत जानकारी इकट्ठी कर सकता है। वह बहुत बड़ा पंडित भी बन सकता है। तुम कुछ भी पूछ सकते हो उससे और तुम भरोसा कर सकते हो उस पर। वह हर चीज बता देगा जो प्रकाश के बारे में कभी भी कही गई है, लेकिन फिर भी रहेगा वह अंधेरे में ही। और प्रकाश को पाने में वह तुम्हारी मदद नहीं कर सकता; वह स्वयं ही अंधा है।

जीसस बार—बार कहते हैं, 'अंधे अंधों को चला रहे हैं।' कबीर कहते हैं, 'यदि तुम दुख भोग रहे हो, तो सजग हो जाओ; जरूर तुम अंधे आदमी द्वारा चलाए गए हो।' कबीर कहते हैं, 'अंधा अंधे ठेलिया दोनों कूप पड़ंत।' और तुम सभी पड़े हो दुख के कुएं में; तुमने सत्य के विषय में जरूर बहुत कुछ सुना होगा; तुमने बहुत कुछ सुना होगा ईश्वर के विषय में। हजारों उपदेशक निरंतर उपदेश दे रहे हैं ईश्वर के संबंध में—चर्च हैं, मंदिर हैं, पंडित—पुरोहित हैं—निरंतर चर्चा कर रहे हैं उसके विषय में। लेकिन ईश्वर कोई बातचीत नहीं है, वह तो एक अनुभव है।

अज्ञान ज्ञान के द्वारा नहीं मिट सकता है। वह मिट सकता है केवल होश के द्वारा। ज्ञान तो तुम स्वप्न में भी इकट्ठा किए जा सकते हो; लेकिन वह स्वप्न का हिस्सा ही है, और स्वप्न हिस्सा है तुम्हारी नींद का। कोई चाहिए जो तुम्हें झकझोर दे। कोई चाहिए जो तुम्हें धक्का दे दे। कोई चाहिए

जो तुम्हें तुम्हारी नींद से जगा दे। अन्यथा तुम तो ऐसे ही चलते चले जा सकते हो। नींद मादक होती है। अज्ञान मादक होता है, वह एक प्रकार का नशा है। तुम्हें उससे बाहर आना है।

मैं तुम से एक कहानी कहूंगा, जो मुझे सदा प्रीतिकर रही है। वह तिलोपा के शिष्य, सिद्ध नरोपा के विषय में है। नरोपा के अपने गुरु तिलोपा से मिलने के पहले की घटना है। उसके बुद्धत्व को उपलब्ध होने से पहले की घटना है। और यह बहुत जरूरी है प्रत्येक खोजी के लिए, सब के साथ ऐसा ही होगा। तो सवाल यह नहीं है कि ऐसा नरोपा के साथ हुआ या नहीं, लेकिन इस यात्रा पर ऐसा होना अनिवार्य है। जब तक ऐसा न घटे, बुद्धत्व संभव नहीं है। इसलिए मैं नहीं जानता कि ऐतिहासिक रूप से ऐसा हुआ या नहीं, लेकिन मनोवैज्ञानिक रूप से मैं निश्चित हूं एकदम सुनिश्चित हूं कि ऐसा हुआ, क्योंकि कोई भी इस अनुभव के बिना पार के जगत में गति नहीं कर सकता।

नरोपा बहुत बड़ा विद्वान था, एक बड़ा पंडित था। कहानियां हैं कि वह एक महान उपकुलपति था एक बड़े विश्वविद्यालय का—दस हजार उसके विद्यार्थी थे। एक दिन वह बैठा हुआ था अपने विद्यार्थियों के बीच। उसके चारों ओर हजारों शास्त्र बिखरे पड़े थे—प्राचीन, अति प्राचीन, दुर्लभ शास्त्र। अचानक ही उसे झपकी लग गई— थका रहा होगा—और उसे एक दृश्य दिखाई पड़ा। मैं इसे दृश्य कहता हूं स्वप्न नहीं कहता, क्योंकि यह कोई साधारण स्वप्न नहीं है। यह इतना अर्थपूर्ण है कि इसे स्वप्न कहना उचित न होगा; यह दर्शन था। उसने एक बहुत की, कुरूप, भयंकर स्त्री देखी, चुड़ैल जैसी। उसकी कुरूपता इतनी भयंकर थी कि वह नींद में कांपने लगा। वह बहुत घबरा गया। वह भाग जाना चाहता था—लेकिन भागे कहां? जाए कहा? वह पकड़ लिया गया, मानो कि की चुड़ैल द्वारा सम्मोहित हो गया हो। उस स्त्री का शरीर घबराने वाला था, लेकिन उसकी आंखें चुंबकीय थीं।

उसने पूछा, 'नरोपा, तुम क्या कर रहे हो?'

और उसने कहा, 'मैं अध्ययन कर रहा हूं।'

'क्या अध्ययन कर रहे हो तुम?' की स्त्री ने पूछा।

उसने कहा, 'दर्शन, धर्म, तत्व—मीमांसा, भाषा, व्याकरण, तर्कशास्त्र।'

उस की स्त्री ने फिर पूछा, 'क्या तुम समझते हो इन्हें?'

नरोपा ने कहा, 'बिलकुल. ही, मैं समझता हूं इन्हें।'

उस स्त्री ने फिर पूछा, 'तुम शब्दों को समझते हो या कि अनुभव को?'

यह बात पहली बार पूछी गई थी। नरोपा से जीवन में हजारों प्रश्न पूछे गए थे। वह एक बड़ा शिक्षक था—हजारों विद्यार्थी सदा ही पूछते रहे थे, जिज्ञासा करते रहे थे—लेकिन किसी ने यह नहीं पूछा था : 'तुम शब्दों को समझते हो या कि भाव को?' और उस स्त्री की आंखें इतनी गहरे देखने वाली थीं कि

झूठ बोलना असंभव था—वह जान जाएगी। उसकी दृष्टि के सम्मुख नरोपा ने अपने को बिलकुल नग्न अनुभव किया, निर्वस्त्र, पारदर्शी। वे आंखें उसके अंतस में एकदम गहरे झांक रही थीं, और झूठ बोलना असंभव था। उसने और किसी से कह दिया होता, 'निश्चित ही मैं समझता हूं भाव', लेकिन इस स्त्री से, इस भयंकर स्त्री से वह झूठ नहीं बोल सका; उसे सत्य ही कहना पड़ा।

उसने कहा, 'ही, मैं शब्दों को समझता हूं।'

वह स्त्री बहुत प्रसन्न हो गई। वह नाचने लगी और हंसने लगी।

यह सोच कर कि स्त्री इतनी खुश हो गई है—और उसकी खुशी के कारण उसकी कुरूपता भी बदल गई थी; अब वह उतनी कुरूप न रही थी, एक सूक्ष्म सौंदर्य उसके भीतर से बाहर झलकने लगा

था—तो यह सोच कर कि मैंने इसे इतना प्रसन्न कर दिया है तो क्यों न इसे थोड़ा और प्रसन्न कर दूं उसने कहा, 'और ही, मैं भाव भी समझता हूं।'

उस स्त्री की हंसी रुक गई। उसका नृत्य थम गया। वह चीखने लगी और रोने लगी, और उसकी सारी कुरूपता लौट आई—पहले से हजार गुना ज्यादा।

नरोपा ने कहा, 'क्यों? क्यों तुम रो रही हो? और पहले क्यों तुम हंस रही थीं और नाच रही थीं?' वह स्त्री कहने लगी, 'मैं नाच रही थी और हंस रही थी और खुश थी, क्योंकि तुम्हारे जैसे महान विद्वान ने झूठ नहीं बोला था। लेकिन अब मैं चीख रही हूं और रो रही हूं क्योंकि तुमने मुझसे झूठ बोला। मैं जानती हूं—और तुम जानते हो—कि तुम भाव को नहीं समझते।'

दृश्य विलीन हो गया और नरोपा रूपांतरित हो गया। उसने विश्वविद्यालय छोड़ दिया। उसने फिर कभी अपनी जिंदगी में कोई शास्त्र न छुआ। वह बिलकुल अज्ञानी हो गया : वह समझ गया कि केवल शब्दों को समझ कर तुम किसे धोखा दे रहे हो! और केवल शब्दों को समझ—समझ कर तुम बन गए हो एक कुरूप बूढ़ी चुड़ैल।

ज्ञान कुरूप होता है। और यदि तुम विद्वानों के पास जाओ तो तुम पाओगे कि वे दुर्गंध से भरे हैं—ज्ञान की दुर्गंध से—वे मुर्दा हैं।

एक प्रज्ञावान व्यक्ति के पास, एक बोधपूर्ण व्यक्ति के पास उसकी एक अपनी ताजगी होती है, एक सुवासित जीवन होता है—जो कि नितांत अलग होता है पंडित से, ज्ञान से भरे व्यक्ति से। जो भाव को समझता है वह सुंदर हो जाता है, जो केवल शब्द को ही समझता है वह कुरूप हो जाता है। और वह स्त्री कोई बाहर की नहीं थी : वह तो भीतर का एक प्रक्षेपण थी। वह नरोपा का ही एक हिस्सा था जो ज्ञान के द्वारा कुरूप हो गया था। मात्र इतनी समझ कि 'मैं भाव को नहीं समझता' और सारी कुरूपता एक सुंदरता में बदल जाने वाली थी।

नरोपा तलाश में निकल पड़ा, क्योंकि अब शास्त्र काम न देंगे। अब जरूरत है किसी जीवंत सदगुरु की। फिर लंबी यात्राओं के बाद उसे तिलोपा मिले। तिलोपा को भी इस व्यक्ति की तलाश थी, क्योंकि जब तुम्हारे पास कुछ होता है, तो तुम उसे बांटना चाहते हो; एक करुणा पैदा होती है। करुणा बौद्ध शब्दावली है। इसके लिए अंग्रेजी शब्द 'कम्पैशन' एकदम वही भाव व्यक्त नहीं करता—कर नहीं सकता। करुणा शब्द बहुत ही अर्थपूर्ण है। यह उसी संस्कृत मूल से आता है जिससे कि किया शब्द आता है। क्रिया और करुणा—वे दोनों आते हैं एक ही मूल धातु 'कृ' से। बौद्ध शब्द करुणा का अर्थ है 'सक्रिय करुणा।'

और यही अंतर है सहानुभूति और करुणा के बीच, सहानुभूति में कुछ करने की कोई जरूरत नहीं होती—तुम बस अपनी सहानुभूति प्रकट कर देते हो और बात खतम हो जाती है। करुणा सक्रिय होती है; तुम करते हो कुछ, तुम्हें कुछ करना ही पड़ता है। तुम मात्र सहानुभूति में कैसे जी सकते हो? सहानुभूति तो बहुत उथली, बहुत ठंडी मालूम पड़ेगी। करुणा में ऊष्मा होती है। करुणा का अर्थ ही है कि वह सक्रिय होती है।

जब कोई व्यक्ति ज्ञान को उपलब्ध होता है, तो करुणा पैदा होती है। तिलोपा ज्ञान को उपलब्ध हो गए थे। उनका साक्षात्कार हुआ था सत्य से; और अब करुणा उमग आई थी। और वे उस व्यक्ति

की खोज में थे जो लेने को तैयार हो—क्योंकि सत्य के अनुभव को तुम उन पर नहीं थोप सकते जो कुछ समझेंगे ही नहीं। एक संवेदनशील हृदय की, एक स्त्रैण हृदय की जरूरत होती है। शिष्य को स्त्री जैसा होना होता है, क्योंकि गुरु को उंडेलना है और शिष्य को उसे स्वीकार करना है।

तो वे दोनों मिले और तिलोपा ने कहा, 'नरोपा, अब मैं वह सब कहूंगा जिसे कहने की मैं प्रतीक्षा करता रहा हूं। मैं तुम्हें सब कुछ कहूंगा, नरोपा। तुम आ गए हो; अब मैं स्वयं को निर्भार कर सकता हूं।'

नरोपा को जो दिखा, वह दृश्य बहुत अर्थपूर्ण है। वह दर्शन जरूरी है। जब तक तुम अनुभव न कर लो कि ज्ञान व्यर्थ है, तब तक तुम प्रज्ञा की तलाश कभी करोगे ही नहीं। तुम झूठे सिक्के ही लिए रहोगे यह सोच कर कि यही है सच्चा खजाना।

तुम्हें सजग होना है कि ज्ञान नकली सिक्का है—वह जानना नहीं है, वह बोध नहीं है। अधिक से अधिक वह बौद्धिक है—शब्द समझ में आ गए हैं लेकिन बोध चूक गया है। एक बार तुम समझ लेते हो, इसे तो तुम उतार फेंकोगे अपना सारा ज्ञान और तुम निकल पड़ोगे किसी ऐसे व्यक्ति की खोज में जो कि जानता है, क्योंकि जो जानता है, केवल उसी के साथ हृदय से हृदय का, प्राणों से प्राणों का संवाद संभव होता है। लेकिन शिष्य यदि पहले से ही ज्ञान से भरा है तो संवाद असंभव है, क्योंकि ज्ञान एक दीवार बन जाएगा।

मैं सदा ही तुम्हारे चारों ओर एक सूक्ष्म दीवार देखता हूं। जब तुम मेरे पास आते हो, तो मैं देखता हूं कि मैं तुम तक पहुंच सकता हूं या नहीं, तुम तक पहुंचना संभव है या नहीं। यदि मैं ज्ञान की बहुत मोटी दीवार देखता हूं तो नितांत असंभव लगता है तुम तक पहुंचना; मुझे प्रतीक्षा करनी होती है। यदि मुझे छोटी सी संध भी मिले तो मैं वहां से प्रवेश कर जाता हूं। लेकिन भयभीत लोग, भय से भरे हुए लोग—वे संध तक नहीं छोड़ते; वे पक्की दीवार बना लेते हैं। वे अपने चारों ओर एक घेरा बना लेते हैं ज्ञान का, जानने का, धारणाओं का, अर्थहीन शब्दों का। व्यर्थ। मात्र शोरगुल। वस्तुत: एक उपद्रव, लेकिन तुम विश्वास करते हो उनमें।

तो यह पहली बात समझ लेने की है : ज्ञान कोई ज्ञान नहीं है। और केवल वह ज्ञान जो कि ज्ञान नहीं बल्कि प्रज्ञा है, समझ है, बोध है, वही कांट सकता है अज्ञान की जड़ों को।

याद रखना इस शब्द 'बोध' को। जैसे सुबह धीरे— धीरे तुम जागते हो और नींद के बाहर आते हो और नींद समाप्त हो जाती है, मिट जाती है। वैसा ही फिर घटता है : तुम नींद से बाहर आते हो; धीरे— धीरे तुम्हारी आंखें खुलती हैं, तुम देखने लगते हो; तुम्हारा हृदय आंदोलित होता है, तुम्हारा अंतस खुलने लगता है, और तत्क्षण तुम वही व्यक्ति नहीं रह जाते जो तुम सोए हुए थे।

क्या तुमने कभी गौर किया, सुबह जब तुम जागते हो, तो तुम बिलकुल ही दूसरे व्यक्ति होते हो, तुम वही नहीं होते जो सोया हुआ था? क्या तुमने ध्यान दिया, नींद में तुम बिलकुल अलग ही आदमी होते हो। नींद में तुम ऐसे काम करते हो, जिनकी तुम जागे हुए करने की— कल्पना भी नहीं कर सकते! नींद में तुम ऐसी बातों पर विश्वास कर लेते हो, जिन पर जागे हुए तुम विश्वास कर ही नहीं सकते। नींद में तो हर तरह की बेतुकी बातों पर विश्वास आ जाता है। जागने पर तुम हंसते हो अपनी ही मूढ़ता पर, अपने ही सपनों पर।

ऐसा ही तब घटता है, जब तुम अंतिम रूप से जाग जाते हो। तब संसार की वे सब बातें जिन्हें तुम उस क्षण तक जी रहे थे, एक सपने का—एक लंबे सपने का—हिस्सा बन जाती हैं। इसीलिए हिंदू सदा कहते रहे हैं, संसार माया है. वह सपनों से बना है; वह वास्तविक नहीं है। जागो! और तुम पाओगे कि वे सब मिथ्या आभास जो तुम्हें घेरे हुए थे, खो गए हैं। और अस्तित्व का एक नितांत अलग आयाम उपलब्ध होता है—वही है मुक्ति। मुक्ति का अर्थ है भ्रमों से मुक्ति। मुक्ति का अर्थ है निद्रा से मुक्ति। मुक्ति का अर्थ है उस सब से मुक्ति जो कि नहीं है और भासता है कि है।

सत्य को जानने का अर्थ है घर आ जाना, असत्य में उलझे रहने का अर्थ है संसार में रहना। अब हम पतंजलि के सूत्रों को समझने का प्रयास करें।

अज्ञान के विसर्जन द्वारा द्रष्टा और दृश्य का संयोग विनष्ट किया जा सकता है। यही मुक्ति का उपाय है।

कहां से प्रारंभ करें? क्योंकि पतंजलि की रुचि सदा प्रारंभ में है। यदि प्रारंभ स्पष्ट नहीं है तो हम बात किए जा सकते हैं कि मुक्ति क्या है, लेकिन वह बातचीत ही रहेगी। प्रारंभ को बिलकुल स्पष्ट होना चाहिए—हर कदम एकदम स्पष्ट, ताकि तुम वहा से आगे बढ़ सको जहां कि तुम हो।

यदि तुम लाओत्सु को सुनते हो तो लाओत्सु बोलते हैं शिखर से, मानव—चेतना के उच्चतम शिखर से; यदि तुम तिलोपा से पूछो, तो वे वहां से उत्तर देते हैं, जहां वे हैं। यदि तुम पतंजलि से पूछो, तो वे वहां से बोलते हैं जहां तुम हो। वे अपने बारे में कुछ नहीं कहते; वे वहां से बोलते हैं जहां तुम हो—प्रारंभ से। वे ज्यादा व्यावहारिक हैं; लाओत्सु ज्यादा प्रामाणिक हैं। पतंजलि ज्यादा उपयोगी हैं।

कल ही किसी ने पूछा था कि मैं निरंतर लाओत्सु पर ही क्यों नहीं बोलता रहता!

तुम्हारे कारण। यदि मैं अकेला होता, तो ठीक था, एकदम ठीक था; लेकिन तुम भी मौजूद हो, और तुम्हें मैं भूल नहीं सकता। जब मैं लाओत्सु पर बोलता हूं तो मुझे तुम्हें बहुत पीछे छोड़ देना पड़ता है। फिर तुरंत मैं बोलने लगता हूं पतंजलि पर या किसी और पर जो तुम्हारे बारे में और तुम्हारे पहले चरणों के बारे में कहता हो। और अंतर बहुत बड़ा है।

तुम लाओत्सु का आनंद ले सकते हो, लेकिन तुम कुछ कर नहीं सकते, क्योंकि वे कुछ कहते ही नहीं करने के विषय में। उन्होंने पा लिया है और वे बात करते हैं अपनी उपलब्धि कीं—उसी जगह से। दोनों बिलकुल अलग बातें हैं। तुम उनके द्वारा सम्मोहित हो सकते हो, तुम्हारे लिए उनकी दृष्टि का बड़ा आकर्षण हो सकता है, लेकिन वह बात काव्य ही बनी रहेगी। वह रोमांस भर रहेगी; वह अनुभव न बनेगी, वह प्रयोगात्मक न बनेगी। अपना यात्रा—पथ तुम लाओत्सु द्वारा न खोज पाओगे। हर चीज एकदम सत्य है, लेकिन प्रारंभ कहां से करो? जिस क्षण तुम अपने प्रति सजग होते हो, लाओत्सु बहुत दूर मालूम होते हैं, बहुत ही दूर...।

पतंजलि तुम्हारे एकदम निकट हैं। तुम उनके हाथ में हाथ दिए चल सकते हो। वे प्रारंभ की बात करते हैं।

'.. द्रष्टा और दृश्य का संयोग विनष्ट किया जा सकता है।'

तो पहले कदम को ही खयाल में ले लेना है ध्यानपूर्वक, कि तुम पृथक हो दृश्य से : जो भी तुम देखते हो, तुम द्रष्टा हो। एक वृक्ष है, बहुत हरा— भरा और बहुत सुंदर, फूलों से लदा—लेकिन वृक्ष है तो दृश्य ही; तुम द्रष्टा हो। पृथक करो उन्हें। ठीक से जानो कि वृक्ष वहां है और तुम यहां हो; वृक्ष बाहर है, तुम भीतर हो, वृक्ष दृश्य है और तुम द्रष्टा हो।

ऐसा स्मरण रखना कठिन है, क्योंकि वृक्ष इतना सुंदर है और फूल इतना चुंबकीय आकर्षण रखते हैं कि वे तुम्हें सम्मोहित करते हैं। तुम खो जाना चाहोगे। तुम स्वयं को भूल जाना चाहोगे। असल में तुम सदा स्वयं को भूल जाने की, स्वयं से बचने की तलाश में ही होते हो। तुम इतने ऊब गए हो स्वयं से...। कोई नहीं चाहता स्वयं के साथ रहना। स्वयं से बचने के लिए ही तुम हजारों रास्ते खोज लेते हो। जब तुम कहते हो, 'वृक्ष सुंदर है,' तो तुमने कर लिया होता है बचाव; तुम स्वयं को भूल चुके होते हो। जब तुम पास से गुजरती किसी सुंदर स्त्री को देखते हो, तो तुम भूल जाते हो स्वयं को। द्रष्टा खो जाता है दृश्य में।

द्रष्टा को खोने मत देना दृश्य में। बहुत बार खो जाएगा वह—वापस बुला लेना उसे। फिर—फिर द्रष्टा हो जाना। धीरे —धीरे तुम थिर हो जाओगे। धीरे— धीरे तुम मजबूत होओगे। कोई चीज पास से गुजरती हो—कोई भी चीज—चाहे ईश्वर ही गुजरता हो, पतंजलि कहते हैं, ' ध्यान रहे कि तुम द्रष्टा हो और वह दृश्य है।' इस भेद को भूल मत जाना, क्योंकि केवल इस भेद से ही तुम्हारी दृष्टि साफ होगी, तुम्हारी चेतना एकाग्र होगी, तुम्हारी सजगता घनीभूत होगी, तुम्हारा अस्तित्व जड़ें पाएगा और केंद्रित होगा।

फिर—फिर लौट आओ, फिर—फिर उतरो आत्म—स्मरण में। ध्यान रहे, आत्म—स्मरण कोई अहं—स्मरण नहीं है; यह नहीं याद रखना है कि 'मैं हूं। नहीं, यह याद रखना है कि भीतर द्रष्टा है और बाहर दृश्य है। यह प्रश्न 'मैं' का नहीं है; यह प्रश्न है चेतना का और चेतना की विषय—वस्तु का।

'अज्ञान के विसर्जन द्वारा द्रष्टा और दृश्य का संयोग विनष्ट किया जा सकता है। यही मुक्ति का उपाय है।'

तुम अपने चारों ओर की चीजों के प्रति जैसे—जैसे और सजग होते हो, तो धीरे —धीरे तुम पाओगे कि केवल संसार ही तुम्हें नहीं घेरे हुए है, तुम्हारा अपना शरीर भी तुम्हें घेरे हुए है। वह भी दृश्य है। मैं जान सकता हूं अपने हाथ को, मैं अनुभव कर सकता हूं अपने हाथ को, तो जरूर मैं हाथ से अलग हूं। यदि मैं शरीर ही होता तो कोई उपाय न था शरीर को अनुभव करने का। कौन अनुभव करता उसे? जानने के लिए पृथकता की जरूरत होती है। सारा ज्ञान, सारा जानना, पृथक कर देता है। सारा अज्ञान विस्मरण है पृथकता का। जब तुम सजग होते हो कि शरीर भी अलग है, तो तुम्हारी चेतना स्वयं में थिर होने लगती है।

फिर तुम सजग होते हो कि तुम्हारी भावनाएं, तुम्हारे विचार—वे भी अलग हैं, क्योंकि तुम उन्हें भी देख सकते हो। तुमने देखा है उन्हें बहुत बार, लेकिन तुम्हें याद नहीं रहता कि तुम पृथक हो। तुम देखते हो कि मन के परदे पर एक विचार गुजर रहा है। वह आकाश में गुजरते बादल की भांति ही है। तुम सफेद बादल को या काले बादल को गुजरते हुए देखते हो जो कि उत्तर की ओर बढ़ रहा है।

जब कोई विचार गुजर रहा हो तो बस देखना कि वह कहा जा रहा है, कहां से आ रहा है। ध्यान से देखना उसे। उससे उलझ मत जाना; उसके साथ एक मत हो जाना। यह जुड़ जाना, यह एक हो जाना, तादात्म्य कहलाता है. और यही है अज्ञान। तादात्म्य से तुम अज्ञान में रहते हो। तादात्म्य—हीन होकर—पृथक, साक्षी, द्रष्टा होकर—तुम बोध की दिशा में बढ़ते हो।

यही वह विधि है जिसे उपनिषद कहते हैं नेति—नेति की विधि, विसर्जन की विधि। तुम देखते हो संसार को—और जानते हो, मैं संसार नहीं। तुम देखते हो शरीर को—और जानते हो, मैं शरीर नहीं। तुम देखते हो विचार को—और जानते हो, मैं विचार नहीं। तुम देखते हो भावना को—और जानते हो, मैं भावना नहीं। इसी तरह तुम कांटते जाते हो, कांटते जाते हो, कांटते जाते हो—एक घड़ी आती है जब केवल द्रष्टा बचता है; सारे दृश्य कट जाते हैं। और दृश्य के तिरोहित होने के साथ ही सारा संसार तिरोहित हो जाता है।

चेतना के उस परम एकांत में बड़ा सौंदर्य है, बड़ी सादगी, बड़ी निर्दोषता, बड़ी सहजता है। उस चेतना में प्रतिष्ठित होते ही, उस चेतना में थिर होते ही कोई चिंता नहीं रहती, कहीं कोई चिंता नहीं—कोई बेचैनी, कोई संताप, कोई पीड़ा नहीं; कोई घृणा, कोई प्रेम, कोई क्रोध नहीं। हर चीज खो जाती है; केवल तुम होते हो। यह अनुभूति भी कि 'मैं हूं? नहीं रहती। क्योंकि यदि तुम अनुभव करते हो कि 'मैं हूं?, तो तुम सजग हो सकते हो उस अनुभूति के प्रति—जो कि तुम से पृथक है। अकेले तुम होते हो। बस, तुम होते हो। इतने सहज—सरल कि कोई भाव नहीं होता कि 'मैं हूं, मात्र एक 'हूं —पन', एक होना मात्र बचता है। यही है व्याख्या अंतस सत्ता की। यह कोई दर्शनशास्त्र का प्रश्न नहीं है, कि कैसे इसकी व्याख्या करें, यह बात है अनुभव की, कि कैसे इसका अनुभव करें।

सब कुछ खो जाता है; सारे स्वप्न तिरोहित हो जाते हैं; सारा संसार तिरोहित हो जाता है। तुम स्वयं में प्रतिष्ठित रहते हो कुछ न करते हुए। विचार की एक तरंग भी नहीं होती, भाव का एक हलका सा झोंका भी नहीं गुजरता तुम्हारे पास से—हर चीज इतनी थिर होती है और इतनी शांत. समय थम जाता है, दूरी मिट जाती है। यह एक भावातीत अतिक्रमण की घड़ी होती है।

इस घड़ी में, पहली बार, तुम अज्ञानी नहीं रहते। इस तरह तुम अस्तित्वगत रूप से विकसित होते हो। इस तरह तुम जानने वाले बनते हो, जानकारी रखने वाले नहीं। तुमने कुछ सूचनाएं एकत्रित नहीं की हैं, बल्कि तुमने वह सब अलग कर दिया है जो कि तुम्हें घेरे हुए था। बिलकुल नग्न, निर्वस्त्र, शून्य की भांति, खाली होते हो तुम।

पतंजलि कहते हैं कि यही है अज्ञान से मुक्ति।

तो पहली बात है, अलग किए जाओ। तुम जो कुछ भी देखो, सदा ध्यान रहे द्रष्टा का, कि 'मैं अलग हूं, और तुरंत एक मौन तुम्हें घेर लेगा। जिस क्षण तुम्हें याद आ जाता है, 'मैं द्रष्टा हूं और दृश्य नहीं हूं?, उसी क्षण तुम इस संसार का हिस्सा नहीं रह जाते—तत्क्षण तुम रूपांतरित हो जाते हो। हो सकता है

तुम फिर भूल जाओ। शुरू—शुरू में याद बनाए रखना बहुत कठिन है, लेकिन चौबीस घंटों में यदि तुम इसे एक क्षण को भी याद रख सको, तो वह उसके लिए पर्याप्त पोषण होगा। और धीरे —धीरे ज्यादा क्षण संभव हो पाएंगे। एक दिन आता है जब तुम इतने सहज रूप से याद रखते हो कि याद रखने की कोशिश करने की भी जरूरत नहीं रहती : यह बात श्वास की भांति स्वाभाविक हो जाती है—जैसे तुम श्वास लेते हो उसी तरह तुम याद रखते हो। तब यह कहना भी ठीक नहीं है कि याद रखते हो, क्योंकि उसमें कोई प्रयास नहीं होता। यह बात सहज घटती है; यह सहज—स्फूर्त हो जाती है।

सत्य और असत्य के बीच भेद करने के सतत अभ्यास द्वारा.......।

फिर आता है दूसरा चरण। पहला चरण है पृथकता, दृश्य और द्रष्टा के बीच के तादात्म्य को तोड़ना। फिर दूसरा चरण है :

सत्य और असत्य के बीच भेद करने के सतत अभ्यास द्वारा अज्ञान का विसर्जन होता है।

पहला चरण हमने समझा; फिर आता है दूसरा चरण। वे दोनों एक साथ चलते हैं। ऐसा कहना ठीक नहीं कि यह दूसरा चरण दूसरा है—वे दोनों साथ—साथ ही चलते हैं। लेकिन बेहतर है कि शुरुआत हो द्रष्टा और दृश्य के भेद के साथ; तब दूसरी बात संभव होगी, क्योंकि दूसरी बात ज्यादा सूक्ष्म है—सत्य और असत्य के बीच भेद।

उदाहरण के लिए, सामान्य जीवन में तुम पूरी तरह भ्रमित हो चुके हो। तुम नहीं जानते कि सत्य क्या है और असत्य क्या है। तुम इतने डांवाडोल हो कि कोई भी भ्रांति तुम्हारे लिए सत्य मालूम हो सकती है; और जब वह सत्य हो जाती है—मतलब यह कि जब तुम उसे सत्य मान लेते हो—तो वह तुम्हें प्रभावित करने लगती है। और जब वह तुम्हें प्रभावित करने लगती है, तो वह और ज्यादा सत्य मालूम पड़ती है, क्योंकि वह तुम्हें प्रभावित कर रही होती है। यह एक दुष्चक्र हो जाता है।

रात को तुम स्वप्न देखते हो कि कोई तुम्हारी छाती पर चढ़ा बैठा है छुरा लिए और बस तुम्हें मार डालने को ही है—एक दुखस्वप्न। तुम चीख पड़ते हो। उस चीखने के कारण नींद टूट जाती है। तुम आंखें खोलते हो, वहा कोई नहीं बैठा है तुम्हारी छाती पर। शायद नींद में तुमने अपना ही तकिया रख लिया था अपनी छाती पर, या शायद तुम्हारे अपने ही हाथ थे, और उस दबाव ने असर दिखाया, उस दबाव ने निर्मित कर दिया वह स्वप्न।

अब तुम जानते हो कि वह एक स्वप्न था, लेकिन फिर भी तुम्हारा हृदय जोर से धड़कता ही रहता है। और तुम भलीभांति जानते हो कि वह एक सपना था। अब तुम पूरी तरह जागे हुए हो। तुमने रोशनी कर ली है—कहीं कोई नहीं है, कुछ नहीं है। लेकिन तुम्हारा शरीर थोड़ा कंपता ही रहता है। थोड़ा समय लगेगा फिर से शांत होने में।

एक झूठा सपना, कैसे वह सच्ची घटना पैदा कर देता है शरीर में? केवल दो संभावनाएं हैं। पहली कि शरीर भी कोई बड़ी सच्चाई नहीं है। यह है जीवन के विषय में हिंदू—दृष्टि। क्योंकि एक स्वप्न इसे प्रभावित कर सकता है, तो यह स्वप्न जैसा ही होगा; यह सत्य नहीं हो सकता। दूसरी संभावना यह है. क्योंकि तुम सपने को सच मान लेते हो, इसीलिए वह तुम्हें प्रभावित करता है। वह सच हो जाता है। यह तुम्हारा अपना मन ही है; यदि तुम किसी चीज को सच मान लेते हो, तो वह

सच हो जाती है। यदि तुम उसे झूठ मानो, तो वह झूठ हो जाती है। तब वह तुम्हें बिलकुल प्रभावित नहीं करती।

कभी ध्यान देना. तुम्हें भूख लगी है। क्या यह सच्ची भूख है? तुम्हारे शरीर की जरूरत है? या केवल इसलिए कि तुम रोज इसी समय भोजन करते हो तो घड़ी कह देती है कि समय हो गया, भूख अनुभव करो। घड़ी कह देती है और तुम तुरंत आज्ञा मान लेते हो; तुम्हें भूख लगने लगती है। क्या यह सच्ची भूख है? यदि यह सच्ची भूख होती, तो जितनी देर तुम भूखे रहो उतनी ही ज्यादा यह बढ़ेगी। यदि तुम रोज एक बजे खाना खाते हो और तुम्हें एक बजे भूख लगती है, तो थोड़ा रुकना। बस पंद्रह मिनट बाद ही तुम्हें भूख नहीं रह जाएगी, एक घंटे बाद तुम बिलकुल भूल ही जाओगे। क्या हुआ? यदि भूख सच्ची होती, तो एक घंटे बाद और ज्यादा बढ़ जाती—लेकिन वह तो मिट गई। वह मन का एक खेल थी—शरीर की वास्तविक आवश्यकता न थी, मात्र एक काल्पनिक आवश्यकता थी, एक झूठी आवश्यकता थी।

तो ध्यान देना कि क्या सच है और क्या झूठ है, और तुम बहुत सी चीजों के प्रति सजग होओगे। और तब तुम उनमें भेद कर सकते हो। और जीवन और— और सरल होता जाएगा। यही है संन्यास का अर्थ यह जान लेना कि क्या—क्या झूठ है। यदि कोई चीज झूठ है, और तुमने उसे झूठ की तरह जान लिया है, तो उसकी जरा भी मालकियत नहीं रहती तुम पर। जिस क्षण तुम समझ लेते हो कि 'यह झूठ है', उसकी ताकत खो जाती है, वह बेजान हो जाती है, अब वह तुम्हें प्रभावित नहीं करती। जीवन ज्यादा सहज हो जाता है, ज्यादा स्वाभाविक हो जाता है।

और फिर, धीरे— धीरे, तुम जान लेते हो कि निन्यानबे प्रतिशत चीजें झूठ हैं। मैं कहता हूं निन्यानबे प्रतिशत, एक प्रतिशत मैं छोड़ देता हूं अंतिम चरण के लिए, क्योंकि उस अंतिम चरण में वह भी झूठ हो जाती है—एकमात्र सत्य जो बच रहता है, वह तुम हो। एक—एक करके हर चीज झूठ हो जाती है और छूट जाती है, अंततः केवल चैतन्य ही सत्य बचता है।

उदाहरण के लिए, रात को तुम सोते हो, तुम कोई सपना देखते हो। रात सपना सत्य होता है। तुम उसे सत्य ही मानते हो, तुम उसे सत्य की तरह जीते हो—तुम अनुभव करते हो, तुम क्रोधित होते हो, तुम प्रेम करते हो—सब तरह के मनोभाव, विचार, सब तरह के जीवन तुम से गुजरते हैं। फिर सुबह वह सब झूठ हो जाता है। अब तुम जाते हो आफिस, दुकान, संसार में, बाजार में—अब यह संसार सत्य हो जाता है। सांझ तुम लौट आते हो घर। फिर तुम सो जाते हो—बाजार, दुकान—हर चीज फिर झूठ हो जाती है। गहरी नींद में तुम्हें याद नहीं रहती बाजार की, परिवार की, घर की चिंताओं की—वे सब बातें खो जाती हैं।

लेकिन केवल एक चीज सदा सत्य रहती है—वह है द्रष्टा। रात जब सपना चलता है, तो सपना भला सपना हो, लेकिन द्रष्टा सपना नहीं होता—क्योंकि सपना देखने के लिए भी वास्तविक द्रष्टा की जरूरत होती है। दोनों ही सपना नहीं हो सकते।

तुम युवा होते हो, फिर तुम बूढ़े हो जाते हो, लेकिन द्रष्टा वही रहता है। तुम बीमार होते हो, तुम स्वस्थ होते हो; लेकिन द्रष्टा वही रहता है। तुम्हारे भीतर की चेतना सदा वही रहती है, वही एक स्थिर—तत्व है—एकमात्र सत्य, क्योंकि हिंदू सत्य की व्याख्या इसी तरह करते हैं कि जो शाश्वत है, सनातन है। उनकी परिभाषा है : 'जो शाश्वत है वह सत्य है, और जो क्षणभंगुर है वह झूठ है।' क्योंकि एक क्षण तो वह होता है, अगले क्षण वह जा चुका होता है। तो क्यों कहना उसे सत्य? वह सपना था। कोई चीज जो एक क्षण को अर्थवान थी और फिर अगले क्षण अर्थहीन हो जाती है, वह सपना ही है। हिंदू कहते हैं : सारा जीवन एक सपना है, क्योंकि जब तुम मरते हो तो सारा जीवन अर्थहीन हो जाता है, जैसे कि वह कभी था ही नहीं।

धीरे— धीरे सत्य और असत्य के बीच भेद करने से, उन्हें साफ—साफ पहचानने से और— और प्रामाणिक सजगता पैदा होगी। ध्यान रहे, यह पहचान—सत्य और असत्य के बीच भेद करना—यह एक विधि है और ज्यादा सजगता निर्मित करने की। असली बात यह जानना नहीं है कि क्या सत्य है और क्या असत्य। असली बात यह है कि सत्य क्या है और असत्य क्या है, इसे जानने की कोशिश में तुम अत्यंत सजग हो जाओगे। यह एक विधि है।

तो इसमें उलझ मत जाना; क्योंकि लोग विधि में ही उलझ जाते हैं। सदा ध्यान रहे कि यह एक विधि है। यह केवल एक साधन है। जितना ज्यादा तुम गहराई में उतरते हो और इसके प्रति सजग होते हो कि क्या सत्य है और क्या असत्य, कि दोनों के बीच क्या घटित हो रहा है, तो तुम्हारा बोध और— और गहन हो जाता है, जीवंत हो जाता है। तुम्हारी दृष्टि और गहरी हो जाती है, जीवन के रहस्य में दूर तक पहुंचती है। यही है असली बात।

योग की दृष्टि में हर चीज साधन है। लक्ष्य है—तुम्हें पूरी तरह जाग्रत कर देना, ताकि अंधकार का एक टुकड़ा भी तुम्हारे हृदय में न रह जाए, एक कोना भी अंधेरा न रहे—सारा घर प्रकाशित हो उठे।

'सत्य और असत्य के बीच भेद करने के सतत अभ्यास द्वारा अज्ञान का विसर्जन होता है।'

तो असली बात है अज्ञान का विसर्जन।

भारत में कुछ बहुत ज्यादा जहरीले सांप पाए जाते हैं, कोबरा और दूसरी कई जातियों के। जब कोबरा किसी व्यक्ति को कांट लेता है, तो समस्या यह होती है कि यदि तुम उस आदमी को छत्तीस घंटे होश में रख सको तो शरीर स्वयं ही विष को बाहर फेंक देता है। रक्त संचारित होता है और स्वयं को विशुद्ध कर लेता है; विष शरीर से बाहर फेंक दिया जाता है। लेकिन एक ही शर्त है छत्तीस घंटों तक व्यक्ति को सोना नहीं चाहिए। एक बार वह सो जाता है, तो फिर बचना असंभव हो जाता है। तो जब कोबरा किसी आदमी को कांटता है भारत के जंगलों में या आदिम जातियों में जहां कि कोई औषधि उपलब्ध नहीं होती, तो सारा गांव इकट्ठा हो जाता है।

एक बार मैं एक गांव में था और ऐसा हुआ और मैं देखता रहा सारी घटना—छत्तीस घंटे। सुंदर थी बात, क्योंकि यही है पूरी प्रक्रिया सजग होने की। समस्या यह होती है कि विष व्यक्ति को सुस्त बना देता है। उसे बहुत जोर की नींद लगती है। साधारण नींद नहीं है यह—बहुत गहन नींद पकड़ती है। तो उसे बैठने नहीं दिया जाता; लोगों को उसे सम्हालना पड़ता है, पकड़े रहना पड़ता है। बैठे हुए या खड़े हुए उसे झटके देने पड़ते हैं—और चारों ओर ढोल और बाजा और गाना और नाचना चलता है, और चीखना और चिल्लाना और हुंकारना—ताकि वह सो न सके। जैसे ही उसकी आंखें बंद होने लगती हैं उसे झटका देकर बार—बार जगाना पड़ता है। उसे पीटते भी हैं।

बारह घंटे बाद एक घड़ी आती है कि उसके लिए करीब—करीब असंभव हो जाता है जागे रहना : तुम चीखते रहते हो, वह सुनता नहीं; उसका शरीर बेजान हो जाता है, तुम उसे सम्हाल नहीं पाते, खड़ा हो या बैठा हो। तब उसे जोर से मारना—पीटना पड़ता है; केवल मारना—पीटना ही उसे जगाए रखता है। यदि छत्तीस घंटे पूरे हो जाते हैं तो विष बाहर फेंक दिया जाता है शरीर द्वारा और व्यक्ति बच जाता है। यदि वह सो जाता है, कुछ मिनटों के लिए भी, तो वह व्यक्ति नहीं बचता।

योग का सारा प्रयास ऐसा ही है. बहुत सी विधियां प्रयोग करनी पड़ती हैं जागे रहने के लिए। और इसी कारण गलतफहमियां हो जाती हैं। उदाहरण के लिए, उपवास: उपवास एक विधि है सजग रहने की—शरीर से इसका कोई लेना—देना नहीं है। क्योंकि जब भी तुम उपवास में होते हो, तो तुम आसानी से नहीं सो सकते। सोने के लिए शरीर को भोजन की जरूरत होती है। जब तुम जरूरत से ज्यादा खा लेते हो, तो तुम तुरंत सो जाते हो। यदि तुमने बहुत ज्यादा खा लिया होता है, तो तुम तुरंत ही अनुभव करते हो कि अब तुम चल—फिर नहीं सकते, अब तुम कुछ कर नहीं सकते। होश खोने लगता है। शरीर की सारी ऊर्जा पेट की ओर चली जाती है, वह सिर से हट जाती है जहां कि वह होश के लिए जरूरी है, क्योंकि भोजन पचाना होता है, और वह पहली जरूरत है—सबसे पहली जरूरत है। सारी शारीरिक ऊर्जा पेट के निकट केंद्रित हो जाती है और तुम्हें नींद आने लगती है।

उपवास में, यदि तुमने कभी उपवास किया है तो तुमने अनुभव किया होगा कि रात तुम सो नहीं सकते। तुम बार—बार करवट बदलते हो। कोई बात चूक रही है। शरीर की ऊर्जा पूरी तरह मुक्त हो जाती है—कुछ पचाने के लिए नहीं है। मुक्त हो गई ऊर्जा सारे शरीर में घूमती है। अब वह पेट में ही केंद्रित नहीं रहती। असल में वह ऊर्जा उपलब्ध होती है, इसलिए तुम्हारा मन चलता रहता है; तुम सजग रहते हो। नींद कठिन हो जाती है।

उपवास एक ढंग है सजगता निर्मित करने का। यदि तुम लंबे समय तक उपवास करते हो, तो तुम सजगता की एक निश्चित गुणवत्ता पा लोगे जिसे भोजन लेते हुए पाना कठिन है। वह बिना उपवास के भी मिल सकती है, लेकिन उसमें ज्यादा समय लगेगा। उपवास एक छोटा और सुगम उपाय है। लेकिन कहीं भूल हो गई। ऐसा सदा ही होता है सोए हुए लोगों के साथ। तुम उन्हें कोई विधि देते हो : वे उसे ही पकड़ कर बैठ जाते हैं। वे भूल जाते हैं लक्ष्य को—विधि ही लक्ष्य बन जाती है, साधन साध्य बन जाता है। अब हजारों जैन मुनि हैं जो निरंतर उपवास कर रहे हैं—और कुछ हाथ लगता नहीं। मैं देश भर में घूमता रहा हूं तरह—तरह के लोगों से मिलता रहा हूं। मैंने हजारों जैन मुनियों से पूछा है, 'आप उपवास क्यों करते हैं?'

वे कहते हैं, 'क्योंकि इससे शरीर की शुद्धि होती है।'

बिलकुल बेकार की बात है। होती होगी शरीर की शुद्धि, लेकिन सवाल यह नहीं है। कभी—कभी स्वास्थ्य के लिए अच्छा हो सकता है उपवास—सदा ही नहीं। यदि तुम्हारे शरीर में बहुत ज्यादा चरबी इकट्ठी हो गई है, तो उपवास सहायक होगा उसका शोधन करने में; यह चरबी कम करता है। यदि तुमने वर्षों तक बहुत ज्यादा भोजन किया है और तुम्हारे शरीर में बहुत से विषैले तत्व जमा हो गए हैं, तो उपवास मदद देता है उन्हें शोधित करने में। लेकिन यह बात दूसरी है, धर्म से इसका कुछ लेना—देना नहीं है। यह प्राकृतिक चिकित्सा है—धर्म नहीं।

लेकिन जैन मुनि को शरीर—शुद्धि करनी ही क्यों पड़े? वह बीमार नहीं है। उसके शरीर में कोई जहर नहीं है। असल में वह बिलकुल भूल ही गया है लक्ष्य को। लक्ष्य तो था सजगता का। अब वह साधनों में ही लगा है, साधनों का ही प्रयोग कर रहा है, लक्ष्य को नहीं जान रहा है। वह केवल पीड़ित हो रहा है। इसलिए उपवास अब उपवास नहीं है, वह केवल भूखा रहना है। और ऐसा बहुत बार हुआ है—करीब—करीब सदा ही ऐसा होता है—क्योंकि साधन दिए जाते हैं सोए हुए लोगों को। वे नहीं समझ सकते लक्ष्य को, लक्ष्य बहुत दूर है। वे साधनों से चिपके रहते हैं।

तुमने देखे होंगे चित्र, या अगर तुमने चित्र नहीं देखे तो तुम जा सकते हो बनारस और देख सकते हो काटो की शय्या पर लेटे हुए लोगों को। यह प्राचीनतम ढंग था सजगता निर्मित करने का, बहुत पुराना ढंग, सब से प्राचीन। यह सजगता बढ़ाने के लिए है। किसी बहादुरी से इसका कुछ भी संबंध नहीं है। दूसरों पर प्रभाव जमाने से इसका कोई संबंध नहीं है। इस व्यक्ति को बनारस की सड़कों पर नहीं

होना चाहिए; उसे छिप जाना चाहिए घने जंगलों में, जहां कोई नहीं जाता, क्योंकि यह कोई प्रदर्शन की चीज नहीं है। लेकिन अब यह प्रदर्शन की चीज हो गई है।

और तुम देखोगे लोगों को काटो की शय्या पर लेटे हुए और तुम सजगता की जरा सी भी चमक नहीं पाओगे उनकी आंखों में या चेहरे पर, बल्कि तुम उन्हें बहुत जड़, असंवेदनशील पाओगे; बुद्धिहीन, मूढ़ पाओगे। चमत्कार है यह, क्योंकि विधि तो इसलिए थी कि सजगता निर्मित हो। क्या हुआ? वे बिलकुल भूल ही गए कि यह किसलिए है. यह स्वयं में लक्ष्य बन गई। उन्होंने तो एक तरकीब सीख ली है। और यदि तुम्हें इस तरह की तरकीबें सीखनी हैं, तो तुम्हें संवेदनहीन होना ही पड़ता है; केवल तभी तुम कीलों के या कीटों के बिस्तर पर लेट सकते हो। शरीर को संवेदनहीन होना चाहिए, ताकि वह ज्यादा कुछ महसूस ही न करे। उसे जड़ होना चाहिए, ताकि काटे या कीलें चुभे नहीं। तुम्हें एक सघन जड़ता, एक संवेदनहीनता निर्मित कर लेनी होगी अपने शरीर के चारों ओर। और लक्ष्य तो ठीक इसके विपरीत था. कि ज्यादा संवेदनशील होना है, कि शरीर को उसकी पूरी संवेदना में अनुभव करना है। यदि तुम कीलों या कांटो की शय्या पर लेटो तो तुम शरीर का पोर—पोर अनुभव करोगे। सारा शरीर पीड़ा में है। और पीड़ा तुम्हें झटका देती है, और पीड़ा तुम्हें जगाती है, तुम्हें सजग करती है।

तो इसका अभ्यास नहीं करना है। यदि तुम इसका अभ्यास करते हो, तो धीरे— धीरे शरीर चालाकी सीख जाता है। तब शरीर बेजान हो जाता है; शरीर मुर्दा स्थान निर्मित करने लगता है, ताकि शरीर में जहां कहीं कील चुभे एक मृत बिंदु बन जाए। शरीर को अपना बचाव करना पड़ता है। तो तुम कीलों पर लेटे हुए आदमी को पाओगे एकदम बेहोश—तुम से ज्यादा बेहोश। यदि तुम लेटो ऐसी शय्या पर तो तुम पीड़ा से चीख पड़ोगे। तुम ज्यादा सजग हो; तुम ज्यादा संवेदनशील हो। वह तो आराम से लेट जाता है; वह तो सो भी जाता है उस पर। उसका शरीर ज्यादा पत्थर हो जाता है। जो असली बात है, सजगता, वह उसने खो दी है। अब ठीक उलटी बात हो गई है।

और ऐसा ही होता है धर्म की सारी प्रक्रियाओं के साथ. वे क्रियाकांड बन जाती हैं। मेरा एक ऐसे व्यक्ति से मिलना हुआ जो दस वर्ष से खड़ा ही है। वह सोता नहीं, वह बैठता नहीं, वह बस खड़ा है। हठयोग की बहुत पुरानी विधियों में से यह एक विधि है चेतना निर्मित करने की। क्योंकि शरीर सोना चाहेगा। शरीर तो कहेगा, 'मैं सोना चाहता हूं।' कितनी देर खड़े रह सकते हो तुम? कुछ घंटों बाद या कुछ दिनों बाद, तुम नींद का जबरदस्त आवेग अनुभव करोगे। उस आवेग पर काबू पाने के लिए उसका अतिक्रमण करने के लिए और सजग बने रहने के लिए इस विधि का उपयोग है।

तो मुझे यह व्यक्ति मिला। बहुत प्रसिद्ध है वह, हजारों लोग आते हैं उसे नमस्कार करने। लेकिन वे नहीं जानते कि वे क्या कर रहे हैं और किसके प्रति कर रहे हैं। वह आदमी पूरी तरह संवेदनशून्य हो चुका है। इतनी देर खड़ा रहा है वह कि उसके पांव करीब—करीब मुर्दा हो चुके हैं। वह उन्हें मोड़ नहीं सकता। वे ऐसे हो गए हैं जैसे कि हाथी—पांव के रोग में हो जाते हैं। पांव हाथी के पांव जैसे मोटे हो जाते हैं। उसके सारे शरीर का वजन पांवों में चला गया है। वह एक दुबला—पतला आदमी है। ऊपर

का हिस्सा पतला हो गया है और नीचे का हिस्सा बहुत मोटा और भारी हो गया है। वह विकृत हो गया है। उसका चेहरा कुरूप हो गया है।

तुम देख सकते हो कि भला उसने स्वयं को खूब सताया हों—लेकिन वह सजग नहीं हुआ है; बल्कि पीड़ा के प्रति संवेदनशून्य हो गया है, अभ्यस्त हो गया है, प्रभावशून्य हो गया है। अब पीड़ा उसे उद्‌विग्न नहीं करती। इसके द्‌वारा होश पाने की बजाए उसने होश खो दिया है।

तो ध्यान रहे, ये सब विधियां हैं. दृश्य और द्रष्टा के बीच भेद करना; सत्य और असत्य के बीच भेद करना—ये सब केवल विधियां हैं। लक्ष्य है सजगता।

'सत्य और असत्य के बीच भेद करने के सतत अभ्यास द्‌वारा अज्ञान का विसर्जन होता है।'

संबोधि की परम अवस्था उपलब्ध होती है सात चरणों में।

पतंजलि क्रमिक विकास में विश्वास करते हैं। वे कहते हैं, लक्ष्य तक सात चरणों में पहुंचा जाता है। मैं कहता हूं कि एक चरण में पहुंचा जाता है, लेकिन पतंजलि उसी एक चरण को सात हिस्सों में बांट देते हैं ताकि तुम्हारे लिए आसानी हो जाए, और कुछ भी नहीं। तुम एक छलांग में पार कर सकते हो छह फीट, सात फीट, या तुम उसी अंतराल को सात चरणों में पार कर सकते हो।

पतंजलि छलांग में विश्वास नहीं करते, क्योंकि वे जानते हैं कि तुम कमजोर हो; तुम छलांग लगा नहीं पाओगे। तुम्हें राजी किया जा सकता है—असल में फुसलाया जा सकता है—धीरे —धीरे छोटे कदम उठाने के लिए। तुम छोटे चरण उठा सकते हो, क्योंकि छोटे चरणों के साथ तुम आश्वस्त हो सकते हो कि कोई खतरा नहीं है। छलांग खतरनाक होती है, क्योंकि तुम नहीं जानते कि कहां पहुंचोगे तुम। एक छोटा कदम तुम देख सकते हो आस—पास और सुरक्षित अनुभव कर सकते हो धीरे —धीरे तुम कदम बढ़ा सकते हो; और तुम आश्वस्त हो कि यदि कुछ गड़बड़ हो जाती है तो तुम सदा पीछे लौट सकते हो, यह केवल छोटे से अंतराल की ही बात है। लेकिन छलांग वापस पीछे नहीं लगा सकते—यदि कुछ गड़बड़ हो जाए तो। छलांग एक आमूल परिवर्तन है, आत्यंतिक बदलाहट है। पतंजलि जब भी कुछ कहते हैं तो सदा तुम्हारा खयाल रखते हैं। अब—तत्क्षण—सजगता उपलब्ध करने का ढंग समझाने के तुरंत बाद ही वे कहते हैं, 'संबोधि की परम अवस्था उपलब्ध होती है सात चरणों में।' इसलिए चिंतित मत होना, भयभीत मत होना तुम धीरे —धीरे बढ़ सकते हो!

ये सात चरण क्या हैं? यह अंक 'सात' बहुत महत्वपूर्ण है। यह सब से ज्यादा महत्वपूर्ण अंक जान पड़ता है। बहुत मार्गों से और बहुत ढंगों से यह अंक बार—बार सामने आ जाता है। यदि तुम गुरजिएफ से पूछो, वह कहता है कि सात प्रकार के व्यक्ति होते हैं। वे सात प्रकार सात चरण हैं। यदि

तुम रहस्यवादी कब्बाला से या मिस्र के प्राचीन गढ अध्यात्मवादियों से पूछो, वे कहते हैं कि व्यक्ति के सात शरीर होते हैं—शरीरों की सात परतें होती हैं। शरीर की वे सात परतें सात चरण बन जाती हैं। यदि तुम योगियों से पूछो, वे कहते हैं, व्यक्ति में सात केंद्र होते हैं। वे सात केंद्र सात चरण बन जाते हैं। कुछ भी हो, सात बहुत महत्वपूर्ण अंक मालूम पड़ता है। और तुम्हारा सामना बार—बार इस सात के अंक से होगा, लेकिन आधारभूत अर्थ वही है।

दो संभावनाएं हैं : एक, तुम छलांग लगा देते हो, एक अचानक छलांग, जैसा कि झेन गुरु चाहते हैं कि तुम लगाओ—जैसी कि मैं सदा आशा रखता हूं कि तुम लगा पाओगे। छलांग में वे सातों चरण पूरे हो जाते हैं एक ही चरण में, लेकिन बहुत साहस की आवश्यकता होती है—न केवल साहस की वरन दुस्साहस की आवश्यकता होती है—क्योंकि तुम अज्ञात में उतर रहे होते हो। भेद बड़ा है तुम्हारे और उस घाटी के बीच जहां कि तुम छलांग के बाद पहुंचोगे। तुम उसकी कल्पना भी नहीं कर सकते। यह है ज्ञात से अज्ञात में छलांग। यह कोई क्रमिक विकास नहीं है, एक विस्फोट है।

दूसरी संभावना है इस अंतराल को सात में बांटने की—ताकि तुम धीरे —धीरे बढ सको, ताकि तुम्हारा चालाक मन, होशियार मन संतुष्ट हो सके। लोग मेरे पास आते हैं और मैं उनसे पूछता हूं 'क्या तुम बिना कुछ सोचे —विचारे संन्यास लेना चाहोगे, या कि तुम इस पर सोच—विचार करना चाहोगे?' बहुत कम ऐसा होता है कि कोई कहता है, 'मैं सोच—विचार से बिलकुल थक गया हूं।'

मनीषा ने कहा था ऐसा जब वह आई थी। पहले दिन जब वह आई मेरे पास तो मैंने पूछा, 'क्या तुम सोच—विचार कर संन्यास लेना चाहोगी? क्या तुम पहले इसके बारे में सोचना चाहोगी, पक्का करना चाहोगी? या कि बिलकुल अभी तैयार हो तुम?' उसने कहा, 'मैं बिलकुल थक गई हूं सोच—विचार से।'

तो कभी—कभार ऐसा होता है कि कोई कहता है कि एकदम थक गया हूं सोच—विचार से। करीब—करीब सभी के साथ ऐसा होता है कि वे कहते हैं, 'हम सोचेंगे।' और वे अवसर चूक जाते हैं, क्योंकि यदि तुम सोच—विचार करते हो, तो तुम पुराने ही बने रहते हो। यदि 'तुम' इस बारे में निर्णय लेते हो, तो यह बात छलांग न रही। यदि तुम्हारी बुद्धि पहले सुरक्षा अनुभव करती है, पूरी सुरक्षा का इंतजाम करती है, हर चीज समझने की कोशिश करती है—तो यह तुम्हारे पुराने व्यक्तित्व का ही सुधरा हुआ रूप है। तब तुम्हारा अतीत इसमें सम्मिलित है। और संन्यास का अर्थ होता है अतीत को पूरी तरह गिरा देना, वह तुम्हारे अतीत का संशोधित रूप नहीं है। वह एक समग्र क्रांति है; वह एक आमूल रूपांतरण है।

तो जो कहते हैं, 'हम सोचेंगे,' वे कुछ चूक जाते हैं। वे फिर आते हैं। पहले वे सोचते हैं इस विषय में कुछ दिन, फिर वे आते हैं, फिर वे संन्यास लेते हैं। लेकिन संभावना बहुत थी, बहुत कुछ उपलब्ध था। वे उसे चूक जाते हैं। यदि तुम छलांग लगा सकते हो, तो लगा दो छलांग। यदि तुम धीरे— धीरे बढ़ना चाहते हो तो तुम धीरे —धीरे बढ़ सकते हो, लेकिन तुम कुछ चूक जाओगे।

यह मैंने देखा है। जिन लोगों में आकस्मिक बुद्धत्व का साहस है, वे जिस शिखर को उपलब्ध होते हैं, उसे क्रमिक रूप से विकसित होने वाले कभी अनुभव नहीं कर पाते। वे भी पहुंच जाते हैं उस शिखर तक, लेकिन वे इतने चरण—दर—चरण पहुंचते हैं, वे सारे अंतराल को बांट देते हैं बहुत से हिस्सों में, कि वह बात कभी आनंद—उत्सव नहीं बनती। वे भी पहुंचते हैं उसी शिखर तक...।

तुम देखो। मीरा नाचती है। चैतन्य दीवाने हैं और नाचते हैं और गाते हैं। और योगी? नहीं, वे कभी नाचते नहीं, वे कभी गाते नहीं, क्योंकि वे इतने क्रमिक रूप में पहुंचते हैं कि वह बात कभी बहुत आनंद का अनुभव नहीं बनती, बिलकुल नहीं। वे इतने क्रमिक रूप से पहुंचते हैं! वे आनंद को उपलब्ध होते हैं हिस्सों में। वे इसे मात्राओं में पाते हैं—छोटी खुराकें, होम्योपैथी की खुराकें—कि दूसरी खुराक मिलने के पहले ही पहली खुराक आत्मसात हो जाती है। वे पचा गए होते हैं उसे। फिर मिलती है दूसरी खुराक—उसे भी तीसरी के पहले ही पचा लिया जाता है। वे नृत्य नहीं कर सकते। तुम योगी को नृत्य करते हुए नहीं पा सकते। वह चूक गया है कुछ। वह पहुंच तो गया है उसी शिखर तक, लेकिन मार्ग में कुछ खो गया है।

मैं तो सदा छलांग के ही पक्ष में हूं। क्योंकि जब तुम्हें पहुंचना ही है, तो क्यों न नृत्य करते हुए पहुंचो? तब तुम्हें पहुंचना ही है, तो क्यों न प्राणों में आनंद लिए पहुंचो? योगी दुकानदार मालूम पड़ते हैं—गणित बिठाते, हिसाबी—किताबी—प्रेमियों की भाति पागल नहीं। लेकिन रास्ते दोनों खुले हैं। और चुनाव तुम पर निर्भर करता है।

यह ऐसा है जैसे तुम्हारी लाटरी लग जाए—दस लाख रुपए की। और फिर तुम्हें एक रुपया दिया जाए, फिर और एक रुपया, फिर और एक रुपया; धीरे— धीरे तुम सब पा जाते हो, लेकिन तुम्हें एक साथ दस लाख रुपए कभी नहीं दिए जाते और तुम्हें कभी पता नहीं लगने दिया जाता कि तुम्हें दस लाख रुपए मिलेंगे। तुम्हें मिलेंगे दस लाख रुपए, लेकिन युग बीत जाएंगे—और तुम सदा भिखारी ही रहोगे : जेब में वही एक रुपया! तुम जब तक उस एक रुपए का उपयोग न कर लो, उसके पहले दूसरा न दिया जाएगा; जब तुम उसका उपयोग कर लो तब तीसरा दिया जाएगा।

अचानक बुद्धत्व का अपना एक सौंदर्य होता है, एक असीम सौंदर्य होता है—कि अचानक तुम्हें दे दिए गए दस लाख रुपए। तुम नृत्य कर सकते हो। लेकिन यदि तुम्हारा हृदय कमजोर है तो बेहतर है धीरे— धीरे बढ़ना।

मैंने सुना है, ऐसा हुआ : एक आदमी हमेशा ही लाटरी की टिकटें खरीदता था और जैसा कि होता है उसे कभी कोई इनाम नहीं मिला। वर्षों गुजर गए लेकिन यह बात एक यांत्रिक आदत बन गई थी। हर महीने वह अपनी तनख्वाह में से कुछ टिकटें खरीद लेता था। लेकिन एक दिन घटना घट गई। वह आफिस में था और पत्नी को खबर मिली कि उसकी मनोकामना पूरी हो गई है—दस लाख रुपए। वह

डर गई, क्योंकि वह गरीब आदमी था, कुल सौ रुपए महीना तनख्वाह मिलती थी। दस लाख रुपए तो बहुत बड़ी बात हो जाएगी। इतनी बड़ी बात हो जाएगी कि कहीं वह मर ही न जाए!

तो करें क्या? वह अपने एक पड़ोसी के यहां दौड़ी गई जो कि चर्च में पादरी था। वह एक समझदार व्यक्ति था, और कोई ज्यादा समझदार व्यक्ति उसके ध्यान में आया नहीं, तो वह उसके पास गई और उसने पादरी से कहा, 'आपको ही करना होगा कुछ। वे आफिस से आते ही होंगे, और अगर

इतने अचानक उन्हें पता चला दस लाख रुपयों का, तो यह निश्चित है कि वे बचेंगे नहीं। मैं उन्हें अच्छी तरह से जानती हूं। वे बहुत कंजूस हैं और उन्होंने सौ रुपए से ज्यादा कभी देखे भी नहीं हैं। वे पागल हो जाएंगे या मर जाएंगे, लेकिन कुछ न कुछ होकर रहेगा। आप आएं और उन्हें बचा लें।'

उस समझदार व्यक्ति ने कहा, 'मैं आ जाऊंगा। भयभीत मत होओ; मैं आता हूं।'

उसने योजना बनाई, जैसे कि सभी हिसाबी—किताबी लोग योजना बनाते हैं। वह आदमी घर आया तो वह पादरी वहा बैठा हुआ था। उसने कहा, 'सुनो, तुम्हारी लाटरी लग गई है। तुमने एक लाख की लाटरी जीत ली है।'

उसने सोचा था कि यह एक छोटी मात्रा होगी—उसने कुल राशि को दस हिस्सों में बांट दिया था। धीरे— धीरे वह कहेगा कि नहीं, एक लाख की नहीं, दो लाख की। जब वह देखेगा कि उसने झटका सह लिया है, तो वह कहेगा, तीन लाख की।

लेकिन उस आदमी ने कहा, 'एक लाख रुपए! क्या यह सच है? यदि यह सच है, तो मैं आधा तुम्हारे चर्च के लिए तुम्हें दे दूंगा।'

वह पादरी गिर पड़ा और मर गया। पचास हजार रुपए! वह भरोसा न कर सका इस बात पर। बहुत बड़ी थी बात।

तो तुम्हें चुनना है; चुनाव तुम्हारा है। यदि तुम अनुभव करते हो कि हृदय मजबूत है, तो आ जाओ मेरे साथ। यदि तुम अनुभव करते हो कि हृदय कमजोर है और संभावना है हृदय—गति रुकने की, तो पतंजलि के साथ आगे बढना। वे गणित से चलते हैं।

वे तुम्हें छोटी खुराकें देते हैं। लेकिन ध्यान रहे, कुछ चूक जाओगे तुम। तुम पहुंच जाओगे उसी अवस्था तक, अस्तित्व की, चैतन्य की उसी अवस्था तक—शांत, आनंदित। लेकिन उत्सव न होगा। तुम बैठ जाओगे बोधि—वृक्ष के नीचे—शांत, मौन; लेकिन तुम मीरा की भांति या चैतन्य की भांति नृत्य न कर पाओगे। और वह नृत्य अदभुत है। वह नृत्य घटित होता है अचानक उपलब्ध होने वालों को।

आज इतना ही।

प्रवचन 44 - पहेली : बुद्धत्व में छलांग की

प्रश्न सार:

1—बुद्धत्व यदि ऊर्ध्वगमन है, तो नीचे से ऊपर छलांग कैसे संभव है?

2—अचानक घटित होने वाले बुद्धत्व के लिए शिष्य को गुरु के पास वर्षों—वर्षों तक क्यों रहना पड़ता है?

3—बीज छलांग लगाकर कर फूल नहीं बन सकता, तो व्यक्ति एक छलांग में बुद्ध कैसे बन सकता है?

4—पतंजलि, लाओत्सु और रजनीश के उपदेशों का हम श्रोताओं से कैसा संबंध है?

5—यदि हम सभी बुद्ध है, तो हम अज्ञान और मुर्च्छा में क्यों गिरे जाते है?

6—मादक द्रव्यों से क्या कोई भीतर छलांग लगा सकता है?

7—आप क्रमिक मार्ग से संबुद्ध हुए अथवा छलांग से?

8—तत्काल बुद्धत्व और अप्रयास में विश्राम की आपकी बातें मुझे पागल बना रही है।

9—क्या यह मेरी कल्पना हो सकती है कि मुझे परम अनुभूति घटित हो चुकी है?

पहला प्रश्नः

आप कहते हैं कि बुद्‌धत्व की तत्काल उपलब्धि के लिए छलांग लगाई जा सकती है। क्या ऐसा संभव है? बुद्‌धत्व का अर्थ है ऊर्ध्वगमन है न? लेकिन छलांग तो केवल तभी लगाई जा सकती है जब हमें नीचे जाना हो जैसे कि कई मंजिलों वाली इमारत से नीचे जमीन पर छलांग लगाना। कैसे कोई जमीन से इमारत की छत पर छलांग लगा सकता है? किसी चीज पर चढ़ कर ही ऊपर जाना हो सकता है। कृपया समझाएं।

तुम पूरी बात ही चूक रहे हो, और तुम चूक रहे हो शाब्दिक प्रतीक के कारण। बुद्‌धत्व है, 'कहीं नहीं जाना'—न ऊपर जाना, न नीचे जाना। बुद्‌धत्व है वहीं होना जहां कि तुम हो—बिलकुल अभी, इसी क्षण। यह कहीं जाना नहीं है; यह होना है। बुद्‌धत्व में तुम कहीं जाते नहीं। बुद्‌ध जा नहीं रहे हैं, किसी एवरेस्ट पर चढ़ नहीं रहे हैं। तुम भीतर जाते हो; और भीतर का वह आयाम न तो ऊपर है, न नीचे। वह न तो ऊपर जाने से संबंधित है और न नीचे जाने से; ऊपर और नीचे तो बाहरी दिशाएं हैं। भीतर तुम बिलकुल वहीं होते हो जहां कि हो। बुद्‌धत्व कहीं जाने की बात नहीं, बल्कि होने की बात है—समग्र रूप से थिर होने की बात है। इसीलिए छलांग संभव है।

तुमने ठीक कहा। यदि यह ऊपर जाने की बात है, तो तुम कैसे छलांग लगा सकते हो? असल में, अगर यह नीचे जाना भी हो, तो एवरेस्ट से छलांग लगाना केवल मूढ़ता होगी। तुम मर जाओगे। नहीं, वह न तो नीचे जाना है और न ऊपर जाना है। तुम तो बस सारी दिशाओं से स्वयं को भीतर समेट लेते हो। धीरे— धीरे तुम थिर हो जाते हो भीतर।

अंग्रेजी शब्द 'मिस्टिक' के लिए ग्रीक शब्द, ग्रीक का मूल शब्द बहुत सुंदर है। ग्रीक मूल शब्द का अर्थ है : 'स्वयं में स्थिर होना।' तब तुम एक 'मिस्टिक' हो जाते हो, रहस्यदर्शी हो जाते हो—कही जाना नहीं, कोई गति नहीं। बिलकुल इसी क्षण अगर तुम किसी भी दिशा में नहीं जा रहे हो—नीचे, ऊपर; दाएं, बाएं; भविष्य, अतीत—कहीं नहीं जा रहे हो, तो तुम्हारी चेतना थिर होती है, कोई कंपन नहीं होता। उस क्षण में बुद्‌धत्व है। इसीलिए छलांग संभव है।

तुम पूना से कलकत्ता कैसे छलांग लगा सकते हो? यह असंभव है। लेकिन तुम भीतर छलांग लगा सकते हो, क्योंकि तुम वही हो। समय की जरूरत नहीं है, केवल समझ चाहिए। स्थगन की जरूरत नहीं है, कल की जरूरत नहीं है, केवल समझ की जरूरत है। तुम समझ लेते हो और घटना घट जाती है। तो सारा प्रयास इसीलिए जरूरी होता है क्योंकि समझ नहीं होती।

और किसी शाब्दिक प्रतीक को मत पकड़ लेना। शाब्दिक प्रतीक सदा एक संकेत होते हैं; तुम्हें उन्हें जोर से नहीं पकड़ लेना है।'छलांग' का अर्थ यहां छलांग नहीं है; 'ऊर्ध्वगमन' का अर्थ ऊपर जाना नहीं है, 'अधोगमन' का अर्थ नीचे जाना नहीं है। ये संकेत हैं; शब्दों को मत पकड़ो। सुगंध ले लो और फूल को भूल जाओ, वरना तो तुम मुझे गलत ही समझते रहोगे।

और ऐसा ही हुआ है बहुत बार, लाखों बार, सभी धार्मिक लोगों के साथ यही होता रहा है। क्योंकि वे प्रतीकात्मक संकेतों में बोलते हैं। बोलने का दूसरा कोई उपाय भी नहीं है। वे बोलते हैं प्रतीकों में, प्रतीक—कथाओं में। और फिर तुम प्रतीक—कथाओं को मूढ़ता की सीमा तक खींच सकते हो। यदि तुम प्रतीकों को खींचे जाओ, तो एक जगह आती है, जहां सारी बात खो जाती है और हर चीज एक मूढ़ता मालूम पड़ने लगती है।

इसीलिए अज्ञानियों के हाथ में सारे धर्म मूढ़ता बन जाते हैं। सारी तरकीब यही है कि तुम प्रतीकों को खींचे चले जाओ—एक जगह आ जाती है जहां कि वे फिर तर्कसंगत नहीं रहते, अर्थपूर्ण नहीं रहते। उदाहरण के लिए, जीसस कहते हैं, 'मेरे पिता जो ऊपर आकाश में हैं।' अब इस 'ऊपर' का अर्थ ऊपर नहीं है।'मेरे पिता' का अर्थ मेरे पिता से नहीं है, क्योंकि इसमें कोई 'मेरा' हो नहीं सकता।' जो ऊपर आकाश में हैं'—अब तुम बड़ी आसानी से पूरा अर्थ बिगाड़ सकते हो। जब ईसाई मित्र ही इसे बिगाड़ देते हैं, फिर विरोधी तो बिगाड़ेंगे ही। वे प्रार्थना करते हैं ऊपर देखते हुए। यह मूढ़ता है, क्योंकि वास्तव में अस्तित्व में न तो कुछ ऊपर है और न कुछ नीचे है। यदि तुम अस्तित्व को उसकी समग्रता में लो, तो ऊपर क्या और नीचे क्या? न कोई चीज ऊपर हो सकती है और न कोई चीज नीचे हो सकती है—ये सापेक्ष परिभाषाएं हैं यदि तुम 'पिता' शब्द को लो, तो मुश्किलें खड़ी हो जाती हैं। एक आर्यसमाजी—हिंदू धर्म के एक नए, कट्टर और जड़ संप्रदाय का व्यक्ति—मेरे पास आया और कहने लगा, 'मैंने आपको कई बार जीसस के बारे में बोलते सुना है। क्या आप ईसाई हैं?' मैंने कहा, 'एक तरह से, हूं।' निश्चित ही वह उलझन में पड़ गया। वह समझ नहीं सका—'एक तरह से' को। वह कहने लगा, 'मैं प्रमाणित कर सकता हूं कि आपके जीसस एकदम गलत हैं। वे कहते हैं, मेरे पिता आकाश में है—तो फिर मां कौन है?' अब इस तरह से बिगड़ सकते हैं शाब्दिक प्रतीकों के अर्थ —मां कौन है? बिना मां के पिता कैसे हो सकते हैं? बिलकुल ठीक है। बात बड़ी सीधी—साफ मालूम पडती है। तुम जीसस की बात का आसानी से खंडन कर सकते हो।

और फिर ईसाई भयभीत हैं, क्योंकि वे कहते हैं, 'ईश्वर पिता है', तो उन्हें स्पष्ट करना पड़ता है कि जीसस उसके इकलौते बेटे हैं, क्योंकि अगर हर कोई बेटा है तब तो सारा महत्व ही समाप्त हो गया। तो जीसस की विशिष्टता और विलक्षणता क्या रही! तो वे उसके इकलौते बेटे हैं!

अब चीजें बद से बदतर होती जाती हैं। तो फिर और दूसरे लोग कौन हैं? सभी दोगले हैं? सारा संसार? केवल जीसस ही इकलौते बेटे है—तो तुम कौन हो, तुम्हें क्या कहें? पोप हैं, ईसाई धर्म—प्रचारक हैं, और जो संसार के तमाम लोग हैं, उन्हें क्या कहें? तब तो सारी दुनिया नाजायज हुई, बिना बाप की हुई।

कोई नहीं जानता यदि तुम 'पिता' शब्द को लो, तो मुश्किलें खड़ी हो जाती हैं। एक आर्यसमाजी—हिंदू धर्म के एक नए, कट्टर और जड़ संप्रदाय का व्यक्ति—मेरे पास आया और कहने लगा, 'मैंने आपको कई बार जीसस के बारे में बोलते सुना है। क्या आप ईसाई हैं?' मैंने कहा, 'एक तरह से, हूं।' निश्चित ही वह उलझन में पड़ गया। वह समझ नहीं सका—'एक तरह से' को। वह कहने लगा, 'मैं प्रमाणित कर सकता हूं कि आपके जीसस एकदम गलत हैं। वे कहते हैं, मेरे पिता आकाश में है—तो फिर मां कौन है?' अब इस तरह से बिगड़ सकते हैं शाब्दिक प्रतीकों के अर्थ —मां कौन है? बिना मां के पिता कैसे हो सकते हैं? बिलकुल ठीक है। बात बड़ी सीधी—साफ मालूम पडती है। तुम जीसस की बात का आसानी से खंडन कर सकते हो।

और फिर ईसाई भयभीत हैं, क्योंकि वे कहते हैं, 'ईश्वर पिता है', तो उन्हें स्पष्ट करना पड़ता है कि जीसस उसके इकलौते बेटे हैं, क्योंकि अगर हर कोई बेटा है तब तो सारा महत्व ही समाप्त हो गया। तो जीसस की विशिष्टता और विलक्षणता क्या रही! तो वे उसके इकलौते बेटे हैं!

अब चीजें बद से बदतर होती जाती हैं। तो फिर और दूसरे लोग कौन हैं? सभी दोगले हैं? सारा संसार? केवल जीसस ही इकलौते बेटे है—तो तुम कौन हो, तुम्हें क्या कहें? पोप हैं, ईसाई धर्म—प्रचारक हैं, और जो संसार के तमाम लोग हैं, उन्हें क्या कहें? तब तो सारी दुनिया नाजायज हुई, बिना बाप की हुई। कोई नहीं जानता!

तुम प्रतीक शब्दों को खींच सकते हो। एक जगह आती है जब पूरा अर्थ ही खो जाता है। इतना ही नहीं, यह ऐसा मूढ़तापूर्ण चित्र खींच देता है कि कोई भी मजाक उड़ा देगा। इसलिए धर्म को केवल गहरी सहानुभूति में ही समझा जा सकता है। यदि तुम में सहानुभूति है तो तुम उसे समझोगे; यदि तुम में सहानुभूति नहीं है तो तुम उसे गलत ही समझ सकते हो—क्योंकि पूरी बात ही प्रतीक—कथाओं में है। प्रतीक—कथाओं को समझने के लिए भाषा की समझ ही काफी नहीं है, व्याकरण की समझ ही काफी नहीं है, क्योंकि प्रतीक कुछ ऐसी बात है जो भाषा और व्याकरण से परे है। यदि तुम बहुत सहानुभूतिपूर्वक समझो, केवल तभी एक संभावना है कि तुम अर्थ समझ सको।

प्रतीक—कथा कोई प्रमाण नहीं है। वह तो बस एक विधि है उसका संकेत देने के लिए जिसे बताया नहीं जा सकता—उन चीजों को दिखाने की एक कोशिश है जिन्हें कहा नहीं जा सकता। इसे हमेशा याद रखना, अन्यथा तुम अपनी ही चालाकी में फंस जाओगे।

दूसरा प्रश्न:

बुद्धत्व के अचानक घटित होने के लिए झेन साधकों को अपने गुरुओं के पास दस बीस या चालीस वर्षों तक क्यों रहना पड़ता है?

उनकी मूढ़ताओं के कारण। तुम क्षण भर में बुद्धत्व को उपलब्ध हो सकते हो; और तुम प्रतीक्षा कर सकते हो चालीस वर्षों तक। यह इस पर निर्भर करता है कि तुम कितनी मोटी बुद्धि के हो। तुम प्रतीक्षा कर सकते हो कई जन्मों तक, यह इस पर निर्भर करता है कि तुम अपने अज्ञान से कितना चिपके रहते हो। झेन गुरु जिम्मेवार नहीं है कि शिष्य को प्रतीक्षा करनी पड़ी चालीस वर्षों तक। शिष्य ही जिम्मेवार है। वह बहुत मंदबुद्धि व्यक्ति रहा होगा, जड़मति रहा होगा; उसकी बुद्धि में कोई चीज उतरती ही नहीं होगी। या बौद्धिक रूप से बहुत होशियार रहा होगा, इसलिए जो कुछ भी कहा जाए, वह उसके चारों ओर एक बौद्धिक समझ निर्मित कर लेता होगा—और उस बात को चूक जाता होगा, जो केवल हृदय से हृदय तक ही पहुंच सकती है। एक गहन आत्मीयता में, जहां कि हृदय से हृदय का मिलन होता है, समझ का फूल खिलता है।

तो वे लोग जिन्हें प्रतीक्षा करनी पड़ी चालीस वर्षों तक या तो बहुत मूढ़ रहे होंगे या बहुत ज्यादा ज्ञानी रहे होंगे। ये दोनों मूढ़ता के ही प्रकार हैं। वे या तो पंडित रहे होंगे या मूढ़ रहे होंगे; दोनों समान ही हैं। पंडित ज्यादा चूकते हैं मूढ़ों की अपेक्षा। कभी—कभी तो मूढ़ भी समझ सकता है, उसे समझ आ सकती है, क्योंकि वह सीधा—सरल होता है। उसका मन जटिल नहीं होता. यदि कोई बात उतरती है तो उतर ही जाती है। लेकिन ज्ञानी, पंडित, तार्किक, शास्त्रज्ञ, दार्शनिक—वहां इतनी जटिल पर्तें होती हैं कि उनमें उतरना करीब—करीब असंभव ही होता है। यदि तुम सहज—सरल हो तो बात घट सकती है बिलकुल अभी। यदि तुम सरल नहीं हो तो तुम्हें प्रतीक्षा करनी पड़ेगी; और तब तुम्हें देखना होगा कि कौन सी जटिलता है जो समस्या बन रही है।

जो कुछ भी घटता है उसके तुम्हीं जिम्मेवार हो। गुरु तो केवल एक मौजूदगी है। तुम उसके। सहभागी हो सकते हो। वह है सूर्य की भांति, एक आलोक. तुम आंखें खोल सकते हो और देख सकते हो। लेकिन यदि तुम आंखें न खोलो, तो प्रकाश तुम्हें विवश नहीं करेगा आंख खोलने के लिए। सूर्य भी ऐसा नहीं कर सकता। लेकिन सदा याद रहे, यदि तुम चूक रहे हो तो अपने ही कारण। या तो यह तुम्हारी होशियारी है या तुम्हारी मूढ़ता है। दोनों को छोड़ो। इसी तरह तो कोई शिष्य होता है—तुम्हारी मूढ़ता और तुम्हारा ज्ञान दोनों को छोड़ो। जब तुम दोनों को छोड़ देते हो, तो कोई बाधा नहीं रहती; तुम संवेदनशील होते हो, तुम खुले होते हो।

उस खुले होने में किसी भी क्षण बुद्धत्व संभव है।

तीसरा प्रश्न :

मैं विश्वास के साथ कह सकता हूं कि आप एक बीज से न कहेंगे कि अचानक छलांग लगाओ और फूल बन जाओ। लेकिन फिर मनुष्य से आप क्यों कहना चाहते हैं कि अचानक छलांग लगाओ और बुद्ध हो जाओ?

क्योंकि बीज बीज है और समझ नहीं सकता, और मनुष्य बीज नहीं है और समझ सकता है। लेकिन यदि तुम बीज हो, तो तुम नहीं सुनोगे; यदि तुम मनुष्य हो, तो तुम समझ जाओगे। यह तुम पर निर्भर करता है, क्योंकि हो सकता है तुम लगते होओ मनुष्य की भांति—लेकिन तुम शायद होओ बीज ही या चट्टान ही। जो दिखाई पड़ता है वही सत्य नहीं होता। तुम सभी लगते हो मनुष्य जैसे, लेकिन कभी—कभार ही कोई मनुष्य होता है।

यह शब्द 'मनुष्य' या अंग्रेजी शब्द 'मैन' सुंदर हैं। ये आते हैं संस्कृत मूल 'मनु' से। मनु का अर्थ होता है : 'वह जो समझ सकता है।' उसी मूल से ही आते हैं भारतीय शब्द—'मन', 'मनस्वी'—वह जो समझ सकता है।'मनुष्य' या 'मैन' सुंदर शब्द हैं। इनका अर्थ है : 'जो समझ सकता है', 'जिसमें क्षमता है समझने की।' इसलिए मैं बीज से नहीं कहता, ' अचानक छलांग लगाओ और फूल बन जाओ।' लेकिन मनुष्य से मैं कहता हूं। और यही है विडंबना, कि कई बार बीज भी इसे सुन सकता है और मनुष्य नहीं सुनेगा।

क्या तुमने लूथर बुरबांक के बारे में कुछ पढ़ा है? वह एक अमरीकी था और वृक्षों और पौधों का बहुत प्रेमी था। उसने यह चमत्कार किया. वह बातें करता था बीजों से; वह बातें करता था अपने पौधों से, और वह बातें करता रहा निरंतर—वही तो मैं कर रहा हूं —और एक घड़ी आई जब पौधे सुनने लगे उसकी। वह एक कैक्टस पर सात वर्ष तक काम करता रहा—निरंतर बात करता रहा कैक्टस से, कहता रहा, 'तुम्हें चिंता करने की जरूरत नहीं और सुरक्षा के लिए कुछ उपाय करने की जरूरत नहीं, क्योंकि तुम्हारे जीवन को कोई खतरा नहीं है।'

प्रत्येक कैक्टस में कांटे होते हैं उसकी सुरक्षा के लिए। वे ही उसका कवच होते हैं। रेगिस्तान में कैक्टस असुरक्षित होता है; रेगिस्तान में कैक्टस बड़ी गहरी असुरक्षा और खतरे में जीता है। रेगिस्तान में कैक्टस जीवित कैसे रह जाता है, यही एक चमत्कार है। और कोई—कोई कैक्टस तो दो हजार वर्ष तक जीवित रहते हैं, बड़े पुराने प्राचीन कैक्टस होते हैं। रेगिस्तान में पानी मिलता नहीं; जीवन एक गहन संघर्ष होता है। वे केवल ओस—कणों पर जीते हैं। इसीलिए उनके पत्ते नहीं होते; क्योंकि पत्ते

बहुत ज्यादा पानी वाष्पीभूत करते हैं। यह उनकी तरकीब है जिससे कि सूरज उनका पानी सोख न सके। पानी की इतनी कमी होती है। कैक्टस के पत्ते नहीं होते; केवल काटे होते हैं। और उनके अंतःकोष के भीतर गहरे में वे पानी इकट्ठा करते रहते हैं। महीनों तक भी अगर पानी न हो, तो वे जी लेंगे। वे वास्तव में पानी ही इकट्ठा करते हैं। उनके पास कोई अतिरिक्त चीज नहीं होती है—पत्ते नहीं, कुछ नहीं। और बिना काटो के कैक्टस की कोई जाति नहीं होती।

यह आदमी बुरबांक पागल था। उसके मित्र सोचने लगे, 'वह पागल हो गया है।' उसका सारा परिवार तक सोचने लगा, 'अब यह तो बहुत हुआ : हर रोज कैक्टस के पास बैठा हुआ है और बातें कर रहा है। उनसे कह रहा है, तुम्हें भयभीत होने की जरूरत नहीं; मैं तुम्हारा मित्र हूं। तुम अपने काटे हटा सकते हो। कोई असुरक्षा नहीं है—तुम सुख—चैन से रह रहे हो मित्र के साथ, प्रेमी के साथ। तुम रेगिस्तान में नहीं हो। और कोई तुम्हें नुकसान नहीं पहुंचाएगा।'

सात वर्ष बहुत लंबा समय है; लेकिन घटना घटी। सात वर्ष बाद एक नई शाखा, बिना काटो वाली शाखा उगी कैक्टस में। यह पहला मानवीय संपर्क था वृक्षों के साथ। यह एक अदभुत घटना है—केवल बात करने से ही ऐसा हो गया।

इसीलिए मैं बोले जाता हूं; तुम्हें आश्वस्त करता हूं कि तुम छलांग लगा सकते हो, भलीभांति जानते हुए कि सात वर्ष भी लग सकते हैं और सत्तर वर्ष भी! कौन जाने? तुम भी सोचने लग सकते हो मेरे बारे में : 'वह पागल हुआ है, रोज—रोज बातें किए जाता है, कोई सुनता नहीं।' लेकिन अगर बुरबांक को सफलता मिल सकती है बीजों के साथ, कैक्टस के साथ, पेड़ों के साथ, तो मुझे क्यों नहीं?

चौथा प्रश्न:

आपने कहा कि आप 'लाओन्द्व को' बोलते हैं और आप 'पतंजलि पर' बोलते हैं। क्या यह आप पर निर्भर है या हम पर या फिर क्या बात है?

यदि मैं अकेला होता, तुम न होते, तो मैं कभी पतंजलि पर न बोलता; क्योंकि वह बात ही बिलकुल निरर्थक होती। यदि केवल तुम्हीं होते और मैं नहीं होता, तो मैं निरंतर बोलता पतंजलि पर; क्योंकि तब लाओत्सु पर बोलना संभव न होता। लेकिन क्योंकि तुम भी हो और मैं भी हूं तो यह बात आधी—आधी है। स्थिति यह है कि अगर तुम मुझे लाओत्सु पर सुनने के लिए राजी हो, तो मैं बोलूंगा

पतंजलि पर। तुम्हें मुझे सुनना पड़ेगा लाओत्सु पर, तब मैं बोलूंगा पतंजलि पर; और क्योंकि तुम मुझे पतंजलि पर बोलते सुनना चाहते हो, तुम्हें मुझे सुनना होगा लाओत्सु पर।

तुम्हारा पूरा मन चाहता है क्रमिक गति में सोचना। यही मेरा मतलब है पतंजलि से। मैं पतंजलि के विषय में कुछ नहीं कह रहा हूं—गलत अर्थ मत लगा लेना। पतंजलि को सुनने का अर्थ है कि तुम क्रमिक रूप से चलना चाहते हो, धीरे— धीरे, एक—एक कदम। इसका अर्थ है कि तुम स्थगित करना चाहते हो, तैयार होना चाहते हो। पतंजलि का अर्थ है : स्थगित करो, तैयार होओ। याद रखना ये शब्द : पतंजलि और स्थगन, तैयारी। पतंजलि के साथ समय की संभावना है, कल संभव है, भविष्य संभव है। वे तुम से नहीं कह रहे हैं, 'एकदम अभी, बिलकुल अभी छलांग लगा दो।' वे बहुत तर्कसंगत हैं, वैज्ञानिक हैं, कम से चलते हैं—नासमझी की बात नहीं करते; समझ की बात करते हैं। तुम उन्हें आसानी से समझ सकते हो; वे वहीं से शुरू करते हैं जहां तुम हो।

लाओत्सु तो एकदम अतर्क्य हैं : कवि जैसे ज्यादा दिखते हैं और वैज्ञानिक जैसे कम; ऐसे ज्यादा मालूम पड़ते हैं कि तुम उनकी बातों का मजा ले सको, लेकिन जो वे कह रहे हैं, उस पर तुम कुछ कर नहीं सकते। कैसे कर सकते हो तुम? अंतर बहुत ज्यादा है।

मैं तुम से पतंजलि के विषय में बात करता हूं ताकि तुम धीरे— धीरे होश जगाओ, सजग हो जाओ; और मैं बात करता जाता हूं लाओत्सु की भी : कि अगर तुम सचमुच ही पतंजलि को समझ रहे हो तो तुम और ज्यादा तैयार हो जाओगे। पतंजलि तैयार करते हैं—फिर खयाल में ले लेना यह शब्द 'तैयारी'। पतंजलि तैयार करते हैं; वे एक तैयारी हैं। लेकिन यदि तुम पतंजलि को ही सुनते रहते हो, तो तुम तैयारी और तैयारी और तैयारी ही करते रहते हो, और वह घड़ी कभी नहीं आती जब तुम छलांग लगा दो। यह तो उस आदमी जैसी बात हुई जो हमेशा तैयारी करता रहता है, नक्शे और टाइम—टेबलों को पढ़ता रहता है, और यात्रा पर कभी नहीं जाता। असल में, वही उसका कुल काम हो जाता है, कुल शौक हो जाता है। वह सोचता रहता है जाने के बारे में; वह खरीद लाता है हिमालय से संबंधित पुस्तकें—नक्शे, गाइड, चित्रों वाली किताबें—वह जाकर देख आता है फिल्में, वह बातें करता है उन लोगों से जो हिमालय हो आए हैं और वह तैयारी करता है—वह कपड़े खरीदता है और यात्रा में काम आने वाली चीजें जुटाता है—लेकिन वह सदा तैयारी ही करता रहता है और मर जाता है। पतंजलि को सुनने में यह खतरा है : तुम्हें तैयारी की ही आदत पड़ सकती है।

कई लोग हैं—'कई' कहना भी ठीक नहीं, करीब—करीब सभी ही हैं—जिन्हें आदत पड़ गई है तैयारी की। वे यह सोच कर धन कमाते हैं कि किसी दिन वे आनंद मनाएंगे; और वे कभी आनंद नहीं मनाते। धीरे— धीरे वे भूल ही जाते हैं आनंद के बारे में और उन्हें धन कमाने की इतनी लत पड़ जाती है कि धन ही लक्ष्य बन जाता है। धन साधन है। और प्रारंभ में उन्हें भी यही खयाल था कि जब धन होगा तो वे आनंद मनाएगे—वे वह सब करेंगे जो वे हमेशा से करना चाहते थे और कर नहीं पाते थे क्योंकि धन नहीं था, जब धन होगा तो वे जी भर कर जीएंगे। लेकिन जब तक धन आता है, तब तक

वे कुशल हो जाते हैं कमाने में और भूल चुके होते हैं कि खर्च कैसे करना है; तब धन लक्ष्य हो जाता है। तब वे कमाते जाते हैं, कमाते जाते हैं, और एक दिन मर जाते हैं।

पतंजलि एक आदत बन सकते हैं—तब तुम तैयारी करते हो, तुम धन कमाते हो, विधियां सीखते हो, लेकिन तुम कभी तैयार नहीं हो पाते नृत्य के लिए और आनंद मनाने के लिए। इसीलिए मैं लाओत्सु पर बोलता रहता हूं, ताकि जब भी तुम अनुभव करो कि अब तुम तैयार हो, तो अचानक लाओत्सु हृदय में कहीं गहरे चोट करते हैं और तुम छलांग लगा देते हो।

जब मैं लाओत्सु पर बोलता हूं तो मैं कहता हूं, 'मैं लाओत्सु को बोलता हूं?, क्योंकि जहां से वे बोल रहे हैं, मैं वहीं पर खड़ा हूं। जो वे कह रहे हैं, मैं स्वयं वही कहना चाहूंगा। मुझे अभी तक ऐसी कोई भी बात नहीं मिली, जिस पर मैं कह सकूं कि मैं उनसे असहमत हूं। मैं पूरी तरह से सहमत हूं। पतंजलि से मैं सहमत हूं आशिक रूप से, सापेक्ष रूप से, पूरी तरह से नहीं, क्योंकि पतंजलि साधन हैं और लाओत्सु साध्य हैं।

यदि तुम साधनों को छोड़ सको और बिलकुल अभी छलांग लगा दो, तो सुंदर है। यदि तुम ऐसा न कर सको, तो थोड़ी तैयारी करना। वह तैयारी तुम्हें छलांग लगाने के लिए तैयार नहीं करती,

वह तैयारी तो केवल तुम्हें साहस जुटाने के लिए तैयार करती है। छलांग तो बिलकुल अभी संभव है, लेकिन तुम्हारे पास साहस नहीं है। यदि तुम्हारे पास साहस है : तो बिलकुल अभी—कोई जरूरत नहीं है तैयारी की, तुम हटा दे सकते हो पतंजलि को पूरी तरह। पतंजलि को हटाना ही होता है किसी न किसी दिन—यात्रा छोड़नी ही पड़ती है जब मंजिल मिल जाती है, साधनों को गिरा ही देना होता है जब साध्य मिल जाता है—लेकिन तुम लाओत्सु को कभी नहीं हटा सकते, वही है असली मंजिल। तो यह आधा— आधा समझौता है।

तुम चकित होओगे कि कई बार तुम भी लाओत्सु को बहुत पसंद करते हो, लेकिन सवाल पसंद करने का नहीं है। तुम रात देख सकते हो सितारों को, और तुम उन्हें पसंद कर सकते हो, लेकिन करो क्या? पहुंचो कैसे? बहुत दूर हैं वे! तुम्हें वहा से शुरू करना होता है जहां तुम हो। पतंजलि उपयोगी हैं। लाओत्सु बिलकुल ही अनुपयोगी हैं। उपयोग कर लो पतंजलि का, जिससे कि तुम उपयोग कर सको अनुपयोगी लाओत्सु का भी; वे ऐश्वर्य हैं, एक विश्राम। ही, लाओत्सु एक ऐश्वर्य हैं, एक लेट—गो। खयाल में ले लो ये बातें—वे ऐश्वर्य हैं, एक लेट—गो। यदि तुम से हो सके, तो सुंदर है। यदि तुम न कर सको, तो यह बस एक आकांक्षा निर्मित कर देती है और एक निराशा पकड़ती है : एक आकांक्षा, कि कितना अच्छा होता अगर तुम छलांग लगा सकते! एक जबरदस्त आकांक्षा पैदा हो जाती है। तुम उन्हें इतना निकट अनुभव करते हो अपनी आकांक्षा में, लेकिन तुम छलांग नहीं लगा पाते क्योंकि साहस नहीं है, और अचानक, वे इतनी दूर हो जाते हैं, सितारे की भांति। और एक निराशा तुम पर उतर आती है।

तो पतंजलि— और—लाओत्सु एक गहरा संतुलन है साधन और साध्य के बीच, राह और मंजिल के बीच।

पांचवां प्रश्न:

यदि हम सभी बुद्ध हैं तो हम अज्ञान और मूर्च्छा में क्यों गिर जाते हैं?

क्योंकि तुम बुद्ध हो। एक चट्टान कभी नहीं गिरती मूर्च्छा में। क्योंकि तुम बुद्ध हो इसलिए तुम गिर सकते हो। केवल होश वाला ही बेहोश हो सकता है। केवल जीवित व्यक्ति ही मर सकता है। केवल प्रेमपूर्ण व्यक्ति ही घृणा कर सकता है। और केवल करुणा ही क्रोध बन सकती है। इसलिए इसमें कोई विरोधाभास नहीं है। यह प्रश्न मन में उठता है. 'यदि हर कोई बुद्ध है, और हर कोई परमात्मा है, तो हम इतने अज्ञान में क्यों हैं?' क्योंकि तुम परमात्मा हो, इसीलिए तुम गिर सकते हो।

ऐसा हुआ. एक सूफी संत, जुन्नैद, एक जंगल से गुजर रहा था। उसने वहा एक आदमी को एक गहरी झील के एकदम किनारे पर टहलते हुए देखा। वह आदमी बिलकुल नशे में था, उसके हाथ में बोतल थी, और वह लड़खड़ा रहा था शराबी की तरह—और किसी भी क्षण वह झील में गिर सकता था, और खतरा हो सकता था। तो जुन्नैद उसके पास गया, उसका हाथ अपने हाथ में लिया और कहा, 'मित्र, क्या कर रहे हो तुम? यह खतरनाक है। यहां टहल रहे हो, इतनी शराब पीकर, तुम गिर सकते हो। और झील बहुत गहरी है, और यहां आस—पास कोई है नहीं। यदि तुम चीखो — चिल्लाओ भी, तो कोई सुनेगा नहीं।'

उस शराबी ने अपनी आंखें खोलीं और कहा, 'जुन्नैद, तुम शायद मुझे नहीं जानते होओगे, लेकिन मैं तुम्हें जानता हूं। जो तुम मुझे कह रहे हो, मैं भी तुम से वही कहना चाहूंगा : कि अगर मैं गिरता हूं तो ज्यादा से ज्यादा—हद से हद—यही होगा कि मेरे शरीर को चोट पहुंचेगी, लेकिन यदि तुम गिरते हो तो तुम्हारी पूरी चेतना......।'

जुन्नैद अपने शिष्यों के पास वापस आया और उसने कहा, 'आज मैंने एक गुरु पाया।'

और ठीक था वह; वह शराबी ठीक था, क्योंकि जुन्नैद शिखर पर था; चेतना के शिखर पर यात्रा कर रहा था—यदि वह गिरता है वहा से तो हर चीज बिखर जाएगी। जितना ज्यादा ऊंचे तुम उठ जाते हो, उतना ही ज्यादा खतरा होता है। वे लोग जो समतल जमीन पर चलते हैं, अगर वे गिर भी जाएं तो

क्या होगा? ज्यादा से ज्यादा कोई छोटी—मोटी हड्डी टूट जाएगी, तीर्था की भांति। तो वे अस्पताल जा सकते हैं और उनकी मरहम—पट्टी हो सकती है। लेकिन अगर तुम ऊंचाइयों पर चलते हो, तो खतरा बहुत ज्यादा होता है।

क्योंकि तुम बुद्ध हो, इसीलिए तुम गिर गए हो इतने अज्ञान में, अंधकार की इतनी गहरी घाटी में। तो इसे लेकर हताश मत हो जाना। यदि तुम घाटी में इतने गहरे उतर गए हो, तो यह बात केवल एक संकेत है कि फिर से तुम शिखरों पर पहुंच सकते हो। गिरने की संभावना शिखर पर होने की क्षमता के कारण ही घटती है। और अच्छा है यह—इसमें कुछ गलत नहीं है—क्योंकि यह एक अनुभव है। तुम्हारा बुद्धत्व और निखर जाएगा। जब तुम गुजर जाते हो इस अंधकार और पीड़ा से, और जब तुम वापस घर आते हो, तो तुम वही नहीं रहोगे जैसे कि तुम गिरने के पहले थे। तुम्हारी सजगता की गहनता में अब एक अलग ही गुणवत्ता होगी : तुम पीड़ा से गुजरे हो और तुमने उसे जीया है। तुम ज्यादा होशपूर्ण होओगे। तुम्हारी सजगता अब ज्यादा होशपूर्ण हो जाएगी—गहन, सघन, अकंप हो जाएगी।

ऐसा हुआ : एक बहुत समृद्ध व्यक्ति अपने धन से ऊब गया—जैसा कि हमेशा ही होता है। असल में यही कसौटी होनी चाहिए व्यक्ति के समृद्ध होने या न होने की। यदि व्यक्ति सचमुच ही समृद्ध है तो वह ऊब ही जाएगा धन से। यदि वह ऊबा नहीं है तो वह दरिद्र ही है, हो सकता है उसके पास धन हो, लेकिन वह समृद्ध नहीं—क्योंकि समृद्ध तो जानता ही है कि जो कुछ भी उसके पास है उसे जरा भी संतुष्ट नहीं कर सका है। एक गहरी बेचैनी, रिक्तता बनी ही है, बल्कि अब वह और भी घनी हो जाती है—क्योंकि आशा भी टूट जाती है। गरीब आदमी सदा आशा रख सकता है कि कल अच्छा होगा। समृद्ध कैसे आशा रख सकता है? कल भी यही होने वाला है। आशा मर जाती है। उसके पास वह सब है जो मिल सकता है, कल कुछ और ज्यादा नहीं जोड़ देगा। एण्ड्रू कार्नेगी जब मरा तो वह लाखों—करोड़ों डालर छोड़ कर मरा! कल और क्या बढ़ जाएगा? कुछ लाख और? लेकिन वह उन कुछ लाख डालरों का कोई उपयोग नहीं कर सकता, क्योंकि अभी भी वह नहीं जानता कि अपने धन का क्या करे। पहले ही उसके पास जरूरत से ज्यादा है।

असल में जितना ज्यादा धन तुम्हारे पास होता है, उतनी ही कम कीमत होती है धन की। धन की कीमत निर्भर करती है निर्धनता पर। गरीब व्यक्ति की जेब में पड़े एक रुपए की कीमत अमीर व्यक्ति की जेब में पड़े एक रुपए से बहुत ज्यादा होती है, क्योंकि गरीब व्यक्ति उसका उपयोग कर सकता है; अमीर व्यक्ति उसका उपयोग नहीं कर सकता है। जितना ज्यादा धन तुम्हारे पास होता है, उतना ही कम मूल्य होता है उसका। समृद्धि की एक सीमा होती है जहां कि धन का कोई मूल्य ही नहीं रह जाता, तुम्हारे पास हो कि न हो उससे कुछ अंतर नहीं पड़ता; तुम्हारा जीवन उसी तरह चलता रहता है।

समृद्ध होने का अर्थ है धन का मूल्य न रह जाना, तब धन मूल्यहीन हो जाता है। जो घर तुम चाहते थे, तुम्हारे पास है, जो कारें तुम चाहते थे, तुम्हारे पास हैं। तुम्हारे पास सब कुछ है जो तुम चाहते थे—अब धन कुछ नहीं, मात्र एक गिनती है। तुम गिनती बड़ी करते जा सकते हो तुम्हारे बैंक बैलेंस में—पर उपयोग कुछ नहीं है। तब अचानक ही आशा मर जाती है और अचानक ही व्यक्ति पाता है कि मैंने पाया कुछ भी नहीं है।

यह समृद्ध व्यक्ति, जिसकी बात मैं तुम से कह रहा था, सचमुच ही समृद्ध था। और वह इतना ऊब गया अपने धन से कि किसी प्रज्ञावान पुरुष की खोज में वह अपने महल से निकल पड़ा; क्योंकि वह वास्तव में दुखी था, सचमुच पीड़ित था। वह थोड़ा आनंदित होना चाहता था। वह बहुत से संतों के पास गया, लेकिन कुछ बात न बनी। उन्होंने बहुत समझाया, लेकिन कोई भी उसे आनंद न दे सका। और वह आग्रह करता—वह बहुत समझदार आदमी रहा होगा—वह इस बात पर जोर देता : 'मुझे आनंद का अनुभव करा दो, तो मैं विश्वास करूंगा।' वह जरूर वैज्ञानिक—चित्त का रहा होगा। वह कहता, 'तुम मुझे बातों से ही नहीं बहला सकते। मुझे आनंद का अनुभव कराओ—कहां है वह। अगर मैं उसे अनुभव कर लूं केवल तभी मैं तुम्हारा शिष्य हो सकता हूं।'

अब ऐसा गुरु खोज पाना बहुत कठिन है जो तुम्हें अनुभव करा सके। शिक्षक हैं, हजारों शिक्षक हैं, जो बातें कर सकते हैं आनंद के विषय में, लेकिन यदि तुम उनके चेहरों की ओर देखो तो तुम पाओगे कि वे तुम से ज्यादा दुखी हैं।

यह अमीर व्यक्ति एक गांव में पहुंचा और लोगों ने उससे कहा, 'ही, हमारे गांव में एक सूफी संत है। शायद वह कुछ मदद कर सके। वह थोड़ा पागल है, मनमौजी है, तो जरा होशियार रहना उससे। बस जरा होशियार रहना. क्योंकि कोई नहीं जानता कि वह क्या कर बैठेगा। लेकिन वह है अदभुत—तुम जाओ उसके पास।'

वह अमीर व्यक्ति गया; उसने उसे ढूंढा। वह झोपड़ी में नहीं था। लोगों ने कहा कि वह अभी— अभी जंगल की ओर चला गया है, तो वह भी वहां गया। सूफी संत बैठा हुआ था एक बड़े वृक्ष के नीचे, गहरे ध्यान में। अमीर व्यक्ति वहां गया, अपने घोड़े से नीचे उतरा। और वह आदमी सच में ही गहरे आनंद में जान पड़ता था, बहुत मौन, बहुत शांत। उसके आस—पास की हर चीज तक शांत थी—पेड, पक्षी, सभी कुछ। बहुत शांत वातावरण था; सांझ उतर रही थी।

वह अमीर सूफी संत के पैरों पर गिर पडा और बोला, 'मालिक, मैं आनंद पाना चाहता हूं। मेरे पास सब कुछ है—सिवाय आनंद के।' उस सूफी ने अपनी आंखें खोलीं और कहा, 'मैं तुम्हें आनंद दूंगा, तुम मुझे अपना धन दिखाओ।'

बिलकुल ठीक है बात। यदि तुम उससे आनंद का अनुभव कराने को कहते हो, तो तुम अपना धन दिखलाओ। उसके पास घोड़े की पीठ पर रखी थैली में हजारों हीरे थे, क्योंकि उसने पहले से ही

इंतजाम कर रखा था। वह सदा सोचता था, 'यदि किसी के पास आनंद है, तो वह अपनी कीमत मांगेगा; और कीमत चुकानी पड़ेगी। और जीवन में ऐसा कुछ नहीं है जिसे तुम बिना कीमत चुकाए पा सको।' इसलिए वह अपने साथ हीरे लाया था। वे हीरे लाखों रुपए के थे।

उसने दे दी थैली और कहा, 'देखो।'

तत्क्षण उस सूफी संत ने उसके हाथ से थैली ले ली और भागा। उस अमीर व्यक्ति को कुछ पल तो विश्वास ही न आया कि क्या हो गया। जब उसकी समझ में बात आई तो वह भी भागा रोता—चिल्लाता, 'मुझे लूट लिया!'

निश्चित ही, सूफी फकीर जानता था गांव के रास्ते, और वह तेज दौड़ सकता था। और वह फकीर था, मजबूत था, और वह अमीर आदमी अपने जीवन में कभी किसी के पीछे न भागा था। तो वह रो रहा था, चीख रहा था, चिल्ला रहा था... और सारा गांव इकट्ठा हो गया, और लोग कहने लगे, 'हमने तो तुमसे पहले ही कहा था : मत जाओ; वह पागल है। कोई नहीं जानता कि वह क्या करेगा।' और गांव भर में उत्तेजना फैल गई। वह अमीर आदमी बहुत परेशान हो गया। उसके जीवन भर की कमाई डूब गई—और मिला कुछ भी नहीं।

गांव में चारों ओर चक्कर लगा कर, सूफी फकीर उसी पेड़ू के नीचे लौट आया जहां कि घोड़ा अभी भी खड़ा हुआ था। उसने थैली घोड़े के पास रख दी, पेड़ू के नीचे बैठ गया, आंखें बंद कर लीं, और मौन हो गया। वह अमीर आया दौड़ता हुआ, बुरी तरह हाफता हुआ, पसीने से लथपथ, आंसू बह रहे थे—उसका सारा जीवन दाव पर लगा था। फिर अचानक उसने देखा कि थैली तो पडी है घोड़े के पास. उसने उसे उठा कर हृदय से लगा लिया, नाचने लगा, इतना खुश हो गया.!

सूफी फकीर ने अपनी आंखें खोलीं और कहा, 'देखो! क्या मैंने तुम्हें कुछ अनुभव दिया कि आनंद क्या होता है?'

तुम्हें दुख को जानना होता है, केवल तभी तुम जानते हो कि आनंद क्या है। तुम्हें जरूरत होती है एक पृष्ठभूमि की। प्रत्येक अनुभव एक अनुभव बनता है—पृष्ठभूमि के विपरीत में। बुद्ध को संसार में आना पड़ता है, यह अनुभव करने के लिए कि वे बुद्ध हैं। तुम्हें आना पड़ता है संसार में और पीड़ा भोगनी पड़ती है, यह जानने के लिए कि तुम कौन हो। इसके बिना कहीं कोई संभावना नहीं है।

तुम उसी अवस्था में हो, जिसमें कि वह अमीर था—दौड़ रहा सूफी संत के पीछे; हर चीज लुट चुकी; चीख रहा और रो रहा। मैं देख सकता हूं : हर चीज लुट चुकी है; तुम दौड़— भाग रहे हो संसार के इस गाव में। रास्ते मालूम नहीं, तुम लुट भी चुके हो। तुम एकदम अंतरतम तक दुखी हो, पीड़ित हो। दौड़ना, दौड़ना और दौड़ना. एक दिन तुम लौट आओगे वृक्ष की ओर; तुम फिर से पा लोगे थैली। तुम नाच उठोगे; तुम आनंदमग्न हो जाओगे। तुम कहोगे, 'अब मैं जानता हूं कि आनंद क्या है।'

संसार एक आवश्यक अनुभव है। वह एक पाठशाला है। तुम्हें गुजरना होता है उसमें से। स्वयं को जानने के पहले स्वयं को खोना होता है। और दूसरा कोई उपाय नहीं है; वही एकमात्र मार्ग है। इस विषय में कुछ नहीं किया जा सकता। और कोई उपाय नहीं है।

ही, इसीलिए। क्योंकि तुम बुद्ध हो, इसीलिए तुम दुख में हो। क्योंकि तुम बुद्ध हो, इसीलिए तुम बेहोशी में हो। तुम किसी भी दिन वापस घर आ सकते हो। यह तुम पर निर्भर है; तुम्हें निर्णय लेना है और वापस लौट आना है स्रोत तक।

ईसाइयत में एक शब्द को बहुत गलत समझा गया है और वह शब्द है 'रिपेंट', पश्चात्ताप। जो मूल हिब्रू शब्द है 'रिपेंट' के लिए उसका अर्थ 'रिटर्न' है, रिपेंट नहीं। वही है एकमात्र पश्चात्ताप, यदि तुम लौट आओ। लेकिन उसे रिपेंट की भांति लेने से सारी बात ही खतम हो जाती है। मुसलमानों के पास इसी तरह का एक शब्द है 'तोबा'। तोबा का अर्थ होता है : लौटना। उसका अर्थ है. 'स्रोत पर लौट आना।' तोबा भी पश्चात्ताप जैसा लगता है; उसका अर्थ भी पश्चात्ताप नहीं है। जैनों के पास भी एक शब्द है : वे उसे कहते हैं—प्रतिक्रमण; उसका भी अर्थ है लौटना।

कुल बात इतनी है कि उस स्रोत तक वापस कैसे लौट जाओ जहां से तुम आए हो। और यही है ध्यान की सारी प्रक्रिया : लौट आना, स्रोत तक वापस लौट आना और उसमें केंद्रित हो जाना।

तुम बुद्ध हो, तुम बुद्ध ही थे, तुम बुद्ध ही रहोगे—लेकिन बुद्धत्व की तीन अवस्थाएं होती हैं : पहली, जब कि तुमने उसे खोया नहीं होता—बुद्ध का बचपन; फिर तुम खोज करते हो उसकी—बुद्ध का यौवन; फिर पा लेते हो उसे—प्रौढ़ावस्था। प्रत्येक बच्चा बुद्ध है, प्रत्येक युवा खोजी है और प्रत्येक वृद्ध को—यदि चीजें ठीक—ठीक विकसित हों तो—पुन: बुद्धत्व को उपलब्ध हो जाना चाहिए। इसीलिए हम पूरब में वृद्ध व्यक्तियों का इतना ज्यादा सम्मान करते हैं और उन्हें इतनी प्रतिष्ठा देते हैं। यदि हर बात ठीक चले तो वृद्ध का अर्थ होता है वह जो स्रोत पर लौट आया।

बच्चे के पास एक निर्दोषता होती है, लेकिन उसे उसका होश नहीं होता, क्योंकि वह उसके पास जन्म से ही होती है। कैसे वह उसके प्रति सजग हो सकता है? उसे अनुभव चाहिए विपरीत का; केवल तभी वह सजग होगा। और तब वह फिर से उसमें लौट चलने की अभीप्सा से भर उठेगा : हर कोई फिर से बच्चा हो जाना चाहता है, उतना निर्दोष हो जाना चाहता है। वह अनुभव इतना अदभुत था, अपूर्व था।

लेकिन उस समय वह उतना अपूर्व न था! जरा पीछे लौटो अपने बचपन में। उसे केवल याद मत करो—उसे जीओ फिर से। वह एक पीड़ा थी। कोई बचपन सुखी नहीं होता : प्रत्येक बच्चा बड़ा हो जाना चाहता है—जवान, बड़ा, शक्तिशाली—प्रत्येक बच्चा। क्योंकि प्रत्येक बच्चा स्वयं को असहाय अनुभव करता है। वह नहीं जानता कि उसके पास क्या है। कैसे जान सकते हो तुम, यदि तुमने उसे खोया ही न हो? उसे निर्दोषता खोनी होगी. उसे चालाक संसार में जीना होगा; उसे नरक में गहरे उतरना होगा। वह साधु था, लेकिन वह साधुता कोई उपलब्धि न थी। वह केवल प्रकृति की भेंट थी।

और यदि तुम्हें प्रकृति द्वारा कोई चीज दी जाती है, तो तुम उसका मूल्य नहीं समझ सकते। इसीलिए तुम कोई कृतज्ञता अनुभव नहीं करते।

मैंने एक सूफी कहानी सुनी है। एक आदमी एक सूफी फकीर के पास आया और कहने लगा, 'मैं निराश हूं और मैं आत्महत्या कर लूंगा। मैं नदी में डूबने जा ही रहा था कि मैंने आपको किनारे पर बैठे हुए देखा। मैंने सोचा, क्यों न एक आखिरी कोशिश कर ली जाए! मैं जानना चाहता हूं कि आप क्या कहते हैं।'

उस सूफी फकीर ने कहा, 'तुम इतने निराश क्यों हो?'

वह आदमी कहने लगा, 'मेरे पास कुछ नहीं है, इसीलिए मैं निराश हूं —एक पैसा भी नहीं है मेरे पास। मैं संसार का सब से गरीब आदमी हूं और मैं बहुत दुखी हूं। और हर चीज में इतनी मुसीबत है—मैं थक गया हूं। बस मुझे आशीर्वाद दें कि मैं मर सकु क्योंकि मेरी किस्मत इतनी खराब है कि जो कुछ भी मैं करता हूं मैं हमेशा असफल होता हूं। मुझे डर है कि आत्महत्या में भी मैं असफल ही होऊंगा।'

सूफी फकीर ने कहा, 'तुम थोड़ा रुको। अगर तुम्हें आत्महत्या करनी ही है और तुम कहते हो कि तुम्हारे पास कुछ नहीं है, तो बस मुझे एक दिन का समय दो। कल मैं सब संभाल लूंगा।'

दूसरे दिन सुबह वह उसे सम्राट के पास ले गया। वह सम्राट शिष्य था सूफी फकीर का। वह गया महल में, बात की सम्राट से, वापस आया, उस आदमी को सम्राट के पास ले गया और उस आदमी से कहा, 'सम्राट तैयार है तुम्हारी दोनों आंखें खरीदने के लिए। और जो भी कीमत तुम मांगो, वह देगा।'

उस आदमी ने कहा, 'क्या कह रहे हैं आप? क्या मैं पागल हूं जो अपनी आंखें बेचूं?'

सूफी ने कहा, 'तुमने कहा कि तुम्हारे पास कुछ नहीं है। अब जो भी तुम मांगो, जितनी भी कीमत—लाख रुपए, दो लाख रुपए, दस लाख रुपए, करोड़ रुपए—राजा तैयार है आंखें खरीदने के लिए। और अभी कुछ घंटे पहले ही तुम कह रहे थे कि तुम्हारे पास कुछ नहीं है—और तुम आंखें बेचने के लिए तैयार नहीं? और तुम तो आत्महत्या करने जा रहे थे। और मैंने सम्राट को राजी कर लिया है तुम्हारे कान खरीदने के लिए भी, तुम्हारे दात भी, हाथ, पैर—सब खरीदने के लिए। तुम मांग लो कीमत। और हम हर चीज कांट लेंगे और पैसा तुम्हें दे देंगे। तुम संसार के सर्वाधिक धनी व्यक्ति हो जाओगे।'

उस आदमी ने कहा, 'मैं तो सोच रहा था कि आप संत—पुरुष हो—आप तो हत्यारे मालूम पड़ते हो!' वह आदमी भाग गया। उसने कहा, 'कौन जाने, अगर मैं महल जाऊं और राजा भी इसी की तरह पागल हो और वे लोग मेरी आंखें निकालने लगें......।' वह भाग गया, लेकिन पहली बार उसे लगा कि कितनी कीमत है आंखों की!

लेकिन तुम कभी अनुगृहीत नहीं हुए उनके लिए। तुमने कभी परमात्मा को धन्यवाद नहीं दिया कि तुम जीवित हो। यदि तुम अभी मरने वाले होओ और कोई तुम्हें एक दिन और दे दे, तो तुम कितनी कीमत चुकाने के लिए तैयार हो जाओगे? तुम सब कुछ देने के लिए तैयार हो जाओगे। लेकिन तुमने कभी धन्यवाद नहीं दिया, क्योंकि तुम्हें जीवन मुफ्त मिला है। तुमने उसे उपहार के रूप में पाया है, और कोई मूल्य नहीं समझता उपहारों का।

बचपन एक उपहार है। निर्दोषता होती है, लेकिन बच्चे को होश नहीं होता। उसे इसे खोना ही होगा। जब वह उसे खो देगा—अपने यौवन में वह भटकेगा; संसार के रंग—ढंग में खो जाएगा; बिलकुल खो जाएगा अंधेरों में, निर्दोष न रहेगा, गंदा हो जाएगा—तब वह आकांक्षा करेगा। तब वह जानेगा कि उसने क्या खो दिया है। और तब वह जाएगा चर्चों में और मंदिरों में और हिमालय की ओर, और तलाश करेगा गुरुओं की—और वह कुछ और नहीं मांग रहा है; वह केवल इतना ही मांग रहा है मेरी निर्दोषता मुझे वापस लौटा दो। और अगर चीजें ठीक —ठीक विकसित हों और व्यक्ति साहसी हो, तो अंत में, जब कि वह मरने के करीब होता है, वह फिर से उस निर्दोषता को उपलब्ध कर लेता है।

लेकिन जब एक वृद्‌ध व्यक्ति फिर से बच्चे जैसा निर्दोष हो जाता है तो बिलकुल ही अलग बात होती है। यही है संत की परिभाषा : एक वृद्‌ध व्यक्ति का फिर से बच्चा हो जाना, निर्दोष हो जाना। लेकिन उसकी निर्दोषता की एक अलग ही गुणवत्ता होती है, क्योंकि वह जानता है अब कि वह खो सकती है; और वह जानता है अब कि जब वह खो जाती है तो व्यक्ति बहुत भयंकर पीड़ा भोगता है। अब वह जानता है कि बिना इस निर्दोषता के हर चीज नरक बन जाती है। अब वह जानता है कि यही निर्दोषता ही एकमात्र आनंद की अवस्था है, एकमात्र मुक्ति है।

ऐसा ही घटता है तुम्हारी सजगता के साथ. तुम्हारे पास वह होती है, फिर तुम खो देते हो उसे, फिर तुम वापस पा लेते हो उसे। वर्तुल पूरा हो जाता है। इसीलिए जीसस कहते हैं, 'जब तक तुम बच्चे जैसे नहीं हो जाते, तुम मेरे प्रभु के राज्य में प्रवेश न कर पाओगे।'

वही है लौटना; वर्तुल पूरा हो जाता है। भूल जाओ 'रिपेंट' शब्द को, उसके स्थान पर लाओ 'रिटर्न' को, और ईसाइयत अपराध— भाव से मुक्त हो जाएगी। इस रिपेंट शब्द ने ही सारा दुख निर्मित कर दिया है। वापस लौटना सुंदर है; पश्चात्ताप एक कुरूप घटना है। और धर्म को तुम में कोई अपराध— भाव नहीं निर्मित करना चाहिए उसे साहस निर्मित करना चाहिए। अपराध— भाव निर्मित करता है भय। और घर लौट आने के लिए जिस एक चीज की जरूरत होती है वह है—साहस—निर्भयता।

छठवां प्रश्न :

क्या मादक द्रव्यों की सहायता से कोई अचानक छलांग लगा सकता है?

नहीं। वह मादक द्रव्य की छलांग होगी, तुम्हारी नहीं; और सवाल तुम्हारी छलांग का है, मादक द्रव्य की छलांग का नहीं। मादक द्रव्यों को बुद्धत्व की तलाश नहीं है; वे वैसे ही बिलकुल ठीक हैं जैसे वे हैं। यदि तुम मादक द्रव्य लेते हो, और तुम्हें कुछ होता है, तो वह वास्तव में उन मादक द्रव्यों को ही घट रहा होता है, तुमको नहीं। वह केवल शरीर के रसायन को ही घट रहा होता है, तुम्हारी चेतना को नहीं। यह एक स्वप्निल घटना होती है—एक कल्पना—जाल।

और कभी—कभी यह घटना सुंदर होती है—ध्यान रहे, कभी—कभी। कई बार तो यह नरक बन सकती है। यह निर्भर करता है। इसीलिए मैं कहता हूं कि मादक द्रव्य केवल तुम्हारे शरीर के रसायन को बदल सकता है, लेकिन यदि तुम्हारा मन नरक से गुजर रहा है, तो मन अब भी गुजरता रहेगा नरक से। अब नरक ज्यादा भयंकर होगा, बस इतना ही; क्योंकि अब रसायन अलग है। तुम जाओगे नरक ही, लेकिन अब तुम ज्यादा तेज चलोगे। मादक द्रव्य तुम्हें गति दे सकता है। तो मादक द्रव्यों को 'स्पीड' कहना ठीक ही है; वे केवल तेजी देते हैं और कुछ भी नहीं। यदि तुम सुंदर और अच्छा अनुभव कर रहे थे, तो तुम अच्छा अनुभव करोगे—और प्रगाढ़ता से। तो भी वे तुम्हें बदल नहीं सकते। जो कुछ तुम हो—तुम वही रहोगे।

और खतरा यह है कि तुम उनके द्वारा धोखे में पड़ सकते हो। और एक बार तुम धोखे में आ जाते हो और तुम सोच लेते हो कि 'यह आनंद की मस्ती है, यही तो है जिसकी जरूरत थी', तो तुम भटक जाते हो। तब तुम सोचोगे सदा उन्हीं सीमाओं में : कि मादक द्रव्य ले लो और अनुभव कर लो परमात्मा को!

तुम कुछ अनुभव नहीं कर रहे हो, क्योंकि परमात्मा अनुभव की बात ही नहीं है। वह है सभी अनुभवों की समाप्ति। जब सारे विषय मिट जाते है—अनुभव एक विषय है—और जब केवल स्वयं का शुद्ध होना मात्र बचता है, केवल चेतना बचती है—जानने को कुछ नहीं होता, केवल जानने वाला ही होता है—तो परमात्मा होता है। परमात्मा कोई विषय नहीं है; परमात्मा है विशुद्ध बोध। उसे कोई मादक द्रव्य तुम्हें नहीं दे सकता है।

सातवां प्रश्न :

क्या मेरा यह अनुमान ठीक है कि आपकी यात्रा क्रमिक बुद्धत्व की रही? जब बुद्धत्व घटित हुआ तो क्या आपने नृत्य किया?

मैं अभी भी नृत्य कर रहा हूं। यदि तुम्हारे पास दृष्टि है तो तुम देख सकते हो। यदि तुम्हारे पास दृष्टि नहीं है तो मैं क्या कर सकता हूं?

और बुद्धत्व क्रमिक नहीं होता; बुद्धत्व सदा अचानक ही होता है। तुम क्रमिक रूप से तैयार हो सकते हो, तुम अचानक तैयार हो सकते हो, लेकिन बुद्धत्व सदा अचानक ही होता है। वह घटता है क्षण में। ऐसा नहीं है कि कोई पचास प्रतिशत बुद्ध है, कि साठ प्रतिशत बुद्ध, कि सत्तर प्रतिशत बुद्ध—नहीं। अभी क्षण भर पहले कोई सौ प्रतिशत अबुद्ध था, और क्षण भर बाद वह सौ प्रतिशत बुद्ध हो जाता है। वह अचानक ही घटता है, अन्यथा तो डिग्रियां होतीं। कोई डिग्रियां नहीं होतीं।

वह मृत्यु की भांति है. मृत्यु क्षण में ही घटती है। तुम नहीं कह सकते कि कोई आदमी आधा मृत है। यदि आधा मृत लगता भी है तो भी वह जीवित है; वह केवल वैसा दिखता है। कोई आदमी बेहोश हो सकता है, कोमा में हो सकता है, लेकिन तब भी वह पूरा जीवित है, आधा मृत नहीं। या तो तुम मृत होते हो और या तुम जीवित होते हो। और कोई ढंग होता नहीं—या तो यह या वह। बुद्धत्व सदा अचानक ही होता है।

और तैयारी? यह बहुत ही सूक्ष्म बात है समझने की. तैयारी बुद्धत्व के लिए नहीं होती, तैयारी होती है तुम्हारे साहस के लिए। साहसी व्यक्ति तो इसे बिलकुल अभी उपलब्ध कर सकता है, कायर को वर्षों लगेंगे स्वयं को तैयार करने में। सारी समस्या भय की है। यदि भय गिर जाए, तो तुम मुक्त हो ही। यदि तुम अपने भय को पालते—पोसते रहते हो, तो तुम कभी मुक्त नहीं होओगे।

इसलिए अपने चित्त में इसे स्पष्ट कर लो कि बुद्धत्व के लिए कोई तैयारी नहीं चाहिए; सारी तैयारी केवल इसीलिए है क्योंकि तुम भयभीत हो। तो यह तुम पर निर्भर करता है। जब भी तुम निर्णय करो भय को गिरा देने का, यह घट सकता है।

जो पाना है वह तुमसे बाहर नहीं है; तुम पहले से ही अपने साथ उसे लिए हुए हो। यह बच्चे के जन्म जैसा ही है : एक स्त्री गर्भवती होती है—बच्चा होता ही है वहां, धड़क रहा, जीवंत, हाथ—पैर चला रहा—लेकिन यदि स्त्री बहुत ज्यादा भयभीत है, तो बच्चे के जन्म में बहुत समय लगेगा। यदि वह बहुत ज्यादा भयभीत है और तनाव में है तो जब बच्चा गर्भ से बाहर आना चाहेगा तो वह अपनी सारी यंत्र—संरचना भय से सिकोड़ लेगी और बच्चे को बाहर न आने देगी। बच्चे को बाहर आने के लिए एक शिथिल मार्ग चाहिए और स्त्री इतनी तनावपूर्ण है कि वह बच्चे को बाहर न आने देगी। और

बच्चा बाहर आना चाहता है, क्योंकि अब वह यदि गर्भ में रहा, तो मर जाएगा। तो बच्चा हर ढंग से प्रयास करेगा बाहर आने के लिए, और स्त्री तनावपूर्ण है; वहा एक संघर्ष पैदा हो जाता है। वह संघर्ष पीड़ा निर्मित कर देता है; वरना तो बच्चे का जन्म पीड़ा के साथ नहीं होना चाहिए। यह अनिवार्य नहीं है; उसकी कोई आवश्यकता नहीं है।

जरा भारत की पुरानी, प्राचीन जनजातियों को देखो। प्रसव इतनी आसानी से, इतने स्वाभाविक रूप से होता है कि उन लोगों ने कभी सुना ही नहीं है कि यह भी कोई पीड़ा की बात है। कोई स्त्री खेत में काम कर रही होती है और बच्चा पैदा हो जाता है—कोई भी नहीं होता उसकी देख— भाल करने के लिए; वह स्वयं ही अपनी देख— भाल कर लेगी। वह बच्चे को लिटा देगी वृक्ष के नीचे, अपना दिन भर का काम करेगी—घर वापस जाने की भी कोई जल्दी नहीं होती—फिर शाम को बच्चे को लेकर घर चली जाएगी। बड़ी सीधी बात, एकदम सहज, जैसा कि जानवरों में होता है—कोई समस्या नहीं होती। मां पैदा कर देती है समस्या। मां तनाव से भरी होती है, भयभीत होती है। वह तनाव और बच्चे का बाहर आने का प्रयास एक संघर्ष पैदा कर देता है, और तब इसमें समय लगता है।

बच्चा तो बाहर आने के लिए तैयार ही है। तुम सभी गर्भ का समय पूरा कर चुके हो। जैसा कि मैं जानता हूं हर किसी का नौवां महीना है—नौ महीने कब के पूरे हो गए हैं। अब कुल समस्या इतनी है कि कैसे थोड़े शिथिल हों, विश्रांत हों और बच्चे को बाहर आने दें और उसे जन्म दें।

लेकिन तुम तभी विश्रांत हो सकते हो यदि तुम भयभीत नहीं हो। स्वीकार करो, भयभीत मत होओ। स्वीकार करो जीवन को। वह मित्र है, शत्रु नहीं है। यह सारा अस्तित्व हमारा घर है; तुम कोई अजनबी नहीं हो यहां। भूल जाओ सब कि इस बारे में डार्विन क्या कहता है—जीवित बने रहने के लिए संघर्ष, विजय, प्रतिस्पर्धा। सब बकवास है। सुनो उन लोगों की जो कहते हैं कि यह हमारा घर है, क्योंकि वे ही ठीक हैं। इससे अन्यथा संभव नहीं है।

तुम जीवन से आए हो—जीवन तुम्हारे विरुद्ध कैसे हो सकता है? मां कैसे विरुद्ध हो सकती है बच्चे के? और तुम वापस लौट जाओगे उसी में। जैसे कि कोई लहर सागर से उठती है, सूर्य की किरणों में नाचती है, और फिर वापस सागर में गिर जाती है। सागर कैसे विरुद्ध हो सकता है लहर के? असल में लहर की सारी शक्ति सागर से मिला एक उपहार ही है. वह ऊंची उठती है तो ऐसा नहीं कि 'वह' उठती है, बल्कि सागर ही उठता है उसमें।

तुम चेतना के इस सागर में लहरों की भांति हो। स्वीकार करो इसे। अनुभव करो कि तुम अपने घर में हो। तुम कोई अजनबी नहीं हो यहां; तुम बहुत प्रिय हो अस्तित्व के। और फिर, अचानक ही, तुम साहस जुटा लेते हो, क्योंकि कोई भय नहीं रहता।

बुद्धत्व सदा अचानक घटता है। यदि तुम्हें क्रमिक रूप से बढ़ना पड़ता है तो अपने बंद, संदेहशील और भयभीत मन के कारण ही।

आठवां प्रश्न :

मुझे पागल बनाना आपको अच्छी तरह आता है। अब बुद्धत्व भी पर्याप्त न रहा। नहीं उसे अचानक ही होना है वरना हम चूक जाएंगे कुछ! यदि मुझे कभी ईश्वर मिला तो मैं उसे गोली मार दूंगा आप मुझ से संतुलन बनाए रखने की आशा कैसे करते हैं जब आप पहले तो जोर देते हैं बुद्धत्व को बिलकुल भूल जाने पर स्वाभाविक रहने पर और अगर कुछ करना ही है तो वह है धैर्य का अभ्यास और फिर अचानक मुझे एक चरण में ही सात चरण कूद जाने है— साहसी होना है और छलांग लगा देनी है? क्या यह सब इसीलिए है कि हम एक घोर निराशा में डूब जाएं?

अवश्य ही!

और मैं भी तुम से यही कहूंगा कि जब भी तुम्हारा ईश्वर से मिलना हो, तो उसे गोली मार देना, क्योंकि वही अंतिम अवरोध होगा। तुरंत उसे गोली मार देना, ताकि तुम अकेले ही बच रहो अपने अकेलेपन में, अन्यथा वही बन जाएगा एक संसार, एक अनुभव।

और तुम ठीक समझे, सारी बात है तुम्हें पागल कर देने की। इतने पागल हो जाओ कि तुम थक जाओ अपने पागलपन से और अचानक छलांग लगा दो उसके बाहर; वरना तो तुम कभी छलांग नहीं लगाओगे। यदि तुम अपने पागलपन में चैन से हो तो कैसे तुम बाहर आओगे उससे? तो मैं सारी स्थिति को इतनी निराशाजनक बना दूंगा, इतने गहनरूप से निराशाजनक, कि तुम अपने आवरण से बाहर आ जाओ—और तुम मुक्त हो।

अंतिम प्रश्न:

मैने परम शून्य केंद्र को अनुभव कर लिया है जहां से सारा अस्तित्व आता है और साथ ही उस आनंद को भी जिसकी आप बात करते हैं यदि मैं पूछूं........

यदि तुमने परम शून्य को अनुभव कर लिया है, तो पूछने की जरूरत ही क्या है? कोई 'यदि' नहीं होता, अगर तुमने अनुभव कर लिया होता है। अगर तुम पूछते हो तो शायद तुमने कल्पना कर ली है कि तुमने शून्य की अवस्था का अनुभव कर लिया है—क्योंकि शून्य की अवस्था से कोई प्रश्न नहीं उठते। उठ नहीं सकते, कोई संभावना नहीं है। कौन उठाएगा प्रश्न शून्य की अवस्था में? एक बार तुम उस शून्य को, उस रिक्तता को जान लेते हो, तो फिर कोई चीज नहीं उठती।

तुमने जरूर कल्पना कर ली होगी। और ऐसा होता है : इससे पहले कि कोई उस अवस्था को उपलब्ध होता है, वह बहुत बार कल्पना कर लेता है—अपनी आकांक्षा के कारण। निरंतर मुझे सुनते—सुनते तुम एक आकांक्षा बना लेते हो. कि कैसे बुद्धत्व को उपलब्ध हों, कैसे सारी पीड़ा से मुक्ति मिले। वह आकांक्षा स्वप्न निर्मित कर देगी। यदि आकांक्षा बहुत गहरी है, तो इतने जीवंत सपने निर्मित कर देगी कि वे वास्तविक मालूम पड़ेंगे। वे ज्यादा वास्तविक मालूम होंगे साधारण वास्तविकता से, और तब तुम समझोगे कि तुमने अनुभव किया। नहीं।

यदि शून्य का अनुभव होता है, तो सारे प्रश्न गिर जाते हैं—ऐसा नहीं है कि तुम उत्तर पा लेते हो। किसी प्रश्न का कभी कोई उत्तर नहीं मिलता। क्योंकि प्रश्न होते ही निरर्थक हैं। उनका उत्तर पाया नहीं जा सकता। सारे प्रश्न निरर्थक होते हैं। जब मैं ऐसा कहता हूं तो मेरा मतलब है : अगर कोई पूछे, 'लाल रंग की सुगंध कैसी होती है?' तो यह प्रश्न व्याकरण की दृष्टि से तो ठीक लगता है, लेकिन यह व्यर्थ है, क्योंकि लाल रंग या कोई भी रंग हो, उसका सुगंध से कोई संबंध नहीं है। अगर कोई पूछता है : 'लाल रंग की सुगंध कैसी होती है?' तो यह बात व्यर्थ है।

सारे प्रश्न निरर्थक हैं; इसलिए उन्हें हल करने की कोई जरूरत नहीं है। एक बार तुम मौन हो जाते हो, परिपूर्ण मौन, तो तुम अचानक समझ लेते हो सारे प्रश्नों की व्यर्थता को—और सारी दार्शनिक धारणाओं की व्यर्थता को, क्योंकि सभी दर्शन इस धारणा पर निर्भर करते हैं कि प्रश्न उत्तर दिए जाने जैसे हैं।

नहीं। तुम कल्पना कर सकते हो, जब तुम कल्पना कर लेते हो तब ऐसा ही होगा।

'मैंने परम शून्य केंद्र को अनुभव कर लिया है जहां से सारा अस्तित्व आता है, और साथ ही उस आनंद को भी जिसकी आप बात करते हैं। यदि मैं पूछूं कि बुद्धत्व में छलांग लगाने के लिए मैं क्या करूं...?'

लेकिन अब इसकी जरूरत क्या है? तुम कहते हो कि तुमने अनुभव कर लिया है शून्य केंद्र को। तुम कहते हो कि तुमने पा लिया है और अनुभव कर लिया है आनंद की अवस्था को। यही है बुद्धत्व। अब कोई भी छलांग इससे बाहर छलांग होगी। तो कृपा करके, छलांग मत लगाना। अब छलांग लगाना

खतरनाक होगा। तुम फिर से संसार में छलांग लगा दोगे। यह सांसारिक लोगों के लिए है जिन्हें मैं झकझोर रहा हूं—'बुद्धत्व में छलांग लगा दो'—बुद्धों के लिए नहीं, जिन्होंने कि पा लिया है। उन्हें छलांग नहीं लगानी है। उन्हें बचना है हर छलांग से और छलांग लगाने के हर प्रलोभन से, वरना तो वे वापस कूद जाएंगे संसार में, और झंझट फिर से खड़ी हो जाएगी।

ध्यान रहे, कल्पना के शिकार मत हो जाना। कल्पना बहुत चालें चल सकती है—केवल तुम्हारे साथ ही नहीं, वह हर किसी के साथ चालें चलती है। जो कुछ भी तुम चाहो, वह तुम्हें वही प्रदान कर सकती है।

ऐसा हुआ. मुल्ला नसरुद्दीन ने जहाज की नौकरी के लिए दरख्वास्त दी। उसका इंटरव्यू हुआ। जो आदमी इंटरव्यू लें रहा था, उसने पूछा, 'यदि तूफान आ जाए तो तुम क्या करोगे?'

उसने कहा, 'मैं लंगर डाल दूंगा।'

उस व्यक्ति ने कहा, ' और दूसरा तूफान आ जाए, पहले से भी तेज, तो तुम क्या करोगे?'

उसने कहा, 'मैं दूसरा लंगर डाल दूंगा।'

इसी तरह बातें बढ़ती गईं।

'दसवां तूफान।'

और नसरुद्दीन ने कहा, 'मैं एक और लंगर डाल दूंगा।'

उस व्यक्ति ने कहा, 'लेकिन इतने लंगर तुम ला कहा से रहे हो?'

उसने कहा, 'जहां से तुम तूफान ला रहे हो, वहीं से!'

आज इतना ही।

प्रवचन 45 - योग के आठ अंग

'योग—सूत्र'

(साधनपाद)

योगाड्गानुष्ठानात् अशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिरा विवेकख्याते:।। 28।।

योग के विभिन्न अंगों के अभ्यास द्वारा अशुद्धि के क्षय होने से आत्मिक प्रकाश का अविर्भाव होता है, जो कि सत्य का बोध बन जाता है।

यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोउष्टावाड्गानि।। 29।।

यम, नियम,आसन,प्राणायन, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि।

जिस प्रकाश को तुम खोज रहे हो वह तुम्हारे भीतर ही है। इसलिए खोज होगी भीतर की ओर। यह यात्रा किसी बाहरी मंजिल की नहीं है, यह अंतस की यात्रा है। तुम्हें अपने केंद्र पर पहुंचना है। जिसे तुम खोज रहे हो, वह पहले से ही तुम्हारे भीतर है। तुम्हें तो बस प्याज के छिलके उतारने हैं : पर्त दर पर्त अज्ञान है वहा। हीरा छिपा हुआ है कीचड़ में; हीरे को निर्मित नहीं करना है। हीरा तो मौजूद ही है—केवल कीचड़ की पर्तें हटा देनी हैं।

यह एकदम मूलभूत बात है समझ लेने की : खजाना पहले से ही मौजूद है। शायद तुम्हारे पास चाबी नहीं है। चाबी को खोजना है—खजाने को नहीं। यह पहली बात है, एकदम मूलभूत, क्योंकि सारी प्रक्रिया निर्भर करेगी इसी समझ पर। यदि खजाने को निर्मित करना हो, तब तो यह बड़ी लंबी प्रक्रिया होगी; और कोई निश्चित भी नहीं हो सकता कि इसे निर्मित किया भी जा सकता है या नहीं। लेकिन

केवल चाबी को खोज लेना है। खजाना तो मौजूद है, एकदम निकट ही है। अवरोधों की कुछ पर्तें हटा देनी हैं।

इसीलिए सत्य की खोज नकारात्मक है। यह कोई विधायक खोज नहीं है। तुम्हें कुछ जोड़ना नहीं है अपने में, बल्कि तुम्हें कुछ हटाना है। तुम्हें कुछ कांटना है स्वयं से। सत्य की खोज एक शल्य—क्रिया है। वह कोई औषधि—चिकित्सा नहीं है; वह शल्य—क्रिया है। कुछ जोड़ना नहीं है तुम में : बल्कि उलटे कुछ हटाना है तुम से, झाडू देना है।

इसीलिए उपनिषदों की विधि है. 'नेति—नेति।' नेति—नेति का अर्थ है : तब तक निषेध किए जाओ जब तक कि तुम निषेध करने वाले तक ही न पहुंच जाओ; तब तक निषेध किए जाओ जब तक निषेध करने की कोई संभावना ही न रह जाए, केवल तुम्हीं बचो—तुम तुम्हारे केंद्र में, तुम्हारी चेतना में जिसे कि हटाया ही नहीं जा सकता—क्योंकि कौन हटाएगा उसे? तो निषेध करते ही जाओ 'मैं न यह हूं और न वह हूं।' इसी तरह बढ़ते जाओ। यह भी नहीं, यह भी नहीं—नेति—नेति। फिर एक ऐसी जगह आ जाती है जब केवल तुम ही रह जाते हो—इनकार करने वाला; और इनकार करने को कुछ भी नहीं बचता, शल्य—क्रिया पूरी हो जाती है; तुम पहुंच जाते हो खजाने तक।

यदि इसे ठीक से समझ लो, तो यात्रा बोझिल नहीं रह जाती; यात्रा बड़ी सरल हो जाती है। तुम सरलता से बढ़ सकते हो मार्ग पर, हर पल भलीभांति जानते हुए कि खजाना भूल सकता है, लेकिन खो नहीं सकता है। तुम शायद भूल गए हो कि ठीक—ठीक कहां है वह, लेकिन वह है तुम्हारे भीतर ही। तुम पूरी तरह से आश्वस्त हो सकते हो; इस विषय में कोई अनिश्चितता नहीं है। असल में यदि तुम इसे खोना भी चाहो तो तुम इसे खो नहीं सकते, क्योंकि यह तुम्हारी निजता ही है। यह कोई तुमसे बाहर की बात नहीं; यह अंतर्निहित बात है।

लोग आते हैं मेरे पास और कहते हैं, 'हम परमात्मा को खोज रहे हैं।' मैं पूछता हूं उनसे, 'तुमने उसे खोया कहां है? क्यों खोज रहे हो तुम? क्या तुमने उसे कहीं खोया है गुम यदि तुमने उसे कहीं खोया है, तो बताओ मुझे कि कहां खोया है तुमने उसे, क्योंकि केवल वहीं तुम खोज पाओगे उसे।' वे कहते हैं, 'नहीं, हमने खोया नहीं है उसे।'

तो क्यों तुम खोज रहे हो? तब तो अपनी आंखें बंद करो और भीतर देखो। शायद इस खोज के कारण ही तुम चूक रहे हो उसे। शायद तुम खोज में बहुत व्यस्त हो; तुमने अपने भीतर देखा ही नहीं है कि सम्राटों का सम्राट तो पहले से ही वहां बैठा हुआ है, प्रतीक्षा कर रहा है कि तुम घर आ जाओ। और तुम ठहरे बड़े खाँजी, तो तुम जा रहे हो मक्का, मदीना, काशी और कैलाश! तुम एक महान खोजी हो। तुम भाग रहे हो संसार भर में, सिवाय एक जगह के—जहां कि तुम हो। खोजने वाला ही है मजिल—जब वह मौन और शांत हो जाता है।

कुछ नया नहीं पा लिया जाता, बस तुम समझ जाते हो कि बाहर देखने में ही सारी बात चूक रही थी। भीतर देखते हो, वह वहा मौजूद है। वह सदा से ही वहा मौजूद है, एक क्षण को भी कभी ऐसा नहीं होता जब कि वह नहीं था—और न ही ऐसा क्षण आगे कभी होगा—क्योंकि परमात्मा कहीं बाहर नहीं है, सत्य कहीं बाहर नहीं है तुमसे. वह तुम्हीं हो अपनी आत्यंतिक महिमा में, वह तुम्हीं हो अपनी परम विशुद्धता में। यदि तुम समझ लो इसे, तो पतंजलि के ये सूत्र बहुत आसान हो जाएंगे।

योग के विभिन अंगों के अभ्यास द्वारा अशुद्धि के क्षय होने से आत्मिक प्रकाश का आविर्भाव होता है जो कि सत्य का बोध बन जाता है।

वे नहीं कह रहे हैं कि कुछ निर्मित करना है; वे कह रहे हैं कि कुछ हटाना है। तुम कुछ ज्यादा ही हो अपनी स्व सत्ता से—यही है समस्या। तुमने अपने आस—पास बहुत कुछ इकट्ठा कर लिया है, हीरे पर बहुत कीचड़ जम गया है। कीचड़ को धो देना है। और अचानक, हीरा प्रकट हो जाता है।

'योग के विभिन्न अंगों के अभ्यास द्वारा अशुद्धि के क्षय होने से......।'

यह कोई शुद्धता या पावनता या दिव्यता को निर्मित करने की बात नहीं है, यह केवल अशुद्धि को हटाने की बात है। शुद्ध तो तुम हो ही। पावन तो तुम हो ही। तो पूरी बात ही बदल जाती है। तो बस कुछ चीजें कांट देनी हैं और गिरा देनी हैं; कुछ चीजें अलग कर देनी हैं।

गहरे में यही अर्थ है संन्यास का, त्याग का। यह घर को छोड़ देना नहीं है, परिवार को छोड़ देना नहीं है, बच्चों को छोड़ देना नहीं है—वह तो बहुत कठोर मालूम पड़ता है। और करुणावान व्यक्ति ऐसा कैसे कर सकता है? तो पत्नी को नहीं छोड़ देना है, क्योंकि वह कोई समस्या नहीं है। पत्नी परमात्मा के मार्ग में बाधा नहीं है; न तो बच्चे बाधा हैं और न घर। नहीं, यदि तुम उन्हें छोड़ देते हो तो तुम समझे ही नहीं। कुछ और छोड़ना है, जिसे तुम अपने भीतर इकट्ठा करते रहे हो।

यदि तुम घर छोडना चाहते हो तो असली घर छोड़ना, जो शरीर है, जिसमें तुम रहते हो और निवास करते हो। और छोड़ने से मेरा यह अर्थ नहीं है कि जाओ और आत्महत्या कर लो, क्योंकि वह तो कोई छोड़ना न होगा। इतना ही जान लेना कि तुम शरीर नहीं हो, पर्याप्त है। शरीर के प्रति कठोर होने की कोई जरूरत नहीं है। तुम शरीर नहीं हो, लेकिन शरीर भी तो परमात्मा का ही है। तुम नहीं हो शरीर, लेकिन शरीर का भी अपना जीवन है, वह भी हिस्सा है जीवन का, वह भी अंग है इस समग्रता का। तो कठोर मत होओ उसके प्रति, हिंसक मत होओ उसके प्रति। स्व—पीड़क मत होओ।

धार्मिक व्यक्ति करीब—करीब सदा ही स्व—पीड़क हो जाते हैं। या वे पहले से ही होते हैं—धर्म एक आड़ू बन जाता है और वे स्वयं को सताना शुरू कर देते हैं। स्व—पीड़क मत बनो। दो तरह के सताने

वाले और हिंसक लोग होते हैं : एक तो होते हैं सैडिस्ट, पर—पीड़क, जो दूसरों को सताते हैं— राजनीतिज्ञ, एडोल्फ हिटलर आदि; और फिर होते हैं स्व—पीड़क—तथाकथित धार्मिक व्यक्ति, संत— महात्मा, जो सताते हैं स्वयं को—वे मैसोचिस्ट होते हैं। दोनों एक ही हैं. हिंसा वही है। चाहे तुम किसी दूसरे के शरीर को सताओ या अपने शरीर को, उससे कुछ फर्क नहीं पड़ता—तुम हिंसा तो कर ही रहे हो।

त्याग कोई अपने को सताना नहीं है। यदि वह अपने को सताना हो जाता है तो वह सिर के बल खड़ी राजनीति ही है। शायद तुम इतने कायर हो कि तुम दूसरों को नहीं सता सकते। तथाकथित सौ धार्मिक व्यक्तियों में से निन्यानबे तो स्व—पीड़क ही होते हैं, कायर होते हैं। वे दूसरों को सताना चाहते थे, लेकिन भय था और खतरा था, और वे वैसा न कर सके। तो उन्होंने बड़ा निर्दोष, असुरक्षित, अवश शिकार खोज लिया. उनका अपना ही शरीर। और वे लाखों ढंग से उसे सताते हैं।

नहीं, त्याग का तो अर्थ है जानना; त्याग का तो अर्थ है सजगता, त्याग का अर्थ है साक्षात्कार—इस तथ्य का साक्षात्कार कि तुम शरीर नहीं हो। तो खत्म हो जाती है बात। तुम रहते हो उसमें भली— भांति जानते हुए कि तुम वह नहीं हो। तादात्म्य न हो, तो शरीर सुंदर है। और अस्तित्व के बड़े से बड़े रहस्यों में एक है। यही है वह मंदिर जहां सम्राटों का सम्राट छिपा है।

जब तुम समझ लेते हो कि त्याग क्या है, तब तुम समझ लेते हो कि यह नेति—नेति है। तुम कहते हो, 'मैं शरीर नहीं हूं क्योंकि मैं सजग हूं शरीर के प्रति; वह सजगता ही मुझे पृथक और भिन्न बना देती है।' और गहरे उतरो, प्याज के छिलकों को छीलते जाओ : 'मैं विचार नहीं हूं क्योंकि वे तो आते हैं और चले जाते हैं, लेकिन मैं रहता हूं। मैं भावनाएं नहीं हूं.....।' वे आती हैं, और कई बार तो बड़ी शक्तिशाली होती हैं, और तुम उनमें स्वयं को पूरी तरह भूल जाते हो, लेकिन वे भी चली जाती हैं। एक समय था वे नहीं थीं, तुम थे, एक समय था वे थीं, और तुम ढंक गए थे उनमें; अब फिर ऐसा समय है जब वे जा चुकी हैं और तुम बैठे हुए हो वहीं। तुम वे भावनाएं नहीं हो सकते। तुम अलग हो।

छीलते जाओ प्याज को : नहीं, शरीर नहीं हो तुम; विचार नहीं हो तुम; भाव नहीं हो तुम। और यदि तुम जान लेते हो कि तुम इन पर्तों में से कुछ भी नहीं हो, तो तुम्हारा अहंकार बिलकुल तिरोहित हो जाता है, पीछे कोई निशान भी नहीं छूटता—क्योंकि तुम्हारा अहंकार इन तीन पर्तों के साथ तादात्म्य के सिवाय कुछ भी नहीं है। फिर तुम होते हो, लेकिन तुम 'मैं' नहीं कह सकते। यह शब्द अर्थ खो देता है। अहंकार नहीं रहा; तुम घर लौट आए।

यही संन्यास का अर्थ है : उस सब को इनकार कर देना जो कि तुम नहीं हो, लेकिन जिसके साथ तादात्म्य बनाए हुए हो। यही है शल्य—क्रिया। यही है कांटना।

'योग के विभिन्न अंगों के अभ्यास द्वारा अशुद्धि के क्षय होने से..।'

और यही है अशुद्धि : जो तुम नहीं हो, वही अपने को मान लेना अशुद्धि है। मेरी बात का गलत अर्थ मत लगा लेना, क्योंकि संभावना सदा यही है कि तुम इसे गलत समझ लो कि शरीर अशुद्धि है। मैं यह नहीं कह रहा हूं। तुम्हारे पास एक बर्तन में शुद्ध पानी है और दूसरे में शुद्ध दूध है। दोनों को मिला दो : अब पानी मिला दूध दुगना शुद्ध नहीं हो जाता। दोनों शुद्ध थे : पानी शुद्ध था, एकदम गंगा का पानी, और दूध शुद्ध था। अब तुम दो शुद्धताएं मिलाते हो और एक अशुद्धता पैदा हो जाती है। ऐसा नहीं होता कि शुद्धता दोहरी हो गई। क्या हुआ? तुम पानी और दूध के इस मिश्रण को अशुद्ध क्यों कहते हो?

अशुद्धता का अर्थ है किसी विजातीय, बाहरी तत्व का प्रवेश, उसका प्रवेश जो कि इससे संबंध नहीं रखता, जो इसके लिए स्वाभाविक नहीं, जो आरोपित है, जिसने इसके क्षेत्र में अनुचित प्रवेश किया है। केवल ऐसा ही नहीं है कि दूध अशुद्ध हो गया है, पानी भी अशुद्ध हो गया है। दो शुद्धताएं मिलती हैं और दोनों अशुद्ध हो जाती हैं।

तो जब मैं कहता हूं अशुद्धता छोड़ो, तो मेरा यह अर्थ नहीं है कि तुम्हारा शरीर अशुद्ध है, मेरा यह अर्थ नहीं है कि तुम्हारा मन अशुद्ध है, मेरा यह भी अर्थ नहीं है कि तुम्हारे भाव अशुद्ध हैं। कुछ अशुद्ध नहीं है—लेकिन जब तुम तादात्म्य कर लेते हो, तो उस तादात्म्य में अशुद्धि है। हर चीज शुद्ध है। तुम्हारा शरीर शुद्ध है यदि वह अपने से ही क्रियाशील हो और तुम उसमें कोई हस्तक्षेप न करो। तुम्हारी चेतना शुद्ध है यदि वह अपने से ही गतिशील हो और शरीर कोई दखल न दे। यदि तुम अतादात्म्य की भाव—दशा में जीते हो तो तुम शुद्ध हो। हर चीज शुद्ध है। मैं शरीर की निंदा नहीं कर रहा हूं। मैं कभी निंदा नहीं करता किसी चीज की। इसे सदा स्मरण रखो. मैं कोई निंदा करने वाला व्यक्ति नहीं हूं। हर चीज सुंदर है जैसी वह है। लेकिन तादात्म्य अशुद्धि निर्मित कर देता है।

जब तुम सोचने लगते हो कि तुम शरीर हो, तो तुमने हस्तक्षेप किया शरीर में। और जब तुम हस्तक्षेप करते हो शरीर में, तो शरीर तुरंत प्रतिक्रिया करता है और अनुचित हस्तक्षेप करता है तुम में। इस तरह अशुद्धि प्रवेश करती है।

पतंजलि कहते हैं, 'योग के विभिन्न अंगों के अभ्यास द्वारा अशुद्धि के क्षय होने से...।'

एकरूपता के मिटने से, तादात्म्य के मिटने से, उस गड्ड—मड्ड अवस्था के मिटने से जिसमें कि तुम पड़े हुए हो—एक अराजकता, जहां हर चीज कुछ और ही चीज बन गई है। कोई चीज स्पष्ट नहीं है। कोई केंद्र अपने से गतिमान नहीं है। तुम एक भीड़ हो गए हो। हर चीज हस्तक्षेप कर रही है एक—दूसरे के स्वभाव में। यही है अशुद्धता।

'......अशुद्धि के क्षय होने से आत्मिक प्रकाश का आविर्भाव होता है।'

और जब अशुद्धि मिट जाती है, तो अचानक प्रकाश का उदय होता है। वह कहीं बाहर से नहीं आता; वह तुम्हारी अंतरतम सत्ता ही है अपनी शुद्धता में, अपनी निर्दोषता में, अपने कुंआरेपन में। एक आलोक का तुम में आविर्भाव होता है। हर चीज स्पष्ट हो जाती है : उलझाव भरी भीड़ खो जाती

है; बोध की स्पष्टता होती है। अब तुम हर चीज को वैसा ही देखते हो जैसी कि वह है : कहीं कोई प्रक्षेपण नहीं होते, कहीं कोई कल्पना नहीं होती, कहीं कोई विकृति नहीं होती सत्य की। तुम चीजों को वैसी ही देखते हो जैसी कि वे हैं। तुम्हारी आंखें निर्मल होती हैं और तुम्हारा अंतस अस्तित्व मौन होता है। अब तुम्हारे भीतर कुछ नहीं होता, अत: तुम प्रक्षेपण नहीं कर सकते। तुम शांत—मौन द्रष्टा हो जाते हो, एक साक्षी—और वही है स्व—सत्ता की शुद्धता।

'... आत्मिक प्रकाश का आविर्भाव होता है, जो कि सत्य का बोध बन जाता है।'

फिर आते हैं योग के आठ चरण। बहुत धीरे— धीरे मेरी बात को समझना, क्योंकि यह पतंजलि की प्रमुख देशना है

यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टावङ्गानि।

योग के आठ अंग हैं : यम नियम आसन प्राणायाम प्रत्याहार धारणा ध्यान और समाधि।

योग के आठ चरण। यह है योग का संपूर्ण विज्ञान एक वाक्य में, एक बीज में। बहुत सी बातों की ओर संकेत है। पहले योग के प्रत्येक चरण का ठीक—ठीक अर्थ समझ लें। और खयाल रहे, पतंजलि उन्हें चरण और अंग दोनों ही कहते हैं। वे दोनों ही हैं। वे चरण हैं क्योंकि एक चला आता है दूसरे के पीछे; विकास का एक अनुक्रम है। लेकिन वे चरण ही नहीं हैं, वे योग की देह के अंग भी हैं। उनका एक आंतरिक जुड़ाव है, उनका एक जीवंत अंतर्संबंध है, यही है अंग का अर्थ।

उदाहरण के लिए मेरे हाथ, मेरे पैर, मेरा हृदय—वे अलग— अलग काम नहीं करते। वे एक—दूसरे से अलग नहीं हैं, वे जुड़े हुए हैं। यदि हृदय रुक जाए तो फिर हाथ नहीं चलेगा। हर चीज जुड़ी हुई है। वे सीढ़ी के सोपानों की भांति नहीं हैं, क्योंकि सीढ़ी का तो हर डंडा अलग होता है। यदि एक डंडा टूट जाए तो पूरी सीढ़ी नहीं टूट जाती। इसलिए पतंजलि कहते हैं कि वे चरण हैं, क्योंकि उनका एक सुनिश्चित विकास है—लेकिन वे अंग भी हैं, शरीर के जीवंत अंग हैं। तुम उन में से किसी एक को छोड़ नहीं सकते हो। सोपान छोड़े जा सकते हैं; अंग नहीं छोड़े जा सकते। तुम दो चरण कूद सकते हो एक ही छलांग में, तुम एक चरण छोड़ सकते हो; लेकिन अंग नहीं छोड़े जा सकते हैं, वे कोई यांत्रिक

हिस्से नहीं हैं। तुम उन्हें हटा नहीं सकते। वे तुम्हें निर्मित करते हैं। वे समग्र के साथ संबंधित हैं, वे पृथक नहीं हैं। समग्रता उनके द्वारा एक इकाई की भांति काम करती है।

तो योग के ये आठ अंग, चरण और अंग दोनों हैं। चरण हैं इस अर्थ में कि प्रत्येक अनुगामी है दूसरे का, और वे एक गहन संबद्धता में जुड़े हुए हैं। दूसरा पहले के पूर्व नहीं आ सकता—पहले को पहला होना है और दूसरे को दूसरा होना है। और आठवां चरण आठवां ही होगा, वह चौथा नहीं हो सकता है, वह पहला नहीं हो सकता है। तो वे चरण भी हैं और जीवंत इकाई भी हैं।

'यम' का अर्थ अंग्रेजी में होता है सेल्फ—रेस्ट्रेंट। अंग्रेजी में शब्द थोड़ा अलग हो जाता है। असल में थोड़ा अलग नहीं, 'यम' का सारा अर्थ ही खो जाता है। क्योंकि सेल्फ—रेस्ट्रेंट निषेध जैसा, दमन जैसा मालूम पड़ता है। और ये दो शब्द दमन और निषेध, फ्रायड के बाद बड़े भद्दे शब्द हो गए हैं, कुरूप हो गए हैं। यम दमन नहीं है। उन दिनों जब पतंजलि ने 'यम' शब्द का प्रयोग किया, तो उसका बिलकुल अलग ही अर्थ था। शब्द बदलते रहते हैं। अब भारत में भी संयम शब्द, जो कि 'यम' से आता है, उसका अर्थ नियंत्रण, दमन हो गया है। अब मूल अर्थ खो गया है।

तुमने शायद एक घटना सुनी होगी। इंगलैंड के सम्राट जार्ज प्रथम के विषय में ऐसा कहा जाता है कि जब सेंट जॉन कैथेड्रल बन कर पूरा हुआ तो वह उसे देखने गया। वह एक उत्कृष्ट कलाकृति थी। उसका निर्माता, उसका रचनाकार, कलाकार वहा मौजूद था; उसका नाम था क्रिस्टोफर रेन। सम्राट उससे मिला और उसे बधाई दी। उसने तीन शब्द कहे; उसने कहा, 'यह अम्यूजिंग है। यह ऑफुल है। यह आर्टिफीशियल है।' क्रिस्टोफर रेन बहुत खुश हुआ प्रशंसा पाकर...।

लेकिन तुम्हें तो आश्चर्य ही होगा। उन शब्दों का अब वही अर्थ नहीं रह गया है। उन दिनों, तीन सौ साल पहले अम्प्रइजंग का अर्थ होता था अमेजिंग—आश्चर्यजनक, ऑफुल का अर्थ होता था ऑव—इन्सपायरिग—विस्मयकारी, और आर्टिफीशियल का अर्थ होता था आर्टिस्टिक—कलात्मक। प्रत्येक शब्द की एक जीवन—कथा होती है, और वह बहुत बार बदलती है। जैसे—जैसे जीवन बदलता है, हर चीज बदलती है : शब्द नया रंग ले लेते हैं। और असल में जिनमें बदलने की क्षमता होती है, केवल वे ही जीवित रहते हैं, अन्यथा वे मर जाते हैं। रूढ़िवादी शब्द, जो बदलने के लिए राजी नहीं होते, वे मर जाते हैं। जीवंत शब्द जिनमें कि अपने आस—पास नए अर्थों को संजो लेने की क्षमता होती है, केवल वे ही जीते हैं; और वे सदियों तक जीते हैं कई—कई अर्थों में।

'यम' एक सुंदर शब्द था पतंजलि के समय में, सुंदरतम शब्दों में से एक था। फ्रायड के बाद यह शब्द कुरूप हो गया—न केवल अर्थ बदल गया है, बल्कि सारा रंग—रूप, शब्द का सारा स्वाद भी बदल गया है। पतंजलि के लिए आत्म—संयम का अर्थ स्वयं का दमन नहीं है। इसका अर्थ है स्वयं के जीवन को दिशा देना—ऊर्जाओं का दमन नहीं, बल्कि निर्देशन; उन्हें सम्यक दिशा देना। क्योंकि तुम ऐसा जीवन

जी सकते हो, जो विपरीत दिशाओं में गति करता हो, बहुत सी दिशाओं में जाता हो—तब तुम कभी भी कहीं नहीं पहुंचोगे।

यह उस कार की भांति है, जिसका ड्राइवर कुछ मील उत्तर की ओर जाता है, फिर बदल लेता है मन; फिर कुछ मील पश्चिम की ओर जाता है, फिर बदल लेता है मन, और इसी भांति चलता रहता है। वह वहीं मरेगा जहां वह पैदा हुआ था। वह कभी कहीं नहीं पहुंचेगा। वह कभी तृप्ति की अनुभूति नहीं पाएगा। तुम बहुत से रास्तों पर चल सकते हो, लेकिन जब तक तुम्हारे पास दिशा नहीं है, तुम व्यर्थ ही चल रहे हो। तुम केवल और—और निराशा अनुभव करोगे, और कुछ भी नहीं।

आत्म—संयम का अर्थ है, पहली बात, तुम्हारी जीवन—ऊर्जा को सम्यक दिशा देना। जीवन—ऊर्जा सीमित है। यदि तुम उसका उपयोग नासमझी और दिशा—हीन ढंग से करते हो, तो तुम कहीं भी नहीं पहुंचोगे। देर—अबेर तुम्हारी ऊर्जा चुक जाएगी—और वह खालीपन बुद्ध का शून्य न होगा; वह बिलकुल नकारात्मक खालीपन होगा— भीतर कुछ भी नहीं, एक खोखला रिक्त पात्र। तुम मरने के पहले ही मर जाओगे।

लेकिन ये सीमित ऊर्जाएं जो तुम्हें मिली हैं प्रकृति से, अस्तित्व से, परमात्मा से—या जो भी कहना चाहो उसे—ये सीमित ऊर्जाएं इस ढंग से प्रयोग की जा सकती हैं कि वे असीम के लिए द्वार बन सकती हैं। यदि तुम ठीक ढंग से बढ़ते हो, यदि तुम होशपूर्वक बढ़ते हो, यदि तुम बोधपूर्वक बढ़ते हो, अपनी सारी ऊर्जाओं को इकट्ठा कर लेते हो और एक ही दिशा में बढ़ते हो, तो तुम भीड़ नहीं रहते बल्कि एक व्यक्ति हो जाते हो—यही है यम का अर्थ।

साधारणतया तुम एक भीड़ हो; बहुत सी आवाजें हैं तुम्हारे भीतर। एक कहती है, 'इस दिशा में जाओ।' दूसरी कहती है, 'यह तो बेकार है। उधर जाओ।' एक कहती है, 'मंदिर जाओ।' दूसरी कहती है, 'थिएटर जाना बेहतर होगा।' और तुम्हें कभी कहीं चैन नहीं मिलता, क्योंकि तुम कहीं भी जाओ, तुम पछताओगे। यदि तुम थिएटर जाते हो तो जो आवाज मंदिर जाने के लिए कह रही थी वह तुम्हारे लिए बेचैनी पैदा करेगी : 'तुम यहां क्या कर रहे हो? अपना समय बरबाद कर रहे हो? तुम्हें तो मंदिर में होना चाहिए था! और प्रार्थना सुंदर बात है। और कौन जाने, वहां क्या हो रहा हो! और कौन जाने, यही अवसर हो तुम्हारे बुद्धत्व के लिए और तुम फिर चूक गए।'

यदि तुम मंदिर जाओ, तो भी यही होगा—वह आवाज जो थिएटर जाने के लिए कह रही थी, वह कहने लगेगी. 'यहां क्या कर रहे हो तुम? एक मूढ़ की भांति तुम यहां बैठे हो। और तुमने पहले भी प्रार्थनाएं की हैं और कुछ भी नहीं हुआ। क्यों तुम अपना समय व्यर्थ गंवा रहे हो?' और अपने चारों ओर तुम देखोगे—मूढ़ लोगों को बैठे हुए और व्यर्थ की चीजें करते हुए—कुछ भी नहीं हो रहा। कौन जाने थिएटर में कैसा मजा मिलता, कितना आनंद होता। तुम चूक रहे हो.।

यदि तुम आत्मवान नहीं हो, अखंड नहीं हो, तो जहां कहीं भी तुम होगे तुम सदा चूकते ही रहोगे। तुम कभी कहीं चैन से नहीं रहने पाओगे। तुम सदा ही कहीं न कहीं जा रहे होओगे और कभी कहीं पहुंचोगे नहीं। तुम पागल हो जाओगे। वह जीवन जो 'यम' के विपरीत है, विक्षिप्त हो जाएगा।

यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि पश्चिम में पूर्व की अपेक्षा ज्यादा लोग पागल होते हैं। पूर्व में—जाने, अनजाने—अभी भी थोड़े आत्म—संयम का जीवन जीया जाता है। पश्चिम में आत्म—संयम की बात गुलामी जैसी मालूम पड़ती है; आत्म—संयम के विरुद्ध होना ऐसे मालूम पड़ता है जैसे कि तुम मुक्त हो, स्वतंत्र हो। लेकिन जब तक तुम आत्मवान न हो जाओ, तुम मुक्त नहीं हो सकते हो। तुम्हारी स्वतंत्रता एक प्रवंचना होगी; वह आत्महत्या के सिवाय और कुछ न होगी। तुम मार डालोगे स्वयं को, नष्ट कर दोगे अपनी संभावनाओं को, अपनी ऊर्जाओं को; और एक दिन तुम अनुभव करोगे कि जीवन भर तुमने इतनी कोशिश की, लेकिन पाया कुछ भी नहीं, उससे कोई विकास नहीं हुआ।

आत्म—संयम का अर्थ है, पहला अर्थ : जीवन को एक दिशा देना। आत्म—संयम का अर्थ है, केंद्र में थोड़ा और प्रतिष्ठित होना। कैसे तुम और केंद्रित हो सकते हो? जब तुम अपने जीवन को दिशा देते हो, तो तुरंत तुम्हारे भीतर एक केंद्र बनना शुरू हो जाता है। दिशा से निर्मित होता है केंद्र; फिर केंद्र देता है दिशा। और वे परस्पर एक—दूसरे को बढ़ाते हैं। जब तक तुम आत्म—संयमी नहीं होते, दूसरी बात की संभावना नहीं है। इसीलिए पतंजलि उसे पहला चरण कहते हैं।

दूसरा चरण है 'नियम'। एक सुनिश्चित नियमन : वह जीवन जिसमें कि अनुशासन है, वह जीवन जिसमें कि नियमितता है, वह जीवन जो कि बहुत ही अनुशासित ढंग से जीया जाता है, अव्यवस्थित नहीं। एक नियमितता है। लेकिन वह भी तुम्हें गुलामी जैस लगेगा। पतंजलि के समय के सारे सुंदर शब्द अब कुरूप हो गए हैं।

लेकिन मैं कहता हूं तुमसे कि जब तक तुम में और तुम्हारे जीवन में नियमितता नहीं आती, अनुशासन नहीं आता, तब तक तुम गुलाम ही रहोगे अपनी वृत्तियों के—और तुम सोच सकते हो कि यही स्वतंत्रता है, लेकिन तुम गुलाम रहोगे अपने आवारा विचारों के। यह स्वतंत्रता नहीं है। भले ही तुम्हारा कोई प्रकट मालिक न हो, लेकिन तुम्हारे बहुत से अप्रकट मालिक होंगे तुम्हारे भीतर; और वे तुम पर शासन करते रहेंगे। केवल वही आदमी जिसके पास नियमितता होती है, किसी दिन मालिक हो सकता है।

वह भी बहुत दूर है अभी, क्योंकि असली मालिक का केवल तभी आविर्भाव होता है जब आठवां चरण पा लिया जाता है—जो कि लक्ष्य है। तब व्यक्ति हो जाता है जिन, जिसने जीता। तब व्यक्ति हो जाता है बुद्ध, जो जाग गया। तब व्यक्ति हो जाता है क्राइस्ट, मुक्तिदाता—क्योंकि यदि तुम मुक्ति पा गए हो, तो अचानक तुम दूसरों के लिए मुक्ति देने वाले हो जाते हो। ऐसा नहीं है कि तुम उन्हें

मुक्ति देने की कोशिश करते हो : बस तुम्हारी उपस्थिति ही एक मुक्तिदायी प्रभाव बन जाती है। तो दूसरा है 'नियम'—एक सुनिश्चित नियमन।

फिर तीसरा है 'आसन'। और प्रत्येक चरण पहले आने वाले चरण से आता है : जब तुम्हारे जीवन में नियमितता होती है, केवल तभी तुम्हें आसन उपलब्ध होता है।

कभी आसन के लिए प्रयोग करके देखना; बस प्रयास करना मौन बैठ जाने का। तुम नहीं बैठ सकते—शरीर तुम्हारे खिलाफ विद्रोह करने की कोशिश करता है। अचानक तुम यहां—वहां दर्द अनुभव करने लगते हो! टांगें मुर्दा होने लगती हैं। अचानक तुम शरीर के बहुत से हिस्सों में एक बेचैनी अनुभव करते हो। तुमने पहले कभी ऐसा महसूस नहीं किया था। ऐसा क्यों होता है कि मौन बैठने से ही ये सब समस्याएं उठ खड़ी होती हैं? तुम अनुभव करते हो कि चींटियां रेंग रही हैं। आंख खोल कर देखो, और तुम पाओगे कि कहीं कोई चींटियां नहीं हैं, शरीर तुम्हें धोखा दे रहा है। शरीर राजी नहीं है अनुशासित होने के लिए। शरीर बिगड़ चुका है। शरीर तुम्हारी नहीं सुनना चाहता। वह स्वयं अपना मालिक बन गया है। और तुम सदा उसका अनुसरण करते रहे हो। अब कुछ देर के लिए शांत बैठना करीब—करीब असंभव हो गया है।

यदि तुम केवल शांत बैठने को कह दो तो लोग बहुत परेशान हो जाते हैं। यदि मैं किसी से शांत बैठने के लिए कहता हूं तो वह कहता है, 'बस शांत बैठना है, कुछ करना नहीं है?' जैसे कि 'करना' एक विक्षिप्तता हो गई है। कोई कहता है, 'कम से कम कोई मंत्र ही दे दें जिसे मैं भीतर जपता रहूं।' तुम्हें कोई व्यस्तता चाहिए। केवल मौन होकर बैठना कठिन मालूम पड़ता है। और वही है सुंदरतम संभावना जो कि किसी मनुष्य को घट सकती है. बस बिना कुछ किए मौन बैठना।

आसन का अर्थ है एक विश्रांत मुद्रा। तुम इतने हल्के हो जाते हो, तुम इतने आराम में होते हो कि शरीर को हिलाने—डुलाने की कोई जरूरत नहीं रहती। उस विश्राम के क्षण में, अचानक, तुम शरीर का अतिक्रमण कर जाते हो।

शरीर तुम्हें नीचे लाने की कोशिश कर रहा होता है जब शरीर कहता है कि 'जरा देखो, बहुत सारी चींटियां रेंग रही हैं।' या तुम अचानक खुजलाने की एक जबरदस्त उत्तेजना अनुभव करते हो, बेचैन होने लगते हो। शरीर कह रहा होता है, 'इतने आगे मत जाओ। लौट आओ पीछे। कहां जा रहे

हो तुम?' क्योंकि चेतना ऊर्ध्वगामी हो रही होती है, शरीर के तल से बहुत दूर जा रही होती है; शरीर विद्रोह करने लगता है। ऐसा पहले तुमने कभी किया नहीं। शरीर तुम्हारे लिए समस्याएं खड़ी करता है, क्योंकि एक बार समस्या खडी हो जाए, तो तुम्हें लौटना ही पड़ेगा। शरीर तुम्हारा ध्यान आकर्षित करने की कोशिश कर रहा है : 'मेरी तरफ ध्यान दो।' वह पीड़ा निर्मित कर देगा। वह खुजलाहट निर्मित कर देगा; तुम्हें लगेगा कि खुजलाना जरूरी है। अचानक शरीर कोई साधारण चीज नहीं रह जाता; शरीर विद्रोह कर देता है। यह शरीर की राजनीति है। तुम्हें वापस बुलाया जा रहा है : 'इतने दूर

मत जाओ, उलझे रहो। यहीं रहो। बंधे रहो शरीर से और धरती से।' तुम आकाश की ओर बढ़ रहे हो, और शरीर भयभीत होने लगता है।

आसन केवल उसी व्यक्ति को घटित होता है, जो संयम का जीवन जीता है, नियमितता का जीवन जीता है; केवल तभी आसन संभव होता है। तब तुम शांत बैठ सकते हो, क्योंकि शरीर जानता है कि तुम अनुशासन में जीने वाले व्यक्ति हो। यदि तुम बैठना चाहते हो, तो तुम बैठोगे ही—तुम्हारे विरुद्ध कुछ भी नहीं किया जा सकता। शरीर कुछ—कुछ कहे जा सकता है.....। धीरे—धीरे वह शांत हो जाता है। कोई है नहीं सुनने के लिए।

तो यह कोई दमन नहीं है; तुम शरीर का दमन नहीं कर रहे हो; उलटे शरीर कोशिश कर रहा है तुम्हारा दमन करने की! यह कोई दमन नहीं है। तुम शरीर को कुछ करने के लिए नहीं कह रहे हो; तुम बस विश्राम कर रहे हो। लेकिन शरीर का किसी विश्राम से परिचय नहीं है, क्योंकि तुमने कभी उसे विश्राम दिया नहीं है। तुम सदा बेचैन रहे हो।'आसन' शब्द का ही अर्थ है विश्राम, एक गहन विश्राम; और यदि तुम ऐसा कर सको, तो और बहुत सी बातें तुम्हारे लिए संभव हो जाएंगी।

यदि शरीर शांत हो, तो तुम अपनी श्वास को नियमित कर सकते हो। अब तुम और ज्यादा गहरे उतर रहे हो, क्योंकि श्वास शरीर और आत्मा के बीच, शरीर और मन के बीच एक सेतु है। यदि तुम श्वास को नियमित कर सको—यही है प्राणायाम—तो अपने मन पर तुम्हारी मालकियत हो जाती है।

क्या तुमने कभी ध्यान दिया है कि जब भी मन बदलता है, तो श्वास की लय तुरंत बदल जाती है? यदि तुम इसका उलटा करो—यदि तुम श्वास की लय बदल दो—तो मन को तुरंत ही बदलना पड़ता है। जब तुम क्रोधित होते हो तो तुम धीमी श्वास नहीं ले सकते; वरना तो क्रोध खो जाएगा। प्रयोग करके देखना। जब तुम क्रोधित अनुभव करते हो, तो तुम्हारी श्वास अराजक हो जाती है, अनियमित हो जाती है, वह सारी लय खो देती है, उद्विग्न, बेचैन हो जाती है। फिर वह एक समस्वरता नहीं रहती। अराजक हो जाती है; लय खो जाती है।

एक काम करना. जब भी तुम्हें क्रोध आ रहा हो तो बस शांत हो जाना और श्वास को लय में चलने देना। अचानक तुम पाओगे कि क्रोध तिरोहित हो गया है। तुम्हारे शरीर की एक विशेष प्रकार की श्वास के बिना क्रोध नहीं हो सकता।

जब तुम संभोग कर रहे होते हो तो श्वास बदल जाती है—बहुत अराजक हो जाती है। जब तुम कामवासना से भरे होते हो, तो श्वास बदल जाती है, बहुत अराजक हो जाती है। कामवासना में थोड़ी हिंसा है। कई बार प्रेमी एक—दूसरे को कांट लेते हैं और एक—दूसरे को चोट पहुंचा देते हैं! और यदि तुम दो व्यक्तियों को संभोग करते हुए देखो, तो तुम्हें लगेगा कि किसी प्रकार का युद्ध चल रहा है। उसमें थोड़ी—बहुत हिंसा होती है। और दोनों अराजक श्वास ले रहे होते हैं; उनकी श्वास लयपूर्ण नहीं होती, समस्वरता में नहीं होती।

तंत्र में, जहां कामवासना के विषय में और कामवासना के रूपांतरण के विषय में बहुत काम हुआ है, वहां उन्होंने श्वास की लय पर बहुत खोज की है। यदि दो प्रेमी संभोग के दौरान श्वास को लयबद्ध रख सकें, समस्वर रख सकें, दोनों की लय वही बनी रहे, तो कोई स्खलन नहीं होगा। वे घंटों संभोग कर सकते हैं। क्योंकि स्खलन केवल तभी होता है, जब श्वास लयबद्ध नहीं होती; केवल तभी शरीर ऊर्जा बाहर फेंक सकता है। यदि श्वास लयपूर्ण है, तो शरीर ऊर्जा को आत्मसात कर लेता है; वह उसे बाहर नहीं फेंकता।

तंत्र ने बहुत सी विधियां विकसित की हैं श्वास की लय बदलने की। तब तुम घंटों संभोग कर सकते हो और तुम ऊर्जा खोते नहीं हो। बल्कि उलटे तुम्हें ऊर्जा प्राप्त होती है, क्योंकि अगर कोई स्त्री किसी पुरुष से प्रेम करती है और कोई पुरुष किसी स्त्री से प्रेम करता है, तो वे एक—दूसरे की मदद करते हैं ऊर्जावान होने में—क्योंकि वे विपरीत ऊर्जाएं हैं। जब विपरीत ऊर्जाएं मिलती हैं और एक विद्युत—धारा निर्मित करती हैं, तो वे एक दूसरे को उद्दीप्त करती हैं; वरना तो ऊर्जा खो जाती है और संभोग के बाद तुम हारा— थका, दीन—हीन अनुभव करते हो। इतनी आशा—और हाथ कुछ नहीं लगता, हाथ खाली के खाली रह जाते हैं।

आसन के बाद बारी आती है प्राणायाम की। थोड़े दिन गौर करना और इस पर ध्यान देना : जब तुम क्रोधित होते हो तो तुम्हारी श्वास की लय क्या होती है—उच्छवास ज्यादा देर होता है या अंतःश्वसन ज्यादा देर होता है या वे बराबर होते हैं? या श्वास का भीतर लेना थोड़ी देर होता है और श्वास का बाहर निकाला जाना ज्यादा देर होता है, या उच्छवास बहुत कम होता है और अंत—श्वसन ज्यादा होता है? जरा ध्यान देना श्वास लेने और श्वास छोड़ने के अनुपात पर। जब तुम कामवासना से भरे होते हो, तो ध्यान देना, खयाल में लेना।

जब कभी मौन बैठे होते हो और रात देख रहे होते हो आकाश को, चारों तरफ मौन है, तो ध्यान देना कि तुम्हारी श्वास कैसी चल रही है। जब तुम करुणा अनुभव कर रहे होते हो, तो ध्यान देना, खयाल में लेना। जब तुम लड़ने—झगड़ने की भाव—दशा में हो, तब ध्यान देना, नोट करना श्वास की गति को। जरा एक चार्ट बनाओ अपनी श्वास का, और तुम्हें बहुत सी बातें खयाल में आएंगी। और प्राणायाम कोई ऐसी बात नहीं है जो तुम्हें सिखाई जा सके। तुम्हें उसे खोजना पड़ता है, क्योंकि प्रत्येक मनुष्य की श्वास की लय अलग—अलग होती है। हर व्यक्ति की श्वास और उसकी लय उतनी ही भिन्न होती है जितनी कि अंगूठे की छाप। श्वास एक वैयक्तिक घटना है, इसलिए मैं उसे कभी सिखाता नहीं। तुम्हें स्वयं खोजनी होती है अपनी लय। तुम्हारी लय किसी दूसरे की लय नहीं हो सकती। या हो सकता है किसी दूसरे के लिए वह हानिकारक भी हो। तुम्हारी लय तुम्हें ही खोजनी है।

और कठिन नहीं है यह बात। किसी विशेषज्ञ से पूछने की भी जरूरत नहीं है। बस, एक चार्ट बना लेना महीने भर की अपनी सारी भाव—दशाओं और अवस्थाओं का। और तुम्हें पता चलता है कि

कौन न सी लय में तुम सर्वाधिक आराम अनुभव करते हो, शांत अनुभव करते हो, एक गहन निर्मुक्ति में बहते हो; कौन सी लय है जिसमें तुम मौन अनुभव करते हो—शांत, सुव्यवस्थित, थिर अनुभव करते हो; कौन सी लय है जब अनायास ही तुम आनंदित अनुभव करते हो, किसी अज्ञात आनंद से भर जाते हो, कुछ उमड़ कर बहने लगता है—तुम इतने ज्यादा भरे होते हो उस क्षण कि तुम सारे संसार को बांट सकते हो और वह समाप्त न होगा।

उस क्षण का अनुभव लो और उस पर ध्यान दो जब तुम्हें लगता है कि तुम संपूर्ण अस्तित्व के साथ एक हो, जब तुम्हें लगता है कि अब कोई पृथकता न रही, एक अखंडता है। जब तुम वृक्षों और पक्षियों के साथ, नदियों और चट्टानों के साथ, सागर और रेत के साथ एक अनुभव करते हो—तब ध्यान देना। तुम पाओगे कि तुम्हारे श्वास की बहुत सी लय हैं, उनका सतरंगा विस्तार है : अति हिंसक, असुंदर, दारुण, नारकीय रूप से लेकर अति मौन, स्वर्ग जैसे रूप तक।

और फिर जब तुम अपनी लय खोज लो, तो अभ्यास करना उसका—उसे अपने जीवन का एक हिस्सा बना लेना। धीरे— धीरे यह सहज हो जाती है, फिर तुम उसी लय में श्वास लेते हो। और उस लय के साथ तुम्हारा जीवन एक योगी का जीवन हो जाएगा : तुम क्रोधित न होओगे, तुम इतनी कामवासना अनुभव न करोगे, तुम स्वयं को इतना घृणा से भरा हुआ न पाओगे। अचानक ही तुम अनुभव करोगे कि एक रूपांतरण घट रहा है तुम में।

प्राणायाम मानव चेतना की महानतम खोजों में एक है। प्राणायाम की तुलना में चांद तक पहुंच जाना भी कुछ नहीं है। बात बड़ी रोमांचक लगती है, लेकिन है उसमें कुछ भी नहीं। क्योंकि तुम चांद पर पहुंच भी जाओ, तो तुम करोगे क्या वहां? यदि तुम पहुंच भी जाओ चांद पर तो भी तुम रहोगे तो वही के वही। तुम जारी रखोगे वही मूढ़ताएं जो तुम यहां कर रहे हो।

प्राणायाम एक अंतर्यात्रा है। और प्राणायाम चौथा चरण है—और कुल आठ चरण हैं। आधी यात्रा पूरी हो जाती है प्राणायाम पर। वह आदमी जिसने प्राणायाम सीख लिया है—किसी शिक्षक से नहीं, क्योंकि वह तो झूठी बात है, मैं उसके पक्ष में नहीं—लेकिन जिस व्यक्ति ने अपनी खोज और अपने होश द्वारा प्राणायाम सीखा है, जिसने अपनी अस्तित्वगत लय को सीख लिया है, उसने आधी मंजिल तो पा ही ली है। प्राणायाम सर्वाधिक महत्वपूर्ण खोजों में से एक है।

और प्राणायाम के बाद है 'प्रत्याहार'। प्रत्याहार वही है जिसकी मैं तुम से बात कर रहा था कल। ईसाइयों का शब्द 'रिपेंट' वस्तुत: हिब्रू में 'रिटर्न' है—पश्चात्ताप नहीं, बल्कि प्रतिक्रमण, पीछे लौट आना। मुसलमानों की 'तोबा' भी रिपेंट नहीं है; वह पछतावा नहीं है। उस पर भी थोड़ा रंग चढ़ गया है पश्चात्ताप वाले अर्थ का; तोबा भी पीछे लौट आना है। और प्रत्याहार भी पीछे लौट आना है, वापस आना है— भीतर आना, भीतर की ओर मुड़ना, घर लौटना।

प्राणायाम के पश्चात संभावना होती है प्रत्याहार की; क्योंकि प्राणायाम तुम्हें लय दे देगा। अब तुम जानते हो सारे विस्तार को : तुम जानते हो कि किस लय में तुम निकटतम होते हो घर के और किस लय में तुम सर्वाधिक दूर होते हो स्वयं से। हिंसक, कामोन्मत्त, क्रोधित, ईर्ष्याग्रस्त, तुम पाओगे। कि तुम बहुत दूर हो गए हो अपने से; करुणा में, प्रेम में, प्रार्थना में, अनुग्रह में, तुम स्वयं को घर के 'गदा निकट पाओगे।

प्राणायाम के पश्चात प्रत्याहार, वापस लौटना संभव होता है। अब तुम्हें मालूम है मार्ग —तो तुम पहले से ही जानते हो कि कैसे कदम वापस लौटाने हैं।

फिर है धारणा। प्रत्याहार के बाद, जब तुमने घर लौटना आरंभ कर दिया होता है, जब तुम अपने अंतरतम केंद्र के निकट आने लगते हो, तो तुम अपने अस्तित्व के द्वार पर ही होते हो। प्रत्याहार तुम्हें द्वार के निकट ले आता है। प्राणायाम बाहर से भीतर के लिए एक सेतु है। प्रत्याहार द्वार है, और तब संभावना होती है धारणा की, एकाग्रता की। अब तुम अपने मन को एक ही लक्ष्य पर एकाग्र कर सकते हो।

पहले तुमने अपने शरीर को दिशा दी, पहले तुमने अपनी जीवन—ऊर्जा को दिशा दी—अब तुम अपनी चेतना को दिशा दो। अब चेतना को यूं ही कहीं भी और हर कहीं नहीं भटकने दिया जा सकता। अब उसे एक लक्ष्य पर लगाना होता है। यह लक्ष्य है एकाग्रता, ' धारणा' : तुम अपनी चेतना को एक ही बिंदु पर लगा देते हो।

जब चेतना एक ही बिंदु पर एकाग्र हो जाती है तो विचार खो जाते हैं, क्योंकि विचार केवल तभी संभव हैं जब तुम्हारी चेतना निरंतर उछल—कूद कर रही होती है किसी बंदर की भांति; तब बहुत विचार चलते रहते हैं और तुम्हारा पूरा मन भर जाता है भीड़ से—एक बाजार होता है। अब संभावना है—प्रत्याहार, प्राणायाम के बाद संभावना है कि तुम एक ही बिंदु पर एकाग्र हो सकते हो।

और जब तुम एक बिंदु पर एकाग्र हो सकते हो, तब संभावना है ध्यान की। धारणा में तुम अपने मन को एक बिंदु पर एकाग्र करते हो। ध्यान में तुम उस बिंदु को भी छोड़ देते हो। अब तुम पूरी तरह केंद्रित हो जाते हो, कहीं गति नहीं करते। क्योंकि गति करने का अर्थ है बाहर की ओर गति करना। ध्यान के दौरान आया एक विचार भी तुमसे बाहर ही है—कोई विषय मौजूद है; तुम अकेले नहीं हो; दो हैं। धारणा तक दो होते हैं—विषय और तुम। धारणा के बाद उस विषय को भी गिरा देना पड़ता है।

सारे मंदिर तुम्हें केवल धारणा तक ही ले जाते हैं। वे तुम्हें इसके पार नहीं ले जा सकते, क्योंकि सारे मंदिरों में ध्यान के लिए विषय होता है उनमें ध्यान के लिए ईश्वर की मूर्ति होती है। सारे मंदिर तुम्हें केवल धारणा तक ले जाते हैं। इसीलिए जितना कोई धर्म ऊंचा उठता है, मंदिर और मूर्ति तिरोहित हो जाते हैं। उन्हें हो ही जाना चाहिए तिरोहित। मी दर को नितांत शून्य होना चाहिए, ताकि केवल तुम्हीं हो वहां—और कोई नहीं, और कोई भी नहीं, कोई विषय नहीं—विशुद्ध आत्म—बोध। ध्यान

है विशुद्ध आत्म—बोध, आत्मरमण। किसी चीज का ध्यान नहीं करना है, क्योंकि यदि तुम किसी विषय पर ध्यान कर रहे हो तो वह धारणा है। धारणा का अर्थ है कि किसी विषय पर एकाग्रता करनी है। ध्यान है मेडिटेशन, वहां कोई विषय नहीं रहता, हर चीज छूट जाती है, लेकिन तुम जागे हुए हो। विषय छूट चुके हैं, लेकिन तुम सो नहीं गए हो। तब एक गहन बोध होगा, कोई विषय नहीं होगा, तुम स्वयं में केंद्रित होओगे।

लेकिन अभी भी 'मैं' की अनुभूति बची रहेगी। वह छाया की भांति मौजूद रहेगी। विषय गिर चुका, लेकिन विषयी अभी भी मौजूद है। तुम अब भी अनुभव करते हो कि तुम हो। यह अहंकार नहीं है। संस्कृत में हमारे पास दो शब्द हैं : 'अहंकार' और 'अस्मिता'। अहंकार का अर्थ है 'मैं हूं।' और

अस्मिता का अर्थ है 'हूं, मात्र हूं—पन—कोई अहंकार न रहा, मात्र एक छाया बची है। तुम अब भी किसी न किसी तरह अनुभव करते हो कि तुम हो। यह कोई विचार नहीं होता, क्योंकि अगर यह विचार हो, कि मैं हूं तब तो यह अहंकार है।

ध्यान में अहंकार पूरी तरह खो जाता है, लेकिन एक 'हूं —पन', एक छाया जैसी घटना, मात्र एक अनुभूति, तुम्हारे चारों ओर छाई रहती है—सुबह की धुंध की तरह तुम्हारे आस—पास छाई रहती है। ध्यान अर्थात सुबह; सूर्य अभी उगा नहीं, धुंधलका है; अस्मिता, हूं —पन अब भी मौजूद है।

तुम अभी भी पीछे लौट सकते हो। एक हलकी सी अशांति—कोई बात कर रहा है और तुम सुनते हो—ध्यान खो गया; तुम वापस आ गए धारणा तक। यदि तुम केवल सुनते ही नहीं बल्कि तुमने उसके विषय में सोचना भी शुरू कर दिया है, तो धारणा भी खो चुकी है, तुम लौट आए हो प्रत्याहार तक। और यदि तुम न केवल सोचते हो, बल्कि तुमने तादात्म्य भी बना लिया है सोच—विचार के साथ, तो प्रत्याहार भी खो चुका है, तुम उतर आए हो प्राणायाम तक। और यदि विचार इतना हावी हो गया है कि तुम्हारी श्वास की लय गड़बड़ा जाती है, तो प्राणायाम भी खो गया; तुम आ गए हो आसन पर। और यदि विचार और श्वास इतनी ज्यादा अस्तव्यस्त हैं कि शरीर कैपने लगता है, बेचैन हो जाता है, तो आसन भी खो गया। वे सब आपस में जुड़े हुए हैं।

तो कोई ध्यान तक पहुंच कर भी गिर सकता है। ध्यान सर्वाधिक खतरनाक बिंदु है संसार का, क्योंकि वह उच्चतम तल है जहां से कि तुम गिर सकते हो, और बहुत बुरी तरह से गिर सकते हो। भारत में हमारे पास एक शब्द है, योग— भ्रष्ट. जो व्यक्ति योग से गिर गया। यह शब्द बहुत ही अदभुत है। यह एक साथ समादर भी करता है और निंदा भी करता है। जब हम कहते हैं कि कोई योगी है तो वह बहुत बड़ा आदर है। जब हम कहते हैं कि कर्म योग— भ्रष्ट है, तो वह एक निंदा भी है—योग से गिरा हुआ। यह व्यक्ति अपने किसी पिछले जन्म में ध्यान तक पहुंच गया था, और फिर गिर गया! ध्यान में संभावना है अभी भी संसार में वापस लौट जाने की—अस्मिता के कारण, उस 'हूं —पन' के कारण। बीज अभी भी जिंदा है। वह किसी भी क्षण प्रस्फुटित हो सकता है; इसलिए यात्रा अभी समाप्त

नहीं हुई है। जब अस्मिता भी तिरोहित हो जाती है, जब तुम्हें यह भी ध्यान नहीं रहता कि तुम हो—निश्चित ही तुम हो, लेकिन वहां कोई तरंग नहीं बचती कि 'मैं हूं? या 'हूं'—तब समाधि घटित होती है। समाधि है अतिक्रमण; वहां से कोई वापस नहीं आता। समाधि बिंदु है न लौटने का। वहा से कोई नहीं गिरता। समाधिस्थ व्यक्ति भगवान होता है।

इसीलिए हम बुद्ध को भगवान कहते हैं, महावीर को भगवान कहते हैं। समाधि को उपलब्ध व्यक्ति फिर इस संसार का नहीं रहता। वह इस संसार में भले ही रहता हो, लेकिन वह इस संसार का नहीं होता। वह यहां का नहीं रहता, वह परदेशी हो जाता है। वह यहां रह सकता है, लेकिन उसका घर कहीं और है। वह चलता है इसी पृथ्वी पर, लेकिन अब उसके चरण पृथ्वी पर नहीं पड़ते। ऐसा कहा गया है समाधिस्थ व्यक्ति के संबंध में कि वह संसार में रहता है लेकिन संसार उसमें नहीं रहता। तो ये आठ चरण हैं योग के और आठ अंग भी हैं। अंग हैं क्योंकि वे इतने जुड़े हुए हैं और बहुत जीवंत रूप से संबंधित हैं। चरण हैं क्योंकि तुम्हें उनसे गुजरना है एक—एक करके, तुम ऐसे ही 'कहीं से भी शुरू नहीं कर सकते; तुम्हें शुरू करना पड़ेगा 'यम' से।

अब कुछ और बातें समझ लें, क्योंकि यह इतनी मूलभूत बात है पतंजलि के लिए कि तुम्हें कुछ और बातें समझ लेनी हैं। यम एक सेतु है तुम्हारे और दूसरों के बीच, आत्म—संयम यानी अपने आचरण का नियमन। यम तुम्हारे और दूसरों के बीच, तुम्हारे और समाज के बीच घटने वाली घटना है। यह ज्यादा सजग व्यवहार है; तुम अचेतन रूप से प्रतिक्रिया नहीं करते, तुम यंत्रवत प्रतिक्रिया नहीं करते, तुम मशीन की तरह व्यवहार नहीं करते। तुम ज्यादा होशपूर्ण हो जाते हो; तुम ज्यादा सजग हो जाते हो। तुम केवल तभी प्रतिक्रिया करते हो जब बहुत जरूरी होता है; तब भी तुम्हारी कोशिश यही होती है कि प्रतिक्रिया प्रतिक्रिया न होकर प्रतिसंवेदन हो।

प्रतिसंवेदन बिलकुल अलग बात है प्रतिक्रिया से। पहला अंतर यह है कि प्रतिक्रिया यंत्रवत होती है; प्रतिसंवेदन होशपूर्ण होता है। कोई तुम्हारा अपमान कर देता है; तुम तुरंत प्रतिक्रिया करते हो—तुम उसका अपमान कर देते हो। एक क्षण का भी अंतराल नहीं होता समझने के लिए : यह एक प्रतिक्रिया है। आत्म—संयमी व्यक्ति प्रतीक्षा करेगा, अपने अपमान पर थोड़ा विचार करेगा, उस पर सोचेगा।

गुरजिएफ कहा करता था कि उसके दादा की एक बात से उसका पूरा जीवन बदल गया। क्योंकि जब उसके दादा मर रहे थे, गुरजिएफ उस समय केवल नौ वर्ष का था, तो उन्होंने उसे बुलाया और उससे कहा, 'मैं एक गरीब आदमी हूं और मेरे पास तुम्हें देने के लिए कुछ भी नहीं है, लेकिन मैं कुछ देना चाहूंगा। यही एकमात्र चीज है जिसे मैं किसी खजाने की भांति सम्हालता आया हूं; इसे मैंने अपने पिता से सीखा है...। तुम बहुत छोटे हो, लेकिन स्मरण कर लो इसे। किसी दिन तुम समझ भी पाओगे—अभी तो बस तुम ध्यान में रख लो इसे। कभी किसी दिन तुम समझ पाओगे। अभी तो मुझे आशा नहीं कि तुम समझ सको, लेकिन यदि तुम भूले नहीं, तो किसी दिन तुम समझ जाओगे।' और

यह बात उसने कही गुरजिएफ से : 'यदि कोई तुम्हारा अपमान करे तो चौबीस घंटे बाद उसे उत्तर देना।'

यह बात एक रूपांतरण बन गई, क्योंकि कैसे तुम प्रतिक्रिया कर सकते हो चौबीस घंटे बाद? प्रतिक्रिया को तात्कालिकता चाहिए। गुरजिएफ कहता था, 'कोई मेरा अपमान करे या कोई कुछ गलत कह दे, तो मैं कहता, मैं कल आऊंगा। केवल चौबीस घंटे बाद ही मैं उत्तर दे सकता हूं—और मैंने वचन दिया है अपने दादा को और वे मर चुके हैं और वचन तोड़ा नहीं जा सकता। लेकिन मैं आऊंगा।' वह आदमी तो चकित होता। वह नहीं समझ पाता कि बात क्या है।

और फिर गुरजिएफ सोचेगा इस विषय में। जितना ज्यादा सोचेगा वह, उतनी ही ज्यादा व्यर्थ लगेगी बात। कई बार तो यही लगेगा कि वह आदमी ठीक ही कहता है। जो कुछ भी उसने कहा, ठीक ही है। तो गुरजिएफ जाता और धन्यवाद करता उस व्यक्ति का, 'तुमने वह प्रकट कर दिया जिसका कि मुझे भी पता नहीं था।' और कभी वह पाता कि वह व्यक्ति बिलकुल ही गलत कह रहा है। और जब कोई बिलकुल गलत कह रहा है, तो क्यों फिक्र करनी? कोई आदमी झूठी बातों के लिए चिंता नहीं करता। जब तुम्हें चोट लगती है, तो जरूर कुछ न कुछ सच्चाई होती है बात में; अन्यथा तो तुम चोट अनुभव नहीं करते। तब भी कोई सार नहीं होता जाने में।

और उसने कहा, 'ऐसा हुआ कि बहुत बार मैंने अपने दादा की इस सलाह का उपयोग किया,

और धीरे— धीरे क्रोध तिरोहित हो गया।' और केवल क्रोध ही नहीं धीरे— धीरे वह जान गया कि यही विधि दूसरे आवेगों के साथ भी प्रयोग की जा सकती है। और हर चीज तिरोहित हो जाती है। गुरजिएफ इस युग के उच्चतम शिखरों में से एक था—एक बुद्ध पुरुष। और वह महायात्रा आरंभ हुई एक छोटे से चरण से, मृत्यु—शय्या पर पड़े वृद्ध को दिए गए एक वचन से। इस बात ने उसकी पूरी जिंदगी बदल दी।

तो यम एक सेतु है तुम्हारे और दूसरों के बीच—होशपूर्वक जीओ; लोगों के साथ होशपूर्वक संबंध रखो। फिर दूसरे दो हैं, नियम और आसन—उनका संबंध है तुम्हारे शरीर से। तीसरा प्राणायाम, वह भी एक सेतु है। पहला 'यम' सेतु है तुम्हारे और दूसरों के बीच। अगले दोनों चरण एक तैयारी हैं एक दूसरे सेतु के लिए—तुम्हारा शरीर तैयार किया जाता है नियम और आसन के द्वारा—फिर प्राणायाम का सेतु है शरीर और मन के बीच। फिर प्रत्याहार और धारणा, ये तैयारी हैं मन की। फिर ध्यान एक सेतु है—मन और आत्मा के बीच। और समाधि है परम उपलब्धि। वे अंतर्संबंधित हैं, एक श्रृंखला है; और यही है तुम्हारा पूरा जीवन।

दूसरों के साथ तुम्हारे संबंध को बदलना है। दूसरों के साथ तुम जिस तरह संबंधित होते हो, उस ढंग को रूपांतरित करना है। यदि तुम दूसरों के साथ उसी ढंग से संबंध बनाए रखते हो जैसा कि तुम सदा से करते आए हो, तो रूपांतरण की कोई संभावना नहीं है। तुम्हें अपने संबंध बदलने हैं।

थोड़ा ध्यान देना कि तुम अपनी पत्नी के साथ या अपने मित्र के साथ या अपने बच्चों के साथ कैसा व्यवहार करते हो! बदलो उसे। हजारों बातें बदलनी होंगी तुम्हारे संबंधों में। यह है यम—संयम। लेकिन ध्यान रहे, यम संयम है—दमन नहीं। समझ से संयम आता है। अज्ञान में व्यक्ति जबरदस्ती करता है और दमन करता है। जो भी करो समझ से करो, तो तुम कभी भी स्वयं की या किसी दूसरे की हानि नहीं करोगे।

यम है तुम्हारे आस—पास एक अनुकूल वातावरण का निर्माण करना। यदि तुम हर किसी के प्रति दुश्मनी रखते हो, लड़ते हो, घृणा करते हो, क्रोधित होते हो—तो कैसे तुम भीतर मुड़ सकोगे? ये बातें तुम्हें भीतर न जाने देंगी। तुम इतने ज्यादा अस्तव्यस्त हो जाओगे परिधि पर कि अंतर्यात्रा संभव ही न होगी। तुम्हारे आस—पास एक अनुकूल, एक मैत्रीपूर्ण वातावरण का निर्माण करना यम है।

जब तुम दूसरों के साथ सौहार्दपूर्ण ढंग से, होशपूर्वक संबंधित होते हो, तो वे तुम्हारे लिए कोई अड़चन नहीं खड़ी करते तुम्हारी अंतर्यात्रा में। वे सहयोगी बन जाते हैं; वे तुम्हारे लिए रुकावट नहीं बनते। यदि तुम अपने बच्चे से प्यार करते हो, तो जब तुष ध्यान कर रहे हो तो वह तुम्हारे ध्यान में बाधा नहीं डालेगा। बल्कि वह दूसरों से भी कहेगा, 'शांत रहें, पिताजी ध्यान कर रहे हैं।' लेकिन यदि तुम अपने बच्चे को प्रेम नहीं करते, तुम क्रोधित ही रहते हो, तो जब तुम ध्यान कर रहे हो तो वह हर तरह की अड़चन खड़ी करेगा। वह बदला लेना चाहता है—अचेतन रूप से। यदि तुम अपनी .पत्नी को गहन रूप से प्रेम करते हो, तो वह सहायक होगी; अन्यथा वह तुम्हें प्रार्थना न करने देगी, वह तुम्हें ध्यान न करने देगी—क्योंकि तुम उसकी पकड़ के बाहर हो रहे हो।

यही मैं रोध देखता हूं. पति संन्यास ले लेता है तो पत्नी चली आती है रोती हुई—'आपने हमारे परिवार के साथ यह क्या किया? आपने हमें बर्बाद कर दिया।' मैं जानता हूं कि पति ने प्रेम नहीं

नहीं किया पत्नी को; वरना तो वह प्रसन्न होती। वह उत्सव मनाती कि उसका पति ध्यानी हो गया है। लेकिन उसने प्रेम किया नहीं उसे। अब न केवल यह कि उसने प्रेम नहीं किया, वह बढ़ रहा है भीतर की ओर। इसलिए भविष्य में भी कोई संभावना नहीं है उससे प्रेम पाने की।

यदि तुम प्रेम करते हो किसी व्यक्ति को, तो वह व्यक्ति सदा सहायक होता है तुम्हारे विकास में, क्योंकि वह जानता है—या स्त्री हो तो वह जानती है—कि जितने ज्यादा तुम विकसित होते हो, उतने ज्यादा तुम सक्षम हो जाते हो प्रेम में। वह जानती है प्रेम का स्वाद। और सारे ध्यान तुम्हें मदद देंगे ज्यादा प्रेममय होने में; हर तरह से ज्यादा सौंदर्यपूर्ण होने में।

लेकिन यही रोज होता है। यही हुआ शीला की बहन के साथ। वह एक शिविर में थी और वह संन्यास लेना चाहती थी, लेकिन पति की इच्छा न थी। पति बहुत सुशिक्षित हैं। अमरीका में कहीं किसी रिसर्च इंस्टीटधूट के डायरेक्टर हैं। फिर वह घर चली गई। निरंतर संघर्ष बना रहा। वह संन्यास लेना चाहती थी, वह दीक्षित होना चाहती थी, लेकिन वह इजाजत न देते थे। फिर वह आए मुझे देखने कि कौन है

यह आदमी जो हमारी जिंदगी गड़बड़ किए दे रहा है! और उन्होंने संन्यास ले लिया। अब पत्नी खड़ी कर रही है मुसीबत! अब पत्नी एकदम खिलाफ है। और वे बहुत सीधे —सरल आदमी हैं, सचमुच सुंदर। और वे मुझे लिखते हैं : 'मैं क्या करूं? क्योंकि मैं प्रेम करता हूं उसे, लेकिन जब से उसने सुना है कि मैंने संन्यास ले लिया है, वह तो बिलकुल बदल गई है।'

इसी भांति चीजें चलती हैं। हर कोई प्रयत्न. कर रहा है दूसरे पर नियंत्रण करने का।

यम को साधने वाला व्यक्ति स्वयं को साधता है, दूसरों को नहीं। दूसरों को तो वह स्वतंत्रता देता है। तुम दूसरों पर नियंत्रण करने की कोशिश करते हो, लेकिन स्वयं पर कभी नहीं। यम का व्यक्ति स्वयं को संयमित करता है और दूसरों को स्वतंत्रता देता है। वह इतना ज्यादा प्रेम करता है दूसरों को कि उनको स्वतंत्रता दे सकता है। और वह इतना ज्यादा प्रेम करता है स्वयं को कि अपने को संयमित करता है। इसे समझ लेना है : वह स्वयं को इतना ज्यादा प्रेम करता है कि वह अपनी ऊर्जाओं को बिखरा नहीं सकता, उसे एक दिशा देनी होती है।

फिर शरीर के लिए हैं नियम और आसन। नियमित जीवन बहुत स्वास्थ्यप्रद होता है शरीर के लिए, क्योंकि शरीर एक यंत्र है। यदि तुम अनियमित जीवन जीते हो तो तुम शरीर को उलझन में डाल देते हो। आज तुमने भोजन किया एक बजे, कल तुम करते हो ग्यारह बजे; परसों तुम करते हो दस बजे—तुम उलझन में डाल देते हो शरीर को! शरीर की एक आंतरिक जैविक घड़ी होती है; वह एक नियम में चलती है। यदि तुम रोज उसी समय पर भोजन करते हो तो शरीर सदा ऐसी स्थिति में होता है जहां कि वह समझता है कि क्या हो रहा है, और वह तैयार होता है उसके लिए—रस प्रवाहित हो रहे होते हैं पेट में बिलकुल ठीक समय पर। अन्यथा जब भी तुम भोजन करना चाहो, तुम कर सकते हो, लेकिन रस प्रवाहित न हो रहे होंगे। और यदि तुम भोजन करते हो और रस नहीं प्रवाहित हो रहे होते हैं, तो भोजन ठंडा हो जाता है; फिर उसे पचाना कठिन होता है।

रसों को वहा तैयार होना चाहिए भोजन को पचाने के लिए। जब भोजन गरम होता है, तब तुरंत पाचन आरंभ हो जाता। भोजन का छह घंटे में पाचन हो सकता है यदि रस तैयार हों, प्रतीक्षा कर रहे हों। यदि रस तैयार नहीं हैं तो बारह या अठारह घंटे लग जाते हैं। तब तुम बोझिलता अनुभव करते हो, आलस्य लगता है। तब भोजन तुम्हें जीवन तो देता है, लेकिन तुम्हें विशुद्ध जीवन नहीं देता है। वह तुम्हारी छाती पर पड़े किसी बोझ जैसा लगता है; तुम किसी तरह उसे ढोते रहते हो, खींचते रहते हो। और भोजन बड़ी विशुद्ध ऊर्जा बन सकता है—लेकिन तब एक नियमित जीवन की जरूरत है। तुम रोज दस बजे सो जाते हो. शरीर को पता है—ठीक दस बजे शरीर तुम्हें खबर कर देता है। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि इसी से जकड़ू जाओ, कि जब तुम्हारी मां मर रही हो तब भी तुम दस बजे सो जाओ। मैं यह नहीं कह रहा हूं। क्योंकि लोग किसी भी पागलपन में पड़ सकते हैं।

इमेनुएल कांट के विषय में बहुत सी कहानियां प्रचलित हैं। वह नियमितता को लेकर पागल था; वह बात एक पागलपन हो गई थी। किसी भी बात को सनक मत बना लेना। उसकी तो एक नियत दिनचर्या थी, इतनी निश्चित, एक—एक पल निश्चित, कि यदि कोई व्यक्ति, कोई मेहमान आया हो, तो वह देखेगा घड़ी की तरफ और जैसे ही सोने का समय हुआ, वह मेहमान से कोई बात भी न करेगा, क्योंकि उस बात—चीत में समय लगेगा—वह घुस जाएगा बिस्तर में, कंबल ओढ़ लेगा, और वह तो सो गया और मेहमान वहां बैठा ही हुआ है! उसका नौकर आएगा और मेहमान से कहेगा, 'अब आप जाएं, क्योंकि उनके सोने का समय हो गया।'

नौकर का इतना अभ्यास हो गया था कांट के साथ कि कोई जरूरत न थी कहने की कि ' आपका भोजन तैयार है', और कोई जरूरत न थी कहने की कि 'अब आप जाकर सोए।' केवल समय बताना पड़ता। नौकर आएगा कमरे में और कहेगा, 'मालिक, ग्यारह बजे हैं।' वह तुरंत समझ जाएगा, क्योंकि कुछ और कहने की कोई जरूरत न थी।

वह इतना नियम से चलता था कि नौकर धौंस जमाने लगा—क्योंकि वह हमेशा उसे धमकी देता रहता, 'मैं चला जाऊंगा। मेरी तनख्वाह बढ़ाओ।' फौरन तनख्वाह बढ़ानी पड़ती, क्योंकि दूसरा नौकर, कोई नया आदमी तो सब गड़बड़ कर देगा। एक बार उसने नौकर बदल कर भी देखा. एक नया आदमी रखा, लेकिन वह संभव न था, क्योंकि कांट तो पल—पल के हिसाब से जीता था।

वह यूनिवर्सिटी जाता; वह बहुत प्रसिद्ध शिक्षक और महान दार्शनिक था। एक दिन सड़क कीचड़ से भरी थी और बारिश हो रही थी, और उसका एक जूता कीचड़ में धंस गया—तो उसने उसे वहीं छोड़ दिया। वरना उसे देर हो जाए! तो वह चला एक जूता पहने हुए। कोनिग्सबर्ग के विश्वविद्यालय क्षेत्र में ऐसा कहा जाता था कि लोग उसे देख कर अपनी घड़ियां मिला लेते हैं, क्योंकि उसकी हर बात बिलकुल घड़ी के अनुसार होती थी।

एक नए पड़ोसी ने कांट के घर के साथ वाला घर खरीद लिया और उसने नए वृक्ष लगाने शुरू कर दिए। शाम को रोज ठीक पांच बजे, कांट घर के उस ओर आया करता था और खिड़की के पास बेठ जाता था और देखता रहता था आकाश की तरफ। अब वृक्षों ने ढांक दिया खिड़की को और वह श्राकाश नहीं देख सकता था। वह बीमार पड़ गया। वह इतना बीमार पड़ गया... और डाक्टर कोई बीमारी भी नहीं ढूंढ पा रहे थे उसमें, क्योंकि वह इतना नियमित आदमी था! वह असल में बहुत स्वस्थ व्यक्ति था। डाक्टर कुछ पता न लगा सके; वे रोग का निदान न कर सके। तब उस नौकर ने कहां ता, ' आप परेशान न हों। मैं जानता हूं कारण। वे पेडू उनकी नियमितता में बाधा दे रहे हैं। अब वेद खिड़की पर बैठ कर आकाश को नहीं देख पाते हैं। आकाश की ओर देखना अब संभव नहीं रहा है।'

आखिर पड़ोसी को राजी करना पड़ा। पेड कांट दिए गए, और वह बिलकुल ठीक हो गया; बीमारी दूर हो गई।

लेकिन यह तो आदत से जकड़ जाना है। ऐसा जकड़ जाने की कोई जरूरत नहीं; हर बात समझ के साथ करनी होती है।

तो नियम और आसन हैं शरीर के लिए। संयमित शरीर एक सुंदर घटना है—एक संयमित ऊर्जा, ज्योतिर्मय, और सदा अतिरिक्त ऊर्जा से भरपूर और जीवंत, और कभी भी दीन—हीन और मुर्दा नहीं। तब शरीर का भी अपना बोध है, शरीर का भी अपना विवेक है, शरीर एक नई सजगता से ज्योतिर्मय हो उठता है। फिर प्राणायाम एक सेतु है मन और शरीर के बीच। तुम शरीर को बदल सकते हो श्वास के द्वारा, तुम मन को बदल सकते हो श्वास के द्वारा। उसके बाद प्रत्याहार और धारणा—घर लौटना और एकाग्रता—संबंधित हैं मन के रूपांतरण के साथ। फिर ध्यान एक और सेतु है मन और आत्मा के बीच या मन और अनात्मा के बीच—जो भी तुम कहना चाहो उसे, वह दोनों ही है। ध्यान सेतु है समाधि का।

तुम्हारे चारों तरफ समाज है; समाज से तुम तक एक सेतु है — यम। तुम्हारा शरीर है; शरीर के लिए हैं नियम और आसन। फिर एक सेतु है—प्राणायाम, क्योंकि मन का आयाम शरीर से भिन्न है। फिर है मन की तैयारी : प्रत्याहार और धारणा—घर लौट आना और एकाग्र होना। फिर एक सेतु है, यह है अंतिम सेतु—ध्यान। और फिर तुम पहुंच जाते हो मंजिल तक : समाधि।

समाधि बहुत सुंदर शब्द है। इसका अर्थ है. अब हर बात का समाधान हुआ। इसका अर्थ ही है समाधान : सब मिल गया। अब कोई आकांक्षा न रही; कुछ पाने को न रहा; कहीं जाने को न रहा; तुम घर आ गए।

आज इतना ही।

प्रवचन 46 - ऊर्जा का रूपांतरण

प्रश्न—सार:

1—आप हमारे लिए कौन सा मार्ग उदघाटित कर रहे हैं?

2—आपके पास आकर ध्यानमय जीवन सरल और स्वाभाविक हो गया है। लेकिन मैंने बुद्धत्व की' आशा छोड़ दी है। क्या ये दोनों बातें विरोधाभासी हैं?

3—क्या अस्तित्व मुझसे प्रेम करता है?

4—क्या दमन के मार्ग से चेतना की ऊंचाइओं को छूना संभव है?

5—झेन की सहजता और योग का अनुशासन क्या कहीं आपस में मिलते हैं?

6—आपके विरूद्ध प्रचार करने के लिए मुझे आपका आशीर्वाद चाहिए!

7—प्रेम या ध्यान—किस द्वार से प्रवेश करें?

8—आपके विरूद्ध हो रहे प्रचारों से घिरा साधक क्या करे?

9—आप किसी की निंदा नहीं करते, फिर सत्य साईंबाबा, कृष्णमूर्ति और अमरीकी गुरूओं की आलोचना क्यों करते है?

10—क्या केवल पुस्तकें पढ़ कर बुद्धत्व घट सकता है?

11—आपका सत्संग हमें घंटे, डेढ़ घंटे से ज्यादा क्यों नहीं मिलता?

12—योग के आठ चरणों का क्रम क्या किसी के लिए बदला भी जा सकता है?

13—तिब्बती गुरु चोग्याम त्रुंगपा का शराब पीकर मूर्च्छित हो जाना उनकी क्या स्थिति बताता है?

पहला प्रश्न :

आप हमारे लिए कौन सा मार्ग उदघाटित कर रहे हैं?

वह कोई मार्ग नहीं है; तुम्हें चलना नहीं है उस पर। बल्कि, वह एक सीधी सी समझ है। तुम्हें सारी यात्राओं को रोक देना है। मार्ग होता है यात्रा करने के लिए और कहीं जाने के लिए; मार्ग होता है कहीं पहुंचने के लिए, कुछ पाने के लिए; मार्ग साधन है और साध्य है कहीं बहुत दूर भविष्य में। यही है मेरा मतलब, जब मैं कहता हूं कि जो कुछ भी मैं कह रहा हूं तुम से, वह मार्ग की बात नहीं है, वह केवल सीधी—साफ समझ की बात है। यदि तुम समझ लो, तो तुम मंजिल पर पहुंच ही गए। यदि तुम समझ लो, तो तुम सदा मंजिल पर ही हो। एक क्षण के लिए भी तुम कभी दूर नहीं गए हो मंजिल से, तुम स्वप्न देख रहे होओगे कि तुम दूर चले गए हो, लेकिन तुमने अपना घर एक क्षण के लिए भी छोड़ा नहीं है।

यह है अ—मार्ग। या अगर तुम इसे मार्ग ही कहना चाहते हो, अगर तुम्हें मार्ग शब्द बहुत प्रीतिकर हो, तो तुम इसे एक मार्ग—विहीन मार्ग कह सकते हो। लेकिन मुझे समझने का प्रयत्न करो. यह कोई मार्ग नहीं है। मैं तुम्हें साधन नहीं दे रहा हूं बल्कि साध्य ही दे रहा हूं।

दूसरा प्रश्न :

जब से आपके पास आया हूं ध्यानमय जीवन जीना ज्यादा सरल और ज्यादा स्वाभाविक हो गया है फिर भी प्रकट में मैने बुद्धत्व की पूरी तरह आशा छोड़ दी है। क्या ये दोनों बातें विरोधाभासी हैं?

बिलकुल नहीं। बुद्धत्व पाने के लिए यह एक अनिवार्य शर्त है कि तुम्हें उसके प्रति सारी आशाओं को और इच्छाओं को छोड़ देना होगा। अन्यथा बुद्धत्व की आकांक्षा ही एक दुख—स्वप्न बन जाती है। और जितनी ज्यादा तुम आकांक्षा करते हो उसकी, उतने ही तुम उससे दूर होते हो—जितनी बड़ी आकांक्षा है उतनी ही ज्यादा दूरी होगी। तो उसके प्रति सारी आकांक्षाओं को, सारी आशाओं को छोड़ दो। यदि तुम बुद्धत्व के प्रति सचमुच ही आकांक्षारहित हो, तो किसी भी क्षण संभावना है उसके घटने की। थोड़ी जगह निर्मित करो; उसके प्रति आकांक्षा से मत भरे रहो।

बुद्धत्व के घटने में सब से बड़ी बाधा है उसकी आकांक्षा, क्योंकि जो मन कामना करता है

और आकांक्षा करता है, वह सदा ही तनावपूर्ण होता है। उसके आस—पास एक सूक्ष्म बेचैनी होती है, उसे कभी भी चैन नहीं होता। कैसे तुम्हें चैन हो सकता है यदि तुम्हें कहीं जाना हो, कहीं पहुंचना हो? तुम बैठे हुए हो सकते हो, लेकिन तुम चल ही रहे होओगे। ऊपर—ऊपर तुम शांत दिखोगे, लेकिन भीतर से तुम बेचैन हो। छोड़ो यह नासमझी। आकांक्षा से कभी किसी को बुद्धत्व उपलब्ध नहीं हुआ है। इसीलिए सारे बुद्ध पुरुष जोर देते हैं कि आकांक्षारहित हो जाओ।

मैं यह नहीं कह रहा हूं कि जब तुम आकांक्षारहित होते हो तो तुम निर्वाण या बुद्धत्व को उपलब्ध हो जाओगे; मैं यह कह रहा हूं कि जब तुम आकांक्षारहित होते हो, तो तुम ही होते हो निर्वाण, तुम ही होते हो बुद्धत्व। आकांक्षा है तुम्हारे भीतर की अशांति, झील में उठी तरंगों की भांति—तरंगें खो जाती हैं तो झील शांत हो जाती है।

सांसारिक चीजों की इच्छाओं को गिरा देना आसान है, बहुत आसान है। असल में उनसे चिपके रहना नितांत मूढ़ता है। केवल मूढ़ व्यक्ति ही सांसारिक चीजों से चिपके रहते हैं, क्योंकि कोई भी देख सकता है कि वे तुम से छिनने ही वाली हैं। सारे परिग्रह व्यर्थ हैं, बेकार हैं। और जिसके पास भी थोड़ी सी बुद्धि है, वह सजग हो सकता है कि चीजों को इकट्ठा किए जाना तुम्हें कोई समृद्धि न देगा; बल्कि इसके विपरीत, वह तुम्हें और— और दरिद्र बनाएगा। जितनी ज्यादा चीजें तुम्हारे पास होंगी, उतना ज्यादा तुम अनुभव करोगे कि तुम रिक्त हो।

एक समृद्ध व्यक्ति—गहरे तल पर—बहुत दरिद्र हो जाता है। तुम सम्राटों से ज्यादा बड़े भिखारी नहीं खोज सकते। वे भलीभांति जानते हैं कि उनके पास सब कुछ है जिसकी वे आकांक्षा कर सकते थे, तो पहली बार वे सजग होते हैं कि भीतर कुछ बदला नहीं है. कोई संतुष्टि घटित नहीं हुई, कोई परितृप्ति नहीं आई। भीतर उतनी ही अशांति है जितनी पहले थी; सारा प्रयास बेकार गया, और सारा जीवन व्यर्थ गंवाया भाग—दौड़ में।

नहीं, सांसारिक आकांक्षाओं को गिरा देना कठिन नहीं है। लेकिन जब तुम सांसारिक आकांक्षाओं को गिरा देते हो तो मन तुरंत पारलौकिक आकांक्षाए निर्मित कर लेता है : मोक्ष, निर्वाण, बुद्धत्व, ईश्वर। अब तुम इनके पीछे भागते हो। स्थिति वही की वही रहती है—तुम आकांक्षा में ही जीते हो। विषय का सवाल नहीं है, असली सवाल यह है कि तुम आकांक्षा करते हो या नहीं? असली सवाल यह नहीं है कि तुम किसकी आकांक्षा करते हो।

तुम्हारे सारे आध्यात्मिक—तथाकथित आध्यात्मिक—शिक्षक तुम्हें भ्रांति में डाल देते हैं, क्योंकि वे कहते हैं, 'आकांक्षा का विषय बदल दो। सांसारिक चीजों की आकांक्षा मत करो; परमात्मा की आकांक्षा करो।' लेकिन मैं तुमसे कहता हूं कि यदि तुम परमात्मा की आकांक्षा करते हो, तो परमात्मा भी सांसारिक विषय हो जाता है। मेरे देखे संसार की परिभाषा ऐसी है : जिस चीज की आकांक्षा की जा सके वह संसार है।

परमात्मा की आकांक्षा नहीं की जा सकती। तुम परमात्मा को अपनी आकांक्षा का विषय नहीं बना सकते; वह उसकी विशुद्धता को नष्ट करना है। बुद्धत्व की आकांक्षा नहीं की जा सकती, क्योंकि बुद्धत्व केवल तभी घटता है जब कोई आकांक्षा नहीं रहती। और बुद्धत्व कुछ ऐसी बात नहीं जो बाहर से आती है। जब मन आकांक्षा से मुक्त हो जाता है, तो अचानक तुम भीतर बैठे सम्राटों के सम्राट के प्रति सजग होते हो। वह सदा से वहां है, लेकिन तुम्हीं इतने ज्यादा उलझे हुए थे आकांक्षा में और पहुंचने में और पाने में और उपलब्ध होने में।

उपलब्धि की आकांक्षा से भरा मन ही बाधा है। इसलिए अच्छा है कि तुमने बुद्धत्व की पूरी तरह आशा छोड़ दी है।

लेकिन मैं नहीं समझता कि तुमने पूरी तरह आशा छोड़ दी है—अन्यथा तो घटना घट गई होती। तुम ठीक कहते हो : यद्यपि प्रकट में तो तुमने पूरी तरह आशा छोड़ दी है बुद्धत्व की, लेकिन गहरे में तुम अभी भी स्वप्न देख रहे हो उसके, आकांक्षा कर रहे हो उसकी। प्रकट में तुमने छोड़ दी होगी आशा, लेकिन कहीं गहरे में आशा जरूर बनी है, वरना तो कोई समस्या ही नहीं है कि बुद्धत्व घटित क्यों नहीं हुआ। उसे तो तुरंत घटना चाहिए—स्व पल का भी अंतराल नहीं होता। यह बिलकुल निश्चित है। जब आकांक्षा ने तुम्हें पूरी तरह छोड़ दिया होता है, तो बुद्धत्व घटता ही है। वस्तुत: वह और कुछ नहीं है—तुम ही हो आकांक्षारहित।

तो थोड़ा गहरे तलाशना, थोड़ा और गहरे खोदना अपने भीतर, तुम फिर पाओगे आकांक्षाओं को वहा, पर्तें हैं आकांक्षाओं की; और उन्हें फेंकते जाओ। प्याज को पूरी तरह छील डालो एकदम भीतर तक। एक दिन घटना घटेगी। किसी भी दिन संभव है वह। किसी भी क्षण, जब कोई आकांक्षा नहीं होती, उसकी कोई स्फुरण। भी नहीं होती—कोई कंपन नहीं, कोई तरंग नही—और चेतना निर्धूम होती है; कामना, आकांक्षा का कोई धुंआ नहीं होता; केवल चेतना की ज्योति होती है, चेतना की लपट—अचानक तुम हंसने लगते हो, अचानक तुम्हें समझ आ जाती है बात कि जिसे तुम खोज रहे थे, वह तो तुम्हारे भीतर ही था।

यही मतलब है जीसस का जब वे जोर दिए जाते हैं कि 'प्रभु का राज्य तुम्हारे भीतर है।' यदि वह बाहर होता तो उसकी आकांक्षा की जा सकती थी; यदि वह कहीं बाहर होता तो उस तक पहुंचा जा सकता था किसी मार्ग से। व तुम ही हो! इसीलिए मैं कहता हूं कि मेरे पास कोई मार्ग नहीं है तुम्हें देने को। मैं तो केवल अपने बोध को बांट सकता हूं तुम्हारे साथ।

तीसरा प्रश्न:

क्या अस्तित्व मुझसे प्रेम करता है?

यह प्रश्न पूछना गलत है। तुम्हें इसके विपरीत पूछना चाहिए, 'क्या तुम प्रेम करते हो अस्तित्व से? क्योंकि अस्तित्व कोई व्यक्ति नहीं है, वह प्रेम नहीं कर सकता तुमसे। उसका कोई केंद्र नहीं है, या कि तुम कह सकते हो सब जगह उसका केंद्र है। लेकिन वह एक निर्वैयक्तिक घटना है। निर्वैयक्तिक अस्तित्व कैसे प्रेम कर सकता है तुमसे? तुम प्रेम कर सकते हो।

लेकिन जब तुम प्रेम करते हो, तो अस्तित्व प्रतिसंवेदन करता है—समग्रता से प्रतिसंवेदन करता है। यदि तुम एक कदम उठाते हो अस्तित्व की ओर, तो अस्तित्व हजारों कदम उठाता है तुम्हारी —ओर, लेकिन वह एक प्रतिसंवेदन ही है।

तुम्हें लाओत्सु की बात समझनी होगी। लाओत्सु कहता है कि अस्तित्व का स्वभाव स्त्रैण है। स्त्री प्रतीक्षा करती है; वह कभी पहल नहीं करती। पुरुष को आगे आना पड़ता है और पहल करनी

पड़ती है। पुरुष को आग्रह और प्रणय—निवेदन करना पड़ता है और राजी करना पड़ता है। अस्तित्व स्त्रैण है—वह प्रतीक्षा करता है। तुम्हें निवेदन करना होता है; तुम्हें प्रेम प्रकट करना होता है; तुम्हें पहल करनी होती है.. और तब अस्तित्व बरसता है तुम पर—असीम बरसता है, भर देता है अनंत—अनंत द्वारों से। ठीक स्त्री की ही भांति : जब तुमने राजी कर लिया होता है उसे, तो वह अपने को न्यौछावर कर देती है।

कोई पुरुष इतना प्रेमपूर्ण नहीं हो सकता जितनी कि स्त्री हो सकती है। पुरुष तो सदा आशिक प्रेमी ही रहता है; उसका संपूर्ण अस्तित्व कभी भी प्रेम में नहीं डूबता। स्त्री समग्ररूपेण डूबती है प्रेम में, वही उसका पूरा जीवन होता है, उसकी प्रत्येक श्वास होती है। लेकिन वह प्रतीक्षा करती है। वह कभी पहल न करेगी; वह कभी तुम्हारा पीछा न करेगी; और यदि कोई स्त्री तुम्हारा पीछा करे—तो चाहे कितनी ही सुंदर क्यों न हो वह स्त्री—तुम भयभीत हो जाओगे उससे। वह स्त्रैण न जान पड़ेगी। वह इतनी आक्रामक लगेगी कि उसका सारा सौंदर्य कुरूपता में बदल जाएगा। स्त्री निष्क्रिय होती है, पैसिव होती है। खयाल में ले लेना इस शब्द को : निष्क्रिय, निष्क्रियता, पैसिविटी।

अस्तित्व मां है। ईश्वर को 'मां' कहना सदा ही बेहतर है 'पिता' कहने की अपेक्षा। पिता कहना उतना सुसंगत नहीं है। अस्तित्व मां है, स्त्रैण है, प्रतीक्षा कर रहा है तुम्हारी—प्रतीक्षा कर रहा है तुम्हारी सदा—सदा से। लेकिन दस्तक तो तुम्हें ही देनी होगी द्वार पर। यदि तुम दस्तक दो तो तुम द्वार खुला हुआ पाओगे, लेकिन यदि तुम दस्तक ही नहीं देते तो तुम खड़े रह सकते हो द्वार पर ही।

अस्तित्व उसे नहीं खोलेगा; वह आक्रामक नहीं है। प्रेम तक में भी वह आक्रामक नहीं है। इसीलिए मैं कहता हूं कि वह प्रतिसंवेदित होता है।

लेकिन गलत प्रश्न मत पूछो। मत पूछो कि 'क्या अस्तित्व मुझसे प्रेम करता है?' अस्तित्व से प्रेम करो और तुम पाओगे कि तुम्हारा प्रेम कुछ भी नहीं है। अस्तित्व तुम्हें इतना अनंत प्रेम देता है, तुम्हारे प्रेम को इतने असीम ढंग से प्रतिसंवेदित करता है—लेकिन वह है प्रतिसंवेदन ही—अस्तित्व कभी पहल नहीं करता; वह प्रतीक्षा करता है। और यह बात सुंदर है कि वह प्रतीक्षा करता है। वरना तो प्रेम का सारा सौंदर्य ही खो जाएगा।

लेकिन यह प्रश्न उठता है, इसका संबंध तुम्हारे मन से है। मनुष्य का मन इसी तरह काम करता है, वह सदा यही पूछता है, 'क्या दूसरा प्रेम करता है मुझसे?' स्त्री, पत्नी पूछती है, 'क्या पति प्रेम करता है मुझसे?' पति पूछता रहता है, 'क्या पत्नी, स्त्री, प्रेम करती है मुझसे?' बच्चे पूछते हैं, 'क्या मां—बाप प्रेम करते हैं हमें?' और माता—पिता सोचते हैं कि बच्चे उन्हें प्रेम करते हैं या नहीं? तुम सदा दूसरे के विषय में पूछते हो।

गलत प्रश्न पूछ रहे हो तुम। गलत दिशा में बढ रहे हो तुम। तुम्हारे सामने दीवार आ जाएगी; तुम द्वार न पाओगे। तुम्हें चोट लगेगी, क्योंकि तुम टकराओगे दीवार से। शुरुआत ही गलत है। तुम्हें सदा पूछना चाहिए, 'क्या मैं प्रेम करता हूं पत्नी से?' 'क्या मैं प्रेम करती हूं पति से?' 'क्या मैं प्रेम करता हूं बच्चों से? 'क्या मैं प्रेम करता हूं अपने माता—पिता से?' —क्या तुम प्रेम करते हो?

और यही है रहस्य. यदि तुम प्रेम करते हो, तो अचानक तुम पाते हो कि हर कोई प्रेम करता है तुम से। यदि तुम प्रेम करते हो पत्नी से, तो वह प्रेम करती है तुम्हें, यदि तुम प्रेम करती हो पति से, तो वह प्रेम करता है तुम्हें; यदि तुम प्रेम करते हो बच्चों से, तो वे प्रेम करते हैं तुम्हें। जो व्यक्ति अपने हृदय से प्रेम करता है, वह चारों ओर से प्रेम पाता है। प्रेम कभी निष्फल नहीं जाता। वह फूलता है, फलता है।

लेकिन तुम्हें ठीक शुरुआत करनी होगी, ठीक मार्ग पर चलना होगा; अन्यथा प्रत्येक व्यक्ति पूछ रहा है, 'क्या दूसरा प्रेम करता है मुझसे?' और दूसरा भी यही पूछ रहा है। तब कोई प्रेम नहीं करता; तब प्रेम एक काल्पनिक स्वप्न बन जाता है; तब प्रेम खो जाता है धरती से—जैसा कि हो गया है। प्रेम खो गया है; वह केवल कवियों की कविताओं में जीवित है—मन की उड़ान, कल्पनाएं, स्वप्न। वास्तविकता अब नितांत शून्य है प्रेम से, क्योंकि तुम शुरुआत ही गलत प्रश्न से करते हो। छोड़ो इस प्रश्न को रोग की भांति। छोड़ो इसे और बचो इससे, और सदा पूछो, 'क्या मैं प्रेम करता हूं?' और यही बात चाबी बन जाएगी। इस चाबी द्वारा तुम कोई भी हृदय खोल सकते हो। और इस चाबी द्वारा, धीरे— धीरे तुम इतने कुशल हो जाओगे कि तुम इस चाबी द्वारा पूरे अस्तित्व को खोल सकते हो; तब यह प्रार्थना बन जाती है।

जरा यह प्रश्न पूछना, 'क्या अस्तित्व प्रार्थना करता है तुमसे?' तो यह बात मूढ़तापूर्ण मालूम पडेगी; तो यह बिलकुल व्यर्थ मालूम पड़ेगी।'क्या अस्तित्व प्रार्थना करता है तुमसे?' तुम ऐसा पूछ भी नहीं सकते; लेकिन प्रार्थना और कुछ भी नहीं है सिवाय प्रेम के परम विकास के।

तुम अस्तित्व के साथ प्रार्थना में होते हो और तुम पाते हो कि चारों ओर से प्रेम के झरने तुम्हारी ओर प्रवाहित हो रहे हैं। तुम तृप्त हो जाते हो। अस्तित्व के पास बहुत कुछ है तुम्हें देने के लिए लेकिन उसके लिए तुम्हें खुला होना होगा। और खुले होना केवल प्रेम में संभव है; तब तुम खुले होते हो, अन्यथा तो तुम बंद रहते हो। और अस्तित्व भी कुछ नहीं कर सकता यदि तुम बंद हो।

चौथा प्रश्न:

क्या उच्चतर अवस्थाओं तक पहुंचना संभव है जब कि व्यक्ति बाहरी स्थितियों और भ्रांतियों के कारण अपने अस्तित्व के कुछ हिस्सों को इनकार कर रहा हो या उनका दमन कर रहा हो?

नहीं, ऐसा असंभव है। तुम मुझसे पूछ रहे हो, 'क्या सीढ़ी के ऊपर केवल आशिक रूप से जाना संभव है?' तुम्हारा कोई हिस्सा नीचे छूट गया है, तुम्हारा कोई हिस्सा कहीं सीढ़ी पर छूट गया है, और केवल तुम्हारा एक हिस्सा ही पहुंचता है एकदम अंत तक—कैसे संभव है यह? तुम एक इकाई हो, तुम एक अखंड इकाई हो, तुम्हें बांटा नहीं जा सकता है। यही अर्थ है 'व्यक्ति' शब्द का : जिसे बांटा न जा सकता हो। तुम एक व्यक्ति हो। परमात्मा के द्वार तक तुम्हें जाना है अपनी समग्रता में, अखंड; कोई चीज पीछे नहीं छूट सकती।

इसीलिए मेरा बार—बार कहना है कि यदि तुम दमन करते हो अपने क्रोध का तो तुम परमात्मा के मंदिर में प्रविष्ट न हो पाओगे—क्योंकि वही तुम कर रहे हो. तुम कोशिश कर रहे हो क्रोध को मंदिर के बाहर छोड़ देने की और मंदिर में प्रविष्ट हो जाने की। कैसे प्रवेश कर सकते हो तुम? क्योंकि कौन बाहर छूट जाएगा क्रोध के साथ? वह तुम्हीं हो। यदि तुम कामवासना को दबाने का प्रयत्न कर रहे हो तो तुम परमात्मा के मंदिर में प्रवेश न कर पाओगे, क्योंकि कामवासना क्या है? वह तुम्हीं हो—तुम्हारी ही ऊर्जा है। कोई चीज बाहर नहीं छोड़ी जा सकती है। यदि तुम कुछ भी बाहर छोड़ देते हो, तो तुम पूरे के पूरे बाहर छूट जाओगे। तब केवल एक ही संभावना है : तुम रहोगे तो बाहर और तुम स्वप्न देखोगे कि तुम भीतर प्रविष्ट हो गए हो। यही तो तुम्हारे सारे महात्मा कर रहे हैं। वे मंदिर के बाहर

रह कर स्वप्न देख रहे हैं कि वे भीतर प्रवेश कर गए हैं और देख रहे हैं परमात्मा को; वे स्वर्ग में हैं या मोक्ष पा गए हैं!

नहीं; केवल अखंड रूप से ही तुम प्रवेश करोगे—स्व भी हिस्सा पीछे नहीं छोड़ा जा सकता। तो करना क्या होगा? मुझे मालूम है कि कुरूप हिस्से हैं; और मेरी समझ में आती है तुम्हारी उलझन भरी स्थिति। तुम नहीं चाहोगे उन कुरूप हिस्सों को परमात्मा के पास ले जाना। तुम्हारी तकलीफ, तुम्हारी मुश्किल मेरी समझ में आती है। तुम सारी कामवासना को, सारे क्रोध को, सारी ईर्ष्या को, घृणा को गिरा देना चाहते हो—तुम शुद्ध, कुंआरे, निर्दोष हो जाना चाहते हो। अच्छी बात है। तुम्हारे विचार शुभ हैं, लेकिन जिस ढंग से तुम इसे करना चाह रहे हो, वह संभव नहीं है। केवल एक ही मार्ग है. रूपांतरण। अपने हिस्सों को काटो मत; उन्हें रूपांतरित करो। कुरूपता सुंदरता बन सकती है।

तुमने कभी ध्यान दिया कि बगीचे में क्या घटता है? तुम गोबर की खाद लाते हो, दुर्गंध होती है—उर्वरक, खाद—बुरी तरह दुर्गंध उठ रही होती है। लेकिन थोड़े समय में वही खाद धरती में विलीन हो जाती है; और वह प्रकट होती है सुंदर फूलों के रूप में जो इतनी दिव्य सुगंध लिए होते हैं! यह है रूपांतरण। दुर्गंध बन जाती है सुगंध; खाद का बेहूदा रूप बन जाता है सुंदर पुष्प।

तो जीवन को चाहिए रूपांतरण। तुम परमात्मा के मंदिर में अखंड प्रवेश करोगे—रूपांतरित होकर। किसी भी चीज का दमन मत करना, बल्कि उसे रूपांतरित करने की तरकीब खोजने का प्रयास करना। क्रोध ही करुणा बन जाता है। जिस व्यक्ति में क्रोध नहीं, वह करुणावान भी नहीं हो सकता—कभी नहीं। यह सांयोगिक ही नहीं है कि सभी चौबीस जैन तीर्थंकर क्षत्रिय थे—योद्धा, क्रोधी; और वे ही देशना देने लगे अहिंसा और करुणा की। बुद्ध योद्धा हैं, क्षत्रिय परिवार से आते हैं, जैसे समुराई होते हैं, और वे करुणा के महानतम संदेशवाहक हो गए। क्यों? उनके पास तुम से कहीं ज्यादा क्रोध था। जब क्रोध परिवर्तित और रूपांतरित हुआ, तो निश्चित ही वह विराट ऊर्जा बन गया।

तुम्हारे लिए क्रोध जरूरी है। जैसे तुम अभी हो तुम्हें क्रोध की जरूरत है, क्योंकि यह एक सुरक्षा कवच है; और रूपांतरण के बाद भी तुम्हें इसकी आवश्यकता होगी, क्योंकि तब यह ईंधन बन जाता है—ऊर्जा बन जाता है। यह एक शुद्ध ऊर्जा है।

क्या तुमने किसी छोटे बच्चे को क्रोध में देखा है? कितना सुंदर लगता है बच्चा—लाल, दमदमाता, ऊर्जा से भरपूर, जैसे कि विस्फोट कर सकता हो और नष्ट कर सकता हो सारे संसार को। बिलकुल छोटा, नन्हा सा बच्चा, परमाणु ऊर्जा की भांति मालूम पड़ता है—चेहरा लाल, उछल—कूद मचा रहा और रो रहा—मात्र ऊर्जा, शुद्ध ऊर्जा। यदि तुम बच्चे को रोको नहीं और उसे सिखाओ कि इस ऊर्जा को कैसे समझें, तो किसी दमन की कोई जरूरत न होगी. वही ऊर्जा रूपांतरित हो सकती है।

तुम ध्यान देना : बादल घिरते हैं आकाश में, और जोर से बिजली चमकती है, और जोर से बादल गरजते हैं। यह बिजली, अभी कुछ सौ वर्ष पहले तक, मनुष्य के जीवन का एक आतंकपूर्ण

तथ्य थी। मनुष्य इतना डरता था कड़कती बिजली से कि अभी तो तुम कल्पना भी नहीं कर सकते, क्योंकि अब वही बिजली विद्युत—ऊर्जा बन गई है। वह सेवक बन गई है घर की वह तुम्हारा एयरकंडीशनर चलाती है; वह तुम्हारा फ्रिज चलाती है। वह दिन—रात निरंतर काम करती है—कोई सेवक उस तरह से काम नहीं कर सकता। वही बिजली एक बड़ा भयंकर तथ्य थी मानव—जीवन का।

पहला देवता कड़कती—चमकती बिजली के कारण ही पैदा हुआ— भय के कारण इंद्र पैदा हुआ—गर्जन, वज्रपात और बिजली का देवता। और लोगों ने उसे पूजना शुरू कर दिया। क्योंकि लोगों ने सोचा कि यह कड़कती बिजली एक सजा के रूप में आती है। लेकिन अब कोई इसकी फिक्र नहीं करता। अब तुम इसके रहस्य को जानते हों—तुमने तरकीब खोज ली है। अब वही बिजली, इंद्र का दिया दंड, सेवक की भांति काम करती है. इंद्र तुम्हारा पंखा चला रहे हैं। अब इंद्र देवता न रहे, बल्कि सेवक हो गए। और इतने विनीत सेवक कि कभी हड़ताल नहीं करते, कभी तनख्वाह बढ़ाने के लिए नहीं कहते, कुछ नहीं कहते—बिलकुल आज्ञाकारी सेवक।

ऐसा ही घटता है मनुष्य के अंतराकाश में—क्रोध की बिजली चमकती है। बुद्ध में यही बिजली करुणा बन जाती है। अब देखना बुद्ध का चेहरा—इतना आलोकित! कहां से आता है यह आलोक? यह रूपांतरित क्रोध है। तुम भयभीत हो कामवासना से, लेकिन क्या कभी तुमने सुना कि कोई नपुंसक व्यक्ति बुद्धत्व को उपलब्ध हुआ? जरा बताना मुझे। क्या तुमने सुना है किसी नपुंसक व्यक्ति के बारे में, जिसमें कि काम—ऊर्जा नहीं थी, और जो मसीहा हो गया हो—महावीर, कि मोहम्मद, कि बुद्ध, कि क्राइस्ट? क्या तुमने सुना है ऐसा कभी? ऐसा कभी नहीं होता। ऐसा हो नहीं सकता, क्योंकि ऊर्जा ही नहीं होती। यह काम—ऊर्जा ही है जो ऊपर उठती है। यह काम—ऊर्जा ही है जो रूपांतरित होती है और रूपांतरित होकर समाधि बन जाती है।

काम—ऊर्जा ही बनती है समाधि, परम चेतना। मैं तुमसे कहता हूं : जितने ज्यादा तुम कामुक हो उतनी ही ज्यादा संभावना है; इसलिए भयभीत मत होना। ज्यादा काम—ऊर्जा इतना ही बताती है कि तुममें बहुत ज्यादा ऊर्जा है। अच्छी है बात। तुम्हें अनुग्रह मानना चाहिए परमात्मा का। लेकिन तुम अनुगृहीत नहीं हो—उलटे तुम अपराधी अनुभव करते हो; उलटे तुम तो परमात्मा के विरुद्ध शिकायत से भरे मालूम पड़ते हो कि 'तुमने यह ऊर्जा क्यों दी मुझे?'

तुम नहीं जानते कि भविष्य में इस ऊर्जा द्वारा क्या संभव है। बुद्ध नपुंसक नहीं हैं। उन्होंने बहुत ही परिपूर्ण काम—जीवन जीया—कोई साधारण काम—जीवन नहीं। उनके पिता ने राज्य की सुंदरतम स्त्रियां उनकी सेवा में उपलब्ध करवा दी थीं, सारी सुंदर युवतियां उनकी सेवा में संलग्न थीं। तो ऊर्जा जरूरी है, और ऊर्जा सदा सुंदर होती है। यदि तुम उसका उपयोग करना नहीं जानते, तो वह असुंदर हो जाती है; तब वह यहां—वहां बिखरने लगती है। ऊर्जा को ऊपर ले जाना है।

काम, सेक्स तुम्हारे अस्तित्व का निम्नतम केंद्र है—केवल वही सब कुछ नहीं है : तुम्हारे अस्तित्व के सात केंद्र हैं। जब ऊर्जा ऊपर उठती है—यदि तुम्हें पता चल जाए इस तरकीब का कि कैसे उसे ऊपर ले जाना है, तो जैसे—जैसे वह बढ़ती है एक केंद्र से दूसरे केंद्र तक, तुम बहुत से रूपांतरण अनुभव करते हो। जब ऊर्जा हृदय—चक्र के पास आती है, हृदय के केंद्र में आती है, तुम प्रेम से इतने भर जाते हो कि तुम प्रेम ही हो जाते हो। जब ऊर्जा तीसरे नेत्र के केंद्र में आती है, तो तुम बोध हो जाते हो, सजगता हो जाते हो। जब ऊर्जा अंतिम चक्र सहस्रार में आती है, तब तुम खिल उठते हो, तुम्हारा फूल खिल जाता है, तुम्हारे जीवन का वृक्ष पूर्ण रूप से खिल उठता है. तुम बुद्ध हो जाते हो। लेकिन ऊर्जा वही है।

तो निंदा मत करो; दमन मत करो। रूपांतरित करो। ज्यादा बोधपूर्ण, ज्यादा सजग होओ; केवल तभी तुम समग्र रूप से विकसित हो सकोगे। और दूसरा कोई उपाय नहीं है। दूसरा उपाय केवल सपने देखना और कल्पना करना है।

पांचवां प्रश्न :

झेन कहता है 'जब भूख लगे तब भोजन करो और जब प्यास लगे तब पानी पीओ।' पतंजलि कहते हैं 'नियमितता।' तो सहज— स्फूर्तता और नियमितता में तालमेल कैसे बिठाएं?

तालमेल बिठाने की कोई जरूरत नहीं है। यदि तुम सच में सहज—स्फूर्त हो, तो तुम नियमित हो जाओगे। यदि तुम सच में नियमित हो, तो तुम सहज—स्फूर्त हो जाओगे। तालमेल बिठाने की कोई जरूरत नहीं है। यदि तुम तालमेल बिठाना चाहोगे तो तुम बुरी तरह उलझ जाओगे। तुम एक को चुन लेना और दूसरे को बिलकुल भूल जाना। यदि तुम झेन को चुनते हो, तो पतंजलि को भूल जाओ, जैसे कि वे कभी हुए ही नहीं; तब पतंजलि तुम्हारे लिए नहीं हैं। और एक दिन अचानक तुम पाओगे कि सहज—स्फूर्तता के पीछे—पीछे नियमितता आ गई है।

कैसे होता है यह? यदि तुम सहज—सरल हो, यदि तुम तभी भोजन करते हो जब तुम्हें भूख लगती है—और यदि तुम कभी अपनी इच्छा के विपरीत भोजन नहीं करते, तुम कभी अपनी इच्छा से अधिक भोजन नहीं करते, तुम सदा अपनी जरूरत के हिसाब से भोजन करते हो—तो धीरे— धीरे तुम थिर हो जाओगे नियमितता में। क्योंकि शरीर एक यंत्र है, बहुत ही सुंदर जैविक यंत्र है। तब रोज उसी समय

तुम पाओगे कि तुम्हें भूख लग आती है; रोज उसी समय तुम पाओगे कि तुम्हें नींद आ जाती है। जीवन नियमित हो जाएगा।

लेकिन यदि तुम भयभीत हो सहजता से, जैसे कि लोग भयभीत हैं, क्योंकि संस्कृति है, सभ्यता है, धर्म है—संसार की सारी जहरीली चीजें हैं—उन्होंने तुम्हें भयभीत कर दिया है सहजता से; वे कहती हैं कि तुम एक जानवर छिपाए हुए हो अपने भीतर और यदि तुम सहज होते हो तो तुम भटक सकते हो। तो यदि तुम बहुत ज्यादा भयभीत हो सहजता से, तो पतंजलि को सुनना।

पतंजलि मेरे लिए सदा द्‌वितीय चुनाव रहे हैं, प्रथम कभी नहीं रहे। वे उन रुग्ण व्यक्तियों के लिए हैं जो संस्कृति द्‌वारा दूषित हो गए हैं, अस्वाभाविक हो गए हैं; सभ्यता और धर्म द्‌वारा विषाक्त हो गए हैं, पंडित—पुरोहितों द्‌वारा विकृत हो गए हैं। तब पतंजलि हैं। पतंजलि एक चिकित्सा हैं। इसीलिए मैं कहता हूं कि पतंजलि निन्यानबे प्रतिशत लोगों के लिए उपयोगी हैं, क्योंकि निन्यानबे प्रतिशत लोग बीमार हैं। यह पृथ्वी एक बड़ा अस्पताल है। पतंजलि एक चिकित्सक हैं, एक वैज्ञानिक हैं।

झेन स्वाभाविक, सहज लोगों के लिए है, निर्दोष बच्चों के लिए है। यदि किसी दिन कोई सुंदर संसार होगा, तो पतंजलि को भुला दिया जाएगा; लेकिन झेन रहेगा। यदि यह संसार और— और ज्यादा बीमार हो जाएगा, तो झेन को भुला दिया जाएगा; केवल पतंजलि होंगे।

झेन कहता है कि स्वाभाविक रहो। क्या तुमने प्रकृति पर ध्यान दिया है? क्या तुमने प्रकृति की सहज—स्वाभाविकता और नियमितता दोनों को देखा है? वर्षा आती है, गर्मी आती है, सर्दी आती है—एक नियमित कम में ऋतुएं घूमती रहती हैं। और यदि तुम कोई अव्यवस्था पाते हो, तो वह तुम्हारे ही कारण है, क्योंकि मनुष्य ने अव्यवस्थित कर दिया है प्रकृति की इकालॉजी को, उसके मौसम के तालमेल को, वरना प्रकृति इतनी नियमित थी—और इतनी सहज—स्वाभाविक थी। तुम सदा जान लेते थे कि अब वसंत आने वाला है। तुम देख सकते थे वसंत की पगध्वनि को चारों ओर—पक्षियो के गीतों में, वृक्षों में, चारों तरफ फैलता एक उत्सव, एक आह्लाद। सब सुनिश्चित था, नियमित था। लेकिन अब तो हर चीज अव्यवस्थित हो गई है। ऐसा प्रकृति के कारण नहीं हुआ है। मनुष्य ने केवल मनुष्य को ही विषाक्त नहीं किया है; मनुष्य प्रकृति को भी विषाक्त करने में लगा हुआ है। अब हर चीज अनियमित है. तुम नहीं जानते कि कब वर्षा होगी; तुम नहीं जानते कि इस वर्ष वर्षा कम होगी या ज्यादा होगी; तुम नहीं जानते कि इन गर्मियों में कितनी गरमी होगी।

प्रकृति की नियमितता डांवाडोल हुई है तुम्हारे कारण, क्योंकि तुमने वर्तुल तोड़ दिया है। अन्यथा प्रकृति तो नितांत सहज—सरल है—और प्रकृति को किसी पतंजलि की जरूरत नहीं है। अब जरूरत होगी। अब इकॉलॉजी को ठीक करने के लिए पतंजलि की जरूरत है।

तो तुम्हें चुनना है। यदि तुम झेन को चुनते हो तो पतंजलि को भूल जाना; वरना तुम बहुत उलझ जाओगे। और मैं तुमसे कहता हूं कि पतंजलि अपने आप आ जाएंगे—तुम्हें चिंता करने की जरूरत

नहीं है। लेकिन यदि तुम अनुभव करते हो कि तुम बहुत रुग्ण हो और तुम स्वयं पर विश्वास नहीं कर सकते और तुम सहज—स्फूर्त नहीं हो सकते, तो फिर भूल जाना झेन के बारे में; वह तुम्हारे लिए नहीं है। यह ऐसे ही है जैसे कि व्यायाम की कोई किताब है। अब व्यायाम की किताब स्वस्थ व्यक्ति के लिए है—जिसे ओलंपिक में भाग लेना हो। तुम चाहो तो उसे पढ़ सकते हो, लेकिन उसे करने मत लगना—तुम खतरे में पड़ जाओगे। तुम लेटे हो अस्पताल में; तुम मत पूछना कि कैसे तालमेल बिठाएं इस किताब का और अपनी स्थिति का। तुम यह पूछना ही मत। तुम सुनना चिकित्सक की; तुम उसके अनुसार चलना। किसी दिन जब तुम स्वस्थ हो जाते हो, अपने सहज—स्वाभाविक स्वास्थ्य तक लौट आते हो, तो शायद तुम उपयोग कर सको इस किताब का, लेकिन अभी इस समय तो यह तुम्हारे काम की नहीं है।

पतंजलि हैं अस्वस्थ व्यक्तियों के लिए लेकिन करीब—करीब प्रत्येक व्यक्ति अस्वस्थ है। झेन है सहज—स्वाभाविक व्यक्तियों के लिए। तुम्हें निर्णय लेना होगा अपने विषय में। कोई और दूसरा तुम्हारे लिए निर्णय नहीं ले सकता है। तुम्हें अपनी ऊर्जा को अनुभव करना है।

लेकिन ध्यान रहे, तुम्हें तालमेल नहीं बिठाना है—ऐसा कभी मत करना। एक को चुन लो, दूसरा पीछे—पीछे चला आता है। यदि तुम अनुभव करते हो कि तुम बीमार हो, पहले से ही जटिल हो, सहज—सरल नहीं हो सकते, तो नियमित होने का प्रयास करना। नियमितता धीरे— धीरे तुम्हें स्वास्थ्य और सहज—स्फूर्तता तक ले आएगी।

छठवां प्रश्न:

मैं आपके विरुद्ध प्रचार करना चाहता हूं। क्या आप मुझे आशीर्वाद देंगे?

विचार तो अच्छा है। मेरा पूरा आशीर्वाद है, क्योंकि मेरे विरुद्ध प्रचार करना भी मेरे पक्ष में प्रचार करना ही है। जाने —अनजाने, जो भी मेरे विरुद्ध कुछ कहता है, मेरे विषय में ही कुछ कहता है। और कौन जाने. अगर तुम किसी से मेरे विरुद्ध कुछ बोल रहे हो, तो शायद वह मुझ में रस लेने लगे। तो जाओ और प्रचार करो, मेरा पूरा आशीर्वाद तुम्हारे साथ है।

सातवां प्रश्न :

आपने इधर कहा कि केवल संबुद्ध व्यक्ति ही प्रेम कर सकता है। कई और मौकों पर आपने यह भी कहा है कि जब तक कोई प्रेम नहीं करता, संबुद्ध नहीं हो सकता तो किस द्वार से प्रवेश करें?

पूछा है आनंद प्रेम ने। वह द्वार पर ही खड़ी हुई है वर्षों से। असली बात है प्रवेश करना, द्वार से कुछ लेना—देना नहीं है। तुम किस द्वार से प्रवेश करते हो—यह बात व्यर्थ है। कृपा करके प्रवेश करो!

यदि तुम प्रेम के द्वार से प्रवेश करना चाहते हो, तो प्रेम के द्वार से प्रवेश करो। बुद्धत्व पीछे—पीछे चला आएगा; वह पराकाष्ठा है प्रेमपूर्ण हृदय की। यदि तुम भयभीत हो प्रेम से, जैसे कि लोग भयभीत हैं, क्योंकि समाज ने तुम्हें बहुत ज्यादा भयभीत कर दिया है प्रेम और जीवन के प्रति। समाज सोचता है कि प्रेम खतरनाक है। वह है। तुम नहीं जानते कि तुम कहां जा रहे हो। वह एक तरह का पागलपन है—सुंदर है बात, लेकिन फिर भी है तो पागलपन। तो यदि तुम भयभीत हो प्रेम से तो ध्यान में प्रवेश करो, ध्यानी बनो। यदि तुम ध्यान में गहरे उतरते हो तो तुम अनुभव करोगे, अचानक ऊर्जा का एक उमडाव, और तुम प्रेम से भर जाओगे।

लेकिन कृपा करके द्वार पर ही मत खड़े रहो। द्वार भी तुम से बहुत थक गए हैं। कुछ करो और भीतर प्रविष्ट होओ। बहुत समय हुआ, तुमने बहुत देर प्रतीक्षा कर ली है।

आठवां प्रश्न :

इन दिनों पूना के समाचार— पत्र आपके आपके आश्रम के और आपके शिष्यों के विरुद्ध बहुत प्रचार कर रहे हैं। इस बात ने सामान्यजन के मन में बहुत सी गलतफहमियां पैदा कर दी हैं। जो साधक इन्हीं लोगों के बीच रहता है उसे कैसे इस स्थिति का सामना करना चाहिए?

तुम्हें सामना बिलकुल नहीं करना चाहिए; तुम्हें तो हंसना चाहिए। और इस बारे में गंभीर मत हो जाना। यदि तुम इसका आनंद ले सकते हो तो आनंद लो—लेकिन सामना करने के चक्कर में मत पड़ जाना, प्रतिक्रिया मत करना। और मेरा बचाव करने की कोशिश मत करना—कोई मेरा बचाव नहीं कर सकता। और मेरे लिए तर्क जुटाने की कोशिश मत करना—कोई मेरे लिए तर्क नहीं जुटा सकता

है। और तालमेल बिठाने का प्रयत्न मत करना, इसकी कोई जरूरत नहीं है। तुम्हारा इससे कुछ लेना—देना नहीं है।

दुनिया तो अपने ढंग से चलती है। लोगों के अपने मन हैं और अपनी धारणाएं हैं—और मैं धारणाओं का, परंपराओं का भंजक हूं। मैं एक झंझावात हूं तो यह स्वाभाविक है कि साधारण व्यक्ति नाराज हो जाएं। और अखबार तो सदा ही किसी सनसनीखेज खबर की तलाश में रहते हैं; अखबार उस पर निर्भर करते हैं। लेकिन जो सत्य की खोज में निकले हैं उनके लिए ये बातें बिलकुल भी महत्वपूर्ण नहीं होनी चाहिए।

तुम्हें तो बस हंसना चाहिए और आनंद मनाना चाहिए; कुछ भी गलत नहीं है इसमें। तुम्हें चोट अनुभव नहीं करनी चाहिए; उसकी कोई जरूरत नहीं है। तुम्हें तकलीफ हो यह स्वाभाविक है, मैं यह समझता हूं कि अगर कोई मेरे विरुद्ध कुछ कहता है, जो कि मुझे बिलकुल जानता नहीं, और तुम मुझे बहुत समय से जानते हो—तुम सुनते हो वह—तो तुम्हें चोट लगती है; तुम उसका विरोध करना चाहते हो। पर उसका विरोध मत करो, क्योंकि वह प्रयत्न व्यर्थ है। उपेक्षा, पूरी तरह उपेक्षा ही एकमात्र ढंग है जो तुम से अपेक्षित है।

जो लोग मुझे नहीं समझते, वे ऐसा ही करेंगे; और यदि तुम प्रतिक्रिया करते हो, तो तुम उन्हें बढ़ावा देते हो। तटस्थ रहो; वे अपने आप चुप हो जाएंगे। क्योंकि जब कोई प्रतिक्रिया नहीं करता, तो सारा मजा ही खत्म हो जाता है।

और मैं भीड़ को राजी करने के लिए यहां नहीं हूं कि मैं ठीक हूं या गलत; भीड़ में मेरा बिलकुल रस नहीं है। केवल थोड़े से चुने हुए लोगों में मेरा रस है। मुझे उन्हीं के लिए काम करना है। तो यह झंझट बार—बार होने वाली है। वे नहीं जानते कि यहां क्या घट रहा है। वे जान नहीं सकते; अगर वे यहां आ भी जाएं, तो वे मुझे समझ न पाएंगे कि मैं क्या कह रहा हूं। वे गलत ही समझेंगे। तो उन्हें क्षमा कर दो और भूल जाओ।

नौवां प्रश्न:

आपके द्वारा की गई साईबाबा, कृष्णमूर्ति और अमरीकी गुरुको की आलोचना से निंदा न करने का आपका दावा खंडित मालूम होने लगता है!

जब भी तुम्हें लगे कि किसी चीज का मेरे द्वारा खंडन हो रहा है, तो उससे घबड़ा मत जाना; मैं विरोधाभासी हूं। तुम्हें अच्छी तरह समझ लेना है इसे। मैं अपना ही खंडन करता जाता हूं। यह भी एक विधि है जिसका मैं उपयोग कर रहा हूं। यदि तुम अविचलित रहते हो, तो तुम्हारे भीतर कुछ घनीभूत होता है, एक क्रिस्टलाइजेशन होता है।

मैं खंडन करता ही रहूंगा। अपनी कही हर बात का मैं खंडन करूंगा। मैं अपना एक भी वक्तव्य बगैर खंडन किए नहीं रहने दूंगा। इसमें एक विधि है : मैं नहीं चाहता कि तुम किसी एक दृष्टिकोण को पकड़ कर बैठ जाओ। मैं यह भी नहीं चाहता कि तुम मेरी बातों को पकड़ कर बैठ जाओ। तो एक ही रास्ता है : मुझे अपनी ही बातों का खंडन करना होगा। एक घड़ी आएगी, तुम समझ लोगे कि यह व्यक्ति तुम्हें कोई सिद्धात नहीं दे रहा है, क्योंकि हर बात का खंडन किया जा रहा है। कोई सिद्धात बचता नहीं। हर बात नकार देती है हर दूसरी बात को; तुम एक गहन शून्यता में छूट जाते हो। यही मेरा प्रयास है।

मैं तुम्हें कोई दार्शनिक सिद्धात नहीं दे रहा हूं। यदि मैं दार्शनिक होता तो मैं कभी अपना खंडन न करता, मैं सुसंगत होता। लेकिन मैं कोई दार्शनिक नहीं हूं; ज्यादा से ज्यादा तुम मुझे कवि कह

सकते हो। कवि से तुम कभी किसी सुसंगति की आशा नहीं रखते। तुम जानते हो कि कवि कवि है; वह किसी व्यवस्था का निर्माता नहीं है। वह आज कुछ कहता है और कल कुछ और कहता है। लेकिन यदि तुम मुझे समझते रहे, तो एक घड़ी आएगी कि जो कुछ भी मैंने कहा है उसका खंडन कर दिया जाएगा—मेरे ही द्वारा—तुम एक शून्यता में छूट जाओगे, कुछ पकड़ने को नहीं होगा—कोई सिद्धात नहीं, कोई व्यवस्था नहीं, कोई शास्त्र नहीं।

और उस शून्य में ही तुम समझ पाओगे मुझे, क्योंकि मैं कुछ कह नहीं रहा हूं—यहो मैं तुम्हारे लिए एक मौजूदगी हूं। मैं तुम्हें कोई संदेश नहीं दे रहा हूं मैं ही हूं संदेश। केवल जब तुम पूरी तरह शून्य होते हो, तभी तुम इसे समझ पाओगे।

और दूसरी बात, यदि मैं कहता हूं कि साईंबाबा केवल मदारी हैं और रहस्यदर्शी संत नहीं हैं तो मैं केवल एक तथ्य कह रहा हूं उनकी निंदा नहीं कर रहा हूं उनकी बिलकुल आलोचना नहीं कर रहा हूं। यदि मैं कहता हूं. अभी सुबह है, नौ बजे हैं; यदि मैं कहता हूं : अभी दिन है और रात नहीं है, तो क्या मैं निंदा कर रहा हूं रात की 3: क्या मैं आलोचना कर रहा हूं रात की? मैं तो केवल एक तथ्य बता रहा हूं। सत्य साईंबाबा मदारी हैं और रहस्यदर्शी संत नहीं हैं—मेरे लिए यह एक तथ्य है। मैं उनकी आलोचना नहीं कर रहा हूं मैं उनके खिलाफ नहीं हूं।

यदि मैं कहता हूं कि कृष्णमूर्ति संबुद्ध हैं पर असफल हैं, वे किसी की मदद नहीं कर सके—उन्होंने अपनी तरफ से पूरी कोशिश की, असल में और किसी ने इतना श्रम नहीं किया। वे संबुद्ध हैं और जो कुछ वे कहते हैं सत्य है, लेकिन उनसे किसी को मदद नहीं मिली है, तो यह कोई आलोचना नहीं है। मैं इतना ही कह रहा हूं कि उनसे किसी को मदद नहीं मिली है। तो लाओ किसी को जिसे मदद मिली हो, और करो इस तथ्य का खंडन।

कृष्णमूर्ति के हजारों अनुयायियों से मेरा मिलना हुआ है। किसी को मदद नहीं मिली है। वे स्वयं आते हैं और कहते हैं मुझसे कि वे बीस वर्षों से, तीस वर्षों से, चालीस वर्षों से सुन रहे हैं—सुनते—सुनते बूढ़े हो गए हैं—और वे भलीभांति समझते हैं कृष्णमूर्ति को कि वे क्या कह रहे हैं, क्योंकि वे निरंतर एक ही बात कह रहे हैं। चालीस वर्षों से वे एक ही स्वर अलाप रहे हैं—उन्होंने पिच तक नहीं बदली, ध्वनि तक नहीं बदली, नहीं। इस धरती पर जो दुर्लभतम सुसंगत व्यक्ति हुए हैं, उन में से एक हैं वे। एक ही स्वर में वे एक ही बात बार—बार दोहराए चले जाते हैं। तो लोग आते हैं मेरे पास और कहते हैं कि वे बौद्धिक रूप से उन्हें समझते हैं, लेकिन कुछ घटता नहीं है। क्योंकि बौद्धिक समझ द्वारा कुछ घट सकता नहीं है।

और यदि किसी को घटा है कृष्णमूर्ति को सुनते हुए, तो मैं कहता हूं तुमसे कि वह उस व्यक्ति को कृष्णमूर्ति को सुने बिना भी घट गया होता—क्योंकि कृष्णमूर्ति कोई विधि नहीं दे रहे हैं, कोई साधना नहीं दे रहे हैं। यदि उन्हें सुनते हुए किसी को घटना घटी है, तो वह उस व्यक्ति को पक्षियों को सुनते हुए भी घट सकती थी, या वृक्षों से गुजरती हवाओं को सुनते हुए भी घट सकती थी। वह आदमी तैयार ही था; कृष्णमूर्ति ने उसकी मदद नहीं की है।

और यह बात कृष्णमूर्ति भी समझते हैं। निश्चित ही समझते हैं वे। और वे निराश अनुभव करते 'हैं—उनका सारा जीवन व्यर्थ हुआ। तो मैं एक तथ्य कह रहा हूं आलोचना नहीं कर रहा हूं।

और यदि मैं अमरीकी गुरुओं के बारे में कुछ कहता हूं तो मैं उनके विरुद्ध कुछ नहीं कह रहा हूं। पहली बात, सौ में से निन्यानबे प्रतिशत गुरु नकली हैं। तो जब अमरीकी गुरुओं का सवाल आता है, तब तुम समझ सकते हो! भारतीय गुरुओं में ही सौ में निन्यानबे गुरु नकली हैं, तो जब बात उठती है अमरीकी गुरुओं की, नकल करने वालों की..।

लेकिन मैं किसी के विरुद्ध नहीं हूं। ये सीधे—साफ तथ्य हैं; कोई निंदा नहीं है। असल में मैं उनके विषय में कुछ नहीं कह रहा हूं बस वस्तु—स्थिति के विषय में कह रहा हूं। व्यक्तिगत रूप से मुझे कुछ मतलब नहीं है। अवैयक्तिक वक्तव्य हैं।

दसवां प्रश्न :

एक ताओवादी गुरु ने ताओ की भाषा में कुछ बातें समझाई। उसके सुनने वालों ने पूछा कि आप ताओ को कैसे उपलब्ध हुए जब कि आपका कोई भी गुरु नहीं है? उसने कहा 'मैने इसे पुस्तकों से पाया।' क्या यह संभव है?

हां, कभी—कभी यह संभव है। वह व्यक्ति जरूर उस व्यक्ति जैसा रहा होगा जिसकी मैं अभी बात कर रहा था जो कृष्णमूर्ति को सुन कर संबुद्ध हो सकता है। वह आदमी पक्षियों के गीत सुनते हुए भी संबुद्ध हो सकता है। वह आदमी पुस्तकें पढ़ कर भी संबुद्ध हो सकता है।

लेकिन वह अपवाद है, नियम नहीं। ऐसा कभी—कभी हुआ है. यदि व्यक्ति सच में सजग है तो पुस्तक भी मदद दे सकती है; और यदि तुम गहरी नींद में सोए हो, तो बुद्ध भी व्यर्थ हो जाते हैं; बुद्ध भी कोई मदद नहीं कर सकते—तुम उनके सामने ही खर्राटे भरते रहते हो, क्या कर सकते हैं वे? एक जीवंत बुद्ध व्यर्थ हो जाते हैं तुम्हारे लिए यदि तुम सोए रहो। लेकिन यदि तुम सजग हो, तो एक निष्प्राण पुस्तक भी सहायक हो सकती है। यह तुम पर निर्भर करता है।

और कठिन है ऐसा व्यक्ति खोज पाना जो केवल पुस्तकें पढ़ने से ही जाग गया हों—लेकिन संभावना है। यह करीब—करीब असंभव ही है, लेकिन असंभव भी घटता है।

ग्यारहवां प्रश्न :

यदि सत्संग अर्थात संबुद्ध व्यक्ति की मुक्त व्यक्ति की उपस्थिति में होना इतना महत्वपूर्ण है? तो क्यों हम दिन में केवल एक—डेढ़ घंटा ही एक— दूसरे के साथ रहते हैं?

इससे ज्यादा तुम्हारे लिए बहुत ज्यादा हो जाएगा; अपच हो जाएगा। इससे ज्यादा तुम मुझे पचा न पाओगे। मैं तो तुम्हारे साथ चौबीस घंटे हो सकता हूं लेकिन तुम नहीं हो सकते। तुम्हें होम्योपैथिक खुराकें चाहिए।

बारहवां प्रश्न :

कल सुबह आपने योग—उपलब्धि के आठ चरणों पर चर्चा की और जोर दिया कि पहले चरण से आठवें चरण तक उसी क्रम में बढ़ना होता है। क्या किसी व्यक्ति के लिए यह संभव नहीं कि पहले किन्हीं दूसरी अवस्थाओं तक पहुंचे और फिर अपने क्रम में बडे—उन सभी आठों को पाने के लिए?

ऐसा संभव है। लेकिन जब मैं कहता हूं संभव है तो मेरा मतलब है : केवल कभी—कभी ही; बहुत दुर्लभ है बात। प्रत्येक नियम के साथ सदा अपवाद होते हैं, लेकिन जब पतंजलि बोलते हैं, तब वे सामान्य नियम के विषय में बोलते हैं, अपवाद के विषय में नहीं। अपवाद के, विशिष्ट के विषय में बोलने की तो जरूरत ही नहीं है। मनुष्यता का वृहत समूह कहीं से किसी और ढंग से नहीं पहुंच सकता। उन्हें बढ़ना होगा चरण—दर—चरण—एक से दूसरे तक, दूसरे से तीसरे तक। वे एक—एक सीढ़ी चढ़ते हैं। लेकिन ऐसे अनूठे लोग हैं जो छलांग ले सकते हैं—लेकिन फिर उन्हें भी वापस आना होगा और पीछे छूटे हिस्से को पूरा करना होगा। उनका कम भिन्न हो सकता है, वह संभव है।

तुम प्राणायाम से शुरू कर सकते हो, लेकिन फिर तुम्हें आसन तक आना होगा, तुम्हें यम तक आना होगा। तुम ध्यान से शुरू कर सकते हो, लेकिन फिर तुम्हें दूसरे हिस्सों को पूरा करना होगा जो पीछे छूट चुके हैं। लेकिन आठों को पूरा करना होता है और आठों के बीच एक समस्वरता को विकसित करना होता है, ताकि तुम एक जीवंत इकाई हो सको।

ऐसा होता है कई बार कि कोई व्यक्ति सारे चरणों को पूरा किए बिना ही सातवें तक पहुंच जाता है, लेकिन कोई भी सारे चरणों को पूरा किए बिना आठवें तक नहीं पहुंचा है। सातवें तक संभावना है—तुम कुछ चरण छोड़ सकते हो और कुछ को पूरा कर सकते हो और पहुंच सकते हो सातवें तक—लेकिन तब तुम वहां अटके रहोगे। ध्यान तक तो तुम पहुंच सकते हो, लेकिन समाधि तक नहीं, क्योंकि समाधि को चाहिए तुम्हारी संपूर्ण सत्ता—परिपूर्ण, कुछ भी पीछे न छूटा हुआ, कोई चीज अधूरी न छूटी हुई—हर चीज संपूर्ण। फिर तुम्हें सातवें पर बहुत देर अटके रहना पड़ेगा, और तुम्हें वापस जाना होगा और वे चरण पूरे करने होंगे जो अधूरे हैं। जब तुमने सातवें तक की हर चीज पूरी कर ली होती है, केवल तभी आठवां चरण, समाधि, संभव होता है।

अंतिम प्रश्न :

ऐसा कैसे होता है कि चोग्याम त्रुंगपा जैसे महान गुरु त्यौहारों के अवसर पर शराब में इतने धुत हो जाते हैं कि उन्हें उठा कर घर लाना पड़ता है? क्या मनोरंजन के लिए किया गया शराब का प्रयोग खोजियों की सजगता को डांवाडोल कर सकता है?

तुम से कहा किसने कि यह आदमी गुरु है? वह उस परंपरा से संबंधित है जिसमें बहुत गुरु हुए हैं, लेकिन वह मृत बोझ ही ढो रहा है। और यही मुसीबत है, क्योंकि जिस परंपरा से वह संबंधित है उसमें मारपा, मिलारेपा, नरोपा, तिलोपा जैसे व्यक्ति हुए हैं, बड़े पहुंचे हुए सिद्ध हुए हैं, और वे सभी शराब पीते थे—अब यह एक बारीक बात है—लेकिन वे कभी भी शराब में धुत नहीं हुए। वे पीते थे, लेकिन वे कभी पीकर बेहोश नहीं हुए।

यह तंत्र की साधनाओं में से एक साधना है, एक विधि है. तुम्हें शराब की मात्रा को बढ़ाते जाना है और उसका अभ्यास करना है, लेकिन होश बनाए रखना है। पहले तुम केवल चम्मच भर लेते हो और होशपूर्ण रहते हो; फिर दो चम्मच, फिर तीन चम्मच, फिर तुम बढ़ाते जाते हो। फिर तुम पूरी बोतल पी जाते हो। लेकिन अब तुम्हारा इतना अभ्यास हो जाता है कि तुम्हारा होश नहीं खोता। तब शराब से काम नहीं चलेगा; तब तुम ज्यादा खतरनाक नशों की ओर बढ़ते हो।

तंत्र की परंपरा में एक ऐसा समय आता था जब जहरीले सांपों का उपयोग किया जाता था, क्योंकि व्यक्ति इतना आदी हो जाता था सभी तरह के मादक द्रव्यों का। तब अंतिम परीक्षा होती थी कोबरा सांप की। तब कोबरा सांप से उस आदमी की जीभ पर कटवाया जाता था। फिर भी वह साधक होश में रहता था।

यह एक गढ़ परीक्षा थी और एक विकास था. अब तुमने चेतना की ऐसी संगठित अवस्था पा ली है कि सारा शरीर भर जाता है शराब से, लेकिन वह तुम्हें प्रभावित नहीं करती। यह शरीर से पार जाने का एक सूत्र था तंत्र में; यह है शरीर से पार जाने की एक विधि—तंत्र के लिए।

यह व्यक्ति उस परंपरा से आता है, इसलिए शराब पीने की उसे स्वीकृति है परंपरा से, लेकिन यदि वह होश खो देता है तो वह पूरी बात ही चूक जाता है। वह गुरु नहीं है; वह जागा हुआ नहीं है। लेकिन अमरीका में अब हर चीज संभव है। पुरानी परंपरा को न जानने से वह कह सकता है लोगों से, 'हमारे गुरु भी पीते रहे हैं।'

तंत्र में उन सभी चीजों का स्वीकार है जिनका सामान्यत: निषेध होता है। तांत्रिक को अनुमति है मांस खाने की, साधारणतया यह निषिद्ध है; उसे अनुमति है शराब पीने की, साधारणतया यह निषिद्ध है; उसे अनुमति है संभोग में उतरने की, साधारणतया साधक के लिए इसकी मनाही है। हर वह चीज जो

साधारणतया वर्जित है साधक के लिए, तंत्र में उसकी स्वीकृति है, लेकिन स्वीकृति है ऐसी शर्तों के साथ कि यदि तुम शर्तों को भूल जाते हो तो तुम पूरी बात ही चूक जाते हो।

व्यक्ति संभोग में उतर सकता है, लेकिन स्खलन नहीं होना चाहिए। यदि स्खलन होता है, तो वह साधारण कामवासना हुई; तब वह तंत्र नहीं। यदि तुम संभोग में उतरते हो और कोई स्खलन नहीं होता, घंटों तुम रहते हो स्त्री के साथ और कोई स्खलन नहीं होता, तो यह तंत्र है। तो यह एक उपलब्धि है।

शराब पीने की अनुमति है, लेकिन होश खोने की अनुमति नहीं है। यदि तुम होश खो देते हो तो तुम साधारण शराबी हों—तंत्र को बीच में लाने की आवश्यकता नहीं है।

मांस की स्वीकृति है; तुम्हें खाना पड़ता है मांस—कई बार तो मनुष्य का मांस भी, मुर्दों का मांस—लेकिन तुम्हें विरक्त रहना होगा। तुम्हें अविचलित रहना होगा—तुम्हारी चेतना में एक कंपन तक नहीं होना चाहिए कि 'कुछ गलत...।'

तंत्र कहता है कि प्रत्येक बंधन के पार जाना है, और अंतिम बंधन है नैतिकता—उसके भी पार जाना है। जब तक तुम नैतिकता के पार नहीं चले जाते तुम संसार के पार नहीं गए होते। तो भारत जैसे देश में जहां कि शाकाहार बहुत ही गहरे तल तक उतर चुका है भारतीय चेतना में, मास खाने की अनुमति थी, लेकिन यह उस ढंग की अनुमति न थी जैसे कि मांस खाने वाले खाते हैं। व्यक्ति को जीवन भर तैयार होना पड़ता था इसके लिए। उसे शाकाहारी रहना पड़ता था; साधक के रूप में उसे शाकाहारी रहना पड़ता था।

वर्षों बीत जाएंगे—दस वर्ष, बारह वर्ष वह शाकाहारी रहा, उसने संभोग नहीं किया किसी स्त्री के साथ, उसने कोई शराब नहीं पी और उसने किन्हीं और नशों का सेवन नहीं किया। फिर बारह वर्ष, पंद्रह वर्ष बाद, बीस वर्ष बाद, गुरु उसे अनुमति देगा कि अब उतरो कामवासना में, लेकिन ऐसी श्रद्धा से स्त्री का संग करो कि स्त्री देवी जैसी ही हो; यह कामुकता नहीं होती। और उस आदमी को जो कि स्त्री के संग होता है, उसकी पूजा करनी होती है, उसके पांव छूने होते हैं। और यदि हलकी सी भी कामवासना उठने लगती है, तो वह अयोग्य हो जाता है; तो वह अभी इसके लिए तैयार नहीं है।

यह एक बड़ी तैयारी थी और बड़ी परीक्षा थी—कठिनतम परीक्षा थी जो कि कभी निर्मित की गई मनुष्य के लिए। कोई आकांक्षा नहीं, कोई वासना नहीं, उसे स्त्री के प्रति ऐसी भाव—दशा रखनी पड़ती जैसे कि वह उसकी मां हो। यदि गुरु कहता है, और देखता है कि वह ठीक है—अब वह बच्चे की भांति प्रवेश कर रहा है स्त्री में, पुरुष की भांति नहीं, और बच्चे की ही भांति वह भीतर रहता है स्त्री के, उसमें कोई कामवासना नहीं उठ रही होती : उसकी श्वास प्रभावित नहीं होती; उसकी शरीर—ऊर्जा प्रभावित नहीं होती, घंटों वह स्त्री के साथ रहता है और कोई स्खलन नहीं होता; एक गहन मौन छाया रहता है—यह एक गहन ध्यान है।

बीस वर्षों तक शाकाहारी रहने के बाद अचानक तुम्हें मांस दिया जाता है खाने के लिए : तुम्हारे पूरे प्राण विकर्षण अनुभव करेंगे। यदि तुम विचलित अनुभव करते हो तो तंत्र कहता है, 'तुम अस्वीकृत हुए। अब इसके पार जाओ। अब जो कुछ भी दिया जाए, उसे अनुग्रहपूर्वक स्वीकार करो।' तुम जानते हो कि यदि तुम एक वर्ष तक शाकाहारी रहे हो और अचानक मांस सामने आ जाए, तो तुम उबकाई अनुभव करने लगोगे, मितली आने लगेगी। यदि ऐसा होता है, तो उसका मतलब है कि व्यक्ति अभी भी विचारों में जी रहा है—क्योंकि यह केवल एक विचार ही है कि यह मांस है और यह सब्जी है। शाक—सब्जी भी मांस है, क्योंकि वह वृक्ष के शरीर से आती है; और मांस भी वनस्पति है, क्योंकि वह मनुष्य—शरीर या पशु—शरीर के वृक्ष से आता है। तो यह नैतिकता का अतिक्रमण है।

और फिर उसे तेज नशों के लिए तैयार किया जाता। यदि वह वस्तुत: सजग है तो उसे कुछ भी दिया जाएगा, वह शरीर के रसायन को बदलेगा, लेकिन चेतना को नहीं बदल सकता; उसकी चेतना शरीर के रसायन के ऊपर ही बनी रहेगी।

गुरजिएफ खूब शराब पीया करता था—जितनी तुम सोच सकते हो उतनी शराब पीता था। लेकिन कभी भी होश नहीं खोता था, कभी भी बेहोश नहीं होता था। वह तांत्रिक गुरु था। यदि तुम पश्चिम में किसी में रस लेना चाहते हो तो वह है जार्ज गुरजिएफ—कोई तिब्बती शरणार्थी नहीं।

आज इतना ही।

प्रवचन 47 - पहले शुद्धता—फिर शक्ति

योग—सूत्र

(साधनपाद)

अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमा:।। 30।।

योग के प्रथम चरण यम के अंतर्गत आते है ये

पांचव्रत: अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह।

जातिदेशकालसमयानवच्छिन्ना: सार्वभौमा महाव्रतम।। 31।।

ये पाँच व्रत बनाते है एक महाव्रत जो कि फैला हुआ है जाति, स्थान, समय और स्थिति की सीमाओं से परे संबोधि की सातों अवस्थाओ तक।

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह—ये पांच व्रत मूल आधार हैं, बुनियाद हैं। जितने गहरे रूप में संभव हो उन्हें समझ लेना है, क्योंकि यह संभावना है कि यम को निर्मित करने वाले इन पाच चरणों को पूरा किए बिना ही कोई आगे बढ़ने लगे।

तुम ऐसे योगियों और फकीरों को संसार भर में देख सकते हो, जो पहले चरण के इन पांच आयामों को पूरा किए बिना ही आगे बढ़ गए हैं। तब उन्हें शक्ति तो उपलब्ध हो जाती है, लेकिन उनकी शक्ति हिंसक होती है। तब वे शक्तिशाली तो बहुत होते हैं, लेकिन उनकी शक्ति आध्यात्मिक नहीं होती। तब वे एक तरह की काली विद्‌या के जादूगर बन जाते हैं; वे दूसरों को क्षति पहुंचा सकते हैं। यह न केवल दूसरों के लिए खतरनाक होती है, यह स्वयं उन व्यक्तियों के लिए भी खतरनाक होती है। यह तुम्हें नष्ट कर सकती है; यह तुम्हें नया जन्म दे सकती है। यह निर्भर करता है। ये पांच व्रत तो एक आश्वासन हैं कि अनुशासन से जो शक्ति जगती है, उसका गलत उपयोग न हो।

तुम देख सकते हो 'योगियों' को जो अपनी शक्ति का प्रदर्शन करते रहते हैं। यह असंभव है योगी के लिए, क्योंकि यदि योगी ने वास्तव में इन पांच व्रतों को पूरा किया है तो फिर प्रदर्शन में उसकी रुचि नहीं हो सकती; वह प्रदर्शन नहीं कर सकता। वह फिर कोई कोशिश नहीं कर सकता चमत्कारों का खेल दिखाने की—वह उसके लिए संभव नहीं है। चमत्कार उसके आस—पास घटते हैं, लेकिन वह उनका कर्ता नहीं होता।

ये पांच व्रत तुम्हारे अहंकार को पूरी तरह से मिटा देंगे। या तो अहंकार रह सकता है या ये पांच व्रत पूरे हो सकते हैं। दोनों एक साथ संभव नहीं हैं। और इससे पहले कि तुम शक्ति के जगत में प्रवेश करो—और योग है शक्ति का जगत, असीम शक्ति का जगत—बहुत—बहुत जरूरी होता है कि तुम अहंकार को मंदिर के बाहर ही छोड़ दो। यदि अहंकार तुम्हारे साथ है तो पूरी संभावना है कि शक्ति का दुरुपयोग होगा। तब सारा प्रयास ही व्यर्थ हो जाता है, एक दिखावा हो जाता है, वस्तुत: मजाक ही हो जाता है।

ये पांच व्रत तुम्हें शुद्ध करने के लिए हैं, ताकि तुम शक्ति के अवतरण के लिए पात्र बन सकी और शक्ति के अवतरण से तुम दूसरों के लिए एक मंगल और एक आशीष हो सको। ये व्रत बहुत जरूरी हैं। किसी को उन्हें छोड़ना नहीं चाहिए। तुम छोड़ सकते हो। असल में उन्हें छोड़ कर बढ़ जाना उनमें से गुजरने की अपेक्षा ज्यादा सरल है, क्योंकि वे कठिन हैं। लेकिन तब तुम्हारा भवन बिना

नींव का होगा, किसी भी दिन गिर जाएगा, किसी भी दिन ढह जाएगा; वह पड़ोसियों की जान ले सकता है, शायद तुम्हें ही मार डाले। यह पहली बात है समझ लेने की।

दूसरी बात : अभी कल ही नरेन्द्र ने एक प्रश्न पूछा था, एक महत्वपूर्ण प्रश्न पूछा था। उसने कहा, 'संस्कृत में यम का अर्थ होता है मृत्यु और यम का अर्थ अंतर– अनुशासन भी होता है। क्या इन दोनों के—मृत्यु और अंतर—अनुशासन के—बीच कोई संबंध है?'

बिलकुल है। उसे भी समझ लेना है।

संस्कृत बड़ी अर्थगर्भित भाषा है। असल में संसार में दूसरी कोई भाषा नहीं जो इतनी अर्थगर्भित हो। और प्रत्येक शब्द बड़ी सावधानी और परिश्रम से निर्मित किया गया है। संस्कृत कोई प्राकृतिक भाषा नहीं है। दूसरी सारी भाषाएं प्राकृतिक हैं। संस्कृत शब्द का अर्थ ही है निर्मित, परिष्कृत—प्राकृतिक नहीं। भारत की प्राकृतिक भाषा प्राकृत कहलाती है। प्राकृत का अर्थ है प्राकृतिक. जो सहज प्रयोग से बनी। संस्कृत एक परिष्कृत घटना है। वह प्राकृतिक फूलों के समान नहीं है, वह इत्र की भांति है, परिमार्जित। बड़ी सावधानी और सचेतन प्रयास से एक—एक शब्द को निर्मित किया गया है और उस पर सोच—विचार किया गया है और चिंतन—मनन किया गया है, जिससे कि सारी संभावनाएं इसमें समाहित हो जाएं।

इस 'यम' शब्द को समझ लेना है। इसका अर्थ होता है मृत्यु का देवता, इसका अर्थ अंतर– अनुशासन भी होता है। लेकिन मृत्यु और अंतर– अनुशासन के बीच ऐसा कौन सा महत्वपूर्ण अंतर्संबंध हो सकता है? कोई संबंध दिखाई नहीं पड़ता, फिर भी संबंध है।

इस धरती पर अब तक दो तरह की सभ्यताएं रही हैं—दोनों ही फणी हैं, दोनों ही असंतुलित हैं। अभी तक ऐसी सभ्यता को विकसित कर पाना संभव नहीं हुआ है जो कि समग्र हो, संपूर्ण हो, अखंड हो। पश्चिम में अब कामवासना को पूरी स्वतंत्रता मिल रही है; लेकिन तुमने शायद ध्यान न दिया हो—मृत्यु का दमन हुआ है। मृत्यु की कोई बात नहीं करना चाहता; हर कोई कामवासना की ही बात कर रहा है। तमाम अश्लील साहित्य मौजूद है कामवासना के विषय में, प्लेबॉय जैसी पत्रिकाएं हैं—अश्लील, विकृत, बीमार, न्यूरोटिक, विक्षिप्त। कामवासना के विषय में एक रुग्णता है पश्चिम में। लेकिन मृत्यु की कोई बात भी नहीं करता है। यदि तुम मृत्यु के विषय में बात करते हो तो लोग सोचेंगे कि तुम विकृत हो—'क्यों तुम बात कर रहे हो मृत्यु की?' खाओ, पीओ, मौज करो—यही है आदर्श।'तुम मृत्यु को क्यों ले आते हो बीच में? उसे बाहर हटाओ। मत बात करो इस विषय में।'

पूरब में कामवासना को दबाया गया है, लेकिन मृत्यु के विषय में खुल कर बातें की गई हैं। कामुक, अश्लील, बेहूदे साहित्य की तरह ही पूरब में एक और ही तरह का अश्लील साहित्य मौजूद है। मैं इसे कहता हूं मृत्यु का अश्लील साहित्य—उतना ही अश्लील और रुग्ण जितनी कि पश्चिम की अश्लील पत्रिकाएं हैं कामवासना के विषय में। मैंने देखे हैं ऐसे शास्त्र.....। और तुम देख सकते हो हर कहीं, करीब—करीब सारे भारतीय शास्त्र भरे पड़े हैं मृत्यु के अश्लील विषय से। वे मृत्यु के विषय में अतिशय बातचीत करते हैं। वे कामवासना के विषय में कुछ नहीं कहते; कामवासना एक वर्जित विषय है। वे बात करते हैं मृत्यु की।

भारत के सारे तथाकथित महात्मा मृत्यु के विषय में बातें करते रहते हैं। वे निरंतर मृत्यु की ओर इशारा करते रहते हैं। यदि तुम किसी स्त्री को प्रेम करते हो तो वे कहते हैं, 'क्या कर रहे हो तुम? स्त्री है ही क्या? मात्र एक थैली है चमड़े की। और भीतर सब प्रकार की गंदी चीजें हैं।' और वे वर्णन करते हैं सारी गंदी चीजों का, और ऐसा लगता है कि वे इससे आनंदित होते हैं! यह रुग्ण बात है। वे वर्णन करते हैं शरीर के भीतर के कफ—पित्त और रक्त—मांस—मज्जा का; वे वर्णन करते हैं अंदर भरे मल—मूत्र का।'यह है तुम्हारी सुंदर स्त्री। गंदगी की थैली। और तुम प्रेम में पड रहे हो इस थैली के! सावधान!'

लेकिन यह समझने जैसी बात है : पूरब में जब वे तुम्हें सजग करना चाहते हैं कि जीवन गंदा है तो वे स्त्री को बीच में ले आते हैं, पश्चिम में जब वे सजग करना चाहते हैं कि जीवन सुंदर है तो फिर स्त्री की ही बात आ जाती है। जरा देखो प्लेबॉय पत्रिका : प्लास्टिक जैसी लड़कियां, इतनी सुंदर। वे इस दुनिया में कहीं नहीं हैं; वे वास्तविक नहीं हैं। वे फोटोग्राफी के चमत्कार हैं—और बिलकुल ठीक अनुपात का खयाल रखा गया है, फिर—फिर संवारा गया है। और वे बन जाती हैं आदर्श, और हजारों लोग उनके विषय में सुंदर—सुंदर कल्पनाएं करते हैं और उनके सपने देखते हैं।

कामुक अश्लील साहित्य स्त्री के शरीर पर निर्भर है और मृत्यु के अश्लील ग्रंथ भी स्त्री के शरीर पर निर्भर हैं। और फिर वे कहते हैं, 'तुम प्रेम में पड़ रहे हो? यह युवती जल्दी ही बूढ़ी हो जाएगी। जल्दी ही यह एक कुरूप बुढ़िया हो जाएगी। सावधान रहना, और प्रेम में मत पड़ जाना, क्योंकि जल्दी ही यह स्त्री मर जाएगी; तब तुम रोओगे और चीखोगे, और तब तुम परेशान होओगे।' यदि तुम्हें जीवन की बात करनी हो तो स्त्री का शरीर चाहिए। यदि तुम्हें मृत्यु की बात करनी हो तो स्त्री का शरीर चाहिए। ऐसा लगता है कि मनुष्य निरंतर स्त्री के खयाल से ही जकड़ा हुआ है—चाहे वे प्लेबॉय हों या महात्मा, उससे कुछ अंतर नहीं पड़ता है।

लेकिन क्यों? ऐसा सदा होता है : जब भी कोई समाज कामवासना का दमन करता है, तो वह मृत्यु की चर्चा करता है; जब भी कोई समाज मृत्यु का दमन करता है, तो कामवासना की चर्चा करता है। क्योंकि मृत्यु और काम दो ध्रुव हैं जीवन के। कामवासना का अर्थ है जीवन, क्योंकि जीवन आता है उससे। जीवन आता है कामवासना से—और मृत्यु उसका अंत है।

और यदि तुम एक साथ दोनों के विषय में सोचते हो, तो विरोधाभास लगता है; तुम काम और मृत्यु को संयुक्त नहीं कर सकते। कैसे ये संयुक्त हो सकते हैं? एक को याद रखने और दूसरे को भूलने की बात ज्यादा आसान लगती है। यदि तुम दोनों को याद रखो तो तुम्हारे मन के लिए बड़ा कठिन होगा समझना कि कैसे दोनों बातें एक साथ हो सकती हैं—और वे एक साथ हैं, उनका अस्तित्व एक साथ है। असल में वे दो नहीं हैं, बल्कि एक ही ऊर्जा है दो अवस्थाओं में—सक्रिय और निष्क्रिय, यिन और यांग।

क्या तुमने ध्यान दिया इस पर? स्त्री से संभोग करते हुए चरम शिखर की एक घड़ी आती है जहां तुम घबड़ा जाते हो, भयभीत हो जाते हो, कंपने लगते हो; क्योंकि काम के परम शिखर पर मृत्यु और जीवन दोनों एक साथ अस्तित्व रखते हैं। तुम जीवन का अनुभव करते हो उसकी परम ऊंचाइयों में और तुम मृत्यु का भी अनुभव करते हो उसकी परम गहराई में। ऊंचाई और गहराई दोनों उपलब्ध हैं एक ही क्षण में—वही है काम के चरम शिखर का भय। लोग उसकी आकांक्षा करते हैं क्योंकि वह जीवन है, और लोग उससे बचते हैं क्योंकि वह मृत्यु है। वे इसकी आकांक्षा करते हैं क्योंकि वह

सर्वाधिक सुंदर घड़ियों में से एक है, आनंदपूर्ण है, और वे इससे बचना चाहते हैं क्योंकि यह सर्वाधिक खतरे की घड़ियों में से भी एक है. क्योंकि मृत्यु अपना द्वार खोल देती है इसमें।

एक सजग व्यक्ति तुरंत देख लेगा कि मृत्यु और काम एक ही ऊर्जा हैं; और एक समग्र संस्कृति, एक संपूर्ण संस्कृति, एक अखंड संस्कृति, दोनों को ही स्वीकार करेगी। वह एकागी न होगी, वह न एक अति पर जाएगी और न दूसरी से बचेगी। प्रत्येक क्षण तुम जीवन और मृत्यु दोनों ही हो। इसे समझ लेने का मतलब है द्वैत के पार चले जाना। और योग का सारा प्रयास यही है : द्वैत का अतिक्रमण कैसे हो।

यम अर्थपूर्ण है क्योंकि जब कोई व्यक्ति मृत्यु के प्रति सजग हो जाता है केवल तभी आत्म—अनुशासन का जीवन संभव हो पाता है। यदि तुम केवल काम—ऊर्जा के प्रति, जीवन के प्रति सजग हो, और तुम मृत्यु से बच रहे हो, भाग रहे हो, उसके प्रति अपनी आंखें बंद रखते हो, उसे सदा पीछे धकेलते हो, उसे अचेतन में फेंक देते हो, तो तुम आत्म— अनुशासन का जीवन निर्मित नहीं करोगे। किसलिए करोगे? तब तुम्हारा जीवन भोग का जीवन होगा—खाओ, पीओ, मौज करो। इसमें कुछ गलत नहीं है। लेकिन स्वयं में यह पूरी बात नहीं है। यह मात्र एक हिस्सा है, और जब तुम हिस्से को समग्र की भांति ले लेते हो, तो तुम चूक जाते हो—तुम बुरी तरह चूक जाते हो।

जानवरों को मृत्यु का कोई बोध नहीं है; इसलिए पतंजलि के लिए कोई संभावना नहीं कि वे पशुओं को शिक्षा दें, क्योंकि कोई भी जानवर तैयार नहीं होगा आत्म— अनुशासन सीखने के लिए। जानवर पूछेगा, 'क्यों? किसलिए?' केवल जीवन ही है, मृत्यु नहीं है, क्योंकि जानवर को बोध नहीं है कि वह

मरेगा। यदि तुम सजग होते हो कि तुम्हें मरना है, तो तुम तुरंत ही जीवन के विषय में पुनर्विचार करने लगते हो। तब तुम चाहोगे कि मृत्यु जीवन में समाहित हो जाए।

जब मृत्यु समाहित हो जाती है जीवन में तो यम पैदा होता है : अनुशासन का जीवन। तब तुम जीते हो, लेकिन तुम सदा मृत्यु के स्मरण सहित जीते हो। तुम चलते हो, लेकिन तुम सदा जानते हो कि तुम बढ़ रहे हो मृत्यु की ओर। तुम आनंद मनाते हो, लेकिन तुम अच्छी तरह जानते हो कि ऐसा सदा न रहेगा। मृत्यु तुम्हारी छाया बन जाती है; तुम्हारे अस्तित्व का हिस्सा, तुम्हारे परिप्रेक्ष्य का हिस्सा बन जाती है। तुमने समाहित कर लिया मृत्यु को—अब आत्म— अनुशासन संभव होगा। अब तुम सोचोगे, 'कैसे जीएं?' क्योंकि अब जीवन ही लक्ष्य नहीं. मृत्यु भी उसका हिस्सा है। कैसे जीएं? ताकि तुम सुंदरता से जी सको और सुंदरता से मर भी सको। कैसे जीएं? ताकि न केवल जीवन आनंद का एक परम शिखर बन जाए, बल्कि मृत्यु भी उच्चतम शिखर हो जाए, क्योंकि मृत्यु जीवन का परम शिखर है।

इस ढंग से जीओ कि तुम समग्रता से जीने में सक्षम हो जाओ और तुम समग्रता से मरने में भी सक्षम हो जाओ; यही आत्म— अनुशासन का कुल अर्थ है। आत्म— अनुशासन दमन नहीं है; यह है सुनिदशित जीवन; ऐसा जीवन जिसमें एक दिशा हो। यह है मृत्यु के प्रति पूर्णत: सचेत और सजग जीवन। तब तुम्हारे जीवन की नदी के दो किनारे होते हैं—जीवन और मृत्यु, और चैतन्य की नदी इन दोनों के बीच प्रवाहित होती है। जो भी जीवन के एक हिस्से मृत्यु को अस्वीकार करके जीने का प्रयास कर रहा है, वह एक ही किनारे के साथ बहने का प्रयास कर रहा है; उसके चैतन्य की नदी

समग्र नहीं हो सकती। उसमें कुछ अभाव होगा; किसी बहुत सुंदर बात को वह चूक जाएगा। उसका जीवन सतही होगा। उसमें कोई गहराई न होगी। मृत्यु के बिना कोई गहराई नहीं होती।

और यदि तुम दूसरी अति पर चले जाते हो, जैसा कि भारतीयों ने किया है—उन्होंने निरंतर रहना शुरू कर दिया है मृत्यु के साथ—वे घबडाए हुए हैं, भयभीत हैं, प्रार्थना कर रहे हैं; प्रयास में लगे हैं कि कैसे मृत्यु से बच जाएं, कैसे अमर हो जाएं—तब वे बिलकुल ही जीना बंद कर देते हैं। वह बात भी एक पागलपन है। वे भी बहेंने एक ही किनारे के साथ; उनका जीवन भी एक दुखद घटना रहेगी।

पश्चिम दुखी है, पूरब दुखी है—क्योंकि एक समग्र जीवन अभी तक संभव नहीं हुआ है। क्या यह संभव है कि तुम एक सुंदर काम—जीवन जीओं, मृत्यु के स्मरण सहित? क्या प्रेम करना और गहनता से प्रेम करना संभव है— भलीभांति जानते हुए कि तुम्हें मरना है और तुम्हारी प्रिया को मरना है? यदि यह संभव है, तो एक समग्र जीवन संभव है। तब तुम एकदम संतुलित होते हो; तब तुम संपूर्ण होते हो। तब तुम में किसी चीज की कमी नहीं होती; तब तुम तृप्त होते हो; एक गहन तृप्ति तुम्हें भर देती है।

'यम' का जीवन एक संतुलित जीवन है। पतंजलि के ये पांच व्रत तुम्हें संतुलन देने के लिए हैं। लेकिन तुम उन्हें गलत समझ सकते हो और तुम फिर एक दूसरी तरह का असंतुलित जीवन निर्मित कर

सकते हो। योग जीवन के भोग के विरुद्‌ध नहीं है, योग है संतुलन। योग कहता है, 'भरपूर जीओ, लेकिन सदा तैयार रहो मरने के लिए भी।' यह बात विरोधाभासी मालूम पड़ती है। योग कहता है, ' आनंद मनाओ। लेकिन ध्यान रहे, यह तुम्हारा घर नहीं है, यह रात भर का पड़ाव है।' कुछ गलत नहीं है। यदि तुम धर्मशाला में ठहरे हो और आनंद मना रहे हो और पूर्णिमा की रात है, तो कुछ गलत नहीं है। इसका आनंद लो, लेकिन धर्मशाला को अपना घर मत मान लेना, क्योंकि कल हम चल देंगे। हम धन्यवाद देंगे रात के इस पड़ाव के लिए, हम अनुगृहीत होंगे—अच्छा था जब तक वह रहा, लेकिन उसके हमेशा बने रहने की मांग मत करना। यदि तुम माग करते हो कि इसे हमेशा—हमेशा रहना चाहिए, तो यह एक अति है; यदि तुम बिलकुल आनंदित नहीं होते क्योंकि यह सदा तो रहने वाला नहीं, तो यह एक दूसरी अति हो जाती है। और दोनों ही ढंग से तुम अधूरे ही रहते हो।

यदि तुम मुझे समझने की कोशिश करो तो मेरा सारा प्रयास यही है : तुम्हें संपूर्ण और समग्र बनाना, जिससे कि सारी विपरीतताए खो जाएं और एक समस्वरता पैदा हो। मैं नहीं चाहता कि तुम नीरस हो जाओ। साधारण भोग का जीवन उबाऊ होता है। साधारण योग का जीवन भी एकस्वर का, नीरस होता है। जो जीवन सारे विरोधाभास अपने में समाए होता है, जिसमें बहुत सारे स्वर होते हैं लेकिन फिर भी एक समस्वरता होती है, वह जीवन एक समृद्‌ध जीवन होता है। और वही समृद्‌ध जीवन, मेरे देखे, योग है।

और ये पांच व्रत तुम्हें जीवन से तोड़ देने के लिए नहीं हैं, वे तुम्हें जीवन से जोड़ने के लिए हैं। इस बात को अच्छे से स्मरण रख लेना है, क्योंकि बहुत से लोगों ने इन पांच व्रतों का उपयोग स्वयं को जीवन से तोड़ लेने के लिए किया है। वे इसलिए नहीं हैं—वें हैं इससे ठीक विपरीत बात के लिए।

उदाहरण के लिए पहला व्रत है—अहिंसा। लोगों ने इसका उपयोग स्वयं को जीवन से तोड़ लेने के लिए किया, क्योंकि वे सोचते हैं कि यदि तुम जीवन में रहे, तो कुछ न कुछ हिंसा होगी ही। भारत में जैन हैं; वे विश्वास करते हैं अहिंसा में। वही है उनका संपूर्ण धर्म। तुम जरा देखो किसी जैन मुनि को. वह हर चीज से भागता है, क्योंकि सब ओर वह हिंसा की संभावना पाता है। जैनों ने किसी भी तरह की खेती करना बंद कर दिया—बागबानी, खेती—बाड़ी—क्योंकि यदि खेती करते हैं, खेत में जुताई करते हैं, तो हिंसा होगी ही; क्योंकि तुम्हें पेड़ू—पौधे कांटने होंगे और हर पौधे में जीवन होता है। तो जैन पूरी तरह बाहर हो गए खेती—बाड़ी के काम से।

युद्‌ध में वे जा नहीं सकते थे, क्योंकि वहां हिंसा होगी। उनके सभी तीर्थंकर योद्‌धा थे; वे सब क्षत्रिय थे। महावीर और दूसरे सभी तीर्थंकर, वे सब क्षत्रिय थे, लेकिन उनके सारे अनुयायी दुकानदार हैं, व्यापारी हैं! क्या हुआ? लड़ाई पर वे जा नहीं सकते; सेना में भरती वे हो नहीं सकते। इसलिए वे योद्‌धा तो बन नहीं सकते, क्योंकि हिंसा होगी। वे किसान नहीं बन सकते, क्योंकि कृषि में हिंसा होगी। और कोई भी शूद्र होना नहीं चाहता, कोई भी अछूत होना नहीं चाहता और दूसरे लोगों के टायलेट और दूसरे लोगों के घर कोई साफ करना नहीं चाहता—कोई नहीं चाहता यह सब; इसलिए शूद्र वे बन नहीं

सकते। और वे ब्राह्मण भी नहीं बन सकते थे, क्योंकि उनका पूरा धर्म ही एक विद्रोह था ब्राह्मणों के विरुद्ध। तो एकमात्र संभावना जो बची वह यह कि वे केवल वैश्य हो जाएं।

ऐसे जैन मुनि हैं जो श्वास लेने तक में घबड़ाते हैं, क्योंकि श्वास लेने में जीवाणु मरते हैं। बहुत छोटे—छोटे जीवाणु घूम रहे हैं हवा में। हवा भरी पड़ी है जीवाणुओं से, बहुत सूक्ष्म जीवाणुओं से; तुम देख नहीं सकते उन्हें खुली आंख से। जब तुम श्वास लेते हो, वे मर जाते हैं; जब तुम श्वास छोड़ते हो, तब तुम्हारी बाहर आती गरम श्वास उन्हें मार देती है। तो वे श्वास लेने में भी भयभीत हैं। रात्रि में वे चल नहीं सकते, क्योंकि शायद अंधेरे में कहीं कोई कीड़ा हो.. तो हिंसा हो जाए। वर्षा—ऋतु में वे कहीं जा नहीं सकते। वर्षा—ऋतु में बहुत से कीट—पतंगे और बहुत सी मक्खियां, बहुत से कीड़े—मकोड़े पैदा हो जाते हैं, और हर कहीं जीवन धड़क रहा होता है। यदि तुम गीली जमीन पर चलते हो तो ऐसी संभावना है...। कहा जाता है कि जैन मुनि को रात सोते हुए करवट भी नहीं बदलनी चाहिए क्योंकि तुम करवट बदलो और हो सकता है कुछ कीट—पतंगे मर जाएं; तो तुम्हें एक ही करवट सोना चाहिए। यह है अति पर जाना।

यह है बेतुकेपन तक बात को खींचना। तो स्मरण रखना, लोगों ने अहिंसा का उपयोग किया है जीवन के विरुद्ध। और अहिंसा का अर्थ होता है जीवन के प्रति इतना गहन प्रेम कि तुम मार न सको : तुम इतना गहन प्रेम करते हो जीवन से कि तुम किसी को भी चोट नहीं पहुंचाना चाहोगे। यह एक गहन प्रेम है, निषेध नहीं।

निश्चित ही, जीवित रहने में थोड़ी हिंसा तो जरूर होगी, लेकिन वह हिंसा नहीं है, क्योंकि तुम वैसा इच्छापूर्वक नहीं कर रहे हो। इसलिए ध्यान रहे, हिंसा तब होती है जब तुम जान कर उसे करते हो। यदि मैं सांस लेता हूं तो मैं ऐच्छिक रूप से सांस नहीं ले रहा हूं। श्वास अपने आप चल रही है—तुम नहीं ले रहे हो सांस; तुम नहीं हो कर्ता। तुम कोशिश करो न लेने की, और तुमको पता चल जाएगा। केवल क्षण भर को तुम रोक सकते हो, और वह तेजी से आती है भीतर और तेजी से जाती है बाहर। यह होता है, तुम इसके लिए जिम्मेवार नहीं हो। भोजन है, वह तुम्हें लेना ही पड़ेगा। जो कुछ भी तुम खाओगे, वह एक तरह की हिंसा ही होगी। यदि तुम वृक्षों से फल तोड़ते हो, तो तुम चोट पहुंचाते हो वृक्षों को।

जैनों ने मांस न खाने की शुरुआत की। अच्छी है बात—क्योंकि उससे बचा जा सकता है। जिससे बचा जा सके, वह सुंदर है। फिर वे भयभीत हो गए वृक्षों के फल खाने से, क्योंकि यदि तुम फल तोड़ते हो तो वृक्ष को चोट लगती है। तो करो क्या? प्रतीक्षा करो—जब फल पक जाए और गिर जा।! धरती पर। वह भी अच्छा है, कुछ गलत नहीं। लेकिन फल गिर भी जाता है धरती पर तो भी उसमें लाखों बीज होते हैं—और प्रत्येक बीज वृक्ष बन सकता था, और प्रत्येक वृक्ष में फिर संभावना थी लाखों फलों की। तो तुम खा रहे हो उन सारी संभावनाओं को—तुम हिंसा कर रहे हो!

तुम किसी भी सिद्धात को पागलपन तक खींच सकते हो; और तब केवल एक संभावना बचती है— आत्महत्या करने की। लेकिन वह भी हिंसा है. तुम मार रहे हो स्वयं को। न केवल स्वयं को, तुम्हारे रक्त में सात लाख जीवाणु हैं, वे मर जाएंगे यदि तुम आत्महत्या करते हो। तो जाओ कहां— आत्महत्या तक भी संभव नहीं।

यह तो बड़ा निरर्थक जीवन हो जाएगा, चिंतित, तनावपूर्ण। और तुम सुखी, शांत और मौन जीवन की खोज में निकले थे; और यह जीवन इतना तनावपूर्ण हो जाएगा और इतना व्यथित.। तुम देख सकते हो—जरा जाओ, देखो जैन मुनियों के चेहरों की ओर। तुम कभी उनके चेहरों को आनंदित न पाओगे— असंभव है। यदि तुम इतने भय में जीते हो कि हर चीज गलत मालूम पड़ती है, तो तुम अपराध ही अपराध से घिर जाते हो, और कुछ भी नहीं। और जो कुछ भी तुम करते हो वह करीब—करीब पाप ही होता है—एक शब्द बोलना भी पाप है, क्योंकि जब तुम बोलते हो, तब ज्यादा गरम वायु बाहर आती है मुंह से; वह मार डालती है हजारों छोटे —छोटे जीवाणुओं को। तुम पानी पीते हो और तुम जीवाणुओं को मारते हो, तुम बच नहीं सकते। तो करो क्या?

पतंजलि जीवन के विरोध में नहीं हैं; वे प्रेमी हैं। जो जानते हैं, वे कभी भी जीवन के विरोध में नहीं होते। तो अहिंसा का इतना ही अर्थ है कि जीवन को बहुत—बहुत प्रेम करो—मेरे देखे, अहिंसा प्रेम है— जीवन को इतना अधिक प्रेम करो कि तुम किसी को चोट न पहुंचाना चाहो, बस इतना ही। लेकिन फिर भी जीने में ही बहुत सी बातें होंगी जिन पर तुम्हारा कोई वश नहीं है। उन्हें लेकर चिंतित मत होना, अन्यथा तुम पागल हो जाओगे। कोई फिक्र मत करना उनकी। केवल एक बात ध्यान में रखना कि तुमने किसी को जान—बूझ कर कष्ट नहीं पहुंचाया है। और यदि तुम्हें किसी को मजबूरी में कष्ट पहुंचाना भी पड़ता है तो भी तुम में भाव प्रेम का ही होता है।

तुम किसी वृक्ष के पास जाते हो और यदि तुम्हें तोड़ना ही पड़ता है फल क्योंकि तुम्हें भूख लगी है और तुम मर जाओगे अगर तुम फल न तोड़ो, तो धन्यवाद करना वृक्ष का। पहले वृक्ष की अनुमति लेना कि 'मैं यह फल ले रहा हूं। यह ज्यादती है, लेकिन मैं मर रहा हूं और मेरी मजबूरी है। लेकिन मैं बहुत सारे तरीकों से सेवा करूंगा तुम्हारी। मैं चुकाऊंगा कीमत। मैं तुम्हें पानी दूंगा, मैं तुम्हारी देख —भाल करूंगा; मैं जो भी ले रहा हूं तुम्हें लौटा दूंगा—उससे कहीं ज्यादा ही लौटा दूंगा।'

जीवन को प्रेम करो, जीवन को सहायता दो, जीवन को सहारा दो—प्रत्येक जीवंत चीज के प्रति आशीष बनो। और यदि तुम्हें कुछ ऐसा करना पड़े, जिससे कि तुम्हें लगता है बचा जा सकता था, तो पहली बात, उससे बचना। यदि उससे बचा न जा सकता हो, तो कोशिश करना उसे वापस लौटाने की, कोशिश करना प्रतिदान की।

और बहुत अंतर पड़ता है। अब तो वैज्ञानिक भी कहते हैं कि अंतर पड़ता है। यदि तुम वृक्ष की अनुमति लेते हो तो वृक्ष को चोट नहीं लगती। अब वह अनधिकार हस्तक्षेप नहीं है, अब अनुमति ले

ली गई है। असल में वृक्ष को अच्छा लगता है कि तुम आए। वृक्ष आनंदित होता है कि वह जरूरत में किसी की मदद कर सका। वृक्ष समृद्ध होता है कि तुम आए और वृक्ष कुछ बांट सका। फल तो वैसे भी गिर ही जाते। वृक्ष बांट सका किसी के साथ—तुमने न केवल अपनी मदद की, तुमने वृक्ष की भी मदद की चेतना में विकसित होने में।

अहिंसक होने का अर्थ है हितैषी होना, सब की मदद करना—अपनी भी और दूसरों की भी। यह है यम का प्रथम आयाम। प्रेम है पहला आत्म— अनुशासन।

किसी ने संत अगस्तीन से पूछा, 'मैं बिलकुल बेपढा—लिखा आदमी हूं और मैं नहीं जानता कि क्या करूं और क्या न करूं। और हजारों शास्त्र हैं और लाखों सिद्धात हैं और मैं भ्रम में पड़ा हूं क्योंकि कोई कुछ कहता है, कोई और उसके एकदम विपरीत कहता है—और मेरी कुछ समझ में नहीं आता कि क्या करूं और क्या न करूं। आप महान व्यक्ति हो, बहुत बुद्धिमान, संत : बस एक शब्द बता दें मुझे, जिससे कि बिना किसी भ्रम के मैं उसी पर चल सकूं।'

संत अगस्तीन एक कुशल उपदेशक था। वह घंटों बोल सकता था, लेकिन किसी ने भी संपूर्ण धर्म को एक शब्द में नहीं पूछा था। उसने अपनी आंखें बंद कर लीं, ध्यान किया, क्योंकि कठिन थी बात, और फिर उसने अपनी आंखें खोलीं और कहा, 'तो तुम जाओ और प्रेम करो। यदि तुम प्रेम करते हो तो सब ठीक है।'

अहिंसा का अर्थ है प्रेम। यदि तुम प्रेम करते तो सब ठीक हो जाता है। यदि तुम प्रेम नहीं करते, तो चाहे तुम अहिंसक भी हो जाओ तो बेकार है। और क्यों पतंजलि इसे पहला यम, पहला अनुशासन कहते हैं? प्रेम पहला अनुशासन है, आधार है। यदि तुम में कोई भाव भी बच रहता है दूसरों को चोट पहुंचाने का, तो जब तुम शक्तिशाली होओगे तो खतरनाक हो जाओगे। वही बचा हुआ जरा सा भाव खतरा बन जाएगा। तुम में लेश मात्र भाव नहीं बचना चाहिए किसी को चोट पहुंचाने का; और वह प्रत्येक व्यक्ति में होता है।

और तुम हजारों—लाखों ढंग से चोट पहुंचाते हो—और तुम ऐसे—ऐसे तरीकों से चोट पहुंचाते हो कि कोई बचाव भी नहीं कर सकता है। कई बार तुम ' अच्छे' तरीकों से चोट पहुंचाते हो—अच्छे कारणों से, अच्छे बहानों' से। तुम किसी व्यक्ति से कुछ कहते हो जो शायद ठीक भी है और तुम कहते हो, 'मैं सच कह रहा हूं ' लेकिन भीतर गहरे में इच्छा होती है उस सच द्वारा दूसरे को चोट पहुंचाने की। तब सच झूठ से बदतर होता है। उसे न कहना ठीक है। यदि तुम अपने सत्य को प्रीतिकर और सुखद और सुंदर नहीं बना सकते, तो बेहतर है उसे कहो ही मत। और सदा अपने भीतर देखना कि तुम ऐसा किस लिए कह रहे हो। गहरे में इच्छा क्या है? क्या तुम सत्य के नाम पर दूसरे को चोट पहुंचाना चाहते हो? तब तुम्हारा सत्य पहले से ही विषाक्त है : वह धार्मिक नहीं है, वह नैतिक नहीं है—वह पहले से ही अनैतिक है। छोड़ो ऐसा सत्य।

मैं कहता हूं तुम से, झूठ भी अच्छा है यदि वह प्रेम से जन्मा हो, और सत्य बुरा है अगर वह केवल चोट पहुंचाने के लिए बोला गया है।

ये कोई मुर्दा सिद्धात नहीं हैं। तुम्हें उन्हें समझना होगा और तुम्हें उस कुशलता को सीखना है कि उनका उपयोग कैसे करना होता है। मैंने देखा है लोगों को अच्छे सिद्धांतों को बुरे कारणों के लिए उपयोग करते हुए, अच्छा जीवन बुरे कारणों के लिए जीते हुए। तुम बड़े महात्मा हो सकते हो केवल अहंकार की तुष्टि के लिए; तब तुम्हारी धार्मिकता एक पाप है। तुम चरित्रवान हो सकते हो केवल गौरवान्वित अनुभव करने के लिए, कि तुम एक चरित्रवान व्यक्ति हो। इससे तो बेहतर था कि तुम बिना चरित्र के होते; कम से कम यह अहंकार तो न होता। यदि चरित्र केवल अहंकार का पोषण ही है तो वह चरित्रहीनता से बदतर है। तो सदा भीतर गहरे में झांकना, अपने अस्तित्व में भीतर देखना कि तुम क्या कर रहे हो, कि तुम क्यों कर रहे हो। और सतही निष्कर्षों से कभी संतुष्ट मत हो जाना—वे तो हजारों होते हैं और तुम यकीन दिला सकते हो स्वयं को कि तुम ठीक थे।

तुम घर आते हो। तुम क्रोध में हो, क्योंकि आफिस में बीस ने ठीक व्यवहार नहीं किया तुम्हारे साथ। कोई बीस कभी ठीक व्यवहार नहीं करता। क्योंकि वह बीस है इसलिए कुछ भी वह करता है, बुरा ही लगता है, खराब ही मालूम पड़ता है। क्योंकि भीतर तो तुम कुढ़ते रहते हो कि तुम नीचे हो दूसरा ऊपर है। तुम्हें नीचे होने की सच्चाई से नफरत होती है, इसलिए जो कुछ भी कहा जाता है वह बुरा लगता है। लेकिन तुम प्रतिक्रिया नहीं कर सकते, वह बात जरा मंहगी पड़ेगी। तुम क्रोध से भरे हुए आते हो घर और बच्चे की पिटाई करने लगते हो। और तुम कहते हो, '.. क्योंकि तुम बुरे लड़कों के साथ खेल रहे थे।'

बच्चा तो रोज ही खेलता है बुरे लड़कों के साथ। और कौन हैं ये बुरे लड़के? क्योंकि उन बुरे लड़कों की माताएं भी अपने बच्चों को पीट रही हैं, क्योंकि वे खेल रहे हैं तुम्हारे बुरे बेटे के साथ। कौन हैं ये बुरे लड़के? लेकिन तुम तो तर्क बैठा रहे होते हो। क्रोध मौजूद है, उबल रहा है। तुम उसे उलीच देना चाहते हो किसी पर। और निश्चित ही, केवल कमजोर व्यक्ति पर ही निकाला जा सकता है उसे। बच्चे इस दृष्टि से बड़े उपयोगी हैं। पिता क्रोध में है, तो वह पीट देता है बच्चे को; मां क्रोध में है, वह पीट देती है बच्चे को; शिक्षक क्रोधित होता है, वह पीट देता है बच्चे को। और हर कोई छोटे बच्चों पर उन चीजों को निकाल रहा होता है, जिन्हें किसी दूसरे पर नहीं निकाला जा सकता है।

मेरे देखे, यदि किसी दंपति के बच्चे न हों तो ज्यादा संभावना होती है तलाक की। यदि उनके बच्चे होते हैं, तो कम संभावना होती है तलाक की। क्योंकि जब भी पत्नी क्रोधित होती है पति पर, तो वह पीट सकती है बच्चों को; जब भी पति नाराज होता है पत्नी से, तो वह पीट सकता है बच्चों को। बच्चे एक थैरेपी की भांति हैं। वे मदद करते हैं, वे अदभुत रूप से मदद करते हैं। इसीलिए पूरब में जहां एक दंपति के अनेक बच्चे होते हैं, तलाक नहीं होता। पश्चिम में अब यह कठिन है, वैवाहिक जीवन असंभव

हो रहा है, क्योंकि बच्चे नहीं होते। उनकी जरूरत होती है एक गहन थैरेपी के रूप में। वे एक जोड़ने वाली कड़ी होते हैं; वे मदद देते हैं रेचन में।

खयाल रहे, कभी भी किसी बुरे कारण के लिए अच्छी बात मत करना, क्योंकि वह बात अच्छी नहीं रहती और तुम धोखा ही दे रहे होते हो।

अहिंसा है पहली बात—प्रेम सदा पहली बात है। और यदि तुम सीख लेते हो कि प्रेम कैसे करना है, तो तुम सब सीख लेते हो। धीरे— धीरे वही प्रेम तुम्हारे चारों ओर का एक आभा—मंडल बन जाता है : जहां कहीं तुम जाते हो, एक प्रसाद तुम्हारे साथ रहता है; जहां भी तुम जाते हो, आनंद की भेंट साथ लिए जाते हो, तुम बांटते हो अपने प्रेम को।

अहिंसा कोई नकारात्मक बात नहीं है; वह प्रेम की एक विधायक अनुभूति है। अहिंसा शब्द नकारात्मक है। शब्द नकारात्मक है क्योंकि लोग हिंसक हैं, और हिंसा उनके व्यक्तित्व में इतनी विधायक घटना बन गई है कि किसी नकारात्मक शब्द की जरूरत है उसे नकार देने के लिए। लेकिन केवल शब्द नकारात्मक है; घटना विधायक है : वह है प्रेम।

'अहिंसा, सत्य......।'

सत्य का अर्थ है—प्रामाणिकता, सच्चे रहना, झूठ में न जीना, मुखौटों का उपयोग न करना, जो भी तुम्हारा वास्तविक चेहरा हो उसे प्रकट करना, चाहे कुछ भी कीमत चुकानी पड़े।

ध्यान रहे, इसका यह अर्थ नहीं कि तुम्हें दूसरों के मुखौटे उतारने हैं, यदि वे प्रसन्न हैं अपने झूठ के साथ तो यह उनके निर्णय की बात है। जाकर किसी का मुखौटा मत उतार देना, क्योंकि लोग इसी ढंग से चलते हैं। वे सोचते हैं कि उन्हें प्रामाणिक होना है; उसका मतलब वे समझते हैं कि उन्हें जाकर नग्न कर देना है प्रत्येक व्यक्ति को—'क्यों तुम छिपा रहे हो अपना शरीर? इन कपड़ों की कोई जरूरत नहीं।'

नहीं, कृपा करके ध्यान रखना : स्वयं के प्रति सच्चे रहना। तुम्हें संसार में किसी दूसरे का सुधार करने की कोई जरूरत नहीं। यदि तुम स्वयं विकसित हो सकते हो, तो पर्याप्त है। सुधारक मत बनना और दूसरों को सिखाने की कोशिश मत करना और दूसरों को बदलने की कोशिश मत करना। यदि तुम बदल गए, तो उतना संदेश पर्याप्त है।

प्रामाणिक होने का अर्थ है : अपने अंतस के प्रति सच्चे रहना। कैसे रहें सच्चे? तीन बातें ध्यान में ले लेनी हैं। पहली, किसी की मत सुनो कि वे तुम्हें क्या होने के लिए कहते हैं; सदा अपने अंतस की आवाज को सुनो कि तुम क्या होना चाहते हो। अन्यथा तुम्हारा पूरा जीवन व्यर्थ हो जाएगा। तुम्हारी मां चाहती है कि तुम इंजीनियर बनो; तुम्हारे पिता तुम्हें डाक्टर बनाना चाहते हैं; और तुम खुद कवि बनना चाहते हो। तो करो क्या? निश्चित ही मां ठीक कहती है, क्योंकि वह बात ज्यादा फायदे की है,

आर्थिक रूप से ज्यादा काम की बात है इंजीनियर होना। पिता भी ठीक कहते हैं कि डाक्टर बन जाओ; यह उपयोगी है बाजार में। बाजार में इसकी कीमत है।'कवि? क्या तुम पागल हो गए हो? क्या तुम बुद्धि गंवा बैठे हो?'

कवि अनादृत व्यक्ति हैं, कोई उन्हें नहीं चाहता। उनकी कोई जरूरत नहीं है। काव्य के बिना संसार चल सकता है। काव्य के खो जाने से कोई तकलीफ न होगी। लेकिन यह संसार इंजीनियरों के बिना नहीं चल सकता; संसार चलाने के लिए बहुत इंजीनियरों की जरूरत है। यदि तुम्हारी जरूरत है, तो तुम मूल्यवान हो; यदि तुम्हारी जरूरत नहीं है, तो तुम्हारा कोई मूल्य नहीं है।

लेकिन यदि तुम कवि होना चाहते हो तो कवि हो जाओ। तुम शायद भिखारी रहोगे। ठीक है। तुम कविता करके बहुत धनवान नहीं हो सकते—फिक्र मत करो, क्योंकि हो सकता है तुम बड़े इंजीनियर बन जाओ और शायद तुम बहुत धन भी कमा लो, लेकिन तुम्हें कभी कोई तृप्ति न होगी। तुम सदा प्यासे रहोगे; तुम्हारे प्राण कवि होने के लिए तड़पते रहेंगे।

मैंने सुना है कि एक बड़े वैज्ञानिक, एक नोबल पुरस्कार विजेता सर्जन से पूछा गया, 'जब आपको नोबल पुरस्कार मिला, तब आप खुश नहीं दिखाई पड़ रहे थे। क्या बात है?' उसने कहा, 'मैंने तो सदा नर्तक बनना चाहा था। पहली तो बात यह कि मैं सर्जन कभी बनना ही नहीं चाहता था। और अब न केवल मैं सर्जन हो गया हूं मैं बहुत सफल सर्जन हो गया हूं और यह एक बोझ है। और मैं तो केवल नर्तक होना चाहता था—और मैं एक मामूली सा नर्तक हूं—यही मेरी पीड़ा है, मेरा संताप है। जब भी मैं किसी को नृत्य करते देखता हूं तो मैं बहुत दुखी होता हूं बहुत पीड़ा अनुभव करता हूं। इस नोबल पुरस्कार का मैं क्या करूंगा? यह मेरे लिए कोई नृत्य तो नहीं हो सकता है; यह मुझे नृत्य नहीं दे सकता है।'

ध्यान रखना, अपनी भीतर की आवाज के प्रति सच्चे रहना। हो सकता है यह तुम्हें खतरे में ले जाए; तो जाना खतरे में, लेकिन भीतर की आवाज के प्रति सच्चे रहना। तो एक संभावना है कि किसी दिन तुम उस अवस्था तक पहुंच जाओगे जहां तुम आंतरिक तृप्ति के साथ नृत्य कर सको। सदा ध्यान रखना, पहली बात है तुम्हारी अंतस सत्ता, और दूसरों को तुम्हें प्रभावित और नियंत्रित मत करने देना। और ऐसे बहुत हैं. हर कोई तैयार है तुम पर नियंत्रण करने के लिए; हर कोई तैयार है तुम्हें सुधारने के लिए; हर कोई तैयार है तुम्हें बिना मांगे सलाह देने के लिए। हर कोई तुम्हें तुम्हारे जीवन के लिए निर्देश दे रहा है।

निर्देश तो तुम्हारे भीतर ही मौजूद है; तुम उसका नक्शा साथ लिए चलते हो। प्रामाणिक होने का अर्थ है स्वयं के प्रति सच्चे होना। यह बहुत खतरनाक बात है; विरले व्यक्ति ही ऐसा कर सकते हैं। लेकिन जब भी लोग ऐसा करते हैं तो उन्हें बहुत मिलता है। वे एक ऐसा सौंदर्य पा लेते हैं, ऐसा प्रसाद, ऐसी

संतुष्टि—जिसकी तुम कल्पना भी नहीं कर सकते। यदि प्रत्येक व्यक्ति इतना हताश दिखाई देता है तो कारण यही है कि कोई अपनी भीतर की आवाज को नहीं सुन रहा है।

तुम किसी लड़की से शादी करना चाहते थे, लेकिन वह लड़की मुसलमान थी और तुम हिंदू ब्राह्मण हो। तुम्हारे माता—पिता ने इजाजत नहीं दी। समाज स्वीकार नहीं करेगा; यह बात खतरनाक थी। लड़की गरीब थी और तुम अमीर हो। तो तुमने विवाह कर लिया किसी अमीर स्त्री से, हिंदू ब्राह्मण स्त्री से, जो स्वीकार किया गया सब के द्‌वारा—लेकिन तुम्हारे हृदय द्‌वारा नहीं। तो अब तुम एक असुंदर जीवन जीते हो। अब तुम किसी वेश्या के पास जाते हो। लेकिन वेश्याएं भी तुम्हारे काम न आएंगी। तुमने बेकार गंवाया अपना पूरा जीवन। तुमने व्यर्थ किया अपना पूरा जीवन।

सदा भीतर की आवाज को ही सुनना, और किसी बात को मत सुनना। हजारों प्रलोभन हैं तुम्हारे चारों ओर, क्योंकि बहुत से लोग अपनी— अपनी चीजों को बेच रहे हैं। एक बड़ा बाजार है यह संसार और हर किसी को अपनी चीज तुम्हें बेच देने में रुचि है, हर कोई सेल्समैन है। यदि तुम बहुत से सेल्समैनों की बातें सुनते हो तो तुम पागल हो जाओगे। किसी की मत सुनो, अपनी आंखें बंद कर लो और भीतर की आवाज को सुनो। यही है ध्यान. भीतर की आवाज को सुनना। यह पहली बात है।

फिर दूसरी बात—यदि तुमने पहली बात पूरी कर ली है, केवल तभी दूसरी संभव है—कोई मुखौटा कभी मत ओढो। यदि तुम क्रोधित हो, तो क्रोधित हो। खतरा है इसमें, तो भी मुस्कुराओ मत, क्योंकि वह झूठ हो जाना है।

लेकिन तुम्हें सिखाया गया है कि जब क्रोध आए तो मुस्कुराओ। तब तुम्हारी मुस्कुराहट झूठी हो जाती है, एक मुखौटा हो जाती है। मात्र एक व्यायाम ओंठों का, और कुछ भी नहीं। हृदय तो क्रोध से भरा है, विषाक्त है और ओंठ मुस्कुरा रहे हैं—तुम एक नकली आदमी हो जाते हो।

फिर एक दूसरी बात भी होती है : जब तुम सच में मुस्कुराना चाहते हो, तब भी तुम मुस्कुरा नहीं सकते। तुम्हारा सारा भीतरी ढांचा उलट—पुलट हो जाता है। क्योंकि जब तुम क्रोधित होना चाहते थे तो न हुए; जब तुम घृणा करना चाहते थे तो तुमने न की। अब तुम प्रेम करना चाहते हो, तो अचानक तुम पाते हो कि भीतरी रचना—तंत्र काम ही नहीं करता। अब तुम मुस्कुराना चाहते हो, तो तुम्हें जबरदस्ती मुस्कुराना पड़ता है। तुम्हारा हृदय हंसी से भरा हुआ है और तुम जोर से हंसना चाहते हो, लेकिन तुम हंस नहीं सकते। कोई चीज हृदय में घुटने लगती है, गले में कुछ फंसने लगता है। मुस्कुराहट आती ही नहीं, और यदि आ भी जाए तो वह बडी दबी—दबी और मरियल सी मुस्कुराहट होती है। वह तुम्हें आंदोलित नहीं करती। तुम जोर से खिलखिलाते नहीं। वह तुमसे एक आभा की तरह विकीरित नहीं होती।

इसलिए जब तुम क्रोधित होना चाहो, तो हो जाना क्रोधित। कुछ गलत नहीं है क्रोधित होने में। यदि तुम हंसना चाहते हो, तो हंसना। कुछ बुराई नहीं है जोर से हंसने में। धीरे— धीरे तुम पाओगे कि

तुम्हारा पूरा शरीर, भीतर की पूरी व्यवस्था बिना अवरोध के काम कर रही है। जब वह ठीक से काम करती है तो उसके आस—पास एक गुनगुनाहट होती है। जैसे कि कार में जब हर चीज ठीक काम कर रही होती है, तो एक गुनगुनाहट होती है। जो ड्राइवर कार से प्रेमपूर्वक परिचित होता है वह जानता है कि अब हर चीज ठीक काम कर रही है; एक तालमेल है, यंत्र—व्यवस्था ठीक से काम कर रही है।

तुम जान सकते हो; जब भी किसी व्यक्ति का रचना—तंत्र ठीक काम कर रहा होता है, तब तुम उसके चारों ओर की गुनगुनाहट को सुन सकते हो। वह चलता है, लेकिन उसके चलने में एक नृत्य होता है। वह बोलता है, लेकिन उसके शब्दों में एक काव्य होता है। वह देखता है तुम्हारी ओर, और वह सच में देखता है; उसका देखना कुनकुना—कुनकुना नहीं होता, ऊष्मापूर्ण होता है। जब वह छूता है तुम्हें, तो सचमुच छूता है तुम्हें। तुम अनुभव कर सकते हो उसकी ऊर्जा को अपने शरीर में प्रवाहित होते हुए; एक जीवन—तरंग तुम्हें छू रही होती है। क्योंकि उसकी भीतरी रचना ठीक—ठीक काम कर रही होती है।

तो मुखौटे मत ओढ़ना; अन्यथा तुम विकृतियां निर्मित कर लोगे अपनी संरचना में—ग्रंथियां निर्मित कर लोगे। तुम्हारे शरीर में बहुत सी ग्रंथियां हैं। जो व्यक्ति क्रोध का दमन करता है, उसके मसूढे सख्त हो जाते हैं। सारा क्रोध मसूढ़ों में इकट्ठा हो जाता है। उसके हाथ कुरूप हो जाते हैं। उनमें किसी नृत्यकार जैसी लोचपूर्ण भंगिमा नहीं होती। नहीं हो सकती, क्योंकि क्रोध अंगुलियों में इकट्ठा हो जाता है। ध्यान रहे, क्रोध के निकलने के दो स्थल हैं। एक है दात, दूसरा है अंगुलियां : क्योंकि सारे जानवर जब क्रोधित होते हैं तो वे तुम्हें कांटते हैं दांतों से या वे तुम्हें चीरना—फाड़ना शुरू कर देते हैं हाथों से। तो नाखून और दात दो स्थल हैं जहां से कि क्रोध निकलता है।

मेरा अपना खयाल है कि जहां भी क्रोध को बहुत ज्यादा दबाया जाता है, वहा लोगों को दांतों की तकलीफ होती है, उनके दात खराब हो जाते हैं। क्योंकि बहुत ज्यादा ऊर्जा होती है और कभी

निकलती नहीं। और जो भी क्रोध को दबाता है, वह खाएगा ज्यादा, क्रोधित व्यक्ति सदा ज्यादा खाएंगे, क्योंकि दांतों को कोई न कोई व्यायाम चाहिए। क्रोधित व्यक्ति सिगरेट ज्यादा पीएंगे। क्रोधित व्यक्ति बातें ज्यादा करेंगे, वे पागलपन की हद तक बातें कर सकते हैं, क्योंकि जबड़ों को किसी न किसी तरह का व्यायाम चाहिए ताकि ऊर्जा थोड़ी निकल जाए। और क्रोधी व्यक्तियों के हाथ गांठदार और कुरूप हो जाते हैं। यदि ऊर्जा निकल जाती, तो वे हाथ सुंदर हो सकते थे।

जब भी तुम कुछ दबाते हो, तो शरीर में कोई हिस्सा कठोर हो जाता है, उस भाव विशेष से मेल खाता हुआ हिस्सा कठोर हो जाता है। यदि तुम रोते नहीं, तो तुम्हारी आंखें चमक खो देंगी। क्योंकि आंसू जरूरी हैं; वे बहुत जीवंत घटना हैं। जब कभी—कभार तुम रोते हो, सचमुच ही तुम उस रोने में डूब जाते हो—पूरे हृदय से रो लेते हो—और आंसू बहने लगते हैं तुम्हारी आंखों से, तो तुम्हारी आंखें धुल जाती हैं। तुम्हारी आंखें फिर से ताजी, युवा और कुंआरी हो जाती हैं।

इसीलिए स्त्रियों की आंखें ज्यादा सुंदर होती हैं, क्योंकि वे अभी भी रो सकती हैं। पुरुष ने अपनी आंखों की चमक खो दी है, क्योंकि उनके पास गलत धारणा है कि पुरुषों को रोना नहीं चाहिए। यदि कोई छोटा लड़का भी रोता है तो दूसरे लोग, यहां तक कि मां—बाप भी कहते हैं, 'क्या कर रहे हो तुम? क्या लड़कियों जैसे रो रहे हो?' कितनी नासमझी चल रही है! क्योंकि ईश्वर ने तो तुम्हें—स्त्री—पुरुष दोनों को—एक जैसी अश्रु —ग्रंथियां दी हैं। यदि पुरुष को रोना नहीं होता, तो अश्रु—ग्रंथियां ही न दी होतीं। सीधा—साफ गणित है। पुरुष में उसी अनुपात में अश्रु—ग्रंथियां क्यों हैं जितनी स्त्री में हैं?

आंखों को जरूरत है रोने की, आंसुओ की, और बहुत ही सुंदर बात है यदि तुम पूरे हृदय से रो सको और आंसू बहा सको। ध्यान रहे, यदि तुम रो नहीं सकते पूरे हृदय से, तो तुम हंस भी नहीं सकते, क्योंकि वह दूसरा छोर है। जो लोग हंस सकते हैं, वे रो भी सकते हैं; जो लोग रो नहीं सकते, वे हंस भी नहीं सकते। और तुमने कभी ध्यान दिया होगा बच्चों की इस बात पर : यदि वे जोर से और ज्यादा देर तक हंसते हैं तो उनके आंसू आ जाते हैं। क्योंकि दोनों चीजें जुड़ी हुई हैं। गांवों में मैंने सुना है माताएं बच्चों से कहती हैं : 'बहुत ज्यादा मत हंसो, वरना तुम रोने लगोगे।' वस्तुत: सच है बात, क्योंकि घटना अलग नहीं है—वही ऊर्जा विपरीत ध्रुव की ओर चली जाती है।

तो दूसरी बात : मुखौटे मत पहनना, सच्चे रहना—किसी भी मूल्य पर।

और तीसरी बात प्रामाणिकता के संबंध में : सदा वर्तमान में रहना—क्योंकि सारा झूठ प्रवेश करता है या तो अतीत से या फिर भविष्य से। जो बीत चुका वह बीत चुका—उसकी फिक्र मत करना। और उसे किसी बोझ की भांति मत ढोना : अन्यथा वह तुम्हें वर्तमान के प्रति प्रामाणिक न होने देगा। और जो अभी घटा नहीं, वह तो अभी घटा ही नहीं—भविष्य के लिए अनावश्यक रूप से चिंतित मत होना; अन्यथा वह वर्तमान में आ जाएगा और उसे नष्ट कर देगा। वर्तमान के प्रति सच्चे रहना, और तब तुम प्रामाणिक होओगे। यहीं और अभी होना प्रामाणिक होना है। कोई अतीत नहीं, कोई भविष्य नहीं : यही क्षण है सब कुछ, यही क्षण है संपूर्ण शाश्वतता।

ये तीन बातें, और तुम उसे उपलब्ध हो जाते हो, जिसे पतंजलि सत्य कहते हैं। तब जो कुछ भी तुम कहोगे, सच होगा। साधारणत: तुम सोचते हो कि तुम्हें सच कहने के लिए सजग रहना होता है। मैं यह नहीं कह रहा हूं। मैं यह कह रहा हूं : तुम प्रामाणिकता निर्मित करो—फिर जो कुछ भी तुम कहते हो, वह सच होगा। एक प्रामाणिक व्यक्ति झूठ नहीं बोल सकता है; वह जो भी कहता है, सच होगा।

योग में हमारी एक परंपरा है—शायद तुम्हारे लिए इस पर विश्वास करना भी संभव न हो; मैं विश्वास करता हूं क्योंकि मैंने इसे जाना है, मैंने इसे अनुभव किया है : यदि एक सच्चा प्रामाणिक व्यक्ति झूठ भी बोल दे, तो वह झूठ सच हो जाएगा, क्योंकि प्रामाणिक व्यक्ति झूठ बोल नहीं सकता। इसीलिए पुराने शास्त्रों में कहा गया है, 'यदि तुम प्रामाणिकता का अभ्यास कर रहे हो, तो किसी के

विरुद्‌ध कुछ कहने के प्रति सजग रहना—क्योंकि वह सच हो सकता है।' हमारे पास बहुत सी कथाएं हैं महान ऋषियों की, जिन्होंने क्रोध में कुछ कह दिया, लेकिन वे इतने प्रामाणिक थे कि..।

तुमने सुना होगा दुर्वासा का नाम—स्व महान ऋषि, प्रामाणिक व्यक्ति, लेकिन यदि वह कुछ कह दे, तो उसे वह स्वयं भी वापस नहीं ले सकता। यदि वह शाप दे देता है किसी को, तो वह शाप पूरा होगा ही। यदि वह कह दे, 'तुम कल मर जाओगे।' तो तुम कल मर ही जाओगे, क्योंकि प्रामाणिकता के उस स्रोत से झूठ का आना संभव ही नहीं है। पूरा अस्तित्व समर्थन करता है प्रामाणिक व्यक्ति का। और फिर वह व्यक्ति भी उसे वापस नहीं ले सकता।

सुंदर है बात। इसीलिए लोग महान ऋषियों के पास उनका आशीर्वाद पाने के लिए जाते हैं : यदि वे आशीष दे दें, तो बात होकर रहेगी। यही है अर्थ, और कुछ भी नहीं। वे जाते हैं और मांगते हैं आशीष। यदि ऋषि आशीष दे देता है, तो उन्हें चिंता नहीं रहती; अब बात पूरी होगी ही, क्योंकि एक प्रामाणिक व्यक्ति झूठ कैसे कह सकता है! यदि वह झूठ भी हो, तो भी सच होने ही वाला है। तो मैं नहीं कहता, 'सच बोलो।' मैं कहता हूं 'प्रामाणिक रही और जो भी तुम कहते हो, सच होगा।'

तीसरा है अस्तेय, अचौर्य—चोरी न करना, ईमानदारी। मन बड़ा चोर है। बहुत तरीकों से वह चोरी करता है। हो सकता है तुम लोगों की चीजें न चुराते हो। लेकिन तुम विचारों को चुरा सकते हो। मैं तुमसे कहता हूं कोई बात; तुम बाहर जाते हो और तुम दिखाते हो कि वह तुम्हारा ही विचार है। तो तुमने उसे चुराया है, तुम चोर हो। शायद तुम्हें पता भी नहीं होगा कि तुम क्या कर रहे हो।

पतंजलि कहते हैं, 'अचौर्य की अवस्था में रहना।' ज्ञान, चीजें—कुछ भी चुराना नहीं चाहिए। तुम्हें मौलिक होना चाहिए और सदा सजग रहना चाहिए कि 'ये चीजें मेरी नहीं हैं।' खाली रहो, वह बेहतर है, लेकिन अपने घर को चुराई हुई चीजों से मत भर लेना। क्योंकि यदि तुम चोरी करते रहते हो, तो तुम सारी मौलिकता खो दोगे। तब तुम कभी न खोज पाओगे तुम्हारा अपना आकाश. तुम भर जाओगे दूसरों की धारणाओं से, विचारों से, बातों से। और अंततः वे किसी मूल्य की सिद्‌ध नहीं होतीं। केवल वही मूल्यवान है, जो कि तुम से आता है। असल में केवल वही तुम्हारा है जो तुम से आता है, और कुछ भी नहीं। तुम चुरा तो सकते हो, लेकिन तुम उसका आनंद नहीं ले सकते।

एक चोर कभी निश्चित नहीं होता, हो नहीं सकता—उसे सदा पकड़े जाने का भय होता है। और यदि उसे कोई न भी पकड़ पाए, तो भी वह तो जानता ही है कि वह चीज उसकी नहीं है। यह बात एक निरंतर बोझ बनी रहती है उसके हृदय पर।

पतंजलि कहते हैं, 'चोर मत बनो—किसी भी ढंग से, किसी भी आयाम से।' ताकि तुम्हारी मौलिकता का फूल खिल सके। स्वयं को चुराई हुई चीजों और विचारों द्‌वारा, दर्शन—सिद्‌धांतों द्‌वारा, धर्मों द्‌वारा मत बोझिल करना। खिलने देना अपने अंतर—आकाश के फूल को।

चौथा है ब्रह्मचर्य। इसका अर्थ किया जाता रहा है काम—निग्रह। यह बात ठीक नहीं, क्योंकि ब्रह्मचर्य एक व्यापक शब्द है, बहुत विराट शब्द है। काम—निग्रह बहुत संकीर्ण बात है; वह एक हिस्सा है इसका, लेकिन पूरी बात नहीं है। ब्रह्मचर्य शब्द का अर्थ है—'ब्रह्म जैसी चर्या।' इस शब्द का ही अर्थ है ईश्वर की भांति जीवन, ईश्वरीय जीवन।

निश्चित ही, ईश्वरीय जीवन में कामवासना तिरोहित हो जाती है। लेकिन ब्रह्मचर्य कामवासना के विरुद्ध नहीं है। यदि वह कामवासना के विरुद्ध है तो कामवासना कभी तिरोहित नहीं हो सकती। ब्रह्मचर्य रूपांतरण है ऊर्जा का : यह कामवासना के विरुद्ध नहीं है, बल्कि यह पूरी ऊर्जा को काम—केंद्र से हटा कर उच्चतर केंद्रों तक ले जाने की बात है। जब यह ऊर्जा व्यक्ति के सातवें केंद्र तक, सहस्रार तक पहुंचती है, तब ब्रह्मचर्य घटित होता है। यदि वह पहले ही केंद्र में, मूलाधार में बनी रहती है, तो कामवासना होती है। जब वह सातवें केंद्र पर पहुंचती है, तो समाधि होती है। एक ही ऊर्जा यात्रा करती है। यह उसके विरुद्ध होने की बात नहीं; उलटे यह एक कला है कि इसका उपयोग कैसे किया जाए।

जो व्यक्ति कामवासना में डूबा है, वह आत्मघाती है। वह अपनी ही ऊर्जा को नष्ट कर रहा है। वह उस आदमी की भांति है जो बाजार जाता है, अपने हीरे दे देता है और कंकड़—पत्थर खरीद लेता है—और प्रसन्न होकर घर लौट आता है कि उसने कोई बड़ा सौदा किया। कामवासना में तुम इतना क्षुद्र पाते हो—एक छोटी सी लहर प्रसन्नता की। और तुम इतनी ऊर्जा खो देते हो! वही ऊर्जा तुम्हें असीम आनंद दे सकती है, लेकिन तब उसे ऊंचे उठना होता है।

तो कामवासना को रूपांतरित करना है—उसके विरुद्ध मत हो जाना। यदि तुम उसके विरुद्ध हो, तो तुम उसका रूपांतरण नहीं कर सकते; क्योंकि जब तुम किसी चीज के विरोध में होते हो, तो तुम उसे समझ नहीं सकते। समझने के लिए बड़ी सहानुभूति चाहिए। यदि तुम विरोध में हो, तो तुम कैसे सहानुभूति रख सकते हो। जब तुम शत्रुता रखते हो किसी चीज के प्रति, तो तुम निरीक्षण भी नहीं कर सकते। तुम अलग हट जाना चाहते हो अपने शत्रु से; तुम बचना चाहते हो शत्रु से।

अपनी कामवासना के साथ मैत्रीपूर्ण रहना, क्योंकि वह तुम्हारी ऊर्जा है; उसमें बड़ी संभावनाएं छिपी हैं। वह ईश्वर है—अपरिष्कृत। कामवासना अनगढ़ समाधि है। वह रूपांतरित हो सकती है, वह परिवर्तित हो सकती है, वह परिष्कृत हो सकती है। संपूर्ण योग मार्ग है—निम्न को उच्चतर में रूपांतरित करने का, परिवर्तित करने का। सारी कला यही है कि लोहे को सोने में कैसे बदला जाए। योग कीमिया है, तुम्हारे आंतरिक जगत की कीमिया है।

ब्रह्मचर्य का अर्थ है : काम—ऊर्जा को समझने की कोशिश, यह समझने की कोशिश कि कैसे वह तुम्हारे भीतर गतिशील होती है; यह समझने की कोशिश कि सच में आनंद आता कहां से है—वह संभोग से आता है? काम—ऊर्जा की निर्मुक्ति से आता है? या कहीं और से आता है? यदि तुम सजग

होकर देखो, तो जल्दी ही तुम जान लोगे और देख लोगे कि वह कहीं और से आ रहा है। जब तुम सभोगरत होते हो, तो एक धक्का लगता है सारे शरीर को। एक झटका लगता है, क्योंकि इतनी सारी ऊर्जा निर्मुक्त होती है; सारा शरीर कैप जाता है झटके से। उस झटके में विचार ठहर जाते हैं। वह बिलकुल बिजली के झटके की भांति होता है।

कोई व्यक्ति पागल हो जाता है; तुम मनोचिकित्सक के पास जाते हो और वह उसे बिजली के झटके देता है। क्यों? क्योंकि यदि बिजली का झटका दिया जाए, तो पल भर के लिए जब झटका गुजरता है दिमाग से तो हर चीज ठहर जाती है। उदाहरण के लिए, तुम मुझे सुन रहे हो। फिर भी विचार चल रहे होंगे। यदि अचानक यहां एक बम फूट जाए : तुरंत कहीं कोई विचार न रहेगा। क्षण भर को झटका इतना ज्यादा हो जाएगा कि सारी बाहरी— भीतरी संरचना काम करना बंद कर देगी। बिजली का झटका मदद देता है पागल व्यक्तियों को, क्योंकि झटका एक गैप देता है। झटके के बाद उन्हें याद नहीं रहता कि वे इसके पहले क्या थे। यदि वे उससे पहले सोच रहे होते हैं कि वे घोड़ा बन गए हैं—पागल व्यक्ति कुछ भी बन सकते हैं—यदि वे झटके के पहले सोच रहे होते हैं कि वे घोड़ा बन गए हैं तो झटके के बाद उन्हें याद नहीं रहता कि वे किस विचार से ग्रस्त थे। अब एक नया वर्तुल शुरू हो जाता है। झटका मदद करता है।

काम—ऊर्जा भी विद्‌युत—ऊर्जा है। सभी ऊर्जाएं विद्‌युत—ऊर्जाएं हैं, और काम—ऊर्जा जैविक—विद्‌युत है। वह आती है तुम्हारे शरीर से।

क्या तुमने स्वीडन की एक स्त्री के बारे में सुना है? उसके शरीर में कहीं कुछ गड़बड़ हो गई है। वह पांच कैंडल का बल्व हाथ में लेती है और बल्व जल उठता है। पांच कैंडल का बल्व जल सकता है उसके हाथ में। लेकिन ऐसा मत सोचने लगना कि बहुत अच्छा होगा यदि यह तुम्हें भी घट जाए। वह मुसीबत में है, क्योंकि उसका पति उसे छूता है तो उसे झटका लगता है। उस स्त्री से कोई प्रेम नहीं कर सकता। ऐसा झटका लगेगा कि व्यक्ति सदा के लिए भूल जाएगा स्त्रियों को। अब मामला अदालत में है, क्योंकि ऐसे किसी मामले का कोई उल्लेख नहीं है और कोई कानून नहीं है : पति ने तलाक मांगा है क्योंकि यह स्त्री इतने झटके दे रही है उसे कि वह भयभीत हो गया है। कुछ गड़बड़ हो गई है उसकी शारीरिक संरचना में—स्व शार्ट—सर्किट!

तो कामोत्तेजना में तुम ऊर्जा निर्मित करते हो; कामवासना का विचार, कल्पना, इच्छा द्‌वारा तुम ऊर्जा निर्मित करते हो। वह ऊर्जा सरकती है मूलाधार की ओर, काम—केंद्र की ओर, वहा इकट्‌ठी हो जाती है। फिर जब ऊर्जा एक सीमा से ज्यादा इकट्‌ठी हो जाती है तब अचानक विस्फोट होता है—सारे शरीर को झटका लगता है; फिर एक शाति उतर आती है। बहुत मंहगी है यह शाति। तुम मूल्यवान जीवन—ऊर्जा खो रहे हो—व्यर्थ में ही।

अब एक वैज्ञानिक, जो बड़ा प्रसिद्ध है और बड़ा खतरनाक है भविष्य के लिए—उसका नाम है देलगादो—उसने एक छोटा सा यंत्र बनाया है; तुम उसे जेब में रख सकते हो। उसे मस्तिष्क में तुम्हारे काम—केंद्र से जोड़ा जा सकता है जहां से शरीर का काम—केंद्र नियंत्रित होता है—एक तार तुम्हारे मस्तिष्क के काम—केंद्र से इस यंत्र तक जुड़ा रहता है। तुम उसे जेब में रख सकते हो. जब भी तुम सेक्स का आनंद लेना चाहो, तुम बटन को दबाओ। वह बैटरी से झटका देता है मस्तिष्क के काम—केंद्र को; तुम्हें बड़ा सुख मिलता है। यह बड़ा अच्छा है, लेकिन खतरनाक है यह—खतरनाक इसलिए है क्योंकि तब तुम रुकोगे नहीं, तुम दबाते ही जाओगे बटन!

ऐसा हुआ। देलगादो ने प्रयोग किया चूहों पर, एक दर्जन चूहों पर, और उसने इलेक्ट्रोड रख दिए उनके मस्तिष्क में। बटन ठीक सामने ही था उनके, और उसने उन्हें सिखा दिया कि कैसे उसे

दबाना है। वे पागल हो गए। एक घंटे में छह हजार बार! जब तक कि वे बेहोश होकर गिर न पड़े, उन्होंने एक न सुनी देलगादो की। वे बस दबाते ही रहे बटन। देलगादो कहता है यदि ऐसा संभव हो जाए मनुष्य के लिए तो कोई भी स्त्रियों में रुचिन लेगा; किसी स्त्री को पुरुषों में रुचि न रहेगी, क्योंकि यह तो सब उपद्रव से छुटकारा है!

अभी कल ही मैं पढ़ रहा था मारपा का वाक्य कि 'स्त्री उपद्रव की जड़ है।' वह है। यह यंत्र बहुत सुविधाजनक है। कोई झंझट नहीं। पुरुष भी उपद्रव की जड़ है, क्योंकि जब भी दोनों मिलते हैं, दो उपद्रवी ही मिलते हैं। यह यंत्र बड़ा सुविधाजनक है, लेकिन बड़ा खतरनाक भी है, क्योंकि वे चूहे. जाते ही नहीं खाने की तरफ, पानी की तरफ। वे सोते भी नहीं। और कोई मंहगा आयोजन नहीं है—केवल बिजली का खेल है।

वैसा ही कुछ घट रहा होता है, जब तुम संभोग कर रहे होते हो स्त्री से या पुरुष से। पूरी बात बचकानी है। तुम हंसते हो चूहों पर। लेकिन क्या तुम स्वयं पर हंसे हो? यदि तुम स्वयं पर नहीं हंसे, तो तुम्हें चूहों पर नहीं हंसना चाहिए—यह ठीक नहीं है। अपने मन को देखो. चूहा वहां मौजूद है, निरंतर स्वप्न निर्मित कर रहा है।

ब्रह्मचर्य है : पूरी बात को समझ लेना कि क्या घट रहा है। और यदि झटकों द्वारा तुम थोड़े शांत हो जाते हो और तुम थोड़ी सी झलक प्रसन्नता की पा लेते हो—तो वह शाश्वत नहीं हो सकती है। वह केवल क्षणिक ही हो सकती है। और जल्दी ही ऊर्जा खो जाएगी और फिर तुम हताश हो जाओगे। नहीं, कुछ और तलाशना है और खोजना है—कुछ शाश्वत, कुछ सनातन, जिससे कि तुम हमेशा आनंदपूर्ण रहो। वैसा झटकों से नहीं हो सकता है; वह केवल ऊर्जा के रूपांतरण द्वारा ही हो सकता है।

जब वही ऊर्जा ऊपर की ओर गतिमान होती है तो तुम ऊर्जा के एक बांध बन जाते हो। वह है ब्रह्मचर्य। तुम ऊर्जा संचित करते हो। जितनी अधिक ऊर्जा तुम संचित करते हो, उतनी वह ऊंची उठती है—बांध की भांति ही। होगी वर्षा, और पानी का तल और— और ऊंचा होता जाएगा। लेकिन यदि

कहीं छिद्र है, तो पानी का तल ऊंचा नहीं उठ पाएगा। कामवासना छिद्र है तुम्हारे अस्तित्व में। यदि छिद्र नहीं है, तो ऊर्जा का तल और ऊंचा, और—और ऊंचा उठता चला जाता है, और एक घड़ी आती है—तब वह गुजरता है बहुत से केंद्रों से। पहले वह आता है हारा तक, मूलाधार से उठ कर वह आता है दूसरे केंद्र तक। उस केंद्र पर तुम्हें अमरता की अनुभूति होती है; तुम सजग हो जाते हो कि कुछ है जो कभी मरता नहीं है। भय तिरोहित हो जाता है।

क्या तुमने ध्यान दिया कि जब भी तुम भयभीत होते हो, तो कोई चीज ठीक तुम्हारी नाभि पर चोट करती है? वही है मृत्यु का और अमरत्व का केंद्र। जब ऊर्जा गुजरती है उस केंद्र से, आ जाती है उस तल तक, तब तुम अमरत्व अनुभव करते हो। यदि कोई तुम्हें मार भी डाले, तो तुम जानते हो कि तुम्हें नहीं मारा जा रहा है. 'न हन्यते हन्यमाने शरीरे—शरीर को मारने से आत्मा नहीं मरती।'

फिर ऊर्जा और ऊपर उठती है—तीसरे केंद्र पर पहुंचती है। तीसरे केंद्र पर तुम बहुत शांत होने लगते हो। क्या तुमने कभी ध्यान दिया कि जब भी तुम शांत होते हो, तो तुम पेट द्वारा श्वास लेने लगते हो—न कि छाती द्वारा? क्योंकि शांति का केंद्र ठीक नाभि के ऊपर है। नाभि के नीचे मृत्यु का

और अमरत्व का केंद्र है; नाभि के ऊपर शांति का और तनावों का केंद्र है। यदि कोई ऊर्जा नहीं होती, तो तुम तनाव अनुभव करोगे; यदि कोई ऊर्जा नहीं होती तो तुम भय अनुभव करोगे। यदि वहां ऊर्जा होती है, तो तनाव तिरोहित हो जाता है; तुम बहुत विश्रामपूर्ण, निस्तरंग, शांत, मौन, प्रकृतस्थ अनुभव करते हो।

फिर ऊर्जा उठती है चौथे केंद्र तक, हृदय—केंद्र तक। वहां प्रेम उदित होता है। ठीक अभी तो तुम प्रेम नहीं कर सकतेग और जिसे तुम प्रेम कहते हो, वह सिवाय कामवासना के और कुछ नहीं है। प्रेम' केवल सुंदर आवरण है। यह शब्द तुम्हारे अनुरूप नहीं है—हो नहीं सकता है। प्रेम केवल तब संभव होता है जब ऊर्जा हृदय के चौथे केंद्र तक पहुंच जाती है। अचानक ही तुम प्रेममय होते हो—संपूर्ण अस्तित्व के प्रेम में होते हो, प्रत्येक चीज के प्रेम में होते हो, तुम प्रेम ही होते हो।

फिर ऊर्जा आती है पांचवें केंद्र तक, गले में आती है। वह केंद्र है मौन का केंद्र—मौन, सोच—विचार, वाणी। वाणी और मौन—दोनों हैं वहां। अभी तो तुम्हारा गला केवल बोलने का ही काम करता है। वह नहीं जानता कि मौन कैसे रहना होता है, कैसे उतरना होता है मौन में। जब ऊर्जा वहा पहुंचती है, तो अचानक तुम मौन हो जाते हो। ऐसा नहीं है कि तुम कोई प्रयास करते हो, ऐसा नहीं है कि तुम अपने साथ जबरदस्ती करते हो मौन होने के लिए—तुम स्वयं को मौन, मौन से भरा हुआ पाते हो। यदि तुम्हें बोलना भी हो, तो तुम्हें प्रयास करना पड़ता है। और तुम्हारी आवाज मधुर हो जाती है। जो कुछ भी तुम कहते हो, वह काव्य हो जाता है—तुम्हारे शब्दों में एक जीवंतता होती है। और तुम्हारे शब्द मौन संजोए होते हैं अपने आस—पास। वस्तुतः तुम्हारा मौन तुम्हारे शब्दों की अपेक्षा अधिक मुखर हो जाता है।

फिर ऊर्जा उठती है छठवें केंद्र तक, तीसरी आंख तक। वहां तुम अनुभव करते हो—प्रकाश, सजगता, चेतना। वही है जगह जहां नींद घटित होती है, सम्मोहन घटित होता है। क्या तुमने किसी सम्मोहन करने वाले को ध्यान से देखा है? वह तुम्हें एक बिंदु पर टकटकी लगा कर देखने को कहता है। जब तुम अपनी दोनों आंखों को एक बिंदु पर स्थिर कर देते हो, तो तुम्हारी तीसरी आंख सो जाती है। वह एक तरकीब है तीसरी आंख को सुला देने की।

जब ऊर्जा तीसरी आंख तक पहुंचती है, तुम बहुत प्रकाश से भरा हुआ अनुभव करते हो, सारा अंधकार तिरोहित हो जाता है, असीम प्रकाश घिर जाता है तुम्हारे चारों ओर। वस्तुत: तब तुम में कोई छाया नहीं बचती। तिब्बत में एक बहुत पुरानी कहावत है. 'जब योगी बोध को उपलब्ध होता है तो उसके शरीर की छाया नहीं पड़ती।' इसे अक्षरश: मत मान लेना—शरीर तो छाया बनाएगा ही। लेकिन भीतर क्योंकि बहुत प्रकाश है हर जगह—बिना स्रोत का प्रकाश है..। यदि प्रकाश किसी स्रोत से आता है तो छाया बनेगी ही; बिना स्रोत का प्रकाश है. तो कहीं कोई छाया नहीं बन सकती।

और अब जीवन का एक अलग ही अर्थ और आयाम होता है। तुम चलते हो धरती पर, लेकिन तुम अब धरती के नहीं हो, जैसे कि तुम उड़ रहे होते हो। तुम आ गए बुद्धत्व के निकटतम। अब बहुत निकट है बगीचा; आने लगी सुगंध। इस जगह, पहली बार, तुम सक्षम होते हो बुद्ध को समझने में। इससे पहले धीरे— धीरे थोड़ी— थोड़ी समझ आशिक—रूप से घटित होती है तुम्हें, लेकिन पूरी समझ घटित नहीं होती। लेकिन इस जगह तुम करीब होते हो, एकदम करीब होते हो द्वार के। मंदिर आ गया; एक दस्तक—और द्वार खुल जाएगा और तुम बुद्ध हो जाओगे। अब, इतने करीब और इतने निकट तुम पहली बार अनुभव करते हो कि समझ क्या है!

और फिर ऊर्जा उठती है सातवें केंद्र तक, सहस्रार तक। वहा वह बन जाती है ब्रह्मचर्य, दिव्य जीवन। फिर तुम मनुष्य न रहे। फिर तुम ईश्वर हो जाते हो। तुमने भगवत्ता, दिव्यता उपलब्ध कर ली होती है। यह है ब्रह्मचर्य।

और फिर है अपरिग्रह। और केवल ब्रह्मचर्य के बाद ही, जब तुम परम तृप्ति को उपलब्ध हो जाते हो, तुम मालिक होते हो संसार के—बिना किसी मालकियत के। लेकिन धीरे— धीरे तुम्हें स्वयं को तैयार करना होता है अपरिग्रह के लिए। किसी पर मालकियत मत करो, क्योंकि जब भी तुम मालकियत करते हो, तो तुम इतना ही दिखाते हो कि तुम भिखारी हो। जब भी तुम मालकियत जमाने की कोशिश करते हो, तो तुम इतना ही दिखाते हो कि तुम उसके मालिक नहीं हो; अन्यथा किसी प्रयास की जरूरत ही नहीं है। तुम मालिक हो। उसके लिए कुछ करने की आवश्यकता नहीं है।

उदाहरण के लिए. तुम किसी व्यक्ति से प्रेम करते हो। यदि तुम उस व्यक्ति पर मालकियत जमाने की कोशिश करते हो, तो तुम प्रेम नहीं करते। और तुम उसके प्रेम के संबंध में भी सुनिश्चित नहीं हो,

इसीलिए तुम सुरक्षा के सारे उपाय करते हो; हर तरकीब से, चालाकी से, होशियारी से उसे घेरते हो, ताकि वह तुम्हें छोड़ न सके। लेकिन तुम प्रेम की हत्या कर रहे हो। प्रेम स्वतंत्रता है; प्रेम स्वतंत्रता देता है; प्रेम स्वतंत्रता में जीता है—प्रेम मौलिक रूप में स्वतंत्रता है। तुम नष्ट कर दोगे सारी बात। यदि तुम सचमुच ही प्रेम करते हो तो मालकियत जमाने की कोई जरूरत नहीं, तुम इतने गहरे में मालिक हो कि कुछ और की जरूरत क्या है? तुम दावेदार मत बनो; दावा बहुत संकुचित मालूम पड़ेगा। जब तुम सच में मालिक होते हो, तो तुम अपरिग्रही हो जाते हो।

लेकिन व्यक्ति को स्वयं को तैयार करना पड़ता है। तो होशपूर्ण रहो। किसी चीज पर मालकियत जमाने की कोशिश मत करो। ज्यादा से ज्यादा उपयोग कर लो, और अनुगृहीत होओ कि तुम्हें उपयोग करने दिया गया, लेकिन मालकियत मत बनाओ।

परिग्रह कृपणता है; और कृपण व्यक्ति का फूल नहीं खिल सकता। कृपण व्यक्ति सदा ही एक प्रकार की आध्यात्मिक कब्जियत का शिकार होता है, रुग्ण होता है। तुम्हें खुला होना चाहिए, बांटना चाहिए। जो कुछ तुम्हारे पास है, बाँटो उसे; और वह बढ़ेगा—जितना बांटो उतना वह बढ़ता है। देते जाओ, और तुम निरंतर फिर— फिर भर दिए जाते हो। स्रोत शाश्वत है; कृपण मत बनो। और जो कुछ भी है—प्रेम, समझ—जों कुछ भी है, बांटो। अपरिग्रह का अर्थ होता है बांटना।

लेकिन तुम नासमझ हो सकते हो, जैसे कि बहुत लोग हैं। वे सोचते हैं, 'घर छोड़ दो, जंगल चले जाओ, क्योंकि तुम उस घर में कैसे रह सकते हो यदि तुम्हारी उस पर मालकियत नहीं है?'

तुम मजे से रह सकते हो घर में; उस पर मालकियत जमाने की कोई जरूरत नहीं है। तुम जंगल में रहोगे तो क्या तुम जंगल पर मालकियत कर लोगे? यदि तुम जंगल में बिना मालकियत के रह सकते हो तो समस्या क्या है? तो तुम घर में या दुकान में बिना मालकियत के क्यों नहीं रह सकते? मूढ़ हैं जो कहते हैं, 'अपने पत्नी—बच्चों को छोड़ दो, भाग जाओ, क्योंकि अपरिग्रह का अभ्यास करना।'

मूढ़ हैं वे। कहां जाओगे तुम? तुम कहीं भी जाओगे तो जहां भी जाओगे, तुम्हारा परिग्रह का भाव तुम्हारे साथ रहेगा। कुछ अंतर नहीं पड़ेगा। तो जहां भी तुम हो, बस समझो, और मालकियत को गिरा दो। कुछ गलत नहीं है तुम्हारी पत्नी में—मत कहो 'मेरी' पत्नी। बस 'मेरा' गिरा दो। कुछ गलत नहीं है तुम्हारे बच्चों में—सुंदर बच्चे हैं, परमात्मा के बच्चे हैं। तुम्हें एक अवसर मिला है उनकी सेवा करने का और उन्हें प्रेम करने का—उपयोग कर लो इसका, लेकिन मत कहना 'मेरा'। वे आए हैं तुमसे, लेकिन वे तुम्हारे नहीं हैं। वे भविष्य के हैं, वे संबंध रखते हैं संपूर्ण से। तुम एक मार्ग, एक माध्यम बने, लेकिन तुम मालिक नहीं हो।

. तो क्या जरूरत है कहीं भागने की? जहां भी तुम हों—वहीं रहो। वहीं रहो जहां भी ईश्वर ने तुम्हें रखा है और जीओ अपरिग्रह में, और अचानक ही तुम खिलने लगोगे—ऊर्जाए बहने लगेंगी; तुम एक

अवरुद्ध घटना नहीं रह जाओगे; तुम एक प्रवाह बन जाओगे। और प्रवाह सुंदर होता है। अवरुद्ध होकर और बंद होकर जीने का मतलब है—कुरूप और मृत हो जाना।

ये पांच आंतरिक आत्म— अनुशासन आधारभूत आवश्यकताएं हैं।

.......जाति स्थान समय या स्थिति की सीमाओं से परे......।

चाहे तुम आज पैदा हुए हो या तुम पांच हजार वर्ष पहले पैदा हुए हो, उससे कुछ फर्क नहीं पड़ता। भारत में ऐसे धर्मोपदेशक हैं जो कहते हैं, 'इस कलियुग में तुम संबुद्ध नहीं हो सकते!' और पतंजलि कहते हैं : '... जाति, स्थान, समय या स्थिति की सीमाओं से परे...।' तुम जहां भी हो संबुद्ध हो सकते हो।

समय से कुछ अंतर नहीं पड़ता। होशपूर्ण होने की बात है। स्थान का महत्व नहीं है। चाहे तुम हिमालय में हो या बाजार में, उससे कुछ अंतर नहीं पड़ता। परिस्थिति महत्वपूर्ण नहीं है—चाहे तुम गृहस्थ हो या संन्यासी हो। न जाति—वर्ग का महत्व है—चाहे तुम समृद्ध हो या दरिद्र, शिक्षित हो या अशिक्षित, ब्राहमण हो या शूद्र, हिंदू हो या मुसलमान, ईसाई हो या यहूदी—कोई बात महत्वपूर्ण नहीं है, क्योंकि गहरे में तुम एक हो।

सतह पर बहुत सी भिन्नताएं हो सकती हैं, लेकिन वे केवल सतह पर ही होती हैं; केंद्र अछूता ही रहता है। केंद्र की शुद्धता को पा लेना है। वही लक्ष्य है।

आज इतना ही।

प्रवचन 48 - एक सार्वभौम धार्मिकता की तैयारी

प्रश्न—सार:

1—ऐसा क्यों है कि करने में तो तनाव रहता ही है न करने में भी तनाव रहता है?

2—कृपा करके क्या आप मुझे वचन देंगे कि इस जीवन में मैं जागने से चूकूंगा नहीं—और आप मेरे अंतिम गुरु होंगे?

3—क्या सभी मन एक ही तत्व से बने होते है—मूढ़ता से?

4—आपके आश्रम की व्यवस्था केवल स्त्रियों के हाथ में क्यों है?

5—आप आनंदबांट रहे है, लेकिन इस दुःखी दुनियां में लेने वाले इतने कम क्यों है?

पहला प्रश्न :

रोज— रोज सुबह आपको सुनते हुए भीतर डूबने और देखने की जरूरत के विचार से मैं पूरी तरह भर जाता हूं वस्तुत: मैं उस कुत्ते की भांति अनुभव करता हूं जो अपनी ही पूछ को पकड़ने का प्रयास कर रहा हो : जितनी ज्यादा वह कोशिश करता है उतनी ही कम संभावना होती है सफलता की। लेकिन प्रयास छोड़ने की कोशिश ने भी कुछ ज्यादा मदद नहीं की है क्योंकि ज्यादा सचेत और होशपूर्ण होना भी एक सूक्ष्म क्रिया बन जाता है और मैं वापस उसी ढर्रे पर पहुंच जाता हूं!

अच्छी बात है कि तुम सजग हो रहे हो कि न तो कुछ करना मदद कर सकता है और न ही न करना, क्योंकि तुम्हारा न करना भी एक सूक्ष्म क्रिया है। इस सजगता के साथ एक नया द्वार खुल जाएगा—किसी भी दिन, किसी भी क्षण। जब तुम न कुछ करते हो और न कुछ नहीं करते हो, जब केवल तुम होते हो, जब तुम केवल हो—न तो कर्ता और न ही अकर्ता, क्योंकि अकर्ता भी कर्ता ही है—द्वैत तिरोहित हो जाता है, तब अचानक तुम पाते हो कि तुम घर में ही हो सदा से; तुमने उसे कभी छोड़ा ही नहीं है, तुम कहीं बाहर कभी गए ही नहीं हो। तब कुत्ता अनुभव करता है कि पूंछ को पकड़ने की कोई जरूरत नहीं; पूछ तो पहले से ही उससे जुड़ी है। पूंछ का पीछा करने की कोई जरूरत नहीं, क्योंकि पूंछ तो पहले से ही कुत्ते के पीछे है।

लेकिन व्यक्ति को कुछ करना पड़ता है—कुछ न करने तक पहुंचने के लिए। फिर व्यक्ति को कुछ न करने को साधना होता है अंतस सत्ता तक पहुंचने के लिए। और हर चीज मदद करती है। असफलताएं, निराशाए भी मदद करती हैं—हर चीज मदद करती है। अंततः जब तुम पहुंचते हो, तुम

समझ जाते हो कि हर चीज ने मदद की। भटकाव ने, खाई—खड्डों में गिरने ने, पुराने जालों में उलझने ने—हर चीज ने मदद की; कोई चीज व्यर्थ नहीं जाती है। और हर चीज एक सीढ़ी बन जाती है किसी दूसरी चीज के लिए।

अभी कल मैं स्वामी अगेहानंद भारती का एक लेख पढ़ता था। उसने जिक्र किया है कि एक बार उसने रविशंकर से पूछा कि जार्ज हैरीसन सितार कैसी बजा लेता है? रविशंकर ने कुछ देर सोचा और फिर कहा, 'वह उसे पकड़ता बिलकुल ठीक है।'

लेकिन यह भी एक बड़ी शुरुआत है। यदि तुम सितार सीखना चाहते हो, तो सितार को ठीक

से पकड़ना जैसे कि उसे पकड़ना चाहिए, एक अच्छी शुरुआत है; वह भी एक उपलब्धि है। इसलिए हंसो मत। रविशंकर ने प्रशंसा की है जार्ज हैरीसन की, कि वह सितार ठीक से पकड़ता है।

पहले तो तुम कर्ता बनोगे। उसे अच्छी तरह से करना, यही असली बात है। यदि तुम उसे ठीक से नहीं करते तो तुम्हें फिर—फिर आना होगा, क्योंकि कोई चीज अधूरी नहीं छोड़ी जा सकती; उसे पूरा करना होता है। असल में तुम्हें इतनी पूरी तरह से हताश हो जाना होता है कि तुम फिर कभी लौटते नहीं कुछ करने पर। फिर करना है अक्रिया को, और इतने संपूर्ण रूप से करना है कि वह बात भी समाप्त हो जाती है। और तब लौटने के लिए कहीं कोई मार्ग नहीं बचता। तुम पीछे जा नहीं सकते यदि हर चीज पूरी तरह जी ली गई है; केवल अधूरे अनुभव तुम्हें वापस बुलाते रहते हैं।

अधूरे अनुभवों में एक चुंबकीय शक्ति होती है; वे पूरा किए जाने की मांग करते हैं। इसीलिए तुम बार—बार उसी चक्कर में पड़ जाते हो। तुम अधपके रह जाते हो। एक अनुभव पका नहीं होता—बौद्धिक रूप से तुम उसे समझने लगते हो, लेकिन पूरे प्राणों से नहीं—और तुम आगे बढ़ जाते हो। यह बात मदद न करेगी। तुम्हारे संपूर्ण अस्तित्व को समझ में आना चाहिए कि 'यह बात व्यर्थ है।' इसलिए नहीं कि मैं ऐसा कहता हूं—वह बात मदद नहीं करेगी—बल्कि इसलिए कि तुम्हारा पूरा अस्तित्व कहता है, 'यह बात व्यर्थ है। क्या कर रहे हो तुम? यह बिलकुल बेकार है।'

तब करना—कुछ न करने को। वह भी करना ही है, इसीलिए मैं कहता हूं 'करना।' बहुत सूक्ष्म बात है। पहले तो है स्थूल हिस्सा जब तुम कुछ करते हो। दूसरी बात सूक्ष्म है; जल्दी ही तुम जान लोगे कि यह फिर वही है, तुम फिर कुछ कर रहे हो। तुम कोशिश कर रहे हो न करने की, लेकिन कोशिश मौजूद है और प्रयास मौजूद है। तुम्हारा प्रयास न करना भी एक प्रयास है। लेकिन तुम बौद्धिक रूप से समझ सकते हो जो मैं कह रहा हूं उसका सवाल नहीं है। तुम्हें अनुभव करना होता है उसे। तो गुजरी उसमें से, जानो उसे। अनुभव के द्वारा परिपक्वता आनी चाहिए—तब एक दिन स्थूल और सूक्ष्म दोनों ही बातें तिरोहित हो जाती हैं। अचानक तुम वहां होते हो—जहां न कुछ करने को है और न ही कुछ न करने को है।

फिर तुम क्या करोगे? तुम बस होओगे। पूंछ के पीछे दौड़ने की कोई जरूरत नहीं। अब कुत्ता जानता है कि पूंछ उसकी है। अब कुत्ता बुद्ध हो गया है। यही बुद्धत्व है।

दूसरा प्रश्न:

दर्शन में या आपके प्रवचनों के दौरान मैं उस चमत्कार से अभिभूत हो उठता हूं जो आप हैं और फिर मैं सोचता हूं कि जरूर ऐसा ही अहसास तब रहा होगा जब मैं बुद्ध के क्राइस्ट के और अन्य गुरुओं के चरणों में बैठा—और असफल हुआ। क्या आप कृपया मुझे वचन देने कि आप इसे सुनिश्चित करने में कोई कसर नहीं छोड़ेने कि आप मेरे अंतिम गुरु होगे?

यह तुम पर निर्भर करता है। मैं कोई कसर नहीं छोडूंगा, लेकिन उससे बहुत ज्यादा मदद न मिलेगी—बुद्ध ने भी कोई कसर नहीं छोड़ी थी, न ही जीसस ने कोई कसर छोड़ी थी। कोई गुरु कभी कोई कमी नहीं रखता—लेकिन कोई गुरु तुमको बुद्धत्व दे नहीं सकता है। जब तक तुम्हीं नहीं समझ जाते, कुछ नहीं किया जा सकता है।

कई बार गुरु का प्रयास ही तुम में प्रतिरोध भी निर्मित कर सकता है। मैं ऐसा बहुत बार अनुभव करता हूं। यदि मैं बहुत ज्यादा तुम्हारे लिए कोशिश करता हूं तो तुम भागने लगते हो मुझ से। यदि मैं बहुत ज्यादा कोशिश करता हूं कुछ करने की, तो तुम भयभीत हो जाते हो। मुझे तुम्हें छोटी मात्राएं देनी पड़ती हैं—तुम्हारे पचाने की क्षमता के अनुसार।

तो यह तुम पर निर्भर करता है। यदि तुम चाहते हो तो सब कुछ संभव है; लेकिन कहीं गहरे में तुम चाहते ही नहीं। यही तो समस्या है तुम बदलना नहीं चाहते। तुम कहते हो कि तुम सबुद्ध होना चाहते हो, तुम कहते हो कि तुम्हारे लिए यह सड़ी—गली जिंदगी खत्म हो चुकी और तुम इसे रूपांतरित करना चाहते हो। लेकिन क्या यह सचमुच ही तुम्हारे लिए समाप्त हो चुकी है? क्या तुमने सच में उसके साथ अपना लेन—देन समाप्त कर लिया है? क्या कहीं गहरे में तुम्हारे भीतर अभी भी कोई इच्छा छिपी नहीं बैठी है—कोई आशा जो अभी भी जीवित है, कोई बीज जो किसी भी क्षण प्रस्फुटित हो सकता है दूसरे जीवन में?

यदि तुम ध्यान दोगे तो तुम समझोगे कि इच्छा है, आकांक्षा है, एक आशा है कि शायद तुमने सारा जीवन नहीं जाना है, कि शायद कहीं कुछ बाकी है जिसे तुम चूक रहे हो, कि शायद आनंद तो मिल सकता था लेकिन तुमने दस्तक नहीं दी सही द्वार पर। यह सब चलता रहता है। तुम आते हो मेरे

पास, लेकिन तुम आधे—आधे मन से आते हो। यह कोई आना नहीं है; यह आना बिलकुल ही आना नहीं है। केवल लगता है कि तुम मेरे पास आते हो, लेकिन तुम आते कभी नहीं।

मैं वचन देता हूं कि मैं कोई कमी नहीं रखूंगा, लेकिन क्या तुम यहां हो? क्या तुम मेरे पास हो, निकट हो? तुम बहुत होशियार और चालाक हो, जब तुम निकट भी होते हो तो तुम हजारों तरीकों से बचाए रखते हो स्वयं को।

उदाहरण के लिए, तुम्हारे प्रश्न, तुम्हारे व्यवहार भी, बचावपूर्ण होते हैं। और तुम जानते नहीं कि तुम किसे बचा रहे हो। मैं जानता हूं तुम में से एक को, एक बहुत कंजूस स्त्री—वह यहां आई है बुद्धत्व पाने के लिए। लेकिन वह जब से यहां आई है, तब से प्रश्न पूछे जा रही है. आश्रम के पास इतनी कीमती कार क्यों है? मैं इतनी कीमती घड़ी क्यों पहनता हूं?

उसे कार से या घड़ी से क्या लेना—देना है? केवल ऐसे ही प्रश्न क्यों उठ रहे हैं उसके मन में? उसकी अपनी कंजूसी बचाव कर रही है। मैं जानता हूं वह पक्की कंजूस है और जब तक उसकी कंजूसी की आदत टूटती नहीं, वह विकसित नहीं हो सकती है।

यह बात मेरे निर्णय की है कि कौन सी कार लेनी है और कौन सी नहीं। और मेरे अपने कारण हैं, और तुम नहीं समझ सकते मेरे कारणों को। मैं उसका उपयोग कभी नहीं करता, लेकिन वह है मेरे पास। बस वह है। लेकिन इस कार ने चमत्कार किया; इसने बहुत सी चीजें बदल दीं। कुछ कंजूस मुझे घेरे रहते थे, मारवाड़ी, और वे मुझे छोड़ते न थे। मैंने यह कार क्या खरीदी, वे सब चले गए! वे बस चले ही गए; उन्होंने मुड़ कर भी नहीं देखा। दो संभावनाएं थीं; या तो उन्हें अपनी कंजूसी छोड़नी पड़ती, तो वे यहां रुक सकते थे; या फिर उन्हें मुझे छोड़ना पड़ता। और जब से वे गए हैं, आश्रम का माहौल बदल गया है। गंदे थे वे लोग। लेकिन मैं किसी को जाने के लिए कह नहीं सकता। मुझे कोई उपाय करना पड़ता है। उस कार ने अपने मूल्य से ज्यादा का काम किया। किंतु तुम जानते नहीं। लेकिन तुम्हें इन चीजों की फिक्र करने की जरा भी जरूरत नहीं है।

गुरजिएफ कहा करता था, जब भी कोई आता तो वह कहता, 'अपना सारा पैसा मुझे दे दो।' बहुत से लोगों ने उसे केवल इसी कारण छोड़ दिया; क्योंकि वे तो आध्यात्मिक गुरु के पास आए थे और वह उनके पैसे हड़पने के चक्कर में है। लेकिन जो टिक गए वे रूपांतरित हो गए। ऐसा नहीं कि गुरजिएफ को पैसे से कुछ लेना—देना था, उसे तो उनकी कंजूसी तोड़ने में रुचि थी, क्योंकि अगर तुम कंजूस हो तो तुम विकसित नहीं हो सकते। कंजूस व्यक्ति की सारी चेतना सिकुड़ जाती है। कंजूसी कब्जियत है, रोग है तुम्हारी अंतस सत्ता का, तुम विकसित नहीं हो सकते, तुम बांट नहीं सकते, तुम प्रवाह नहीं हो सकते। कंजूसी मन का एक पागलपन है; हर चीज कठोर हो जाती है। और पैसा ही ईश्वर हो जाता है। तुम्हें सच्चा ईश्वर देने के लिए तुम्हारे झूठे ईश्वर को तोड़ देना है। तो पहली बात गुरजिएफ पैसे के विषय में पूछेगा।

उससे प्रश्न पूछना भी कोई आसान न था जैसा कि तुम्हारे लिए आसान है मुझ से पूछ लेना। वह एक प्रश्न के सौ डालर मांगता था, मतलब एक प्रश्न के हजार रुपए। और क्या पता, वह 'ही' कहे कि 'न'—अब यदि तुम्हें फिर कोई प्रश्न पूछना है तो फिर हजार रुपए दो। जब उसने अपनी पहली किताब आल एंड एवरीथिंग लिखी तो वह उसे प्रकाशित न करता था। शिष्य उसके पीछे पड़े थे : 'प्रकाशित कराएं इसको; यह एक महान पुस्तक है।' वह कहता, 'जरा ठहरो।' वह लोगों से पाडुलिपि देखने के भी एक हजार डालर ले लेता—केवल पांडुलिपि देखने के।

क्या कर रहा था वह? और उसे बिलकुल रुचि न थी पैसे में : एक हाथ से वह लेता और दूसरे हाथ से वह दे देता। वह गरीब आदमी की भांति मरा, और उसने लाखों डालर इकट्ठे कर लिए होते यदि उसे पैसे में रुचि होती, लेकिन उसके पास कुछ भी नहीं था—जब वह मरा तो एक डालर भी उसके पास नहीं मिला। कहां गया सारा पैसा? वह किसी से लेता और किसी को दे देता—वह मात्र एक मार्ग था पैसे के प्रवाहित होने के लिए।

जैसे ही वह लोगों से पैसे मांगता, लोग उसे छोड़ कर चले जाते। और वह मेरे जैसा नहीं था, वह तो सब मांगता—'जो कुछ भी है तुम्हारे पास, सब दे दो। समर्पित हो जाओ।' लेकिन जिन्होंने समर्पण किया, वे आनंदित हुए; वे पूर्णरूपेण रूपांतरित हुए। वह शुरुआत हो जाती थी। वह एक जगह थी जहां से हर चीज बदल जाती थी। उस व्यक्ति के लिए, जो बहुत ज्यादा जुड़ा होता पैसे से, यह एक बहुत बड़ी बात थी—सब कुछ दे देना।

ऐसा हुआ एक बार : एक स्त्री, एक बड़ी संगीतकार आई उसके पास और उसने उसके सारे गहने मांग लिए। वह सच में गहरी आस्था रखती थी उसमें; उसने तुरंत वे सब गहने दे दिए। शाम को उसके सब गहने लौटा दिए गए। लेकिन केवल उसके ही गहने नहीं थे, गुरजिएफ ने कुछ और भी गहने रखवा दिए थे थैले में—उसके अपने गहनों से कहीं ज्यादा मूल्यवान। वह कुछ समझ न सकी कि हुआ क्या!

फिर पंद्रह दिन बाद ही एक दूसरी स्त्री आई, एक बड़ी धनवान स्त्री, और गुरजिएफ ने उससे भी सब मांगा—सभी गहने और सब पैसा और हर चीज—रख दो थैले में सब और दे दो उसको; केवल तभी वह काम शुरू करेगा। वह स्त्री डर गई। उसने कहा, 'मैं सोचूंगी और मैं कल उत्तर दूंगी।'

फिर उसने उस संगीतकार स्त्री के बारे में सुना। वह गई उसके पास और पूछा, 'क्या हुआ था?' उसने पूरी बात बताई। तब तो वह खुश हो गई। तब तो यह अच्छा है, एक अच्छा सौदा है : 'थोड़े से गहने देने होते हैं और करीब—करीब दुगुने वापस मिल जाते हैं।' तुरंत रात को ही—वह अगले दिन तक भी नहीं रुकी—तुरंत उसने सारे गहने रख दिए थैले में, दे दिए गुरजिएफ को। वे गहने कभी वापस न मिले। स्त्री ने प्रतीक्षा की और प्रतीक्षा की, लेकिन वे कभी उसे वापस न मिले।

ऊपर—ऊपर से तुम नहीं समझ सकते कि क्या हो रहा है। जिस स्त्री ने समर्पण किया था, उसे पैसे से मोह न था; तो उससे लेने में कुछ सार न था। गुरजिएफ ने उसे और गहने रख कर लौटा दिए। दूसरी

स्त्री ने धन दिया था सौदे की भांति, वह बंधी थी धन से। धन लौटाया नहीं जा सकता था। लेकिन वह दूसरी स्त्री भी रूपांतरित हुई उस सारी घटना को समझ कर कि वे गहने क्यों नहीं लौटाए गए।

तो फिक्र मत करना। मैं क्या करता हूं और क्या नहीं करता हूं—वह तुम्हारे सोच—विचार की बात नहीं है, वह तुम्हारी चिंता का विषय नहीं है। तुम्हारी अपनी ही चिंताएं जरूरत से ज्यादा हैं; तुम्हारी अपनी ही समस्याएं काफी हैं। मेरी फिक्र मत करो। मेरे अपने तरीके हैं। और मुझे सलाह देने की कोशिश मत करो— भूल ही जाओ वह बात। केवल अपने विषय में ही सोचो कि तुम यहां क्यों हो। और तुम छोटी—छोटी बातो के कारण चूक सकते हो, क्योंकि वे बातें तुम्हारी दृष्टि को अवरुद्ध कर देंगी।'ऐसा क्यों?' और 'वैसा क्यों?' यह तुम्हारे सोचने की बात नहीं है। मुझे सब पता है कि क्या हो रहा है। और मैं जो भी कदम उठाता हूं, बहुत सोच—समझ कर उठाता हूं। और अपनी जिंदगी में मैं अपने किए पर कभी पछताया नहीं हूं—वही करने जैसा था।

लेकिन वह महिला तो बस कार के संबंध में या मकान के संबंध में, हजार बातो के संबंध में पूछती रहती है। और वह बहुत धनी महिला है, वस्तुत: जरूरत से ज्यादा धनी है—असल में वह अपने धन के बारे में भयभीत है। वह अपनी कंजूसी का बचाव कर रही है। और वह सोचती है कि वह बड़े संगत सवाल पूछ रही है। लेकिन अगर वह यहां रुकी रही तो मैं उसका सुरक्षा—कवच तोड़ दूंगा। सवाल सिर्फ यह है कि क्या उसके पास इतना साहस है कि वह कुछ दिन यहां रुक सके? और उसकी कंजूसी को तोड़ना ही होगा, क्योंकि उसे तोड़े बिना वह कभी विकसित नहीं होगी। यदि उसे सचमुच भय लगता है तो वह चली जाए, जितनी जल्दी हो सके यहां से चली जाए, क्योंकि जल्दी ही भागने की संभावना भी न रह जाएगी।

ऐसे सवाल पूछो जो तुम्हारे विकास से संबंधित हों—तुम्हारे सवाल, जो तुम्हारे गहन प्राणों से उठ रहे हों और जो उत्तर के लिए प्यासे हों।

तीसरा प्रश्न:

क्या सभी मन एक ही तत्व से बने है—मूढ़ता से?

हां; मन मूढ़ है। ऐसा कोई मन नहीं जो बुद्धिमान हो। मन बुद्धिमान हो नहीं सकता; मन ही मूढ़ता है। 'मूढ़ मन' ऐसा कहना ठीक नहीं है; यह एक पुनरुक्ति हुई, क्योंकि 'मूढ़ता' और 'मन' दोनों का अर्थ एक ही होता है।

मन क्यों मूढ़ता है? क्योंकि मन और कुछ नहीं सिवाय अतीत के, धूल के, जिसे कि तुमने रास्ते की यात्रा में इकट्ठा कर लिया है। पर्तें ही पर्तें हैं धूल की। यह धूल तुम्हारी बुद्धिमानी को ढांक देती है। ऐसे ही जैसे धूल से ढंका दर्पण. मन धूल है; चेतना दर्पण है। जब सारी धूल साफ हो जाती है, तो बुद्धिमत्ता प्रकट हो जाती है : जब कोई मन नहीं होता तो तुम बुद्धिमान होते हो; जब मन होता है तो तुम मूढ़ होते हो।

निश्चित ही, दो प्रकार के मूढ़ होते हैं—अज्ञानी मूढ़ और ज्ञानी मूड; वे मूढ़ जो कुछ नहीं जानते और वे मूढ़ जो बहुत ज्यादा जानते हैं। और ध्यान रहे, दूसरा प्रकार ज्यादा खतरनाक होता है पहले से, क्योंकि दूसरे प्रकार के दर्पण पर ज्यादा धूल होती है पहले की अपेक्षा। अज्ञानी ज्यादा आसानी से विकसित हो सकता है पंडित की अपेक्षा, उस आदमी की अपेक्षा जो समझता है कि वह जानता है। यह विचार ही कि वह जानता है, एक बाधा बन जाता है। मन बुद्धिमत्ता नहीं, अ—मन है बुद्धिमत्ता। मन एक अवरोध है।

इसे समझने की कोशिश करो। मन है अतीत अनुभव, जिससे तुम गुजर चुके, जो मृत है—मन मृत अंश है तुम्हारी सत्ता का। पर तुम उसे उठाए फिरते हो। वह तुम्हें वर्तमान में नहीं होने देता; वह तुम्हें अभी और यहीं नहीं होने देता। वह तुम्हें बुद्धिमान नहीं होने देता। इससे पहले कि तुम प्रतिसंवेदन करो, वह प्रतिक्रिया करना शुरू कर देता है।

उदाहरण के लिए यदि मैं पूछूं किसी व्यक्ति से, 'क्या ईश्वर है? क्या ईश्वर का अस्तित्व है?' यदि वह मन से उत्तर देता है तो वह मूढ़ है। यदि वह कहता है, 'हा, ईश्वर है', क्योंकि उसका पालन—पोषण हुआ है इस ढंग से—उसे सिखाया गया है, संस्कारित किया गया है कि ईश्वर है; वह कह देता है, 'हां, ईश्वर है'; लेकिन यह कोई विवेकपूर्ण उत्तर न हुआ। वह जानता नहीं है; किसी और ने, दूसरों ने उसे बताया है। वे भी नहीं जानते थे, किसी और ने, किन्हीं और लोगों ने उन्हें बताया था। उसने सुन ली है अफवाह और वह विश्वास करता है उस अफवाह में। नहीं, वह बुद्धिमान नहीं है। वह इतना बुद्धिमान भी नहीं है कि समझे कि वह क्या कह रहा है।

या कोई आदमी कह सकता है, 'नहीं, ईश्वर नहीं है', क्योंकि उसका पालन—पोषण कम्मुनिस्ट परिवार में या रूस में या चीन में हुआ है। वह भी वही मूड मन है—संस्कार बदल गए, लेकिन मूढ़ता वैसी ही है। वह जानता है कि ईश्वर नहीं है—बिना जाने हुए ही! उसने खोजा नहीं है; उसने तलाशा नहीं है। उसने कोई छानबीन नहीं की है।

लेकिन यदि किसी बुद्धिमान व्यक्ति से पूछा जाए—बुद्धिमान व्यक्ति से मेरा मतलब उस व्यक्ति से है जो मन के द्वारा नहीं देखता है, जो मन को एक ओर रख देता है। तुम पूछो उससे, 'क्या ईश्वर है?' तुम कोई उत्तर न पाओगे। एक बुद्धिमान व्यक्ति ज्यादा से ज्यादा कह सकता है, 'मैं नहीं जानता।' जब तुम कहते हो, 'मैं नहीं जानता', तो तुम थोड़ी बुद्धिमत्ता प्रकट करते हो, एक संभावना

प्रकट करते हो। बहुत छोटी होती है, लेकिन वह विकसित हो सकती है और बड़ी घटना बन सकती है। या फिर वह व्यक्ति कहेगा, 'मैंने खोजा नहीं। मैंने सुना है लोगों को बहुत कुछ कहते हुए, लेकिन मैं जानता नहीं। जहां तक मेरा संबंध है मैं दोनों में से किसी बात को नहीं जानता हूं है या नहीं है, कुछ नहीं जानता हूं। दोनों बातें असंभव लगती हैं; मैं कुछ नहीं कह सकता।'

यह है बुद्धिमत्ता, और यह आदमी जान सकता है किसी दिन, क्योंकि ऐसी बुद्धिमत्ता द्वारा खोज की संभावना है। यदि तुम सिद्धांतो से, मतो से भरे हो, शास्त्रों के बोझ से दबे हो, तो तुम कभी बुद्धिमान न हो पाओगे; तुम सदा ही मूढ़ रहोगे।

मन है अतीत—जीवंत पर छाई हुई मृत चीज। जैसे कोई बादल तुम्हें घेरे हुए हो : उसके पार तुम देख नहीं सकते, दृष्टि साफ नहीं होती, हर चीज धुंधली—धुंधली होती है। इस बादल को विदा हो जाने दो। बिना उत्तरों के रहो : बिना निष्कर्षों के, बिना दर्शन—सिद्धांतो के, बिना धर्मों के रहो। खुले रहो, पूरी तरह खुले रहो, अत्यंत संवेदनशील रहो, और सत्य घटित हो सकता है तुम्हें। खुले हुए होना है बुद्धिमान होना। यह जानना कि तुम नहीं जानते, बुद्धिमान होना है; यह जानना कि अ—मन से द्वार खुलता है, बुद्धिमान होना है। अन्यथा, मन मूढ़ता ही है।

चौथा प्रश्न :

आपने कहा कि आपने ऐसी कोई स्त्री कभी नहीं देखी जो सच में बुद्धिमान हो। लेकिन ऐसा कैसे है कि आश्रम में स्त्रियां ही सारी व्यवस्था संभाल रही हैं?

क्योंकि मैं नहीं चाहता कि आश्रम बुद्धि द्वारा चले। मैं चाहता हूं कि यह हृदय द्वारा संचालित हो। मैं नहीं चाहता कि यह पुरुष—मन द्वारा चले। मैं चाहता हूं कि यह स्त्री—हृदय द्वारा संचालित हो। क्योंकि मेरे देखे स्त्रैण होने का मतलब है खुले होना, ग्राहक होना। स्त्रैण होने का मतलब है पैसिव होना। स्त्रैण होने का मतलब है स्वीकार— भाव। स्त्रैण होने का मतलब है प्रतीक्षा करना। स्त्रैण होने का मतलब है शीघ्रता और तनाव में न होना; स्त्रैण होने का मतलब है प्रेमपूर्ण होना। हां, आश्रम का संचालन स्त्रियों के हाथ में है, क्योंकि मैं चाहता हूं कि आश्रम हृदय द्वारा संचालित हो।

मैंने कहा कि मैंने ऐसी कोई स्त्री कभी नहीं देखी जो सच में बुद्धिमान हो। मेरा मतलब है 'बौद्धिक'; वह बुद्धिमत्ता नहीं जिसकी मैं अभी बात कर रहा था। वह बुद्धिमत्ता न तो पुरुष होती है और न

स्त्रैण। वह बुद्धिमत्ता अ—मन की होती है। मन है पुरुष, मन है स्त्री—अ—मन इनमें से कुछ नहीं है। अ—मन का कोई लिंग नहीं है। अ—मन एक खुलापन है, खुला आकाश है। वहा सारे द्वैत तिरोहित हो जाते हैं। पुरुष—स्त्री, यिन—यांग, विधायक—नकारात्मक, अस्तित्व— अनस्तित्व—सारे द्वैत खो जाते हैं अ—मन के साथ।

लेकिन इससे पहले कि वह अ—मन उपलब्ध हो, यदि तुम्हें चुनना हो कोई मन, तो पुरुष—मन की बजाय स्त्रैण—मन चुनना क्योंकि पुरुष—मन के साथ आक्रामकता जुड़ी है। संसार में रहने के लिए अच्छा है वह; यदि तुम संसार में सफल होना चाहते हो तो पुरुष—मन की जरूरत है : आक्रामक, जुझारू, सदा लड़ने —झगड़ने को तैयार, सदा प्रतियोगिता में उतरने को तैयार, मरने—मारने और हत्या करने को सदा तैयार—हिंसात्मक, ईर्ष्यालु, सदा सतर्क। और ऐसे संसार में रहने के लिए यह ठीक है जहां प्रत्येक व्यक्ति शत्रु है और हर कोई वही पाना चाह रहा है जिसे पाने की तुम कोशिश कर रहे हो... और बड़ा संघर्ष है।

तो यदि तुम इस संसार में सफल होना चाहते हो, तो पुरुष—मन चाहिए। यदि तुम भीतर के संसार में सफल होना चाहते हो, तो स्त्रैण—मन चाहिए। लेकिन वह केवल शुरुआत है, स्त्रैण—मन

केवल एक शुरुआत है। वह अ—मन की ओर जाने की एक सीडी है। असली बात यही है. पुरुष—मन स्त्रैण—मन की अपेक्षा थोड़ा ज्यादा दूर है अ—मन से। इसीलिए स्त्रैण—मन रहस्यमय मालूम पड़ता है।

असल में तुम किसी स्त्री को जीवन भर प्रेम कर सकते हो, लेकिन तुम कभी उसे समझ न पाओगे। वह एक रहस्य ही बनी रहेगी। उसके व्यवहार के संबंध में कोई भविष्यवाणी नहीं हो सकती। वह विचारों की अपेक्षा भाव—दशाओं से अधिक जीती है। वह मौसम की भांति अधिक है यंत्र की भांति कम। सुबह बदलियां छाई होती हैं और दोपहर बदलियां छंट जाती हैं और धूप निकल आती है। स्त्री को प्रेम करके देखो और तुम जान जाओगे। सुबह बादल घिरे होते हैं और वह उदास होती है, और शीघ्र ही, प्रत्यक्ष में कुछ खास हुआ भी नहीं होता, और बादल छंट जाते हैं और फिर धूप निकल आती है और वह गुनगुना रही होती है।

पुरुष के लिए बिलकुल बेबूझ है यह बात। क्या—क्या बेतुकी बातें चलती रहती हैं स्त्री में? हां, तुम्हें बेतुकी लगती हैं क्योंकि पुरुष के लिए चीजों की तर्कसंगत व्याख्या होनी चाहिए।'क्यों उदास हो तुम?' तो स्त्री सरलता से कह देती है, 'बस मुझे उदासी पकड़ती है।' पुरुष यह बात नहीं समझ सकता। कोई कारण होना चाहिए उदास होने का। बस, ऐसे ही उदास हो जाना? 'तुम खुश क्यों हो?' स्त्री कहती है, 'बस वह खुशी अनुभव कर रही है।' वह भाव—दशाओं द्वारा जीती है।

निश्चित ही, पुरुष के लिए कठिन है स्त्री के साथ जीना। क्यों? क्योंकि यदि चीजें तर्कसंगत हों, तो चीजें संभाली जा सकती हैं। यदि चीजें एकदम बेबूझ हों—चीजें अनायास, अकारण आ जाएं और चली

जाएं—तो कोई तालमेल बिठाना बहुत कठिन हो जाता है। कोई पुरुष कभी किसी स्त्री के साथ तालमेल नहीं बैठा पाया। अंततः वह समर्पण कर देता है, अंततः वह तालमेल बैठाने का पूरा प्रयास ही छोड़ देता है।

पुरुष—मन ज्यादा दूर है अ—मन से; वह ज्यादा यंत्रवत है, ज्यादा तर्कपूर्ण है, ज्यादा बौद्धिक है—सिर में ज्यादा जीता है। स्त्रैण—मन ज्यादा निकट है, ज्यादा स्वाभाविक है, ज्यादा अतार्किक है—हृदय के ज्यादा निकट है। और हृदय से नीचे नाभि में उतरना कहीं ज्यादा आसान है जहां कि अ—मन का अस्तित्व है।

सिर स्थान है बुद्धि का; हृदय स्थान है प्रेम का, अंतर्भाव का; और नाभि के ठीक नीचे, नाभि के दो इंच नीचे, वह केंद्र है जिसे जापानी हारा कहते हैं। वह केंद्र है अ—मन का—जहां जीवन और मृत्यु मिलते हैं, जहां सारे द्वैत खो जाते हैं। तुम्हें सिर से नीचे हारा में उतरना है।

बच्चा पैदा होता है, तो वह हारा से जीता है। मां के गर्भ में बच्चा हारा से जीता है : उसका कोई मन नहीं होता, कोई विचार नहीं होते। वह जीवंत होता है—पूर्णत: जीवंत होता है—असल में वह फिर कभी उतना जीवंत न होगा जितना वह गर्भ में होता है। फिर बच्चा पैदा होता है। तो भी कुछ महीने वह हारा से ही जीता है।

कभी किसी बच्चे को सोए हुए देखना : वह पेट से सांस लेता है, छाती से सांस नहीं लेता; छाती तो बिलकुल शांत रहती है। सांस एकदम हारा तक जाती है और हारा पर चोट करती है। वह हारा से जीता है। इसीलिए प्रत्येक बच्चा इतना निर्दोष जान पड़ता है। यदि तुम फिर हारा में थिर हो सको तो तुम फिर निर्दोष हो जाओगे, एक निर्मल दर्पण हो जाओगे।

स्त्रैण—मन लक्ष्य नहीं है—स्त्रैण—मन ज्यादा निकट है अ—मन के। इसीलिए लाओत्सु जोर दिए जाते हैं 'अक्रिया में जीओ। प्रतीक्षा करो। धैर्यपूर्ण होओ। जल्दी मत करो और आक्रामक मत होओ।' क्योंकि सत्य को जीता नहीं जा सकता है। तुम केवल उसके प्रति समर्पण कर सकते हो।

तो आश्रम स्त्रियों द्वारा ही संचालित होगा, जब तक कि मैं ऐसे लोग न ढूंढ लूं जो अ—मन को उपलब्ध हों। जब अ—मन को उपलब्ध व्यक्ति मौजूद होंगे तो स्त्री—पुरुष का कोई प्रश्न ही न रहेगा; तब आश्रम अ—मन के व्यक्तियों द्वारा संचालित होगा। तब एक अलग प्रकार की प्रज्ञा काम करती है। असल में केवल तब ही प्रज्ञा काम करती है : वह केवल बौद्धिक समझ नहीं होती; वह एक समग्र अस्तित्व से आती है।

पांचवां प्रश्न:

यहां पूना में आपके साथ मेरा जीवन बिना मेरे किसी प्रयास के बहुत अधिक समृद्ध हो गया है। इसके लिए मैं बहुत गहन रूप से अनुगृहीत हूं लेकिन यह अदभुत औषधि केवल मुट्टी भर लोगों के लिए ही क्यों उपलब्ध है जब कि सारा संसार मर रहा है?

यह सदा से ही, सदियों—सदियों से एक महत्वपूर्ण प्रश्न रहा है। बुद्ध पुरुष होते हैं; वे सब लुटाते हैं जो कि वे लुटा सकते हैं, अपने अस्तित्व को बांटने को तैयार रहते हैं, लेकिन लगता है किसी को जरूरत ही नहीं है! और सबको जरूरत है। हर व्यक्ति बीमार है, और बुद्ध पुरुष मौजूद हैं, औषधि सामने है, लेकिन लगता है औषधि में किसी को कोई रुचि ही नहीं है। तो जरूर कोई कारण होगा।

यह मेरे देखने में आया है कि सुख में रुचि लेना बहुत कठिन बात है, स्वास्थ्य में रुचि लेना अत्यंत कठिन बात है। लोगों की एक विकृत रुचि होती है रुग्णता के लिए और लोगों का एक रुग्ण मोह होता है दुख के साथ। इसीलिए तुम सदा तैयार रहते हो दुखी होने के लिए। किसी तैयारी की कोई जरूरत नहीं होती, कोई पतंजलि नहीं चाहिए कोई आठ चरण नहीं चाहिए दुखी होने के लिए। हर कोई तैयार होता है छलांग लगा देने को। जहां तक दुखी होने का प्रश्न है, हर कोई लाओत्सु का अनुसरण करता है और कोई कभी नहीं पूछता कि कैसे! मेरे पास कोई नहीं आता और पूछता कि दुखी कैसे हों? हर कोई जानता है। तुम्हें दुखी होना किसी ने नहीं सिखाया है—किसी ने नहीं, बिलकुल भी नहीं। तुम यह बात अपने आप जान लेते हो। तुम तो पहले से ही इसमें सिद्धहस्त होते हो।

जरूर कोई गहरा न्यस्त स्वार्थ होगा इसके पीछे। क्यों लोग दुखी होना चाहते हैं? जब मैं 'चाहते' शब्द का प्रयोग करता हूं तो मेरा यह मतलब नहीं है कि वे जान—बूझ कर ऐसा चाहते हैं। वे तो कहेंगे कि वे नहीं चाहते. 'कौन चाहता है दुखी होना?' वे सुखी होना चाहते हैं। लेकिन बात वैसी नहीं है—वे चिपकते हैं दुख से। वे कहते हैं कि वे सुख चाहते हैं, लेकिन वे चिपकते हैं दुख से। वे कहते हैं कि उन्हें आनंद की आकांक्षा है, लेकिन जो कुछ भी वे करते हैं, वह दुख ही निर्मित करता है। और यह कोई नई बात नहीं है; वे ऐसा जन्मों—जन्मों से कर रहे हैं। फिर—फिर वे वही करते हैं—और फिर वे दुखी हो जाते हैं। और वे कहते हैं कि उन्हें आनंद चाहिए।

जरूर कोई न कोई न्यस्त स्वार्थ है। मैं तुमसे कुछ बातें कहना चाहूंगा, क्योंकि संभवत: वे सहायक सिद्ध होंगी। जब तुम दुखी होते हो तो सारे संसार की निंदा करना आसान होता है, हर किसी

पर जिम्मेवारी थोप देना आसान होता है। जब तुम दुखी होते हो, तो तुम अपने निकट के लोगों का शोषण कर सकते हो—क्योंकि तुम दुखी हो, और उनकी जिम्मेवारी है कि वे तुम्हें सुखी करें! जब तुम दुखी होते हो, तो तुम सबसे ध्यान की मांग कर सकते हो : मैं बीमार हूं; मैं दुखी हूं।

तुम्हारा मिलना हुआ होगा हाइपोकानड्रिआक लोगों से, रोग के भ्रम में रहने वाले लोगों से, जो अपनी बीमारी की और अपने रोगों की ही बातें करते रहते हैं। और वे इतना बढ़ा—चढ़ा कर बताते हैं कि सच में इतनी बड़ी बीमारी होती भी नहीं। लेकिन यदि तुम कहो कि 'तुम बढ़ा—चढ़ा कर कह रहे हो', तो वे बहुत बुरा अनुभव करते हैं। असल में वे इस विचार में ही बहुत रस लेते हैं कि वे इतने बीमार हैं। वे एक डाक्टर से दूसरे डाक्टर के पास जाते हैं, केवल अपनी कथा सुनाने के लिए। जो बीमारी उन्हें है उसमें कोई मदद नहीं कर सकता उनकी—यह वे भलीभांति जानते हैं। कोई भी उतना समझदार नहीं है; किसी को कुछ पता नहीं है। और ऐसी असाधारण बीमारी है उन्हें कि वे पहले से ही जानते हैं कि कोई मदद नहीं कर सकेगा।

जब वे निरंतर बात कर रहे होते हैं अपनी बीमारी की तो वे क्या कर रहे हैं? यह ऐसा ही है जैसे कि कोई अपने घाव उघाड़—उघाड़ कर तुम्हें दिखा रहा हो और घाव में अंगुलियां डाल रहा हो और सता रहा हो स्वयं को। वह मांग कर रहा है सहानुभूति पाने की, ध्यान पाने की।

और बच्चा बचपन से ही सीख जाता है तरकीब। सारा समाज, एकदम शुरू से— ही, गलत हो जाता है। जब भी बच्चा बीमार होता है तो मां—बाप ज्यादा ध्यान देते हैं। जब भी वह दुखी होता है तो सारा परिवार जिम्मेवारी अनुभव करता है और वह बच्चा एक छोटा—मोटा तानाशाह बन जाता है। जब बच्चा बीमार होता है तो वह अपनी शर्तें मनवा सकता है। वह जिद कर सकता है कि शाम को यह खिलौना लाना होगा, और कोई न नहीं कह सकता—क्योंकि वह बीमार है। लेकिन जब वह स्वस्थ होता है तो कोई उसकी परवाह नहीं करता; जब वह ठीक होता है तो कोई उसके पास नहीं आता और कोई उसके पास नहीं बैठता। जब वह बीमार होता है तो पिता आते हैं—महान पिता, इतने महत्वपूर्ण व्यक्ति, कि छोटा बच्चा सुख अनुभव करता है; अब वह तुमसे ज्यादा महत्वपूर्ण हो जाता है। तुम बिस्तर के करीब बैठे उसके स्वास्थ्य के बारे में पूछ—ताछ करते हो। फिर डाक्टर आते हैं, बड़े डाक्टर, जाने—माने डाक्टर; पड़ोसी आते हैं, मां निरंतर बात कर रही होती है उसकी बीमारी को लेकर। वह केंद्र बन जाता है सारे परिवार का, और परिवार ही कुल संसार होता है उस बच्चे के लिए। सारा संसार उसके आस—पास घूमता है : वह बन जाता है सूर्य और सब चीजें ग्रह बन जाती हैं। उसे लगता है, क्या मजा आ रहा है! अब वह ऐसी तरकीब सीख रहा है, जिसके कारण वह जिंदगी भर पीड़ा पाएगा— बड़ी खतरनाक तरकीब सीख रहा है।

यदि मेरी बात मानने को तैयार हों तो मैं मां—बाप से कहूंगा कि जब बच्चा बीमार या दुखी हो तो बहुत ज्यादा ध्यान मत दें उसे, बल्कि जब वह खुश और स्वस्थ हो तो ध्यान दें। जब बच्चा खुश हो तो उसे अनुभव होने दें कि वह परिवार का केंद्र है। जब वह बीमार हो तो उसे एक ओर बैठने दें, औषधि दें उसे, लेकिन उसे अनुभव होने दें कि वस्तुत: कोई उसके लिए परेशान नहीं है। वह सबसे अलग— थलग है। यह बात बहुत कठोर मालूम पड़ती है—जो मैं कह रहा हूं बहुत कठोर मालूम पड़ता है—लेकिन मैं कहता हूं तुमसे कि यदि तुम पूरी बात को समझो तो यही करुणा है। क्योंकि तुम्हारी

साधारण दयालुता द्‌वारा तो वह बच्चा जीवन भर दुख पाएगा। केवल इसी जन्म में नहीं—यह बात गहरे उतर जाती है—बहुत—बहुत जन्मों में वह यही बात दोहराएगा। जीवन में जब भी तुम्हें किसी का ध्यान चाहिए होगा—और हर किसी को चाहिए ध्यान, क्योंकि ध्यान अहंकार के लिए भोजन है। केवल एक बुद्‌ध पुरुष को ही ऐसा ध्यान पाने की जरूरत नहीं रह जाती—क्योंकि उनमें अहंकार ही नहीं होता तो भोजन की आवश्यकता भी नहीं होती—अन्यथा तो हर किसी को जरूरत होती है ध्यान पाने की। और जब भी तुम्हें ध्यान चाहिए होता है, तो तुम क्या करोगे? तुम केवल एक ही तरकीब जानते हो : दुखी होना, बीमार होना।

नब्बे प्रतिशत बीमारियां पहले मन में जन्म लेती हैं, अचेतन में पैदा होती हैं। पत्नी साधारणत: तुम्हारी परवाह नहीं करती : बल्कि उलटे जब तुम आफिस से आते हो, तो वह प्रतीक्षा कर रही होती है लड़ने की या कि उसने तुम्हारे धोने के लिए प्लेटें रख छोड़ी होती हैं। लेकिन जब तुम बीमार होते हो तो वह तुम्हारे पास ही बैठी रहती है। तुम्हारा खयाल रखती है। छोटी—छोटी बातो का भी ध्यान रखती है। वह लड़ती—झगड़ती नहीं—तुम्हें अच्छा लगता है।

यह सच में ही एक विकृत अवस्था है : कि जब तुम ठीक नहीं होते तो तुम ठीक अनुभव करते हो और जब तुम ठीक होते हो तो तुम ठीक अनुभव नहीं करते। लेकिन यही हालात हैं। यदि पत्नी बीमार है, तो पति महाराज चले आते हैं फूल लेकर और आइसक्रीम लेकर। जब वह ठीक—ठाक होती है, तो वे उसकी ओर देखते भी नहीं—वे अपना अखबार खोल कर पढ़ने लगते हैं।

तो हर कोई दुखी होने का खेल खेलता रहता है। तुम सुखी होना चाहते हो, लेकिन जब तक तुम दुख से अपने न्यस्त स्वार्थ नहीं तोड़ लेते, तुम सुखी नहीं हो सकते। और तुम्हें सुखी करना किसी दूसरे की जिम्मेवारी नहीं है, इसे ध्यान में रख लेना। कोई दूसरा तुम्हें सुखी नहीं कर सकता है। यह तुम्हारा अपना विकास है, अपनी सजगता है, अपनी ऊंची उठती ऊर्जा है जो तुम्हें आनंद देती है। लेकिन तुम्हें गहन अचेतन के काम करने के ढंग को समझ लेना है—कि तुम बातें तो करते हो सुख की, लेकिन आकांक्षा करते हो दुख की।

इसीलिए.....और जो कुछ तुम चाहते हो वह घटता है! यह संसार सच में एक जादूनगरी है। यदि तुम दुख चाहते हो, तो दुख मिलेगा। यदि तुम सुख चाहते हो तो सुख मिलेगा—क्योंकि तुम्हीं हो निर्णायक तत्व, तुम्हीं हो उस सब के आधार जो तुमको घटता है। यही है कर्म का कुल सिद्‌धात: जो कुछ भी तुम चाहते हो, तुम जो आकांक्षा करते हो, वह घटित होता है। यदि तुम दुखी हो तो इसीलिए क्योंकि तुम चाहते हो वैसा। मैं फिर कठोर मालूम पड़ता हूं। क्यों? क्योंकि तुम मेरे पास सांत्वना पाने के लिए आते हो। मुझे तुमसे कहना चाहिए, 'तुम दुखी हो क्योंकि सारा संसार तुम्हारे विरुद्‌ध षड्‌यंत्र रच रहा है।' तब तुम्हें अच्छा लगता; लेकिन तब मैं तुम्हारी मदद नहीं कर रहा हूं तब मैं तुम्हारी बीमारी को बढ़ा रहा हूं; मैं तुम्हें और भी विक्षिप्त कर रहा हूं।

नहीं; तुम्हारे सिवाय और कोई जिम्मेवार नहीं है तुम्हारे दुख के लिए। और यह हमेशा सच है। इसमें कोई अपवाद नहीं है। यह बहुत वैज्ञानिक बात है—एकदम वैज्ञानिक, नियमगत. तुम जिम्मेवार हो। इस बात को अपने मन में गहरे उतर जाने देना कि केवल तुम्हीं जिम्मेवार हो। जब भी तुम दुखी होते हो, परेशान होते हो, उदास होते हो, तो ठीक से समझ लेना कि तुम्हीं निर्मित कर रहे हो उसे। और यदि तुम निर्मित करना ही चाहते हो, तो फिर ठीक है, आनंद लो उसका। फिर सुख की आकांक्षा मत करो। फिर बस शांति से उसका आनंद लो. उदास होओ, दुखी होओ, बन जाओ अंधेरी रात। मैं नहीं कह रहा हूं कि तुम्हें दिन ही होना चाहिए; कोई जरूरत नहीं है। यदि तुम अंधेरी रात बनना चाहते हो तो अंधेरी रात बनो—लेकिन फिर आकांक्षा मत करना दिन की। मुश्किल तब पैदा होती है जब तुम चिपकते हो रात से और आकांक्षा करते हो दिन की।

तुम मेरे पास आते हो और मैं देखता हूं। तुम आकांक्षा करते हो शांति की—और मैं देखता हूं. तुम चिपक रहे होते हो शोरगुल से, विचारों से, चिंतन—मनन से। तुम आकांक्षा करते हो शांति की और तुम चिपक रहे होते हो उन चीजों से जो तुम्हें शात न होने देंगी। तो पहले साफ कर लेना अपने भीतर के जंजाल को।

लोगों को जरूरत है, उन्हें सदा से जरूरत है, लेकिन वे आएंगे नहीं क्योंकि शायद वे भयभीत हैं। बहुत से लोग आते हैं मेरे पास, और कई बार वे उस आनंद से भयभीत होते हैं जो उनके भीतर विकसित हो रहा होता है—क्योंकि वह बहुत अपरिचित मालूम होता है।

एक बार ऐसा हुआ, जार्ज बर्नार्ड शॉ एक आदमी की खूब निंदा कर रहा था। एक मित्र जो जार्ज बर्नार्ड शॉ और दूसरे व्यक्ति, दोनों को अच्छी तरह जानता था, उसने जार्ज बर्नार्ड शॉ से कहा, 'मैं जानता हूं कि आप उस व्यक्ति को बिलकुल नहीं जानते; और आप उसकी इतनी निंदा कर रहे हैं और उसकी इतनी आलोचना कर रहे हैं—और मैं जानता हूं कि आपका उससे कोई परिचय भी नहीं है! आप बिलकुल परिचित नहीं हैं! तो यदि आप सच में ही जानना चाहते हैं उस आदमी को, तो क्या मैं उसे ले आऊं और परिचय करा दूं आपसे?' जार्ज बर्नार्ड शॉ ने कहा, 'नहीं—नहीं, क्योंकि यदि आप परिचय करा देंगे तो शायद मैं उसे पसंद करने लग!'

यही अड़चन है। लोग दुखी हैं, लेकिन तुम उन्हें मेरे पास लाते हो तो संभावना है उनके शात हो जाने की—यही भय है। संभावना है उनके आनंदित हो जाने की—यही भय है। इसलिए मेरे पास आने की बजाय वे मेरे विरुद्ध बातें करेंगे। वे किसी और को समझाने के लिए मेरे विरुद्ध बातें नहीं कर रहे होते हैं; वे अपने को समझाने के लिए ही मेरे विरुद्ध बातें कर रहे होते हैं, ताकि उन्हें जरूरत ही न रहे मेरे पास आने की। मन बहुत चालाक है और तुम्हारे साथ चालाकी करता रहता है। और जब तक तुम पूरी तरह जाग नहीं जाते, तुम मन के इस झमेले से बाहर नहीं आ सकते।

छठवां प्रश्न:

यदि लाओत्सु और पतंजलि आज मिलें तो क्या वे आत्मिक—विकास संबंधी अपनी शिक्षाओं को समन्वित कर सकेंगे? यदि उनके बुद्धत्व के बीच कोई भेद नहीं है तो उनकी शिक्षाओं में इतना भेद क्यों है? और आप से पहले युगों— युगों में ऐसा कोई गुरु क्यों नहीं हुआ जिसने कि पिछले बुद्ध पुरुषों की सारी शिक्षाओं को जोड़ा और संश्लेषित किया हो?

प्रश्न तीन हिस्सों में है। पहला हिस्सा है : 'यदि लाओत्सु और पतंजलि आज मिलें तो क्या वे आत्मिक—विकास संबंधी अपनी शिक्षाओं को समन्वित कर सकेंगे?'

यदि वे मिलते हैं तो वे समन्वित करने के लिए कुछ न पाएंगे—हर चीज समन्वित ही है। वे गले मिलेंगे, हाथ में हाथ लेकर बैठेंगे, लेकिन बोलेंगे नहीं। वे ऐसा ही कर रहे होंगे कहीं स्वर्ग में; क्योंकि हर चीज समन्वित ही है। समस्या तुम्हारे लिए है, उनके लिए नहीं। समस्या उनके लिए है जो मार्ग पर हैं; उनके लिए नहीं है जो मंजिल पर पहुंच गए हैं, क्योंकि मंजिल पर सब मार्ग मिल जाते हैं। मंजिल एक है; मार्ग अनेक हैं। एक मार्ग पर चलते हुए तुम अनुभव करते हो कि दूसरा किसी और मार्ग पर यात्रा कर रहा है। लेकिन मंजिल पर पहुंच कर तुम अचानक पाते हो कि हर कोई एक ही मंजिल पर पहुंचता है। सत्य एक ही है।

इसलिए किसी समन्वय का कोई प्रश्न नहीं उठता। किसी संश्लेषण की कोई जरूरत नहीं होती, हर चीज पूर्णरूपेण संश्लिष्ट है। उनके बीच हंसी—मजाक चल सकता है या वे मजे से चाय पी सकते हैं, लेकिन कोई दार्शनिक चर्चा न होगी—इतना पक्का है। वे ताश खेल सकते हैं या ऐसी ही कोई दूसरी गैर—गंभीर चीज, लेकिन कोई बौद्धिक विचार—विमर्श न होगा।

मैं सदा सोचता हूं कि स्वर्ग में, जहां मुक्त पुरुष हैं, वे क्या करते होंगे? वे जरूर ताश खेलते होंगे, शतरंज—निरर्थक चीजें। और क्या करोगे तुम वहां? खेलोगे। और खेल में कोई प्रतियोगिता नहीं है वहा, क्योंकि प्रतियोगिता तो गंभीर हो जाती है। खेल तो बस खेल है। तुम मजा लेते हो उसका छोटे बच्चों की भांति।

प्रश्न का दूसरा हिस्सा है : 'यदि उनके बुद्धत्व के बीच कोई भेद नहीं है तो उनकी शिक्षाओं में इतना भेद क्यों है?'

शिक्षाएं भिन्न हैं लेकिन शिक्षक नहीं। शिक्षक एक ही है। शिक्षाएं भिन्न हैं क्योंकि विद्यार्थी भिन्न हैं, शिष्य भिन्न हैं। पतंजलि एक अलग तरह के लोगों से बात कर रहे थे—तुम्हें ठीक से समझ लेनी है यह बात—लाओत्सु एक अलग तरह के लोगों से बात कर रहे थे।

भारत में रहस्यवाद भी बहुत तर्कसंगत घटना है। भारत बहुत वैचारिक देश है : वह उन बातो पर भी विचार करता है जिन पर विचार नहीं किया जा सकता, वह उसके विषय में भी सिद्धात बनाता है जिसे कि सिद्धांतबद्ध नहीं किया जा सकता; वह उसको भी परिभाषित करता है जिसे परिभाषित नहीं किया जा सकता। सारे भारतीय शास्त्र भरे पड़े हैं इससे। वे कहते रहेंगे, 'ईश्वर को परिभाषित नहीं किया जा सकता है'—और वे परिभाषित करेंगे। और वे कहेंगे, 'सत्य अपरिभाष्य है'—और यह कह कर उन्होंने परिभाषा कर दी होती है उसकी; उन्होंने उसका एक लक्षण तो बता ही दिया कि वह अपरिभाष्य है। वे कहेंगे, 'ईश्वर के विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता है'—और तुरंत वे कह देंगे, 'वह तुम्हारे भीतर ही है' या 'उसी ने रचा है सब कुछ' या 'वह सर्वव्यापी।'

भारत एक चिंतनशील देश है। उसका चिंतन से बड़ा लगाव है। वह चिंतन में इतना रस लेता है कि उसकी वजह से वह लगभग अव्यावहारिक हो गया है। लोग खूब सोचते—विचारते रहे। और बस वे सोचते रहे, सोचते ही रहे, और फलत: अव्यावहारिक हो गए—करीब—करीब अकर्मण्य। भारत ने कोई वैज्ञानिक टेक्यॉलॉजी पैदा नहीं की। यदि व्यावहारिक मस्तिष्क हो तो वह कुछ करने में रस लेता है। भारत एक अव्यावहारिक चिंतक देश है; वह बस सोचता ही रहता है। लगता है जीवन का कुल काम केवल इतना ही है——सोचना!

लाओत्सु के समय चीन बिलकुल भिन्न था, और वे शिष्य जो उसके पास इकट्ठे हुए थे...।

और यह कोई नई परंपरा नहीं थी जिसे कि लाओत्सु प्रवर्तित कर रहा था। यह लाओत्सु से कम से कम पांच हजार वर्ष पहले से चली आई थी। यह बहुत प्राचीन परंपरा थी। चीन उन दिनों एक गैर—वैचारिक देश था. विचारशील कम था और ध्यानशील ज्यादा था। उसका विचार से, सिद्धांतो से, दार्शनिकता से कोई संबंध न था। चीन ने सुंदर दर्शन नहीं दिए हैं संसार को— भारत ने दिए हैं। करीब—करीब दुनिया के सभी दर्शन जो तुम जानते हो, उनके बीज तुम भारत में पाओगे।

कभी—कभी बहुत अदभुत घटनाएं घटती हैं। तुम संसार के किसी ऐसे दर्शन की कल्पना नहीं कर सकते जिसका समानांतर भारत में न हो। जिस पर कहीं भी विचार हुआ है, उस पर भारत में पहले ही विचार हो चुका है। विचार में तुम भारतीयों का मुकाबला नहीं कर सकते। आज के भारतीय नहीं—मैं आज के भारतीयों की बात नहीं कर रहा हूं। वे तो केवल खंडहर हैं बीते ऐश्वर्य के। असली भारत का तो अब कोई अस्तित्व ही नहीं है। बुद्ध का भारत, पतंजलि, वेदों और उपनिषदों का भारत, वह बिलकुल खो गया है। वे विचार करते रहे और विचार करते रहे और उन्होंने संसार के विषय में अदभुत सिद्धांतो की रचना की, लेकिन वे प्रायोगिक न थे, वे व्यावहारिक न थे।

चीन बिलकुल अलग था। उन्हें सिद्धांतो में कोई रुचि न थी; बल्कि उन्हें जीने में रुचि थी। उन्हें विचार करने की अपेक्षा होने में अधिक रुचि थी। और लाओत्सु है परम शिखर।

जब बोधिधर्म चीन गया, तो ये दो धाराएं मिली—लाओत्सु का ध्यान और बुद्ध का ध्यान। वे दो धाराएं मिलीं, और एक सुंदरतम घटना का जन्म हुआ, झेन। उसमें गुणवत्ता है बुद्ध की और उसमें गुणवत्ता है लाओत्सु की। वह न तो बुद्धवादी है और न ताओवादी है; वह दोनों ही है। वह इस धरती पर हुई बड़ी से बड़ी क्रॉस—ब्रीडिंग है।

पतंजलि बहुत तर्कसंगत हैं, तर्कसंगत हैं अध्यात्म के जगत में। एक—एक कदम वे आगे बढ़ते हैं; वे वैज्ञानिक हैं। वे संतुष्ट कर सकते थे किसी आइंस्टीन को, किसी विटगिन्स्टीन को या कि रसेल को। लाओत्सु आइंस्टीन को संतुष्ट नहीं कर सकते थे, वे रसेल को या विटगिन्स्टीन को संतुष्ट नहीं कर सकते थे, क्योंकि वे अतर्कसंगत मालूम पड़ते। वें बिलकुल पागलपन की बात कर रहे थे। लेकिन पतंजलि ने बड़े से बड़े वैज्ञानिक को संतुष्ट कर दिया होता, क्योंकि वे बहुत वैज्ञानिक ढंग से बोलते थे और बहुत कम से आगे बढ़ते थे, एक—एक कदम, बीच की कड़ी को स्पष्ट करते हुए।

तो शिक्षाएं भिन्न हैं क्योंकि पतंजलि पैदा हुए थे भारत में, बोल रहे थे भारतीयों से—बहुत मननशील देश। लाओत्सु बोल रहे थे ध्यानियों से; चीन उन दिनों बड़ा ध्यानी देश था। दोनों बोल रहे थे अलग—अलग लोगों से, अलग—अलग तरह के शिष्य उनके आस—पास इकट्ठे हुए थे। तो शिक्षाएं भिन्न होती हैं क्योंकि शिक्षाएं सीखने वालों के लिए होती हैं। शिक्षक भिन्न नहीं होते। यदि पतंजलि अकेले हों और लाओत्सु अकेले हों तो वे दोनों बिलकुल एक समान होंगे। लेकिन यदि पतंजलि अपने शिष्यों के साथ हों, और लाओत्सु अपने शिष्यों के साथ हों, तो वे अलग होंगे। यदि पतंजलि और लाओत्सु मौन हों, तो वे एक जैसे ही होंगे, लेकिन यदि वे किसी से बोलते हैं तो वे अलग होंगे। शिक्षक को शिष्य के हिसाब से बोलना होता है—उसकी समझ, उसकी क्षमता, उसकी बुद्धि, उसके संस्कार के हिसाब से बोलना होता है। उसे अपनी शिक्षा को शिष्य के स्तर तक ले आना होता है; अन्यथा वह शिक्षक नहीं है। इसीलिए शिक्षाओं में भेद है।

और एक और बात : दो तरह के लोग होते हैं। एक, जो कि बहुत साहसी होते हैं और छलांग लगा सकते हैं; असल में कहना चाहिए कि दुस्साहसी होते हैं—सोचते—विचारते नहीं। एक खास भाव —दशा में वे छलांग लगा सकते हैं; वे परिणाम आदि की चिंता नहीं करते। फिर दूसरी तरह का व्यक्ति है—वह हिचकता है; हर तरह से पक्का कर लेगा परिणाम के बारे में, केवल तभी वह आगे बढ़ेगा। पतंजलि का आकर्षण उनके लिए है जो छलांग के पहले ही आश्वस्त होना चाहते हैं। लाओत्सु उनके लिए हैं जो किसी परिणाम की फिक्र नहीं करते, वे छलांग के लिए तैयार ही होते हैं। इन दो प्रकार के लोगों के लिए दो प्रकार की शिक्षाएं हैं, लेकिन शिक्षक समान ही होते हैं।

और तीसरा हिस्सा. 'और आप से पहले युगों—युगों में ऐसा कोई गुरु क्यों नहीं हुआ जिसने कि पिछले बुद्ध पुरुषों की सारी शिक्षाओं को जोड़ा और संश्लेषित किया हो?'

अब तक कोई जरूरत न थी, अब जरूरत है। अतीत में संसार बंटा हुआ था, संसार बहुत बड़ा था। लोग अपने—अपने देशों की सीमाओं में रहते थे। शिक्षाएं एक—दूसरे के प्रभाव में न आती थीं एक मुसलमान जीता था मुसलमान की भांति, उसे कुछ पता न था कि वेद क्या कहते हैं; एक हिंदू जीता था हिंदू की भांति, वह कभी न जानता कि जरथुस्त्र ने क्या कहा है। लेकिन अब संसार बहुत छोटा हो गया है, एक ग्लोबल विलेज; संसार बहुत सिकुड़ गया है। अब हर कोई हर किसी चीज के बारे में जानता है। एक ईसाई केवल ईसाई ही नहीं है, वह जानता है कि गीता क्या कहती है; वह जानता है कि कुरान क्या कहती है। अब भ्रम पैदा हो गया है; क्योंकि कुरान कुछ कहती है, गीता कुछ कहती है, बाइबिल कुछ और ही कहती है। अब प्रत्येक को पता है आस—पास की हर चीज। लोग एक देश से दूसरे देश जाते रहते हैं, एक शिक्षक से दूसरे शिक्षक के पास यात्रा करते रहते हैं। यहां बहुत से हैं जो कई शिक्षकों के पास रह चुके हैं; अब वे भ्रमित हैं।

इसलिए अब एक बड़े संश्लेषण की जरूरत है। भविष्य में धर्म अलग— अलग नहीं रह पाएंगे। नहीं, यह बात असंभव हो जाएगी। मैं तो एक नए मंदिर की नींव रख रहा हूं—जो चर्च भी होगा, मस्जिद भी होगा, गुरुद्वारा भी होगा। मैं उस धार्मिक व्यक्ति का आधार रख रहा हूं जो न ईसाई होगा, न हिंदू होगा, न मुसलमान होगा—केवल धार्मिक होगा। अब समय पक गया है एक बड़े संश्लेषण के लिए; ऐसा पहले कभी न हुआ था।

बुद्ध उन लोगों से बोल रहे थे जो मुसलमान न थे। जीसस उन लोगों से बोल रहे थे जो यहूदी थे, जीसस ऐसे बोलते हैं जैसे कि यहूदियों के अतिरिक्त और कोई है ही नहीं। वे यहूदियों से बोल रहे थे। लेकिन मैं किससे बोल रहा हूं? यहां यहूदी हैं, ईसाई हैं, मुसलमान हैं, जैन हैं, बौद्ध हैं, सिक्ख हैं—सब हैं। तुम यहां संसार का एक लघु रूप हो। जल्दी ही, जैसे—जैसे लोग एक—दूसरे को ज्यादा समझेंगे, भिन्नताएं खो जाएंगी। जब कोई ईसाई गीता को सच में ही समझेगा तो गीता और बाइबिल के बीच का भेद खो जाएगा; एक संवाद निर्मित होगा।

इसीलिए मैं कोशिश कर रहा हूं सारी धर्म —पद्धतियों और सारे गुरुओं पर बोलने की, ताकि एक आधार निर्मित हो सके। उस आधार पर खड़ा होगा भविष्य का मंदिर, भविष्य का धार्मिक व्यक्ति। वह ईसाई नहीं होगा। असल में भविष्य में यदि कोई ईसाई हुआ तो वह थोड़ा दकियानूसी मालूम पड़ेगा, और यदि कोई हिंदू हुआ तो वह कुछ नासमझ मालूम पड़ेगा, और यदि कोई तब भी कहे कि वह मुसलमान है तो वह समसामयिक नहीं होगा—एक मृत व्यक्ति होगा। भविष्य उस धर्म का है जिसमें कि सारे धर्म समाहित हो जाएंगे और सम्मिलित हो जाएंगे और घुल—मिल जाएंगे।

इसीलिए अतीत में इसकी कोई जरूरत न थी। अब इसकी जरूरत है। अब मनुष्य एक बड़े संक्रांति—बिंदु से गुजर रहा है। ऐसा होता है कि पच्चीस सौ साल बाद मनुष्यता एक मोड़ लेती है; एक वर्तुल पूरा होता है। मनुष्य—चेतना ने एक करवट ली थी बुद्ध के समय में। अब पच्चीस सौ साल बीत गए हैं और वह मोड़ फिर आ गया है। जो सजग हैं वे सर्वाधिक लाभान्वित होंगे उस मोड़ से, क्योंकि वे उपयोग कर सकते हैं उस उमड़ते ज्वार का। वे यात्रा कर सकते हैं उस ऊंचे ज्वार पर; वे सरलता से घर पहुंच सकते हैं। जब समुद्र उतार पर होता है तो किनारे पर पहुंचना कठिन होता है। जब समुद्र ज्वार पर होता है तो लहरें अपने आप जा रही होती हैं किनारे की ओर—तुम अपनी नाव लहरों में छोड़ देते हो और वे तुम्हें ले जाती हैं।

इन पच्चीस वर्षों के भीतर ही इतिहास के सब से महत्वपूर्ण संक्रांति—कालों में से एक काल आने वाला है और मनुष्य—चेतना एक मोड़ लेगी। यदि उस घड़ी तुम तैयार होते हो और ध्यानमय होते हो तो बहुत कुछ संभव है जो कि फिर पच्चीस सौ साल तक संभव न होगा। पतंजलि के युग में एक मोड़ आया था; पतंजलि हुए बुद्ध से पच्चीस सौ साल पहले। ऐसा सदा ही हुआ है।

यह ऐसे ही है जैसे पृथ्वी सूर्य का एक चक्कर पूरा करती है एक निश्चित अवधि में, वैसे ही पूरी मनुष्य—चेतना एक वर्तुल में बढ़ती है और एक निश्चित अवधि, पच्चीस सौ साल में अपने मूल स्रोत तक आ जाती है। वह संक्रांति का क्षण निकट है। वह बहुत आमूल रूपांतरकारी बन सकता है। यदि तुम एक समन्वय को उपलब्ध हो, तो तुम उस घड़ी का उपयोग कर पाओगे। यदि तुम समन्वय को उपलब्ध नहीं हो—तुम मुसलमान बने रहते हो, क्रिश्चियन बने रहते हो—तो तुम पुराने ही रहते हो, तुम अतीत ही रहते हो। तुम 'यहां' नहीं होते; तुम वर्तमान में नहीं होते।

तुम्हें वर्तमान में लाने के लिए, तुम्हें यह समझने में सक्षम बनाने के लिए कि शीघ्र ही क्या घटने वाला है, इसीलिए संश्लेषण का यह मेरा सारा प्रयास है।

अंतिम प्रश्न:

आप भलीभांति जानते हैं कि हमारे पास केवल मन की आवाज ही है फिर आपका क्या अर्थ है हमें यह कहने में कि अपने अंतस की आवाज सुनो और उसी के अनुसार चलो? क्या शून्य की भी कोई आवाज होती है?

हां, शून्य की अपनी आवाज होती है। शाब्दिक अर्थों में तो वह कोई आवाज नहीं होती; वह केवल एक अंतःप्रेरणा होती है। वह कोई ध्वनि नहीं है, वह मौन है। कोई कहता नहीं कुछ करने के लिए, तुम्हें

बस प्रेरणा होती है कुछ करने की। भीतर की आवाज सुनने का अर्थ है. हर चीज को आंतरिक शून्यता के ऊपर छोड़ देना। फिर वह तुम्हें मार्ग दिखाती है। यदि तुम शून्य चित्त से कुछ करते हो तो तुम सदा सम्यक होते हो। यदि तुम में आंतरिक शून्यता है तो कोई बात गलत न होगी, कोई बात गलत हो नहीं सकती। आंतरिक शून्यता में कुछ कभी गलत नहीं होता। तो यह पक्की कसौटी है सम्यक होने की, सदा सम्यक होने की।

हां, शून्यता की एक अपनी आवाज होती है, मौन का एक अपना संगीत होता है, शांति का एक अपना नृत्य होता है; लेकिन तुम्हें पहुंचना होगा उस तक।

मैं नहीं कह रहा हूं कि मन की सुनो। असल में मन तुम्हारा नहीं है। जब मैं कहता हूं : 'अपनी आवाज सुनो', तो मेरा मतलब है कि वह सब गिरा दो जो समाज ने तुम्हें दिया है। तुम्हारा मन समाज ने दिया है। तुम्हारा मन तुम्हारा नहीं है। वह है समाज, संस्कार; वह समाज से मिला है। शून्यता तुम्हारी है, मन तुम्हारा नहीं है। मन हिंदू है, मुसलमान है, ईसाई है; मन है कम्मुनिस्ट, गैर—कम्युनिस्ट, पूंजीवादी। शून्यता कुछ भी नहीं है। उस शून्यता में तुम्हारे अस्तित्व का कुआंरापन होता है। उसको सुनो।

जब मैं कहता हूं उसको सुनो, तो मेरा यह मतलब नहीं है कि कोई वहां तुमसे बोल रहा है। जब मैं कहता हूं उसको सुनो, तो मेरा मतलब है उसके प्रति उपलब्ध रहो, अपने पूरे प्राणों से सुनो उसे; और वह तुम्हें ठीक दिशा देगा। और वह कभी किसी को गलत दिशा नहीं देता। शून्यता से जो कुछ आता है, सुंदर होता है, सत्य होता है, शुभ होता है, एक शुभाशीष होता है।

आज इतना ही।

प्रवचन 49 - योग का दूसरा चरण: अंतस शोधन

योग—सूत्र

(साधनापाद)

शौचसंतोषतप: स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमा:।। 32।।

शुद्‌धता, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर के प्रति समर्पण—ये नियम पूरे करने होते है।

वितर्कबाधने प्रतिपक्षभानम्।। 33।।

जब मन अशांत हो असद् विचारों से, तो मनन करना विपरीत विचारों पर।

वितर्क हिंसादय: कृतकारितानुमोदिता लोभक्रोधमोहपूर्वका

मृदुमध्याधिमात्रा दुःख ज्ञानानन्तफला इति प्रतिपक्षभावनम्।। 34।।

विपरीत विचारों पर मनन करना आवश्यक है क्योंकि हिंसा आदि विचार, भाव और कर्म—अज्ञान एवं तीव्र दुःख में फलित होते है—फिर वे अल्प, मध्यम या तीव्र मात्राओं के लोभ, क्रोध या मोह द्‌वारा स्वयं किए हुए, दूसरों से करवाए हुए या अनुमोदन किए हुए क्यों न हो।

नियम ही नियम हैं : मनुष्य को दमित करने के नियम, उसके विकास में सहायता देने के नियम; निषेध के, प्रतिबंध के नियम और उसके विकसित होने में, बढ़ने में सहायता देने के नियम। वह नियम जो केवल निषेध करता है, विध्वंसात्मक होता है; वह नियम जो विकसित होने और बढ़ने में सहायता देता है, सृजनात्मक होता है। ओल्ड टेस्टामेंट के टेन कमांडमेंट्स पतंजलि के नियमों से बिलकुल अलग हैं। वे निषेध करते हैं, प्रतिबंध लगाते हैं, दमन करते हैं। सारा जोर इस पर है कि तुम्हें ऐसा नहीं करना चाहिए, तुम्हें वैसा नहीं करना चाहिए, इसकी आशा नहीं है। पतंजलि के नियम बिलकुल अलग हैं; वे सृजनात्मक हैं। जोर इस पर नहीं है कि क्या नहीं करना चाहिए, जोर इस पर है कि क्या करना चाहिए। और बहुत अंतर है दोनों में।

ओल्ड टेस्टामेंट में तो ऐसा लगता है जैसे कि नियम ही लक्ष्य हैं—जैसे कि मनुष्य उनके लिए है, न कि वे मनुष्य के लिए हैं। पतंजलि के लिए नियमों की उपयोगिता है, लेकिन वे किसी भी ढंग से, किसी भी दृष्टिकोण से अंतिम और परम नहीं हैं। मनुष्य नहीं है उनके लिए; वे हैं मनुष्य के लिए। वे साधन हैं, द्‌वार हैं, और उनका उपयोग कर लेना है—और उनके पार चले जाना है। इस बात को ध्यान में रखना है; अन्यथा तुम पतंजलि के विषय में गलत धारणा बना सकते हो।

साधारणतया तो धर्म बहुत विध्वंसात्मक रहे हैं। उन्होंने सारी मनुष्य—जाति को पंगु बना दिया है। उन्होंने प्रत्येक व्यक्ति को अपराधी बना दिया है—और यही सब से बड़ा अपराध है जो मनुष्य के विरुद्ध किया जा सकता है। और कुल तरकीब यह है : पहले तुम लोगों को अपराधी बना दो, जब वे करा रहे हों, अपराध से भयभीत हों, डर गए हों, बोझिल हों, नरक में जी रहे हों, तब तुम उनकी सहायता करो उसमें से बाहर आने में, तब तुम पहुंच जाओ और उन्हें सिखाओं कि कैसे मुक्त होना है। लेकिन पहली तो बात कि अपराध— भाव ही क्यों निर्मित करना? और जब मनुष्य अपराध— भाव में धिरा होता है तो बहुत पंगु हो जाता है और बढ़ने और विकसित होने से इतना भयभीत हो जाता है, अज्ञात और अपरिचित और अनजान में जाने से इतना भयभीत हो जाता है कि वह बिलकुल बंद हो जाता है, मुर्दा हो जाता है; फिर बहुत से लोग आ जाते हैं उसकी मुक्ति में मदद करने के लिए।

पतंजलि तुम्हें कभी किसी चीज के बारे में कोई अपराध— भाव नहीं देते। इस अर्थों में वे धार्मिक होने की अपेक्षा वैज्ञानिक अधिक हैं, धर्मगुरु होने की अपेक्षा मनस्विद अधिक हैं। वे कोई उपदेशक नहीं है। जो कुछ भी वे कह रहे हैं, वे बस तुम्हें एक नक्शा दे रहे हैं कि विकसित कैसे हुआ जा सकता है; और यदि तुम विकसित होना चाहते हो तो तुम्हें अनुशासन की जरूरत है। लेकिन अनुशासन बाहर से आरोपित नहीं होना चाहिए; अन्यथा यह अपराध— भाव निर्मित कर देता है। अनुशासन तो भीतरी समझ से आना चाहिए, तब वह सुंदर होता है। और अंतर बहुत सूक्ष्म है। तुम्हें कहा जा सकता है कुछ करने के लिए, और फिर तुम करते हो वैसा, लेकिन तुम उसे गुलाम की भांति करते हो। लेकिन तुम्हें कोई बात समझाई जाती है और समझ से तुम करते हो उसे, फिर तुम उसे मालिक की भांति करते हो। जब तुम मालिक होते हो, तब तुम सुंदर होते हो; जब तुम गुलाम होते हो, तब तुम असुंदर हो जाते हो।

मैंने एक पुराना यहूदी मजाक सुना है। एक जुम्बाक नाम का दर्जी था। एक आदमी आया उसके पास। उसका सूट सिल कर तैयार था और वह उसे लेने आया था, किंतु उस आदमी ने देखा कि सूट की एक बांह लंबी थी, एक छोटी थी। जुम्बाक दर्जी ने कहा, 'तो क्या हुआ? तुम क्यों इतना झगड़ा खड़ा कर रहे हो? देखो तो कितना खूबसूरत सिला है। और इतनी छोटी सी खराबी के लिए तुम इतना झगड़ा कर रहे हो! तुम अपनी बांह थोड़ी भीतर खींच सकते हो, और तब आस्तीन बिलकुल ठीक आएगी।' तो उस आदमी ने कोशिश की; लेकिन जब उसने अपनी बांह को भीतर खींचा तो उसे लगा कि पीठ पर बहुत सलवटें हो गई हैं। उसने कहा, 'अब पीठ पर बहुत सलवटें हैं!' उस जुम्बाक दर्जी ने कहा, 'तो क्या हुआ? तुम थोड़ा झुक सकते हो, लेकिन यह बेहतरीन सिला है और मैं इसे बदलने वाला नहीं। यह कितना सुंदर लगता है।'

तो वह आदमी कुबड़े की भांति झुका हुआ बाहर आया। जब वह घर जा रहा था तो बहुत कठिन था चलना, क्योंकि एक हाथ भीतर खींचे रखना था, और फिर उसे झुके रहना था जिससे कि सूट सुंदर बना रहे। आदमी तो बिलकुल भुला ही दिया गया, कोट ज्यादा महत्वपूर्ण हो गया। रास्ते में उसे कोई

व्यक्ति मिला और उसने कहा, 'ऐसा सुंदर सूट! मैं शर्त लगा सकता हूं कि इसे जरूर जुम्बाक दर्जी ने सिया होगा।'

पहले आदमी को बहुत आश्चर्य हुआ उसने कहा, 'तुम्हें कैसे पता चला?'

उस आदमी ने कहा, 'मुझे कैसे पता चला? केवल उस जैसा दर्जी ही तुम जैसे अपंग के लिए ऐसा सुंदर कोट सिल सकता है!'

यही सभी धर्मों द्वारा सारी मनुष्य—जाति के साथ किया गया है। उन्होंने सुंदर नियम बनाए हैं तुम्हारे लिए। वे कहते हैं कि यदि तुम्हें थोड़ा कुबड़ा होना पड़े तो क्या हर्ज है? बिलकुल ठीक। तुम बड़े सुंदर लगते हो। तुम्हें चलना है नियम के अनुसार और उसे पूरा करना है। तुम नहीं हो साध्य; नियम है साध्य। यदि तुम अपंग हो जाते हो तो ठीक, यदि तुम कुबड़े हो जाते हो तो ठीक, यदि तुम बीमार हो जाते हो तो ठीक—लेकिन नियम तो पूरा करना ही होगा!

पतंजलि तुम्हें उस तरह के नियम नहीं दे रहे हैं, नहीं। वे बेहतर समझते हैं। वे सारी स्थिति को समझते हैं। नियम हैं तुम्हें सहायता देने के लिए। वे ठीक उस ढांचे की भांति हैं जो इमारत बनाने के पहले चारों तरफ बनाया जाता है। नई इमारत के बनने में वह सहायता देता है, लेकिन जब इमारत तैयार हो जाती है तो ढांचे को हटा देना पड़ता है। वह एक .निश्चित उद्देश्य के लिए था, वही मंजिल न था। ये सारे नियम एक निश्चित उद्देश्य के लिए हैं, वे विकसित होने में तुम्हारी सहायता करते हैं।

पहला था 'यम', आत्म— अनुशासन। तुमने ध्यान दिया होगा—पांच व्रत, अहिंसा, सत्य आदि, उनकी अपनी एक विशेषता है कि तुम उनका अभ्यास केवल समाज में रह कर ही कर सकते हो। यदि तुम जंगल में अकेले हो, तो तुम उनका अभ्यास नहीं कर सकते; तब कोई आवश्यकता नहीं रह जाती और न ही कोई अवसर होता है। तुम्हें तब सच्चा रहना होता है, जब कोई दूसरा मौजूद होता है। जब तुम अकेले हो हिमालय की चोटी पर तो सत्य का कोई प्रश्न ही नहीं है, क्योंकि तुम क्या झूठ बोलोगे—किससे बोलोगे? अवसर ही नहीं है।

तो यम तुम्हारे और दूसरों के बीच एक सेतु है, और वह है पहली बात : कि तुम्हें दूसरों के साथ अपने संबंधों को व्यवस्थित कर लेना चाहिए। यदि तुम्हारे और दूसरों के बीच के संबंध सुलझे हुए नहीं हैं, तो वे निरंतर परेशानी खड़ी करते रहेंगे। दूसरों के साथ के सारे हिसाब—किताब सुलझा लो, यही अर्थ है पहले व्रत 'यम' का। यदि तुम लोगों के साथ संघर्ष में हो, तो तनाव होगा, चिंता पकड़ेगी; तुम्हारे स्वप्नों में भी यह बात दुख—स्वप्न बन जाएगी। यह छाया की भांति तुम्हारा पीछा करेगी। खाते हुए, सोते हुए, ध्यान करते हुए—क्रोध बना रहेगा, हिंसा मौजूद रहेगी। वह हर बात को विकृत कर देगी। वह हर चीज को नष्ट कर देगी। तुम शांति से, चैन से नहीं रह सकते।

इसलिए पतंजलि कहते हैं, पहले तुम 'यम' के द्‌वारा लोगों के साथ व्यवस्थित और निर्भार हो जाओ। झूठे मत होओ, आक्रामक मत होओ, मालकियत मत जमाओ, ताकि तुम्हारे और दूसरों के बीच कोई संघर्ष न रहे—एक संवाद हो। यह तुम्हारे अस्तित्व का पहला वर्तुल है—तुम्हारी परिधि, जहां तुम दूसरों की परिधियों को स्पर्श करते हो। इसे शात होना चाहिए, ताकि समग्र के साथ तुम्हारे संबंध मैत्रीपूर्ण हों। केवल उस गहन मैत्री में ही विकास संभव है। अन्यथा बाहर की चिंताएं बहुत ज्यादा घेरे रहेंगी। वे तुम्हारा ध्यान आकर्षित करेंगी और तुम्हारा चित्त विचलित करेंगी और उसमें बहुत ऊर्जा खोएगी। और वे तुम्हें चैन न लेने देंगी और स्वात में न होने देंगी। यदि तुम दूसरों के साथ शांति से नहीं रह सकते तो अपने साथ भी शांति से नहीं रह सकते। कैसे रह सकते हो?

तो पहली बात है : दूसरों के साथ शांतिपूर्ण होना, ताकि तुम स्वयं के साथ शात हो सकी। जब परिधि पर कोई लहरें नहीं होतीं, तो अचानक एक शांति, एक मौन उतर आता है तुम्हारे अंतस में। तो पहली बात है तुम्हारे और दूसरों के बीच संबंध।

फिर दूसरा चरण है—नियम। इसका दूसरों से कुछ लेना—देना नहीं है; वह तुमने कर लिया, अब तुम्हें अपने साथ कुछ करना है। यदि तुम हिमालय की गुफा में बैठे हो, तो पहली बात संभव न होगी क्योंकि दूसरे वहां मौजूद न होंगे। लेकिन तुम्हें वहां भी दूसरे चरण का अभ्यास करना होगा, क्योंकि वह समाज से संबंधित नहीं है—वह तुम्हारे स्वात से संबंधित है।'यम' है तुम्हारे और दूसरों के बीच, 'नियम' है तुम्हारे और स्वयं के बीच।

शुद्‌धता, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर के प्रति समर्पण— ये नियम पूरे करने होते हैं।

प्रत्येक बात को गहराई से समझ लेना है। पहली बात है. शुद्‌धता, शौच। तुम संसार में हो शरीर के रूप में —सशरीर। यदि तुम्हारा शरीर बीमार हो तो तुम स्वस्थ कैसे हो सकते हो? यदि तुम्हारे शरीर में बहुत विष हैं तो वे तुम्हें मूर्च्छित करते हैं। यदि तुम्हारा शरीर बहुत अशुद्‌ध है, बहुत बोझिल है, तो तुम हलके नहीं हो सकते, तुम उड़ नहीं सकते। इसलिए अब तुम्हें अपने शरीर और उसकी शुद्‌धता के लिए कुछ करना होगा।

ऐसे भोजन हैं जो तुम्हें पृथ्वी से बांध देते हैं; ऐसे भोजन हैं जो तुम्हें आकाश की ओर उन्मुख कर देते हैं। जीने के ऐसे ढंग हैं जहां कि तुम गुरुत्वाकर्षण के बहुत प्रभाव में होते हो; जीने के ऐसे ढंग हैं जहां कि तुम गुरुत्वाकर्षण के विपरीत ऊपर उठने के लिए उपलब्ध हो जाते हो।

दो नियम हैं : एक है गुरुत्वाकर्षण, दूसरा है ग्रेस, प्रसाद। गुरुत्वाकर्षण तुम्हें नीचे की ओर खींचता है, प्रसाद तुम्हें ऊपर की ओर खींचता है। विज्ञान केवल गुरुत्वाकर्षण को जानता है, योग प्रसाद को भी

जानता है। और इस संबंध में योग विज्ञान की अपेक्षा ज्यादा वैज्ञानिक मालूम होता है, क्योंकि प्रत्येक नियम का विपरीत नियम होता है। यदि पृथ्वी तुम्हें नीचे खींचती है तो जरूर कोई चीज होगी जो तुम्हें ऊपर भी खींचती होगी; वरना तो पृथ्वी ने तुम्हें खींच लिया होता पूरी तरह ही—तुम्हें भीतर ही खींच लिया होता—तुम तिरोहित हो चुके होते। तुम जीते हो धरती के धरातल पर। इसका अर्थ है कि तुम्हें नीचे खींचने वाले नियम और तुम्हें ऊपर खींचने वाले नियम के बीच एक संतुलन है। अन्यथा तो तुम बहुत पहले विनष्ट हो चुके होते पृथ्वी द्वारा—तुम समा चुके होते पृथ्वी के गर्भ में और तिरोहित हो चुके होते। इस विपरीत नियम का नाम है 'प्रसाद।'

तुमने कई बार अनुभव किया होगा कि बिना किसी कारण के किसी दिन सुबह अचानक तुम बहुत हलका अनुभव करते हो, जैसे कि तुम उड़ सकते हो। तुम चलते हो जमीन पर, लेकिन तुम्हारे पांव जमीन पर नहीं पड़ते—तुम ऐसे हलके हो जाते हो जैसे पंख। और किसी दिन तुम इतने भारी होते हो, ऐसे बोझिल, कि चल भी नहीं सकते। क्या होता है? तो तुम्हें अपनी पूरी जीवन—शैली का अध्ययन करना चाहिए। कोई चीज हलके होने में तुम्हारी मदद करती है, और कोई चीज तुम्हारे बोझिल होने में मदद करती है। वह सब जो तुम्हें बोझिल करता है अशुद्ध है, और वह सब जो तुम्हें हलका करता है शुद्ध है। शुद्धता निर्भार होती है, अशुद्धता भारी और बोझिल होती है। एक स्वस्थ व्यक्ति हलका और निर्भार अनुभव करता है; अस्वस्थ व्यक्ति बहुत ज्यादा बोझिल होता है पृथ्वी द्वारा; बहुत ज्यादा नीचे की ओर खिंचा रहता है। स्वस्थ व्यक्ति चलता नहीं, दौड़ता है। अस्वस्थ व्यक्ति यदि बैठा भी है तो वह बैठा हुआ नहीं होता, वह सो रहा होता है।

योग जानता है तीन शब्दों को, तीन गुणों को. सत्व, रजस, तमस। सत्य है शुद्धता; रजस है ऊर्जा, तमस है बोझ, अंधकार। जो भोजन तुम लेते हो उससे तुम्हारा शरीर बनता है, और एक अर्थों में, तुम बनते हो। यदि तुम मांस खाते हो, तो तुम ज्यादा बोझिल होओगे। यदि तुम केवल दूध और फलों पर जीते हो, तो तुम हलके रहोगे। क्या तुमने ध्यान दिया : कई बार जब तुम उपवास करते हो, तो तुम कितना निर्भार अनुभव करते हो, जैसे कि शरीर का सारा वजन खो गया हो! वजन करने वाली मशीन तो बताएगी तुम्हारा वजन, तो भी तुम उसको अनुभव नहीं करते। क्या होता है? शरीर के पास पचाने के लिए कुछ भी नहीं होता, शरीर दिन—प्रतिदिन के कार्यक्रम से मुक्त होता है। ऊर्जा बह रही होती है, ऊर्जा के पास कुछ होता नहीं करने के लिए——यह एक छुट्टी का दिन होता है शरीर के लिए। तुम शात अनुभव करते हो; तुम सुंदर अनुभव करते हो।

तो भोजन का ध्यान रखना है। भोजन कोई साधारण बात नहीं है। तुम्हें सावधानी बरतनी चाहिए, क्योंकि जो तुमने अब तक खाया है उसी से तुम्हारा शरीर बना है। प्रतिदिन तुम इसे भोजन द्वारा निर्मित कर रहे हो। कम या ज्यादा भोजन लेने से या सम्यक भोजन लेने से भी बहुत अंतर पड़ता है। तुम अति भोजन करने वाले हो सकते हो—तुम बहुत ज्यादा खा सकते हो जिसकी कि कोई जरूरत नहीं है—तब तुम बहुत सुस्त, बहुत बोझिल हो जाओगे। तुम एकदम ठीक मात्रा ले सकते हो,

तब तुम ज्यादा आनंदित अनुभव करोगे, बोझिल नहीं—ऊर्जा बह रही होती है, अवरुद्ध नहीं होती। और वह व्यक्ति जो भीतर के आकाश में उड़ान भरना चाहता है और जो प्रयास कर रहा है भीतर के केंद्र तक पहुंचने का, उसे निर्भार होने की जरूरत है, वरना यात्रा पूरी नहीं हो सकती। आलसी रह कर तुम उस आंतरिक केंद्र में प्रवेश नहीं कर पाओगे। कौन यात्रा करेगा उस आंतरिक केंद्र तक?

तो जो तुम खाते हो उसके प्रति सावधान रहो; जो तुम पीते हो उसके प्रति सावधान रहो। सावधान रहो कि कैसे तुम ध्यान रखते हो अपने शरीर का। छोटी—छोटी बातें महत्व रखती हैं। साधारण व्यक्ति के लिए वे कोई महत्व नहीं रखतीं क्योंकि वह कहीं जा नहीं रहा होता है। जब तुम अंतर्यात्रा पर निकलते हो, तो हर चीज महत्व रखती है। तुम प्रतिदिन स्नान करते हो या नहीं—यह बात भी महत्वपूर्ण है। साधारणतया यह कोई महत्व नहीं रखती। बाजार में, दुकान में यह बात कुछ खास महत्व नहीं रखती कि तुमने ठीक से स्नान किया है या नहीं। असल में यदि तुम रोज ठीक से स्नान करते हो, तो यह बात तुम्हारे व्यवसाय के लिए एक अड़चन होगी। तुम इतना हलका अनुभव कर सकते हो कि चालाक होना कठिन हो जाए; तुम इतना ताजा अनुभव कर सकते हो कि धोखा देना कठिन हो जाए; तुम इतना शुद्ध, निर्दोष अनुभव कर सकते हो कि शोषण करना शायद असंभव ही हो जाए।

तो अस्वच्छ रहना बाजार में तो मदद दे सकता है, किंतु मंदिर में नहीं। मंदिर में तुम्हें ताजा और स्वच्छ जाना होता है—ओस—कणों की भांति, फूलों की भांति। मंदिर में, जहां तुम अपने जूते छोड़ते हो, वहीं छोड़ देना सारे संसार को और उसके सारे बोझों को। उन्हें भीतर मत ले जाना।

स्नान सर्वाधिक सुंदर घटनाओं में से एक है—बडी सरल है। यदि तुम इसका आनंद लेने लगो, तो यह बात शरीर के लिए एक ध्यान बन जाती है। बस फव्वारे के नीचे बैठना और उसका आनंद लेना, कोई गीत गुनगुनाना—या कोई मंत्र गुनगुनाना—तब वह दुगुना जानदार हो जाता है। तुम फव्वारे के नीचे बैठे हो और 'ओम' का गुंजार कर रहे हो और पानी बरस रहा है तुम्हारे शरीर पर और 'ओम' बरस रहा है तुम्हारे मन में, तो तुम दोहरा स्नान कर रहे हो. शरीर शुद्ध हो रहा है पानी के द्वारा, वह संबंध रखता है भौतिक तत्वों के संसार से; और तुम्हारा मन शुद्ध हो रहा है ओम के मंत्र द्वारा। स्नान के बाद तुम स्वयं को प्रार्थना के लिए तैयार पाओगे—तुम प्रार्थना करना चाहोगे। इस स्नान और मंत्र—उच्चार के बाद तुम बिलकुल भिन्न अनुभव करोगे; तुम्हारे चारों ओर एक अलग गुणवत्ता और सुवास होगी।

तो शौच का अर्थ है. भोजन की शुद्धता, शरीर की शुद्धता, मन की शुद्धता—शुद्धता की तीन पर्तें। और चौथी जो कि तुम्हारी अंतस सत्ता है, उसे किसी शुद्धता की कोई जरूरत नहीं, क्योंकि वह अशुद्ध हो ही नहीं सकती। तुम्हारा अंतरतम केंद्र सदा शुद्ध है, सदा कुंआरा है। लेकिन वह अंतस 'सद्र ढंका होता है दूसरी चीजों से जो अशुद्ध हो सकती हैं—जों रोज—रोज अशुद्ध होती हैं।

तुम रोज उपयोग करते हो अपने शरीर का, उस पर धूल जमती रहती है। तुम रोज उपयोग करते हो मन का, तो विचार एकत्रित होते रहते हैं। विचार धूल की भांति ही हैं। संसार में रह कर कैसे तुम बिना विचारों के जी सकते हो? तुम्हें सोच—विचार करना पड़ता है। शरीर पर धूल जमती है और वह गंदा हो जाता है, मन विचारों को इकट्ठा करता है और वह गंदा हो जाता है। दोनों को जरूरत होती है एक अच्छे स्नान की। यह बात तुम्हारी जीवन—शैली का अंग बन जानी चाहिए। इसे नियम की भांति नहीं लेना चाहिए; यह सुंदरता से जीने का एक ढंग होना चाहिए। और यदि तुम शुद्ध हो तो दूसरी संभावनाएं तुरंत खुल जाती हैं, क्योंकि हर चीज जुड़ी है दूसरी चीज से; एक श्रृंखला है। और यदि तुम जीवन को रूपांतरित करना चाहते हो तो सदा प्रथम से ही शुरुआत करना।

नियम का दूसरा चरण है—संतोष। वह व्यक्ति जो स्वस्थ, निर्भार, निर्बोझ, ताजा, युवा, कुंआरा अनुभव करता है, वही समझ पाएगा कि संतोष क्या है। अन्यथा तो तुम कभी न समझ पाओगे कि संतोष क्या होता है—यह केवल एक शब्द बना रहेगा। संतोष का अर्थ है : जो कुछ भी है सुंदर है; यह अनुभूति कि जो कुछ भी है श्रेष्ठतम है, इससे बेहतर संभव नहीं। एक गहन स्वीकार की अनुभूति है संतोष; संपूर्ण अस्तित्व जैसा है उस के प्रति 'हौं' कहने की अनुभूति है संतोष।

साधारणतया मन कहता है, 'कुछ भी ठीक नहीं है।' साधारणतया मन खोजता ही रहता है शिकायतें— 'यह गलत है, वह गलत है।' साधारणतया मन इनकार करता है : वह 'न' कहने वाला होता है, वह 'नहीं' सरलता से कह देता है। मन के लिए 'ही' कहना बड़ा कठिन है, क्योंकि जब तुम 'ही' कहते हो, तो मन ठहर जाता है; तब मन की कोई जरूरत नहीं होती।

क्या तुमने ध्यान दिया है इस बात पर? जब तुम 'नहीं' कहते हो, तो मन आगे और आगे सोच सकता है, क्योंकि 'नहीं' पर अंत नहीं होता। नहीं के आगे कोई पूर्ण—विराम नहीं है, वह तो एक शुरुआत है। नहीं एक शुरुआत है; ही अंत है। जब तुम ही कहते हो, तो एक पूर्ण विराम आ जाता है; अब मन के पास सोचने के लिए कुछ नहीं रहता, बडबडाने—कुनमुनाने के लिए, खीझने के लिए, शिकायत करने के लिए कुछ नहीं रहता—कुछ भी नहीं रहता। जब तुम ही कहते हो, तो मन ठहर जाता है, और मन का वह ठहरना ही संतोष है।

संतोष कोई सांत्वना नहीं है—यह स्मरण रहे। मैंने बहुत से लोग देखे हैं जो सोचते हैं कि वे संतुष्ट हैं, क्योंकि वे तसल्ली दे रहे होते हैं स्वयं को। नहीं, संतोष सांत्वना नहीं है, सांत्वना एक खोटा सिक्का है। जब तुम सांत्वना देते हो स्वयं को, तो तुम संतुष्ट नहीं होते। वस्तुत: भीतर बहुत गहरा असंतोष होता है। लेकिन यह समझ कर कि असंतोष चिंता निर्मित करता है, यह समझ कर कि असंतोष परेशानी खड़ी करता है, यह समझ कर कि असंतोष से कुछ हल तो होता नहीं—बौद्धिक रूप से तुमने समझा—बुझा लिया होता है अपने को कि 'यह कोई ढंग नहीं है।' तो तुमने एक झूठा संतोष ओढ़ लिया होता है स्वयं पर; तुम कहते रहते हो, 'मैं संतुष्ट हूं। मैं सिंहासनों के पीछे नहीं भागता; मैं धन के लिए नहीं लालायित होता; मैं किसी बात की आकांक्षा नहीं करता।'

लेकिन तुम आकांक्षा करते हो। अन्यथा यह आकांक्षा न करने की बात कहां से आती? तुम कामना करते हो, तुम आकांक्षा करते हो, लेकिन तुमने जान लिया है कि करीब—करीब असंभव ही है पहुंच पाना; तो तुम चालाकी करते हो, तुम होशियारी करते हो। तुम स्वयं से कहते हो, 'असंभव

है पहुंच पाना।' भीतर तुम जानते हो : असंभव है पहुंच पाना, लेकिन तुम हारना नहीं चाहते, तुम नपुंसक नहीं अनुभव करना चाहते, तुम दीन—हीन नहीं अनुभव करना चाहते, तो तुम कहते हो, 'मैं चाहता ही नहीं।'

तुमने सुनी होगी ईसप की पुरानी कहानियों में से एक बहुत सुंदर कहानी। एक लोमड़ी एक बगीचे में जाती है। वह ऊपर देखती है : अंगूरों के सुंदर गुच्छे लटक रहे हैं। वह कूदती है, लेकिन उसकी छलांग पर्याप्त नहीं है। वह पहुंच नहीं पाती। वह बहुत कोशिश करती है, लेकिन वह पहुंच नहीं पाती। फिर वह चारों ओर देखती है कि किसी ने उसकी हार देखी तो नहीं। फिर वह अकड़ कर चल पड़ती है। एक नन्हा खरगोश जो झाड़ी में छिपा हुआ था बाहर आता है और पूछता है, 'मौसी, क्या हुआ?' उसने देख लिया कि लोमड़ी हार गई, वह पहुंच नहीं पाई। लेकिन लोमड़ी कहती है, 'कुछ नहीं। अगर खट्टे हैं।'

यह एक सांत्वना है। यह जान कर कि तुम नहीं पहुंच सकते, तुमने तर्क खोज लिया कि अगर खट्टे हैं—कामना करने के योग्य ही नहीं। ऐसा नहीं कि तुम कमजोर हो, वे पाने के योग्य ही नहीं। ऐसा नहीं कि तुम हार गए हो, बल्कि तुम्हीं ने उन्हें छोड़ दिया है।

मैं ऐसे बहुत से लोगों से मिला हूं जिन्होंने संसार त्याग दिया है, और वे ईसप की इस कहानी से बिलकुल भिन्न नहीं हैं। मेरा बहुत से संन्यासियों से, महात्माओं से मिलना हुआ है, लेकिन तुम देख सकते हो उनकी आंखों में—अभी भी अंगसे की आकांक्षा है। लेकिन वे कहते हैं कि उन्होंने सब त्याग दिया है, क्योंकि संसार असार है, भ्रम है, माया है। उन्होंने ईसप की कहानी नहीं पढ़ी है। उन्हें पढ़नी चाहिए। वह उन्हें वेद और गीता पढ़ने से ज्यादा मदद देगी। और उन्हें समझने की कोशिश करनी चाहिए कि असल में क्या हो रहा है : यह केवल अहंकार की तुष्टि है।

सांत्वना एक तरकीब है; संतोष एक क्रांति है। संतोष का यह अर्थ नहीं है कि चारों ओर असफलताओं को देख कर तुम आंखें बंद कर लो और कहो, 'यह संसार माया है; मुझे इसकी आकांक्षा नहीं।'

जापान के एक बहुत बड़े कवि बासो ने एक छोटी सी हाइकू लिखी है। उसका अर्थ है, 'धन्यभागी है वह व्यक्ति, जो सुबह सूरज के प्रकाश में ओस—कणों को तिरोहित होता देख कर यह नहीं कहता कि संसार क्षणभंगुर है, संसार माया है।'

एक अदभुत हाइकू। मैं दोहरा दूं 'धन्यभागी है वह व्यक्ति, जो सुबह सूरज के प्रकाश में ओस—कणों को तिरोहित होता देख कर यह नहीं कहता कि संसार क्षणभंगुर है, संसार माया है।' ऐसा कह कर स्वयं को सांत्वना देना बहुत आसान है।

संतोष एक विधायक अवस्था है, सांत्वना दमन है। लेकिन संतोष की बात सांत्वना जैसी लगती है। एक आदमी मेरे पास आया और कहने लगा, 'मैं एक संतुष्ट व्यक्ति हूं। मेरी पूरी जिंदगी मैं संतोषी रहा हूं लेकिन कुछ घटता नहीं।' मुझे आश्चर्य हुआ। मैंने पूछा, 'क्या चाहते हो तुम? संतोष पर्याप्त है। और क्या चाहिए तुमको?' उसने कहा, 'मैंने सभी शास्त्रों में पढ़ा है कि यदि कोई व्यक्ति संतोष रखे तो सब मिल जाता है। और मुझे तो कुछ मिला नहीं! और मैंने देखे हैं ऐसे लोग जो संतुष्ट नहीं हैं, और वे सफल हैं। मैं असफल हूं। मेरे साथ धोखा हुआ है।'

यह आदमी संतोष द्वारा किन्हीं आकांक्षाओं को पूरा करने की कोशिश कर रहा था। यह संतोष झूठा है—वह चालाकी कर रहा है। और अस्तित्व के साथ तुम चालाकी नहीं कर सकते। तुम उसे धोखा नहीं दे सकते; तुम उसके हिस्से हो। कोई हिस्सा कैसे धोखा दे सकता है पूर्ण को? इससे पहले कि हिस्सा धोखा देने की सोचे, पूर्ण को पता चल जाता है।

मैं भी कहता हूं कि सब मिल जाता है उस व्यक्ति को जो संतुष्ट है, क्योंकि संतोष ही सब कुछ है। यह कोई परिणाम नहीं है कि तुम्हें संतोष का अभ्यास करना होगा, ताकि तुमको सब कुछ मिल जाए—ईश्वर और आनंद और निर्वाण—नहीं। संतोष में ही सब कुछ है। एक संतुष्ट व्यक्ति को बोध होता है कि संतोष ही सब कुछ है; सब कुछ मिल ही चुका है। उसकी हा और—और विकसित होती है, उसका अंतस स्वीकार— भाव से और—और भरता जाता है, वह और—और अनुभव करता है कि चीजें वैसी ही हैं जैसी होनी चाहिए।

यदि तुम निर्मल हो तो संतोष संभव होता है। संतोष है क्या त्र: वह है देखना, अस्तित्व को देखना कि वह कितना सुंदर है! संतोष अपने आप ही चला आता है यदि तुम देख सको कि सुबह कितनी सुंदर होती है, यदि तुम देख सको कि दोपहर कितनी सुंदर होती है, यदि तुम देख सको कि रात कितनी सुंदर होती है; यदि तुम देख सको कि जो अस्तित्व तुम्हें निरंतर घेरे हुए है, वह कैसा अदभुत है! कैसा अपूर्व चमत्कार घट रहा है, हर पल एक चमत्कार है..। लेकिन तुम तो पूरी तरह अंधे हो चुके हो। फूल खिलते हैं—तुम कभी देखते नहीं, बच्चे हंसते हैं—तुम कभी सुनते नहीं; नदियां गीत गाती हैं—तुम बहरे हो; सितारे नृत्य करते हैं—तुम अंधे हो, बुद्ध पुरुष आते हैं और तुम्हें जगाने का प्रयास करते हैं—तुम गहरी नींद में सोए हो। संतोष संभव नहीं है।

संतोष तो उस सब के प्रति जागना है जो मौजूद है। यदि तुम देख सको उसकी एक झलक जो मिला ही हुआ है तो और ज्यादा की अपेक्षा करना अकृतज्ञता लगेगी। यदि तुम समग्र को देख सको, तो तुम अनुगृहीत होओगे। तुम अनुभव करोगे कि अत्यंत अनुग्रह उठ रहा है तुम्हारे भीतर। तुम कहोगे, 'सब

कुछ ठीक है; हर चीज सुंदर है; हर चीज पवित्र है। और मैं अनुगृहीत हूं क्योंकि मैंने इसे अर्जित नहीं किया है और मुझे एक मौका मिला है, एक सुअवसर मिला है—जीने का, होने का, श्वास लेने का, देखने का, सुनने का। वृक्षों को फूलते—फलते देखने का और पक्षियों के गीत सुनने का।'

यदि तुम सजग हो सको—बस थोड़ी सी सजगता और तुम पाओगे न कहीं कुछ बदलना है, न किसी चीज की आकांक्षा करनी है—हर चीज तुम्हें मिली ही हुई है। तुम्हारी शिकायतो के कारण—शिकायतो की धुंध के कारण, नकारात्मकता के कारण—तुम देख नहीं पाते, तुम्हारी आंखें धुएं से भरी रहती हैं और तुम ज्योति को देख नहीं पाते।

संतोष है एक दृष्टिकोण—जीवन को देखने का एक भिन्न दृष्टिकोण आकांक्षाओं द्वारा न देखना, बल्कि उसे देखने का प्रयास जो कि पहले ही उपलब्ध है। यदि तुम कामना के माध्यम से देखते हो, तो तुम कभी संतुष्ट न होओगे। कैसे हो सकते हो तुम! क्योंकि कामना तो आगे, और आगे बढ़ती जाती है। तुम्हारे पास दस हजार रुपए हैं, तो कामना कहती है सौ हजार चाहिए। जब तुम्हारे पास सौ हजार होते हैं, तो कामना आगे बढ़ चुकी होती है, अब दस लाख रुपए चाहिए, सौ लाख रुपए चाहिए। जब तुम वहां पहुंचोगे, कामना तुमसे और आगे जा चुकी होगी। वह तुम्हारे आगे—आगे ही चलती है। वह कभी भी तुम्हारे साथ नहीं चलती; तुम उसको कभी पूरा न कर पाओगे। कितना भी तुम दौड़ो, सदा उसे क्षितिज की भांति पाओगे—आगे, कहीं भविष्य में। सदा ऐसा ही होगा। और पीछे—पीछे आएगा असंतोष. कामना है आगे, तो तुम असंतुष्ट ही रहोगे। और असंतोष नरक है।

जब तुम समझ लेते हो इस बात को, तो तुम सत्य को कामना के पर्दे से नहीं देखते; तुम देखते हो प्रत्यक्ष, तुम देखते हो सीधे—सीधे, तुम कामना को हटा देते हो एक तरफ और तुम सीधे देखते हो। तुम आंखें खोलते हो और तुम सीधे देखते हो, और हर चीज इतनी ठीक मालूम पड़ती है! मैंने देखा है इस तरह, इसीलिए मैं तुम से ऐसा कहता हूं। सब कुछ इतना ठीक है कि इसे और बेहतर नहीं किया जा सकता। यह अंतिम है, कोई सुधार संभव नहीं है। तब संतोष तुम में उतरता है किसी संध्या की भांति। वह सूर्य, कामना— आकांक्षा का वह झुलसा देने वाला सूर्य अस्त हो चुका होता है और शीतल सांध्य पवन और शांत, गहरी सौम्य—संध्या तुम में उतर आती है—और जल्दी ही तुम सुखद रात से आच्छादित हो जाओगे, तुम संतोष के अंतरगर्भ में उतर जाओगे। संतोष देखने का एक दृष्टिकोण है; लेकिन जब तुम शुद्ध होते हो, निर्भार होते हो, केवल तभी यह संभव होता है।

और संतोष के बाद पतंजलि कहते हैं—तप। यह ठीक से समझ लेने जैसी बात है, बहुत ही नाजुक और सूक्ष्म बात है। तुम संतोष आने से पहले भी तपस्वी हो सकते हो, लेकिन तब तुम्हारा तप कामनाओं के कारण होगा। तब अपने तप द्वारा भी तुम कामना कर रहे होओगे मोक्ष की, मुक्ति की, स्वर्ग की, ईश्वर की। तब तुम्हारी तपस्या भी एक साधन ही होगी। इसीलिए पतंजलि पहले कहते हैं संतोष और फिर कहते हैं तप। जब तुम संतुष्ट होते हो, तब तप कुछ पाने का साधन नहीं रहता; तब यह सहज सुंदर ढंग होता है जीने का। तब यह प्रश्न नहीं होता कि तुम्हारे पास कम चीजें हैं कि ज्यादा चीजें

हैं—तब यह समस्या ही नहीं होती। चीजों के कम—ज्यादा होने से इसका कोई लेना—देना नहीं है। तब यह जीने का सहज ढंग होता है—जीने का जटिल ढंग नहीं।

और कठिन है इस बात को समझना. यदि बिना संतोष को उपलब्ध हुए तुम तपस्वी होने का प्रयास करते हो, तो तुम्हारी तपस्या उलझी हुई होगी, जटिल होगी।

एक बार ऐसा हुआ, मैं फर्स्ट क्लास के डिब्बे में एक दूसरे संन्यासी के साथ यात्रा कर रहा था। मैं उस संन्यासी को नहीं जानता था, वह संन्यासी मुझे नहीं जानता था, लेकिन डिब्बे में हम दो ही यात्री थे। किसी स्टेशन पर बहुत से लोग उससे मिलने आए; वह जरूर बहुत प्रसिद्ध व्यक्ति होगा। कुछ नहीं था उसके पास, बस एक छोटा सा झोला था, शायद एक—दो वस्त्र, और एक छोटी सी लुंगी घुटनों तक, और वह करीब—करीब नग्न ही था। और वह लुंगी भी सस्ते से सस्ते कपड़े की थी।

फिर हम यात्रा में साथ रहे, धीरे— धीरे मैं उसकी जटिलताओं के प्रति सजग हुआ; वैसे वह एक सीधा—सादा आदमी था जहां तक बाहरी रंग—ढंग का प्रश्न है। जब स्टेशन पीछे छूट गया और वे लोग चले गए और गाड़ी चली और उसने देखा कि मैं ऊंघ रहा हूं —मैंने आंखें बंद की हुई थीं—तो तुरंत उसने अपने झोले में से कुछ निकाला। मैं सोया नहीं था। मैंने देखा—वह नोट गिन रहा था, कोई सौ रुपए से ज्यादा न होंगे, लेकिन जिस ढंग से वह गिन रहा था—ऐसे मजा लेकर, ऐसे लोभ के साथ कि मैं विश्वास न कर सका।

यह देख कर कि मैं देख रहा हूं उसने तुरंत नोटों को झोले में डाल दिया और फिर से सीट पर बुद्ध की भांति बैठ गया। अब यह जटिलता है। यदि तुम गिन रहे हो तो गिन रहे हो। इससे क्या फर्क पड़ता है कि मैं देख रहा हूं या नहीं? क्यों छिपाना? क्यों इसके लिए अपराधी अनुभव करना? यदि तुम मजा ले रहे हो नोट गिनने का, तो कुछ गलत नहीं है इसमें—निर्दोष बात है, कुछ हर्ज नहीं है। लेकिन नहीं; उसने अपराध— भाव अनुभव किया. कि संन्यासी को तो नोट छूने नहीं चाहिए! पर वह पकड़ में आ गया। फिर उसे जहां उतरना था वह स्टेशन सुबह छह बजे आने वाला था। लेकिन जहां भी गाड़ी रुकती, वह पूछता बार—बार—रात के दो बजे और वह खिड़की से बाहर झांकता और पूछता—कौन सा स्टेशन है यह? वह मेरी नींद इतनी बिगाड़ रहा था कि मैंने उससे कहा, 'चिंतित मत होओ। वह स्टेशन छह बजे से पहले तो आने वाला नहीं। और यह गाड़ी आगे जाती नहीं—तो तुम्हें फिक्र नहीं करनी चाहिए। यदि तुम गहरी नींद भी सोए हुए हो तो भी तुम चूक नहीं सकते स्टेशन—वह तो अंतिम स्टेशन है।' लेकिन वह सो नहीं सका सारी रात, वह इतना तनावग्रस्त था; और मैं समझ नहीं पा रहा था कि बेचैनी क्या है।

सुबह, जब स्टेशन निकट आ रहा था, मैंने उसे दर्पण के सामने खड़े हुए देखा। कुछ ठीक—ठाक करने को न था, बस एक छोटी सी लुंगी थी, लेकिन वह बार—बार उसे ही बाध रहा था और देख रहा था दर्पण में कि वह ठीक लगती है या नहीं। तभी उसने फिर देख लिया मुझे देखते हुए तो वह एकदम

घबड़ा गया। जब भी मैं अपनी आंखें बंद कर लेता वह झट से कुछ न कुछ करने लगता; यदि मैं अपनी आंखें खोल देता तो वह तुरंत कुछ भी करना बंद कर देता। इतना वह अपराध— भाव से भरा हुआ था हर चीज के प्रति।

इस आदमी को संतोष उपलब्ध नहीं हुआ और यह तपश्चर्या साधने लगा। वह आकांक्षाओं से भरा एक साधारण व्यक्ति ही है। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि दर्पण में देखने में कुछ बुराई है—कुछ बुराई नहीं है। बुराई केवल यही है कि जब कोई दूसरा देखता है तो इतने घबड़ा क्यों जाते हो? बिलकुल ठीक है, तुम देख सकते हो—तुम्हारा अपना चेहरा है, तुम देख सकते हो दर्पण में। तुम्हें पूरा अधिकार है, कम से कम अपना चेहरा तो देख ही सकते हो। और कुछ गलत नहीं है इसमें। आनंदित होओ—वह चेहरा भी ईश्वर की प्रतिमूर्ति है। लेकिन वह अपराध— भाव से भरा है : वह एक साधारण व्यक्ति है जो दिखा रहा है, कोशिश कर रहा है संत पुरुष दिखने की।

बिना संतोष के तुम दिखावा कर सकते हो, तुम पीड़ित हो सकते हो, तुम तपस्वी हो सकते हो, तुम सरलता ओढ़ सकते हो, तुम घर और वस्त्र छोड़ सकते हो और नग्न हो सकते हो; लेकिन तुम्हारी नग्नता में एक जटिलता होगी; उसमें सरलता नहीं हो सकती। सरलता आती है केवल संतोष की छाया की तरह, तब तुम महल में रह सकते हो और तुम सरल हो सकते हो। तुम्हारे पास क्या है उससे सरलता का कुछ लेना—देना नहीं है; सरलता का संबंध है मन की गुणवत्ता से।

एक स्टेशन के लिए इतनी बेचैनी है, तो जब मौत आ रही होगी तो यह आदमी शात कैसे हो सकता है? मेरे देखने से ऐसा भयभीत है, तो कितना भयभीत न हो जाएगा, अगर ईश्वर देख रहा हो; और वह कितना भयभीत न होगा जब उसे सामना करना होगा परमात्मा का? वह न कर पाएगा। वह स्वयं को ही धोखा दे रहा है; किसी और को धोखा नहीं दे रहा है।

तपश्चर्या का मतलब है सहजता. एक सहज—सरल जीवन जीना। सरल जीवन क्या है? सरल जीवन है बच्चों की भांति जीना—तुम हर चीज का आनंद लेते हो, लेकिन किसी से चिपकते नहीं।

ऐसा हुआ भारत के महानतम संतो में से एक थे कबीर। उनका एक लड़का था, उसका नाम था कमाल। वह पिता से भी पहुंचा हुआ था। लेकिन कोई कमाल के विषय में ज्यादा जानता नहीं था, क्योंकि वह सच में ही बहुत अदभुत था। बहुत से शिष्य थे कबीर के, और उनमें बहुत प्रतियोगिता थी, जैसी कि होती है शिष्यों में। और बहुत से लोग नहीं चाहते थे कि कमाल कबीर के साथ रहे, क्योंकि वे कहते, 'यह आदमी गलत है।' लोग कबीर के चरणों में अर्पित करने के लिए बहुत सी भेंटें—दान, धन, हीरे—जवाहरात लाते, वे उनको कभी स्वीकार न करते। और कमाल बैठा रहता बाहर। और जब वे वापस लौटते यदि वे कमाल को भेंट देते, तो वह उन्हें ले लेता।

तो लोग कहते, 'तुम्हारा बेटा लोभी है।' कबीर जानते थे भलीभांति कि वह लोभी बिलकुल नहीं है; वह तो बहुत सीधा—सादा आदमी है। इसीलिए वे उसे कमाल कहते थे। कमाल का अर्थ है—चमत्कार। वह

सच में ही चमत्कार था, और ऐसा होना ही था. कबीर का लड़का कमाल ही होगा। लेकिन वह सच में ही सीधा—सहज था—एकदम बच्चे की भांति। कई बार वह मांग तक लेता! किसी की भेंट अस्वीकृत हो गई होती, कबीर ने इनकार कर दिया होता उसको—कोई हीरे ले आया होता उन्हें देने के लिए और कबीर ने उन्हें लेने से इनकार कर दिया होता—और वह आदमी उन्हें वापस ले जा रहा है और कमाल कहता, 'सुंदर कंकड़—पत्थर! कहां लिए जा रहे हो तुम इन्हें? इधर लाओ। यदि मेरे पिता नहीं ले सकते तो मैं ले सकता हूं।'

यह बात गलत थी। तो अंततः शिष्यों ने कबीर को, उनकी मरजी के खिलाफ, राजी कर लिया और कबीर ने कहा, 'ठीक है, अगर आप सब ऐसा सोचते हैं, तो मैं उसको घर से निकाल देता हूं।' कमाल को अलग रहने को कह दिया गया। उसने कुछ नहीं कहा : उसने स्वीकार कर लिया—संतोष। उसने तर्क भी न किया कि जो लोग उसके खिलाफ शिकायत कर रहे हैं, गलत हैं। नहीं, ऐसा आदमी वाद—विवाद में नहीं पड़ता। वह चुपचाप चला गया। उसने एक छोटी सी झोपड़ी बना ली वहीं कबीर के पास ही, और वहां रहने लगा। कबीर के पास हजारों लोग आते, और कमाल के पास कोई न आता, क्योंकि उसकी बिलकुल ख्याति न थी; और यह बात सबको जाहिर थी कि कबीर ने उसे अलग कर दिया है, तो यही बात पर्याप्त निंदा का कारण थी।

काशी नरेश, जो कि कबीर का भक्त था, वह एक बार आया और उसने पूछा, 'कमाल कहां है? कबीर ने सारी बात बताई। काशी नरेश ने कहा, 'लेकिन मुझे तो कभी नहीं लगा कि उस लड़के में कोई लोभ है। वह बिलकुल सीधा—सादा है। मैं जाता हूं और देखता हूं।' तो वह गया कमाल की झोपड़ी में, एक बहुत ही कीमती, जो उसके पास सब से बड़ा हीरा था, वह साथ ले गया।

कमाल ने उस दिन भोजन नहीं किया था और घर में कुछ भोजन था नहीं, तो उसने कहा, 'मैं क्या करूंगा इस पत्थर का? इसे खाऊंगा कि पीऊंगा? इससे तो अच्छा था कि कुछ खाने—पीने की चीज लाते, क्योंकि मुझे भूख लगी है।'

काशी नरेश ने अपने मन में सोचा, 'तो मैं ठीक ही सोचता था। क्या गजब! इतना कीमती हीरा और वह एकदम इनकार कर रहा है।'

तो नरेश जब वापस जाने लगा तो उसने वह हीरा उठा लिया।

कमाल ने कहा, 'अगर समझ में आ गया है कि यह पत्थर ही है तो फिर क्यों बोझ ढोते हो? छोड़ो यहीं। पहली बात तो यह कि यहां तक ढोकर लाए, एक गलती की। अब फिर क्यों वही गलती करनी वापस ढोने की? आखिर पत्थर ही है।'

अब काशी नरेश उलझन में पड़ गया, 'कहीं यह कोई चालाकी न हो। शायद कमाल को रस है इस हीरे में, लेकिन मेरे साथ होशियारी कर रहा है।' फिर भी काशी नरेश ने सोचा, 'ठीक है, देखते हैं।' तो उसने कहा, 'कहां रख दूं मैं इसको?'

कमाल ने कहा, 'फिर आप वही गलती कर रहे हैं। यदि पत्थर ही है तो कोई पूछेगा नहीं कि कहा रख दूं इसे। अरे कहीं भी रख दो, झोपड़ी बड़ी है।'

काशी नरेश भी पूरी बात को अंत तक देख लेना चाहता था, तो उसने झोपड़ी की छत पर खोंस दिया हीरा और चला आया, भलीभांति जानते हुए कि यह कमाल जरूर वह हीरा निकाल कर रख लेगा।

सात दिन बाद वह वापस आया पूछताछ करने के लिए कि क्या हुआ। उसे पक्का था कि अब तक तो हीरा बिक भी चुका होगा। वह वहां पहुंचा, उसने थोड़ी देर इधर—उधर की बातचीत की और फिर कहा, 'उस हीरे का क्या हुआ?'

कमाल ने कहा, 'फिर हीरे की बात? और मैंने कह दिया आपसे कि वह एक पत्थर था। और मैं क्यों फिक्र करूं इसकी कि क्या हुआ उसका?'

अब तो काशी नरेश ने सोचा, 'यह पक्का धूर्त है। इसने बेच दिया उसे या कहीं छिपा दिया है; तभी तो अब कह रहा है, मैं क्यों फिक्र करूं उसकी?' और फिर कमाल ने कहा, 'लेकिन तुम जहां उसे रख गए थे वहां देख लो। अगर अभी तक किसी ने लिया नहीं होगा, तो वहीं होगा।'

और हीरा वहीं रखा हुआ था। यह है सरलता। यह है सहज सादगी। लेकिन कठिन है बात. कोई रह सकता है महल में, और यदि महल नहीं है उसके मन में, तो यह है सहज सादगी। तुम झोपड़ी में रह सकते हो और यदि झोपड़ी तुम्हारे मन में प्रवेश कर जाती है, तो यह सादगी नहीं है। तुम बैठ सकते हो सिंहासन पर सम्राट की भांति, और तुम संन्यासी हो सकते हो। इसी तरह तुम संन्यासी हो सकते हो और तुम नग्न खड़े हो सकते हो सड़क पर, और हो सकता है तुम संन्यासी न हो। चीजें उतनी सीधी—सरल नहीं हैं, जितनी लोग उन्हें समझते हैं। और बाहरी रंग—रूप पर बहुत भरोसा रखना भी नहीं चाहिए, तुम्हें भीतर गहरे में देखना चाहिए।

सादा जीवन केवल संतोष के बाद ही संभव होता है, क्योंकि संतोष के बाद तुम्हारी सादगी किसी साध्य को पाने का साधन न होगी; वह केवल जीने का एक गैर—जटिल ढंग होगी, जीने का एक सहज—सरल ढंग होगी। और क्यों सहज—सरल? क्योंकि सहज जीवन ज्यादा प्रसन्नता देने वाला होता है। जितना ज्यादा जटिल होता है तुम्हारा जीने का ढंग, उतने ही ज्यादा तुम दुखी होते हो, क्योंकि तब तुम्हें बहुत सारी चीजों के जोड़—तोड़ बैठाने पड़ते हैं। जितना सहज जीवन होता है, उतना ही ज्यादा आनंद होता है, क्योंकि कोई व्यवस्था नहीं करनी पड़ती। तुम श्वास की भांति जी सकते हों—सहज।

और फिर है—स्वाध्याय। वह व्यक्ति जो उपलब्ध हो चुका है शुद्धता को, संतोष को, तप—संयम को, केवल वही अध्ययन कर सकता है 'स्व' का, अंतस का; क्योंकि अब सारा कूड़ा—करकट फेंका जा चुका है, सारी गंदगी फेंकी जा चुकी है। अन्यथा स्वाध्याय संभव ही न होगा। तुम्हारे भीतर इतनी ज्यादा गंदगी है, यदि तुम अपना अध्ययन करोगे तो वह कोई स्वाध्याय न होगा, वह उस कचरे का ही अध्ययन होगा। वह फ्रायड के मनोविश्लेषण जैसा होगा। यही अंतर है स्वाध्याय और फ्रायड के मनोविश्लेषण के बीच।

फ्रायड का मनोविश्लेषण वर्षों चल सकता है—पांच वर्ष, दस वर्ष—और फिर भी बात समाप्त नहीं होती. कूड़ा—करकट निकलता ही जाता है। तुम हमेशा—हमेशा जारी रख सकते हो। कचरा अंतहीन है, क्योंकि वह अपने आप इकट्ठा होता है : आज तुम फेंकते हो कचरे को, कल तुम फिर आ जाते हो मनोविश्लेषण के लिए; चौबीस घंटे में फिर कचरा इकट्ठा हो चुका होता है वहा। फिर तुम फेंकते उसे, फिर वह इकट्ठा हो जाता है। जब तक तुम्हारी जिंदगी का पूरा आधार ही नहीं बदल जाता, तुम इकट्ठा करते ही रहोगे कूड़ा—करकट।

तो बात कूड़े—कचरे को फेंकने की नहीं है—तुम इकट्ठा करते रहते हो उसे। तुम्हारा जीने का ढंग ऐसा है कि तुम उसे इकट्ठा करते हो; तुम चिपकते हो उससे। जब तक कि वह ढंग न बदले, जब तक कि वह जीवन—शैली न बदले, तुम स्वयं का अध्ययन नहीं कर सकते। तुम एक भीड़ हो और तुम्हारा 'स्व' भीड़ में खो चुका है।

पतंजलि बहुत वैज्ञानिक ढंग से चलते हैं। तप—संयम के बाद जब तुम बहुत सरल—सहज हो जाते हो, कोई कचरा इकट्ठा नहीं होता, जब तुम इतने संतुष्ट हो जाते हो कि कोई आकांक्षा तुम में नहीं बचती, जब तुम इतने निर्दोष और शुद्ध हो जाते हो कि कोई बोझ नहीं रहता—तुम सुगंध की भांति हो जाते हो; निर्भार, पंख पसार उड़ने लगते हो हवा में, हवा पर तिरते हो—तब स्वाध्याय। अब तुम स्वयं का अध्ययन कर सकते हो। स्वाध्याय कोई आत्म—विश्लेषण नहीं है; वह है स्वयं को देखना। वह है स्वयं पर ध्यान करना।

और स्वाध्याय के बाद है नियम का अंतिम चरण—ईश्वर के प्रति समर्पण। असल में पतंजलि जिस ढंग से चलते हैं वह बहुत अदभुत है। उन्होंने प्रत्येक चरण पर वर्षों सोचा होगा, क्योंकि ठीक इसी तरह होता है यह। जब तुमने स्वयं का अध्ययन कर लिया होता है, केवल तभी तुम समर्पण कर सकते हो, क्योंकि अन्यथा तुम समर्पित क्या करोगे? स्वयं को ही करना होता है समर्पित। यदि तुम स्वयं को ठीक से समझ लेते हो, केवल तभी तुम समर्पण कर सकते हो। अन्यथा कैसे तुम समर्पण करोगे? लोग मेरे पास आते हैं और वे कहते हैं, 'हम समर्पण करना चाहते हैं।'

लेकिन तुम क्या समर्पित करोगे मुझे? अभी तो तुम्हारे पास कुछ भी नहीं है। तुम्हारा समर्पण खोखला है। तुम्हें मौजूद होना चाहिए समर्पित होने के लिए। पहली बात, एक केंद्रीभूत आत्मा की जरूरत है

समर्पित होने के लिए। मात्र कह देने से समर्पण नहीं घट सकता है। तुम में इसकी सामर्थ्य होनी चाहिए; इसे अर्जित करना होता है।

स्वाध्याय के बाद—जब आत्मा एक प्रकाश—स्तंभ की भांति तुम्हारे भीतर प्रकट होती है और तुम्हें उसका स्पष्ट बोध होता है, और सब अनावश्यक काटा जा चुका और फेंका जा चुका होता है,

जब तुम शल्य—क्रिया से गुजर चुके होते हो और आत्मा अपनी आदिम शुद्धता में और सौंदर्य में प्रकट होती है—अब तुम इसे परमात्मा के चरणों में समर्पित कर सकते हो। और पतंजलि बड़ी अनूठी बात कहते हैं कि यह बात महत्वपूर्ण नहीं है कि ईश्वर है या नहीं। ईश्वर पतंजलि के लिए कोई सिद्धात नहीं है; ईश्वर को प्रमाणित नहीं करना है। पतंजलि कहते हैं. ईश्वर समर्पण करने के लिए एक बहाने के सिवाय और कुछ नहीं है। अन्यथा कहां करोगे तुम समर्पण? यदि तुम ईश्वर के बिना समर्पण कर सको तो ठीक; पतंजलि को कोई अड़चन नहीं है। वे नहीं कहते कि ईश्वर को मानना ही है। वे इतने वैज्ञानिक हैं कि वे कहते हैं : ईश्वर जरूरी नहीं है, वह केवल समर्पण करने का एक ढंग है। वरना तुम मुश्किल में पड़ोगे कि कहां करें समर्पण? तुम पूछोगे, 'किसे करें समर्पण?'

बुद्ध और महावीर जैसे लोग हुए हैं जिन्होंने ईश्वर के बिना ही समर्पण किया, लेकिन वे दुर्लभ व्यक्ति हैं, क्योंकि तुम्हारा मन तो सदा पूछेगा, 'किसे?' यदि मैं तुमसे कहता हूं 'प्रेम करो', तो तुम पूछोगे, 'किसे?' क्योंकि तुम किसी प्रेम—पात्र के बिना प्रेम नहीं कर सकते। यदि मैं तुमसे पत्र लिखने के लिए कहूं तो तुम पूछोगे, 'किस पते पर लिखूं?' पते के बिना तुम पत्र नहीं लिख सकते, क्योंकि वह बात एकदम मूढ़ता की लगेगी। तुम्हारा मन ऐसा है! यदि अंतिम साध्य के रूप में ईश्वर न हो और तुम से कहा जाए, 'समर्पण करो,' तो तुम कहोगे, 'किसे?'

तो केवल तुम्हें बहाना देने के लिए—ईश्वर एक बहाना है तुम्हारी मदद के लिए। ईश्वर कोई लक्ष्य नहीं है और ईश्वर कोई व्यक्ति नहीं है। पतंजलि के लिए ईश्वर इस मार्ग पर एक मदद है—अंतिम मदद। ईश्वर के नाम पर समर्पण आसान हो जाता है। ईश्वर का नाम हो तो तुम्हारा मन उलझन में नहीं रहता कि कहां समर्पण करें। तुम्हारे पास समर्पण करने की एक जगह होती है, तुम्हारे पास एक जगह होती है झुक जाने के लिए। ईश्वर वही जगह है, कोई व्यक्ति नहीं।

और पतंजलि कहते हैं : यदि तुम ईश्वर के बिना समर्पण कर सकते हो, तो सवाल समर्पण का है—ईश्वर का नहीं। यदि तुम ठीक से समझो जो मैं कह रहा हूं तो समर्पण ही ईश्वर है। समर्पण करने का मतलब है दिव्य हो जाना, समर्पण करने का मतलब है दिव्यता को उपलब्ध हो जाना। लेकिन तुम्हें मिटना होगा। इसलिए पहले तो तुम्हें खोजना है स्वयं को, ताकि तुम मिट सको। पहले तुम्हें क्रिस्टलाइज करना है स्वयं को, ताकि तुम जा सको मंदिर में और समर्पण कर सको परमात्मा के चरणों में—उंडेल सको स्वयं को सागर में और मिट सको।

'शुद्धता, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर के प्रति समर्पण—ये नियम पूरे करने होते हैं।'

ये विकास के नियम हैं। ये निषेध नहीं करते; ये सहायता देते हैं। ये निषेधात्मक नहीं हैं; ये सृजनात्मक हैं।

जब मन अशांत हो असद विचारों से तो मनन करना विपरीत विचारों पर।

यह एक सुंदर विधि है, तुम्हारे लिए बहुत उपयोगी होगी। उदाहरण के लिए, यदि तुम बहुत असंतोष अनुभव कर रहे हो तो क्या करना चाहिए? पतंजलि कहते हैं, विपरीत विचारों पर ध्यान देना. यदि तुम असंतोष अनुभव कर रहे हो तो ध्यान करना संतोष पर, कि संतोष क्या है? संतुलन ले आना। यदि तुम्हारा मन क्रोध से भरा है, तो करुणा को भीतर उतारना, करुणा पर मनन करना। और तुरंत ही ऊर्जा बदल जाती है। क्योंकि वे एक ही हैं, विपरीत तत्व में भी वही ऊर्जा है। एक बार तुम करुणा से भर जाते हो, तो क्रोध विलीन हो जाता है। क्रोध आए तो ध्यान करना करुणा पर।

एक काम करना बुद्ध की प्रतिमा रखना। क्योंकि वह प्रतिमा करुणा की मुद्रा है। जब भी तुम क्रोधित होते हो, भीतर कमरे में जाना, बुद्ध की ओर देखना, बुद्ध की भांति बैठ जाना और अनुभव करना करुणा को। अचानक तुम पाओगे, तुम्हारे भीतर रूपांतरण घट रहा है क्रोध रूपांतरित हो रहा है, उत्तेजना खो रही है—करुणा उदित हो रही है। और यह कोई भिन्न ऊर्जा नहीं है; यह वही ऊर्जा है—क्रोध की ही ऊर्जा अपनी गुणवत्ता बदल रही है, ऊपर उठ रही है। इसे प्रयोग करना। यह कोई दमन नहीं है, यह स्मरण रखना। लोग मुझ से पूछते हैं, 'क्या पतंजलि दमन सिखाते हैं? क्योंकि जब मैं क्रोधित हूं तब अगर मैं करुणा का विचार करूं, तो क्या यह दमन न होगा?'

नहीं। यह रूपांतरण है; यह दमन नहीं है। यदि तुम क्रोधित हो और तुम दबा लेते हो क्रोध को बिना करुणा पर ध्यान किए, तो यह दमन है। तुम क्रोध को पीछे धकेल देते हो और ऊपर तुम मुस्कुराते हो और दिखावा करते हो, जैसे कि तुम क्रोधित नहीं हो। और क्रोध कुलबुला रहा होता है और उबल रहा होता है और फूट पड़ने को तैयार होता है, तो यह दमन है। नहीं, हम दमन नहीं कर रहे हैं किसी चीज का, और न ही कोई मुस्कुराहट या कुछ और ऊपर से ओढ़ रहे हैं; हम तो बस ऊर्जा के दूसरे छोर को प्रकट कर रहे हैं।

विपरीत तत्व ही दूसरा छोर है। जब तुम घृणा से भरो तो सोचना प्रेम के विषय में। जब तुम कामना का अनुभव करो, तो ध्यान करना कामनाशून्यता पर और उस मौन पर जो उसके साथ आता है। जो भी हो अवस्था, उसके विपरीत को ले आना भीतर और ध्यान देना कि क्या घटता है तुम्हारे भीतर। एक बार तुम इसके रहस्य को जान लेते हो, तो तुम मालिक हो जाते हो। अब तुम्हारे पास चाबी है, किसी भी क्षण घृणा बदल सकती है प्रेम में, किसी भी क्षण दुख बन सकता है उल्लास, पीड़ा बन

सकती है आनंद, क्योंकि पीड़ा वही ऊर्जा है जो आनंद बनती है; ऊर्जा अलग नहीं है। तुम्हें बस इतना जानना है कि उसे कैसे रूपांतरित किया जाए।

और इसमें कोई दमन नहीं होता, क्योंकि क्रोध की सारी ऊर्जा करुणा बन जाती है, दमन करने के लिए कुछ बचता ही नहीं। असल में तुमने उसका उपयोग कर लिया होता है करुणा में।

अभिव्यक्ति के दो ढंग हैं। पश्चिम में अब रेचन पर, केथार्सिस पर बहुत जोर है। एनकाउंटर ग्रुप, प्राइमल थैरेपी—सभी में रेचन पर बहुत जोर दिया जाता है। मेरा अपना सक्रिय— ध्यान भी एक रेचन की विधि है, क्योंकि लोगों ने सब्लिमेशन की, रूपांतरण की कुंजी खो दी है। पतंजलि रेचन की तो बिलकुल बात ही नहीं करते। क्यों वे इस बारे में कोई बात नहीं करते? क्योंकि लोगों के पास कुंजी थी, एक कुशलता थी। वे जानते थे कि ऊर्जा को कैसे रूपांतरित कर लेना। तुम भूल चुके हो, इसलिए मुझे तुम्हें रेचन सिखाना पड़ता है।

क्रोध है, उसे करुणा में रूपांतरित किया जा सकता है, लेकिन तुम्हें खयाल नहीं कि कैसे करें? और यह कोई कला नहीं जो सिखाई जा सकती हो; यह एक कुशलता है। तुम्हें इसे करना पड़ता है, और करके ही सीखना होता है, और कोई उपाय नहीं है। यह तैरने जैसा है : तुम्हें हाथ—पैर मारने होते हैं और गलतियां करनी होती हैं, और कई बार खतरे में पड़ना होता है, और कई बार तुम अनुभव करोगे, कि गए, मारे गए, डूबे। तुम्हें गुजरना होता है इस सब अनुभव से, और तब एक कुशलता आती है, तब तुम जानते हो कि यह क्या है। और यह इतनी आसान बात है—तैरना।

—क्या तुमने ध्यान दिया? कुछ बातें ऐसी हैं जिन्हें तुम सीख सकते हो, लेकिन तुम भूल नहीं सकते। तैरना उन बातो में से एक है, या फिर साइकिल चलाना। तुम सीख सकते हो, लेकिन तुम भूल नहीं सकते। दूसरी बहुत सी चीजें तुम सीख सकते हो और भूल सकते हो। हजारों बातें तुमने सीखीं स्कूल में; अब तुम करीब—करीब सब भूल चुके हो। स्कूल की ढेरों पढ़ाई बेकार गई मालूम पड़ती है। लोग सीखते रहते हैं, और फिर किसी को कुछ याद नहीं रहता। बस परीक्षा देने भर के लिए..... फिर खत्म हो जाती है बात; फिर कुछ याद नहीं रहता।

लेकिन तैरना तुम नहीं भूल सकते। यदि तुम पचास साल भी नदी में न उतरो और अचानक तुम्हें पानी में उतार दिया जाए, तो तुम तैरने लगोगे हमेशा की तरह कुशलता से—एक पल को भी तुम हिचकिचाओगे नहीं कि क्या करना है। ऐसा क्यों होता है? क्योंकि यह एक कुशलता है, एक नैक है। इसे भुलाया नहीं जा सकता। यह कोई सीखी हुई बात नहीं है; यह कोई कला नहीं है। और सब सीखने को, कला को भुलाया जा सकता है, लेकिन कुशलता, नैक कुछ ऐसी बात है जो तुम्हारे अस्तित्व में इतने गहरे उतर जाती है कि वह तुम्हारा हिस्सा बन जाती है।

ऊर्जा का रूपांतरण ऐसी ही एक कुशलता है।

पतंजलि कभी रेचन की बात नहीं करते; मुझे तुम्हारे कारण रेचन की बात करनी पड़ती है। .लेकिन एक बार तुम समझ लेते हो, और यदि तुम ऊर्जा को रूपांतरित कर सकते हो, तो रेचन की कोई जरूरत ही नहीं रह जाती, क्योंकि रेचन एक तरह से ऊर्जा को फेंकना है। लेकिन, दुर्भाग्यवश, बिलकुल अभी कुछ किया नहीं जा सकता। और तुमको इतनी सदियों से दमन सिखाया गया है कि ऊर्जा का रूपांतरण दमन जैसा मालूम पड़ता है, इसलिए रेचन ही मार्ग है। पहले तुम्हें निर्मुक्त होना होता है। तुम थोड़े निर्भार होते हो, हलके होते हो—और फिर तुम्हें ऊर्जा के रूपांतरण की कला सिखाई जा सकती है।

रूपांतरण है ऊर्जा का उच्चतर तल पर उपयोग, वही ऊर्जा एक अलग गुणवत्ता के साथ अभिव्यक्त होती है। तो इसे प्रयोग करना। तुम में से बहुत से लोग लंबे समय से सक्रिय ध्यान करते रहे हैं। तुम प्रयोग कर सकते हो। अब जब क्रोध आए, उदासी पकडे, तो बैठ जाना मौन और उदासी को बढ़ने देना प्रसन्नता की ओर— थोड़ी सहायता—उसे थोड़ा सहयोग देना, मदद देना। अति मत करना और जल्दबाजी मत करना। क्यों? क्योंकि पहले तो उदासी राजी नहीं होगी प्रसन्नता में बदलने के लिए। क्योंकि 'सदियों—सदियों से, जन्मों —जन्मों से, तुमने उसे उस ओर बढने नहीं दिया है, तो वह राजी नहीं होगी। जैसे कि तुम किसी घोड़े को नए मार्ग पर चलाओ जिस पर वह कभी नहीं चला है, तो वह राजी नहीं होगा। वह पुराने ढर्रे पर, पुराने मार्ग पर, पुरानी लीक पर जाने का प्रयत्न करेगा।

तो धीरे —धीरे राजी करके दूसरे मार्ग पर ले आना। कहना उदासी से, ' भयभीत मत होओ। यह बहुत बढ़िया मार्ग है, आओ इस मार्ग पर। तुम प्रसन्नता बन सकती हो, और इसमें कुछ गलत नहीं है और न ही यह असंभव है।' थोड़ा फुसलाना; बात करना अपनी उदासी से।

और एक दिन तुम अचानक पाओगे कि उदासी बढ़ गई एक नए मार्ग की ओर : वह प्रसन्नता में रूपांतरित हो गई। उस दिन योगी का जन्म होता है, उससे पहले नहीं। उससे पहले तो तुम बस तैयारी कर रहे हो।

विपरीत विचारों पर मनन करना आवश्यक है क्योंकि हिंसा आदि विचार भाव और कर्म—अज्ञान एवं तीव्र दुख में फलित होते है— फिर वे अल्प मध्यम या तीव्र मात्राओं के लोभ क्रोध या मोह द्‌वारा स्वयं किए हुए दूसरों से करवाए हुए या अनुमोदन किए हुए क्यों न हों।

जो भी नकारात्मक है, वह खतरनाक है तुम्हारे लिए और दूसरों के लिए। जो भी नकारात्मक है, वह पहले से ही नरक बना रहा होता है तुम्हारे लिए और दूसरों के लिए; वह दुख और पीड़ा बना रहा है तुम्हारे लिए और दूसरों के लिए। तो सजग रहो। यदि तुम ने नकारात्मक विचार सोचा भी, तो वह जगत के लिए एक वास्तविकता बन चुका। ऐसा नहीं है कि जब तुम कुछ करते हो तभी वह

वास्तविक बनता है. विचार उतना ही वास्तविक है जितना कि कर्म। यदि तुम किसी की हत्या करने की बात सोचते हो, तो तुमने हत्या कर ही दी होती है। वह आदमी जिंदा रहेगा, लेकिन तुमने अपना काम कर दिया : वह आदमी उतनी संपूर्णता से न जीएगा जितना कि संभव था। तुमने थोड़ा मार दिया उसे। और शायद वह आदमी तो जीवित रहेगा, लेकिन तुम हत्यारे हो गए और तुम्हारी ऊर्जा वही हत्या का तत्व तुममें बनाए रखेगी।

विचार, भाव या कर्म—हम उनके बीच कोई भेद नहीं करते। वे एक ही हैं। वे बीज, पौधे और वृक्ष की भांति हैं। यदि बीज है, तो वृक्ष मौजूद ही है—मार्ग पर है, आ रहा है। तो जब भी कोई नकारात्मक विचार तुम्हें पकड़े, तो तुरंत शुद्ध कर लेना उसे, रूपांतरित कर लेना उसे। खतरनाक है वह। प्रत्येक विचार अंतत: कर्म बन जाता है। प्रत्येक विचार अंततः वास्तविकता बन जाता है।

तुमने कभी ध्यान दिया. तुम किसी होटल के कमरे में ठहरते हो, और अचानक तुम परिवर्तन अनुभव करते हो अपने भीतर। या तुम किसी नए घर में आते हो और एक अजीब सी अनुभूति पकड़ती है कि कुछ गड़बड़ है। ऐसा एक निश्चित नियम के अनुसार होता है। होटल के कमरे में बहुत सी बातें होती रहती हैं; बहुत तरह के लोग आते —जाते रहते हैं। वह बहुत ही भीड़ भरी जगह बन जाती है। होटल का कमरा बहुत भीड़ से भरा स्थान होता है—हजारों विचार तैरते रहते हैं उस कमरे में। वह खाली नहीं होता, जैसा कि तुम सोचते हो; वह खाली नहीं होता। वे विचार वहां गूंजते रहते हैं। जब तुम भीतर जाते हो, तो अचानक तुम बहुत से विचारों के प्रभाव में आ जाते हो।

तुम नए घर में आते हो, थोड़ा अजीब लगता है। करीब तीन हफ्ते, इक्कीस दिन लग जाते हैं तुम्हें स्थिर होने में और अनुभव करने में कि यह तुम्हारा घर है, क्योंकि इक्कीस दिन में धीरे— धीरे तुम्हारे विचार उन विचारों को हटा देते हैं जो वहा मौजूद थे और घर पर प्रभाव जमा लेते हैं। फिर चीजें ज्यादा व्यवस्थित हो जाती हैं। तुम चैन अनुभव करते हो—जैसे कि तुम लौट आए अपने तक। कई बार, यदि किसी कमरे में कोई हत्यारा रहा हो और लगातार सोचता रहा हो हत्या के बारे में और योजना बनाता रहा हो, और यदि उसके जाने के छह मिनट के भीतर तुम उस कमरे में जाओ

और वहां ठहरो, तो वह तो शायद हत्या न करे लेकिन तुम कर सकते हो हत्या—क्योंकि उसके विचार इतने शक्तिशाली होते हैं उस समय। छह मिनट तक विचार बहुत शक्तिशाली होते हैं। धीरे— धीरे वे क्षीण होते हैं। या अगर वह आदमी आत्महत्या करने की सोच रहा था, तो कोई और कर सकता है आत्महत्या। तुम्हारा विचार किसी और के लिए कर्म बन सकता है।

लेकिन जब भी तुम कुछ नकारात्मक सोचते हो, तो तुम अपने लिए और दूसरों के लिए बुरा कर्म निर्मित कर रहे होते हो; तुम वास्तविकता को बदल रहे हो। ऐसा ही होता है विधायक ऊर्जा के साथ, विधायक विचार के साथ. जब तुम संसार की ओर करुणा का विचार संप्रेषित करते हो, तो वह ग्रहण किया जाता है। तुम एक बेहतर संसार का निर्माण करते हो—उसके विषय में विचार करने से ही।

और यदि तुम अ—मन की अवस्था को उपलब्ध हो सको तो तुम अपने चारों ओर एक खुला स्थान निर्मित करते हो जो शून्य होता है। उस शून्य आकाश में किसी दिन कोई और बुद्ध हो सकता है। इसीलिए इतना ज्यादा समादर और इतना ज्यादा सम्मान दिया जाता है और इतनी ज्यादा श्रद्धा अर्पित की जाती है संसार के कुछ स्थलों को—मक्का, मदीना या जेरूसलम, या गिरनार, कैलाश। हजारों लोग बुद्ध हुए हैं उन स्थलों से। उन्होंने वहा एक शून्य निर्मित कर दिया है, एक अत्यंत जीवंत शून्य, और वह इतना शक्तिशाली है कि उस शून्य में कोई विचार प्रवेश नहीं कर सकते। यदि तुम कैलाश पर ठीक स्थान ढूंढ सको, और तुम बैठ जाओ वहां, तो तुम अचानक रूपांतरित हो जाओगे—तुम अ—मन के एक विराट ऊर्जा के बवंडर में होते हो। तुम उसमें नहा जाओगे, स्वच्छ हो जाओगे। ऐसा ही नकारात्मक भाव के साथ घटता है जैसा विधायक भाव के साथ घटता है।

तो जब भी तुम कोई नकारात्मक भाव अनुभव करो, तुरंत उसे विधायक भाव में बदल लेना, उसे रूपांतरित कर लेना। मैं नहीं कह रहा हूं कि उसे दबा देना, मैं नहीं कह रहा हूं कि उसका दमन करना—मैं कह रहा हूं कि उसे विपरीत में बदल लेना; उसको मदद देना विपरीत की ओर बढ़ने में। और कुछ कठिन नहीं है यह। व्यक्ति को केवल इस कुशलता को, इस नैक को, जान लेना होता है।

आज इतना ही।

प्रवचन 50 - ध्यान का स्वाद: योग की उड़ान

प्रश्नसार:

1—क्या यह बहुत शुभ संकेत है कि पूछने के लिए कोई प्रश्न न रहे?

2—ऐसा कहा जाता है कि मनुष्यता पर महासंकट की घड़ी आती है, तब महाशुभ भी संभव होती। क्या आपके निकट आज हमें वही आज हमें वही अवसर मिल रहा है?

3—गंदी के बुद्धत्व के लिए किया गया प्रयास कैसे झु० हो सकेगा?

4—विकास का वह कौन सा बिंदु है जहां रेचन छोड़ा जा सकता है?

5—पतंजलि के युग के बाद, आज के आदमी ने ऊर्ध्वगमन की, सब्लिमेशनकी क्षमता क्यों खो दी है?

6—पतंजलि के अनुसार ध्यान योग का सातवां चरण है। फिर आप हमें ध्यान में उतरने के लिए क्यों जोर देते है?

7—मैं पिछले जन्मों में अनेक बुद्ध पुरूषों से बचता रहा। अब भय लगता है। कि इस देह के छूटने के कारण कहीं आपका साथ न चूक जाये।

पहला प्रश्न :

क्या यह बहुत शुभ संकेत है कि पूछने के लिए कोई प्रश्न न रहे?

यदि सच में ही ऐसा हो कि तुम्हारे पास पूछने के लिए कोई प्रश्न न रहे, तो यह एक अदभुत घटना है। यह मन की सुंदरतम अवस्थाओं में से एक अवस्था है। क्योंकि जब प्रश्न नहीं होते, तो वह प्रश्न—शून्य चेतना ही सारे प्रश्नों का उत्तर होती है। ऐसा नहीं कि तुम को उत्तर मिल जाते हैं, बल्कि सारे प्रश्न गिर जाते हैं। मन तनावहीन हो जाता है; क्योंकि प्रत्येक प्रश्न एक तनाव है, एक चिंता है, एक बेचैनी है।

और कोई भी उत्तर प्रश्न को हल नहीं करेगा। प्रश्न पैदा करने वाला मन समस्या है, प्रश्न नहीं। तुम्हारे प्रश्न का उत्तर मिल सकता है, लेकिन उस उत्तर द्वारा तुम्हारा प्रश्न पैदा करने वाला मन और हजारों प्रश्न बना लेगा; तुम हर उत्तर को और— और प्रश्नों में बदल लोगे। इससे कुछ हल नहीं होता। हल तभी होता है, जब सारे प्रश्न गिर जाते हैं, जब चेतना प्रश्नों के पार चली जाती है, तुम समझ लेते हो कि पूछने को कुछ नहीं है, उत्तर पाने को कुछ नहीं है। जीवन एक रहस्य है, समस्या नहीं। तुम उसके बाबत कोई प्रश्न नहीं उठा सकते।

तो यदि ऐसा सच में ही हो, तो यह समाधि है। इसी के लिए तो मेरा सारा प्रयास है! तुम्हें उस जगह पहुंच जाना है जहां कोई प्रश्न नहीं उठता। उस मौन में, उस समग्र सुंदरता में, उस शांति में तुम रूपांतरित हो जाते हो : सारी चिंता, सारी पीड़ा मिट जाती है।

लेकिन प्रश्न यह है कि क्या यह स्थिति वास्तविक है? क्योंकि हो सकता है कि तुम प्रश्न पूछ न रहे होओ और प्रश्न भीतर बने रहते हों; तो फिर बेकार है। तब फिर पूछ लेना बेहतर है। यदि मन में

प्रश्न हैं और तुम पूछते नहीं, तुम झिझक अनुभव करते हो, तो उससे कुछ फायदा नहीं। तब फिर बेहतर है पूछ लेना और बात खतम कर देना।

ऐसा नहीं है कि पूछने से तुम्हें उत्तर मिल जाएंगे—किसी के पास उत्तर नहीं है, किसी के पास कभी था भी नहीं, किसी के पास कभी होगा भी नहीं। उत्तर असंभव है, क्योंकि जीवन एक रहस्य है। उसे सुलझाया नहीं जा सकता। जितना ज्यादा तुम उसे सुलझाते हो, उतना ही तुम पाते हो कि असंभव है उसे सुलझाना। लेकिन प्रश्न पूछने से, धीरे— धीरे, तुम प्रश्नों की व्यर्थता के प्रति सजग हो जाते हो। फिर एक दिन सजगता के किसी क्षण में, चेतना के किसी बोधपूर्ण पल में, तुम प्रश्नों के पार चले जाते हो। जैसे कि सांप बाहर आ जाता है पुरानी केंचुली से—पुरानी केंचुली पीछे छूट जाती है; सांप सरक जाता है। एक दिन तुम्हारा चैतन्य आगे सरक जाता है और प्रश्नों की वह पुरानी केंचुली पीछे छूट जाती है। अचानक तुम नए होते हो और कुंआरे होते हो—तुम उपलब्ध हो जाते हो। तुम बुद्ध हो जाते हो। बुद्ध—चेतना वह चेतना नहीं होती जिसके पास सारे उत्तर होते हैं, बुद्ध—चेतना वह चेतना है जिसके पास कोई प्रश्न नहीं होते।

दूसरा प्रश्न :

ऐसा कहा गया है कि बड़े तनावपूर्ण समय में— सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक उथल— पुथल के समय में— विराट शुभ संभव होता है। क्या यह सूत्र इसी घटना की तरफ इंगित करता है जिसका कि हमें यहां पूना में आपके सान्निध्य में अनुभव मिल रहा है?

हां; संकट की घड़ी बहुत कीमती घड़ी है। जब सब चीजें व्यवस्थित होती हैं और कहीं कोई संकट नहीं होता, तो चीजें मर जाती हैं। जब कुछ बदल नहीं रहा होता और पुराने की पकड़ मजबूत होती है, तो करीब—करीब असंभव ही होता है स्वयं को बदलना। जब हर चीज अस्तव्यस्त होती है, कोई चीज स्थायी नहीं होती, कोई चीज सुरक्षित नहीं होती, कोई नहीं जानता कि अगले पल क्या होगा—ऐसे अराजक समय में तुम स्वतंत्र होते हो, तुम रूपांतरित हो सकते हो, तुम उपलब्ध हो सकते हो अपनी अंतस सत्ता के आत्यंतिक केंद्र को।

यह जेल जैसा ही है : जब हर चीज सुव्यवस्थित होती है तो किसी कैदी के लिए उससे बाहर आना, जेल से भाग निकलना करीब—करीब असंभव ही होता है। लेकिन जरा सोचो भूचाल आया हो और हर चीज अव्यवस्थित हो गई हो और किसी को पता न हो कि पहरेदार कहां हैं और किसी को पता न हो

कि जेलर कहां है और सारे नियम टूट गए हों और हर कोई अपनी जान बचा कर भाग रहा हो—तो उस क्षण में अगर कैदी जरा भी सजग हो तो वह बड़ी आसानी से भाग सकता है; यदि वह बिलकुल मूर्ख है, केवल तभी वह इस अवसर को चूकेगा।

जब समाज उथल—पुथल में होता है और हर चीज संकट में होती है, तो एक अराजकता फैल जाती है। इस समय यदि तुम चाहो, तो निकल सकते हो कैद से। यह बहुत आसान है, क्योंकि कोई तुम्हारे पीछे नहीं है। तुम अकेले हो। परिस्थिति ऐसी है कि हर कोई अपनी फिक्र कर रहा होता है—तुम्हारी तरफ कोई नहीं देख रहा होता। यही है घड़ी। चूकना मत इस घड़ी को। बहुत संकट की घड़ियों में लगभग सदा ही बहुत लोगों को बुद्धत्व घटा है। जब समाज बहुत व्यवस्थित होता है और करीब—करीब असंभव ही होता है विद्रोह करना, अतिक्रमण करना, नियमों का अनुसरण न करना, तो बुद्धत्व ज्यादा कठिन हो जाता है—क्योंकि बुद्धत्व है स्वतंत्रता, बुद्धत्व है परम स्वच्छंदता। वस्तुत: वह है समाज से हटना और एक व्यक्ति बनना।

समाज पसंद नहीं करता व्यक्तियों को वह पसंद करता है यंत्र—मानवों को जो लगते तो हैं बिलकुल व्यक्तियों की भांति, लेकिन व्यक्ति होते नहीं। समाज प्रामाणिक व्यक्ति को पसंद नहीं करता है। उसको पसंद आते हैं मुखौटे, चालबाज, पाखंडी, लेकिन प्रामाणिक व्यक्ति पसंद नहीं आते हैं क्योंकि प्रामाणिक व्यक्ति तो सदा एक झंझट होता है। एक प्रामाणिक व्यक्ति सदा मुक्त होता है।

तुम जबरदस्ती उस पर चीजें आरोपित नहीं कर सकते, तुम उसे कैदी नहीं बना सकते, तुम उसे गुलाम नहीं बना सकते। वह अपना जीवन गंवाना पसंद करेगा, लेकिन वह अपनी स्वतंत्रता खोना पसंद नहीं करेगा। स्वतंत्रता उसके लिए जीवन से भी ज्यादा कीमती है। स्वतंत्रता का मूल्य उसके लिए परम है। इसीलिए भारत में हमने परम अवस्था को कहा है—मोक्ष, निर्वाण। उसका अर्थ है : मुक्ति, आत्यंतिक मुक्ति, परम मुक्ति।

तो जब भी समाज में उथल—पुथल होती है और हर कोई अपनी फिक्र में होता है—स्थिति ही ऐसी होती है—तो बच निकलना। उस घड़ी कारागृह के द्वार खुल जाते हैं, दीवारों में सधे हो जाती हैं, पहरेदारों का कहीं पता नहीं होता—तुम आसानी से भाग सकते हो।

पच्चीस सौ साल पहले यही स्थिति थी बुद्ध के समय। ऐसा सदा वर्तुल में चलता है। पच्चीस सौ साल में एक वर्तुल पूरा होता है। जैसे एक वर्तुल पूरा होता है एक वर्ष में—फिर गर्मियां आ जाती हैं, एक वर्ष का वर्तुल और गर्मियां लौट आती हैं—वैसे ही पच्चीस सौ साल का एक बड़ा वर्तुल होता है। हर बार पच्चीस सौ साल बाद पुराने आधार गिरते हैं; समाज को नए आधार बनाने होते हैं। सारा भवन व्यर्थ हो जाता है, उसे गिरा देना होता है। फिर आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, सारे व्यवस्था—तंत्र अस्तव्यस्त हो जाते हैं। नए का जन्म निकट होता है; एक प्रसव—पीड़ा होती है।

दो संभावनाएं हैं। एक तो संभावना है कि तुम शायद गिरते हुए पुराने ढांचे को ठीक—ठाक करने लगो. तुम समाज सुधारक बन सकते हो और तुम चीजों को ज्यादा मजबूत बनाने में जुट सकते हो। तब तुम चूक जाते हो, क्योंकि कुछ किया नहीं जा सकता. समाज तो मर ही रहा है।

प्रत्येक समाज की एक जीवन—अवधि होती है और प्रत्येक संस्कृति की एक जीवन— अवधि होती है। जैसे एक बच्चा पैदा होता है और हम जानते हैं कि वह जवान होगा, का होगा और मरेगा—सत्तर वर्ष, अस्सी वर्ष, ज्यादा से ज्यादा सौ वर्ष। उसी तरह प्रत्येक समाज का जन्म होता है, वह जवान होता है, का होता है और फिर मर जाता है। प्रत्येक सभ्यता जो पैदा होती है, मरती है। ये संक्रांति घड़ियां पुराने की, अतीत की मृत्यु और नए के जन्म की घड़ियां होती हैं। तुम्हें पुराने की फिक्र नहीं करनी है; तुम्हें पुराने ढांचे को सहारा नहीं देने लगना है—वह तो जाने वाला ही है। यदि तुम उसे सहारा दे रहे होते हो, तो तुम उसके नीचे कुचल जाओगे। तो यह एक संभावना है कि तुम पुराने ढांचे को सहारा देने लगो। उससे काम न बनेगा। तुम अवसर चूक जाओगे।

फिर एक दूसरी संभावना है कि तुम नए को लाने के लिए शायद कोई सामाजिक क्रांति शुरू कर दो। तो भी, तुम फिर चूक जाओगे अवसर, क्योंकि नए को तो आना ही है। तुम्हें उसको लाने की जरूरत नहीं है। नया तो आ ही रहा है—उसकी चिंता मत लेना, क्रांतिकारी मत बन जाना। नया आएगा ही। यदि पुराना जा चुका है तो कोई उसे जबरदस्ती बनाए नहीं रख सकता है। और यदि नया मौजूद है और समय आ गया है और बच्चा गर्भ में तैयार है, तो बच्चा पैदा होगा ही। तुम्हें बच्चे को गर्भ के बाहर खींचने की जरा भी जरूरत नहीं है। बच्चा तो पैदा होगा ही, उसकी कोई फिक्र मत करना।

क्रांति अपने से ही होती है; वह एक स्वाभाविक घटना है। किसी क्रांतिकारी की जरूरत नहीं है। तुम्हें किसी को मारने की जरूरत नहीं है, वह स्वयं ही मरने वाला है। यदि तुम सामाजिक क्रांति में लग जाते हो—तुम कम्युनिस्ट हो जाते हो, समाजवादी हो जाते हो—तो तुम चूक जाओगे।

ये दो संभावनाएं हैं जहां तुम चूक सकते हो। या फिर तुम संकट की इस घड़ी का उपयोग कर सकते हो और रूपांतरित हो सकते हो। उपयोग कर लो इसका अपने व्यक्तिगत विकास के लिए। इतिहास की संकटकालीन घड़ी जैसा अवसर दूसरा नहीं होता; हर बात तनावपूर्ण होती है और बदल रही होती है, और हर बात एक निश्चित घड़ी तक, एक शिखर तक आ चुकी होती है, जहां से घूमेगा चक्र। उपयोग कर लेना इस द्वार का, इस अवसर का, और रूपांतरित हो जाना। इसीलिए मेरा जोर व्यक्तिगत क्रांति के लिए है।

तीसरा प्रश्न :

इन दिनों जन्म से लेकर मृत्यु तक हर बात राजनीति द्वारा नियंत्रित निर्देशित आदेशित प्रभावित प्रशासित और परिचालित की जा रही है। तो जब तक राजनीति ठीक नहीं हो जाती सारे धार्मिक और वैज्ञानिक प्रयास व्यर्थ हो सकते हैं क्योंकि यदि आज संसार में अराजकता और अव्यवस्था है पीड़ा और दुख है तो केवल गंदी राजनीति के कारण ही; क्या ऐसा नहीं है?

प्रश्न दो भागों में है। मनुष्यता गंदे राजनीतिज्ञों के कारण गंदी नहीं है, गंदे राजनीतिज्ञ हैं गंदी मनुष्यता के कारण। तुम्हें इसे ठीक से समझ लेना है। जिम्मेवारी राजनीतिज्ञों पर मत डालना, वे तुम्हारा ही प्रतिनिधित्व करते हैं—और कुछ नहीं। यह बड़ी नासमझी की बात है कि पहले तो तुम उन्हें चुनते हो, फिर तुम उन्हें गंदा कहते हो; और जब तुम उन्हें चुनते हो, तो तुम गंदे से गंदे को चुनते हो। तुम वोट देते हो उनको, और फिर तुम उनको गंदा कहते हो। कैसे टपक पड़ते हैं वे? कहा से आते हैं वे? वे आते हैं तुम्हारे द्वारा। वे तुम्हारे समर्थन, तुम्हारे सहयोग से आते हैं, अगर तुम्हारा उनको समर्थन न मिले, तो वे खो जाएंगे।

तो उनको गंदा मत कहना। यह एक पुरानी तरकीब है मन की : हमेशा दूसरे पर जिम्मेवारी डाल दो और खुद अपराध— भाव से मुक्त हो जाओ। तुम्हीं हो वास्तविक अपराधी। यदि गंदे राजनीतिज्ञ हैं, तो वे तुम्हारे गंदे मन के कारण हैं; कहीं तुम्हारे मन में हैं उनकी जड़ें; वहीं से उन्हें पोषण मिलता है। तो राजनीतिज्ञों को बदलने मात्र से कुछ नहीं बदलेगा। हजारों—हजारों वर्षों से आदमी और कुछ नहीं कर रहा है, केवल राजनीतिज्ञों को बदल रहा है; तो भी कुछ हल होता नहीं—क्योंकि व्यक्ति स्वयं को नहीं बदलता है। तुम बदल सकते हो इन राजनीतिज्ञों को, लेकिन फिर आने वालों को कौन चुनेगा? फिर तुम्हीं तो चुनोगे न!

और जब भी कोई राजनीतिज्ञ सत्ता के बाहर हो जाता है, तो वह बड़ा सुंदर, भला, निर्दोष लगता है, क्योंकि बिना सत्ता के तुम गंदे नहीं हो सकते। गंदे होने के लिए तुम्हें सत्ता चाहिए। इसलिए जब भी कोई राजनीतिज्ञ सत्ता में नहीं रहता तो वह बड़ा विनीत, बड़ा पुनीत जान पड़ता है। जरा उसे सत्ता में पहुंचा दो और तुरंत वह रूपांतरित हो जाता है, वह वही व्यक्ति नहीं रह जाता है। क्योंकि राजनीति है सत्ता की दौड़। वह व्यक्ति सत्ता के पीछे भाग रहा है, तो उसे विनीत होना पड़ता है तुम्हें विश्वास दिलाने के लिए, तुम्हें फुसलाने के लिए, कि वह विनम्र आदमी है, साधु आदमी है। एक बार वह सत्ता में आ जाता है, तो फिर वह तुम्हारी फिक्र नहीं करता।

असल में, उसने कभी की ही न थी फिक्र, वह तो मात्र एक खेल खेल रहा था तुम्हारे साथ।

वह फुसला रहा था तुमको, शोषित कर रहा था तुमको। अब उसने पा लिया अपना लक्ष्य तो क्यों करेगा वह तुम्हारी चिंता? कौन हो तुम? वह तुमको पहचानता भी नहीं! अब इतने दिनों से संजोया

स्वप्न, यह सत्ता उसके हाथ आई है, वह उपभोग करता है उसका। तब तुम उसे गंदा कहने लगते हो। और तुम सदियों से बदलते आ रहे हो राजनीतिज्ञों को—और कुछ भी बदला नहीं। अब स्वयं को बदलो। बहुत हुआ—ऐसे ही बहुत समय हुआ—अब तुम्हें समझ लेना है कि कोई सामाजिक क्रांति क्रांति नहीं हो सकती। ज्यादा से ज्यादा वह तुम्हें एक कामचलाऊ मुक्ति दे सकती है, लेकिन वह कुछ भी नहीं है, किसी मूल्य की नहीं है। जब तक तुम न बदलो, कुछ नहीं बदल सकता। मनुष्य को, व्यक्ति को ही बदलना है।

और प्रश्न का दूसरा भाग। तुम सोचते हो कि आजकल, इन दिनों जन्म से लेकर मृत्यु तक हर बात राजनीतिज्ञों द्वारा नियंत्रित, निर्देशित, आदेशित, प्रभावित, प्रशासित और परिचालित की जा रही है।

क्या तुम कोई ऐसा समय जानते हो, जब कि ऐसा नहीं था? तुम इसे क्यों कहते हो, 'इन दिनों?' ऐसा सदा ही था; सदा ही मनुष्य को निर्देशित किया गया है, नियंत्रित किया गया है। असल में आजकल तो नियंत्रण इतना मजबूत नहीं है, इसीलिए प्रश्न उठा है। राम के समय में प्रश्न भी नहीं उठ सकता था—नियंत्रण पूरा था। और पीछे जाओ, और इतना नियंत्रण था कि तुम प्रश्न भी नहीं पूछ सकते थे। अब तुम प्रश्न पूछ सकते हो, क्योंकि नियंत्रण थोड़ा शिथिल हुआ है। तुम प्रश्न उठा सकते हो; कम से कम इतनी स्वतंत्रता तो संसार में आई है। और पीछे जाओ तुम, लोगों को और ज्यादा बंधा हुआ पाओगे।

अतीत में कभी कोई स्थिति ऐसी नहीं रही है, जैसी कि आज है। अभी तक तो यही सर्वश्रेष्ठ है। अब तक की घड़ियों में यह घड़ी सर्वश्रेष्ठ है जिसे तुम जी रहे हो। और ऐसा ही होना भी चाहिए। अतीत कुछ बेहतर न था वर्तमान से—हो नहीं सकता। अब कम से कम स्वतंत्रता का एक दिखावा तो है संसार में. कम से कम तुम्हें बोलने तो दिया जाता है; कम से कम तुम्हें इजाजत तो है प्रश्न उठाने की। यह बड़ी से बड़ी मनोवैज्ञानिक अंतर्दृष्टि समझ लेने जैसी है।

उदाहरण के लिए, भारत में शूद्रों का, अछूतो का हजारों वर्षों से अस्तित्व है, लेकिन पिछला इतिहास बताता है कि कभी कोई प्रश्न नहीं उठाया गया उनकी गुलामी के विरुद्ध। क्यों? क्योंकि नियंत्रण पूरा था। नियंत्रण इतना पक्का था, संस्कार इतने गहरे थे, कि वे अनुभव भी न कर सकते थे कि वे बंधन में हैं। कौन करेगा अनुभव? कैसे करोगे तुम अनुभव यदि गुलामी परिपूर्ण हो? तुम सोचोगे. यही जीवन है, तुलना करने के लिए किसी और जीवन की कोई संभावना नहीं है। शूद्रों ने स्वीकार कर लिया कि यही एकमात्र संभावना है। वे इस पृथ्वी पर सर्वाधिक भद्दा जीवन जीए, लेकिन कभी इसके प्रति सजग न हुए। संस्कार बहुत गहरे थे।

संस्कारित करने में ब्राह्मण अति कुशल हैं; और वे अति कुशल होंगे ही, क्योंकि वे इस धंधे के सब से पुराने खिलाड़ी हैं। वे इस व्यवसाय को बहुत पहले से जी रहे हैं। कोई और नहीं जानता उतनी तरकीबें जितनी वे जानते हैं। सारे संसार को ब्राह्मणों से सीखना चाहिए कि मन को कैसे संस्कारित किया

जाता है। वे सबसे पुराने ब्रेन—वाश करने वाले लोग हैं। उन्होंने इतने परिपूर्ण रूप से संस्कारित किया कि शूद्रों ने, लोगों के एक बडे समूह ने बिलकुल मान ही लिया कि उनके पिछले जन्मों के बुरे कर्मो के कारण वे दुख भोग रहे हैं; तो कहीं कोई प्रश्न ही नहीं उठता किसी विद्रोह का—तुम्हें दुख भोगना ही है। यदि तुम दुख भोग लेते हो चुपचाप, तो संभावना है कि अगले जन्म में तुम शायद शूद्र न बनो; यदि तुम झंझट खड़ी करते हो, तो अगले जन्म में भी तुम शूद्र बनोगे, इससे भी बदतर। वे केवल एक ही जन्म को संस्कारित नहीं करते थे, जन्मों की पूरी श्रृंखला को संस्कारों में जकड़ देते थे। और शूद्रों को पढ़ने की इजाजत न थी, क्योंकि जब तुम पढ़ने—लिखने लगते हो, तो तुम प्रश्न उठाने लगते हो। उन्हें वेदों के विषय में, शास्त्रों के विषय में कुछ जानने नहीं दिया जाता था, क्योंकि यदि तुम्हें भी वे रहस्य पता चल जाएं जो कि शोषण करने वाले जानते हैं, तो कठिन होगी बात। उन्हें किसी तरह की कोई बुद्धि विकसित करने की इजाजत न थी। वे जीते थे पशुओं की भांति।

वह गुलामी परिपूर्ण थी; और ऐसा ही होता रहा है संसार भर में। पहली बार ऐसा हुआ है कि मनुष्य को थोड़ी स्वतंत्रता मिली है, थोड़ा आकाश मिला है। इसलिए मत कहना 'इन दिनों', क्योंकि उसी 'इन दिनों' में वर्तमान की निंदा होती है और अतीत की प्रशंसा होती है; वह बात ठीक नहीं। वर्तमान सदा बेहतर है। ऐसा होना ही चाहिए, क्योंकि वर्तमान आता है अतीत से. ज्यादा अनुभवी, ज्यादा समृद्ध। भविष्य और अच्छा होगा। लेकिन गुलामी पहले भी रही है और वह सदा से रही है। समाज जीता है संस्कारों द्वारा, वह प्रत्येक व्यक्ति को संस्कारित करता है! विधियां अलग हो सकती हैं—चीन में वे अलग ढंग से संस्कारित करते हैं; रूस में अलग ढंग से, भारत में और अलग ढंग से—लेकिन संस्कारित सभी करते हैं।

तुम क्या सोचते हो, धार्मिक व्यक्ति क्या कर रहे हैं? क्या तुम सोचते हो केवल राजनेता संस्कारित कर रहे हैं लोगों को? धर्म बड़ी से बड़ी राजनीति रहा है संसार में; उसने भी लोगों को संस्कारित किया है। तुम हिंदू कैसे हुए? हिंदू होना या ईसाई होना या मुसलमान होना क्या है? एक संस्कार है। एक बच्चा पैदा होता है : राजनीति तो बहुत देर से पकड़ पाएगी उस बच्चे की गर्दन, जब बच्चा स्कूल जाएगा तब। तब तक वह सात वर्ष का हो जाएगा। अब तो वैज्ञानिक कहते हैं कि सात वर्ष की उम्र तक बच्चे के अस्सी प्रतिशत संस्कार पड़ चुके होते हैं। तो कौन डाल रहा है ये संस्कार? मां—बाप, पंडित—पुरोहित, मंदिर, चर्च। एकदम शुरू से ही वे तुम्हारे मन को संस्कारित कर रहे हैं कि तुम हिंदू हो, कि तुम मुसलमान हो, कि तुम ईसाई हो—या कि तुम कम्युनिस्ट हो।

प्रत्येक धर्म की रुचि है बच्चों में, उनको सिखाने में। जैसे ही वे शब्द समझना शुरू करते हैं, उन्हें सिखाना शुरू हो जाता है। तुरंत—क्योंकि एक बार जल्दी सिखाने का अवसर चूक जाए तो खतरा हो जाता है; तुम्हारे अचेतन को पूरी तरह संस्कारित करना होता है। और वे संस्कार तुम्हारे पूरे जीवन को प्रभावित करते हैं। चाहे तुम कुछ भी बन जाओ, वे संस्कार रहेंगे। तुम्हारे व्यवहार को, तुम्हारे मन को प्रभावित करते रहेंगे। यदि तुम हिंदू हो, जन्म से हिंदू हो, तो अध्ययन द्वारा, बौद्धिक समझ द्वारा,

दूसरे लोगों से मिलने से, दूसरे धर्मों को, शास्त्रों को जानने से शायद तुम थोडे सजग हो जाओ कि केवल हिंदू ही ठीक नहीं हैं, दूसरे लोग भी सही हैं—कुरान भी ठीक है, केवल वेद ही ठीक नहीं हैं—लेकिन यदि तुम अचेतन में गहरे देखो, तो तुम सदा पाओगे एक सूक्ष्म पक्षपात वेद हमेशा सब से ऊपर होंगे। तुम प्रशंसा करते हो क्राइस्ट की, लेकिन कृष्ण ही सब से ऊपर होंगे!

बर्ट्रेंड रसेल जैसा आदमी भी, जो कि बिलकुल अज्ञेयवादी हो गया था अपने अंतिम दिनों में, धर्म से हट गया था, ईश्वर में या पुनर्जन्म में विश्वास करना छोड़ दिया था—वह स्वयं कहता है कि उसको भलीभांति मालूम है कि इस संसार में बुद्ध सर्वाधिक महान व्यक्ति जान पड़ते हैं; लेकिन केवल बौद्धिक रूप से ही वह कह सका ऐसा, उसका हृदय तो कहता ही रहा—'नहीं, बुद्ध कैसे इतने महान हो सकते हैं—जीसस से ज्यादा महान? यह संभव नहीं।' तो वह कहता है, 'ज्यादा से ज्यादा मैं उन्हें बराबर रख सकता हूं। लेकिन मैं ऊंचे नहीं रख सकता बुद्ध को। और मैं बौद्धिक रूप से जानता हूं कि बुद्ध जीसस के मुकाबले बहुत महान मालूम होते हैं।' लेकिन वह बचपन की शिक्षा तुम्हारे हृदय को जकड़े रहती है।

तो धर्म तुम्हें संस्कारित करते रहे, राजनेता तुम्हें संस्कारित करते रहे : तुम एक संस्कारित चित्त हो। केवल ध्यान द्वारा संभावना है तुम्हारे मन को अ—संस्कारित करने की। केवल ध्यान ही संस्कारों के पार जाता है। क्यों? क्योंकि प्रत्येक संस्कार विचारों के द्वारा काम करता है। यदि तुम अनुभव करते हो कि तुम हिंदू हो, तो क्या है यह? विचारों का एक बंडल तुम्हें दे दिया गया, जब तुम जानते भी न थे कि तुम्हें क्या दिया जा रहा है। विचारों की एक भीड़—और तुम ईसाई हो जाते हो, कैथोलिक हो जाते हो, प्रोटेस्टेंट हो जाते हो।

ध्यान में विचार तिरोहित हो जाते हैं—सभी विचार। तुम निर्विचार हो जाते हो। मन की निर्विचार अवस्था में कोई संस्कार नहीं रहते. फिर तुम हिंदू नहीं रहते, ईसाई नहीं रहते; कम्युनिस्ट नहीं रहते, फासिस्ट नहीं रहते। तुम कुछ भी नहीं रहते—तुम केवल तुम होते हो। पहली बार सारी संस्कारों की जंजीरें गिर चुकी होती हैं। तुम कैद के बाहर होते हो।

केवल ध्यान ही तुम्हें संस्कार—मुक्त कर सकता है। कोई सामाजिक क्रांति मदद न देगी, क्योंकि क्रांतिकारी फिर तुम्हें संस्कारित कर देंगे—अपने ढंग से। उन्नीस सौ सत्रह में रूस में क्रांति हुई। इससे पहले वह सर्वाधिक रूढ़िवादी ईसाई देशों में एक था। रूसी चर्च सर्वाधिक पुराना चर्च था—वेटिकन से ज्यादा रूढ़िवादी—लेकिन फिर, अचानक, रूसियों ने हर चीज बदल दी। चर्च बंद हो गए—वे स्कूलों में, कम्युनिस्ट पार्टी के दफ्तरों में, अस्पतालों में बदल दिए गए—धार्मिक शिक्षा पर रोक लगा दी गई, और उन्होंने लोगों को कम्युनिज्म के लिए संस्कारित करना शुरू कर दिया। दस वर्षों के भीतर सब नास्तिक हो गए। केवल दस वर्षों में ही! उन्नीस सौ सत्ताईस तक सारा धर्म गायब हो चुका था रूस से; उन्होंने लोगों को एक दूसरे ही ढंग में संस्कारित कर दिया।

लेकिन मेरे देखे बात एक ही है : चाहे तुम किसी व्यक्ति को कैथोलिक के रूप में, ईसाई के रूप में संस्कारित करो या तुम उसे कम्युनिस्ट की भांति संस्कारित करो, मेरे देखे इससे कुछ अंतर नहीं पड़ता, क्योंकि सारी समस्या संस्कारों की है। तुम संस्कारों में बांधते हो, तुम स्वतंत्रता नहीं देते

उसका। इससे क्या फर्क पड़ता है कि तुम ईसाई नरक में रहते हो या हिंदू नरक में रहते हो? तुम ईसाई गुलामी में जीते हो या हिंदू गुलामी में जीते हो, इससे क्या फर्क पड़ता है? कोई फर्क नहीं पड़ता है।

अगर तुम हिंदू जेल में रहते हो तो किसी दिन क्रांति हो जाती है. वे फाड़ देते हैं लेबल, वे नया लेबल लगा देते हैं : 'कम्मुनिस्ट जेल!' और तुम प्रसन्न होते हो और आनंद मनाते हो कि तुम मुक्त हो—उसी जेल में।

केवल शब्द बदल जाते हैं। पहले तुम्हें सिखाया गया : 'ईश्वर है, उसने संसार बनाया'; अब तुम्हें सिखाया जाता है: 'ईश्वर नहीं है, और किसी ने नहीं बनाया संसार को'; लेकिन दोनों ही बातें तुम्हें सिखाई गई हैं। और धर्म सिखाया नहीं जा सकता। वह सब जो सिखाया जा सकता है, राजनीति होगी। इसीलिए मैं कहता हूं : धर्म स्वयं एक बहुत बड़ी राजनीति रहा है अतीत में। और किसी सामाजिक क्रांति की कोई संभावना नहीं है, क्योंकि सारी क्रांतिया तुम्हें फिर संस्कार देगी।

केवल एक संभावना है : अ—मन को उपलब्ध होने की व्यक्तिगत क्रांति। तुम निर्विचार को उपलब्ध हो जाते हो; तब कोई तुमको संस्कारित नहीं कर सकता, तब सारे संस्कार—बंधन गिर जाते हैं। तब, पहली बार, तुम मुक्त होते हो। तब सारा आकाश तुम्हारा होता है; बिना किन्हीं सीमाओं के, बिना किन्हीं दीवारों के तुम जीवन में गति करते हो। तुम जीते हो, तुम प्रेम करते हो, तुम आनंद मनाते हो, तुम आह्लादित होते हो।

चौथा प्रश्न :

विकास का वह कौन सा बिंदु है जहां रेचन छोड़ा जा सकता है?

वह स्वयं ही छूट जाता है जब वह समाप्त हो जाता है। तुम्हें उसको छोड़ने की जरूरत नहीं होती।

धीरे—धीरे तुम अनुभव करोगे कि उसमें कोई ऊर्जा नहीं रही। धीरे— धीरे तुम अनुभव करोगे कि तुम रेचन कर रहे हो, लेकिन वे रिक्त चेष्टाएं हैं, ऊर्जा मौजूद नहीं है—असल में तुम दिखावा कर रहे हो

रेचन का, अभिनय कर रहे हो; रेचन हो नहीं रहा है। जब भी तुम अनुभव करते हो कि रेचन हो नहीं रहा है और तुम्हें उसे जबरदस्ती करना पड़ रहा है, तो वह गिर ही चुका होता है।

तो तुम्हें अपने हृदय की आवाज को सुनना है। जब तुम क्रोधित होते हो, तो तुम कैसे जानते हो कि कब क्रोध चला गया? जब तुम कामवासना से भरे होते हो, तो कैसे पता चलता है कि अब कामवासना खो गई? क्योंकि उस विचार में अब शक्ति नहीं रहती। विचार हो सकता है मौजूद, लेकिन शक्ति नहीं होती; वह एक रिक्त विचार है। कुछ मिनट पहले तुम क्रोधित थे : अब, तुम्हारा चेहरा शायद अभी भी थोड़ा लाल हो, लेकिन गहरे में तुम जानते हो कि अब क्रोध नहीं है, ऊर्जा जा चुकी है। यदि तुम अपने बच्चे पर क्रोधित हुए हो, तो तुम मुस्कुरा नहीं सकते, अन्यथा बच्चा तुमको गलत समझ लेगा। तो तुम दिखावा करते हो कि तुम अभी भी क्रोधित हो; हालांकि अब तो तुम हंसना चाहते हो और तुम बच्चे को गोद में उठा लेना चाहते हो; चूम लेना चाहते हो बच्चे को, प्यार करना चाहते हो बच्चे को। लेकिन तुम अभी भी दिखावा कर रहे होते हो। वरना सारा प्रभाव खो जाएगा—वह तुम्हारा क्रोध—और बच्चा हंसने लगेगा और सोचेगा. यह कुछ था ही नहीं। तो तुम दिखावा जारी रखते हो; मात्र एक मुखौटा, लेकिन गहरे भीतर तो ऊर्जा खो चुकी होती है।

ऐसा ही कुछ होगा रेचन के साथ। तुम रेचन कर रहे हो; वह अभी बहुत शक्तिशाली है। बहुत सी दमित भावनाएं होती हैं—उनकी गांठें खुलने लगती हैं, वे ऊपर आने लगती हैं, फूटने लगती हैं। तब बहुत ज्यादा ऊर्जा होती है। तुम चीखते हो—ऊर्जा मौजूद होती है। और चीखने के बाद तुम एक मुक्ति अनुभव करते हो, जैसे कोई बोझ उतर गया। तुम निर्भार अनुभव करते हो। तुम चैन अनुभव करते हो; शांत अनुभव करते हो; विश्राम अनुभव करते हो। लेकिन अगर कोई दमित भाव न हो, तो

तुम कर सकते हो ऊपरी चेष्टाएं—उन चेष्टाओं के बाद तुम थकान अनुभव करोगे, क्योंकि तुम व्यर्थ गंवा रहे थे ऊर्जा। कोई दमित भावना थी नहीं, कुछ भी बाहर नहीं आ रहा था और तुम व्यर्थ ही कूद रहे थे और चीख रहे थे; तुम थकान अनुभव करोगे।

यदि रेचन प्रामाणिक है, तो तुम उसके बाद एकदम ताजा अनुभव करोगे, यदि रेचन झूठा है, तो तुम थकान अनुभव करोगे। यदि रेचन प्रामाणिक है, तो तुम उसके बाद बहुत जीवंत अनुभव करोगे—पहले से ज्यादा युवा, जैसे कुछ वर्ष कम हो गए हों—तुम तीस के थे, अब तुम अट्ठाइस के या पच्चीस के होते हो। कोई बोझ उतर गया, तुम ज्यादा युवा अनुभव करते हो—ज्यादा जीवंत, ज्यादा ताजा। लेकिन यदि तुम मुद्राएं भर बना रहे हो, तो तुम थकान अनुभव करोगे। तुम तीस साल के थे, तो तुम अनुभव करोगे कि पैंतीस साल के हो।

तो तुम्हें देखना होगा। दूसरा और कोई नहीं बता सकता कि तुम्हारे भीतर क्या घट रहा है। तुम्हें देखना होगा। निरंतर देखो कि क्या घट रहा है। दिखावा ही मत किए जाना—क्योंकि रेचन साध्य नहीं है; वह केवल साधन है। एक दिन उसे छोड़ना ही है। उसे ढोए मत रहना। वह नाव की भांति है, उस

पार ले जाने वाली नाव. तुम नदी पार कर लेते हो और फिर तुम नाव को भूल जाते हो; तुम उसको अपने सिर पर ही नहीं ढोते रहते।

बुद्‌ध बार—बार एक कहानी कहा करते थे कि एक बार ऐसा हुआ, पांच मूढ़ों ने नदी पार की। फिर वे सोच में पड़ गए, क्योंकि नाव ने उनकी इतनी मदद की थी। वर्षा का मौसम था और बाढ़ आई हुई थी नदी में और नाव की सहायता के बिना नदी पार करना करीब—करीब असंभव ही था, तो उन्होंने कहा, 'यह नाव इतनी मददगार रही है कि हम इसे कैसे यहां छोड़ सकते हैं? हमें अपनी कृतज्ञता प्रदर्शित—करनी चाहिए।' तो वे बाजार में चले उसे सिर पर रखे हुए। लोगों ने पूछा, 'यह क्या कर रहे हो?' उन्होंने कहा, 'इस नाव ने इतनी मदद की है हमारी, अब इसे हम कैसे छोड़ सकते हैं? हम इसे जीवन भर ढोएंगे तो भी कृतज्ञता पर्याप्त न होगी। इस नाव ने हम लोगों का जीवन बचाया।' बुद्‌ध कहा करते थे, 'उन पांच मूढ़ों की भांति मूढ़ मत होना।'

धर्म नाव है; जीवन लक्ष्य है। धर्म नाव है, आनंद मंजिल है। ध्यान रहे, सारी विधियां बस 'विधियां' ही हैं—इस बात को भूलना मत। कोई विधि लक्ष्य नहीं है। एक दिन पतंजलि की पूरी बात छोड़ देनी है, क्योंकि पूरी बात विधि की ही है। और जब पतंजलि पूरे छूट जाते हैं तो अचानक तुम पाओगे, पीछे लाओत्सु छिपे है—वह है मंजिल। मंजिल है 'होना'। करना लक्ष्य नहीं है, लक्ष्य है होना। सारी विधियां हैं कुछ करने के लिए; वे मदद देती हैं तुम्हें घर तक आने में। लेकिन जब तुम घर में प्रविष्ट हो जाते हो, तब तुम वाहन को भूल जाते हो कि तुम बैलगाड़ी में बैठ कर आए, या गधे पर बैठ कर आए, या नाव में बैठ कर आए। सारी विधियां बाहर छूट जाती हैं. तुम घर आ गए।

ध्यान रहे, तुम रेचन को भी पकड़ ले सकते हो। तुम रेचन ही करते रह सकते हो, और तब वह भी एक आदत, एक पैटर्न बन जाता है। तो इसे पैटर्न नहीं बना लेना है। देखना, जब तक जरूरत हो, जारी रखना। धीरे —धीरे तुम सजग होओगे—यह बड़ी सूक्ष्म बात है, क्योंकि घटना बड़ी सूक्ष्म है —कि अब कोई ऊर्जा नहीं है : तुम चीखते हो, पर चीख में दम नहीं है; तुम कूदते हो, लेकिन तने: प्रयास करना पड़ता है। तब इसे छूट जाने देना. नाव को उठाए मत फिरना।

'विकास का वह कौन सा बिंदु है, जहां रेचन छोड़ा जा सकता है?'

वह स्वयं ही छूट जाता है। तुम तो बस सजग रहते हो और देखते रहते हो उसको। और जब वह छूटने लगे तो चिपकना मत उससे, छूट जाने देना उसको।

पांचवां प्रश्न :

पतंजलि के युग के बाद आदमी ने सब्लिमेशन की ऊर्ध्वगमन की क्षमता क्यों खो दी है?

अत्यधिक दमन के कारण। इस प्रक्रिया को समझ लेना है। पतंजलि का युग बहुत आदिम था, प्राकृतिक था, नैसर्गिक था; लोग बच्चों की भांति थे, निर्दोष थे। अब हर कोई सभ्य है, सुसंस्कृत है। तुम्हारे भीतर का वह बच्चा दबा दिया गया है, पूरी तरह कुचल दिया गया है। सभ्यता किसी राक्षस की भांति है : वह तुम्हारे भीतर के बच्चे की हत्या कर देती है, उसे मार डालती है। जो भी प्राकृतिक है, विकृत हो चुका है; जो भी प्राकृतिक है, निंदित हो चुका है।

इसके कारण हैं। उदाहरण के लिए प्रत्येक संस्कृति, प्रत्येक समाज को बहुत से युद्धों से गुजरना पड़ता है। यदि कामवासना का दमन न हो, तो सेना नहीं बनाई जा सकती। सैनिक को अपनी कामवासना का दमन करना ही पड़ता है, केवल तभी वह ऊर्जा लड़ने की ताकत बनती है। कोई देश अपने सैनिकों को उनकी पत्नियों और प्रेमिकाओं को युद्ध के मोर्चे पर साथ ले जाने की आज्ञा नहीं देता है—सिवाय अमरीका के। और अमरीका हर जगह हारेगा। क्योंकि तब भीतर कोई इकट्ठी दमित ऊर्जा नहीं रहती। एक सैनिक को चाहिए बेचैन ऊर्जा। अगर उसके साथ उसकी प्रेमिका है या पत्नी है, तो वह संतुष्ट है। फिर वह क्यों लड़ेगा?

क्या तुमने ध्यान दिया? जब भी तुम कामवासना का दमन करते हो तो ज्यादा क्रोध आता है। जरा जाओ और देखो अपने ऋषि—मुनियों को, अपने तथाकथित साधु—संतो को, और तुम उन्हें सदा क्रोधित ही पाओगे। क्रोध उनकी जीवन—शैली हो गई है, क्योंकि वे कामवासना को दबाते रहे हैं। जब तुम कामवासना को दबाते हो तो ऊर्जा धक्के देती है। अगर तुम एक द्वार बंद कर देते हो तो दूसरा द्वार तुरंत खुल जाता है—और वह दूसरा द्वार विकृत ही होगा। पहला प्राकृतिक था। दूसरा द्वार बंद करो, तीसरा खुल जाएगा; वह तीसरा और भी विकृत होगा। और जब तक तुम चौथा खोलोगे, तब तक तुम पागलखाने में पहुंच चुके होगे।

सभी समाज काम—ऊर्जा का उपयोग करते हैं; इसीलिए सभी समाज कामवासना के विरुद्ध हैं। अगर प्रत्येक व्यक्ति की कामवासना तृप्त हो जाए, संतुष्ट हो जाए, सुंदर हो जाए, तो कौन परवाह करता है लड़ने की? तुम हिप्पियों को युद्ध पर नहीं भेज सकते हो। केवल इसी कारण कि वे इतने प्रसन्न हैं, इतने नैसर्गिक रूप से जी रहे हैं अपना जीवन। न केवल वे नहीं जाएंगे, बल्कि वे प्रदर्शन करते हैं झंडियां लेकर— 'प्रेम करो, युद्ध नहीं।' और ठीक कहते हैं वे। अगर लोगों को प्रेम करने दिया जाए, तो दुनिया से युद्ध मिट जाएंगे।

यह बड़ी जटिल बात है। जैन धर्म जैसा धर्म भी जो कि अहिंसा सिखाता है, वह भी कामवासना का दमन सिखाता है। यह पागलपन है। अगर कामवासना का दमन किया गया तो युद्ध होगा, हिंसा होगी, क्योंकि ऊर्जा जाएगी कहां? अगर सच में ही दुनिया से युद्ध मिटाने हैं तो कामवासना को स्वाभाविक ढंग से जीने की स्वतंत्रता होनी चाहिए। लेकिन कोई समाज इसकी आज्ञा नहीं दे सकता,

क्योंकि युद्ध आवश्यक है; वरना दूसरे झपट पड़ेंगे तुम पर। वे यह नहीं सोचेंगे कि तुम अच्छे लोग हो इसलिए तुम्हें झंझट में नहीं डालना चाहिए।

अगर भारत पूरी यौन—स्वतंत्रता दे दे और एक हिप्पी देश बन जाए, तो चीन चढ़ बैठेगा। इसलिए वह संभव नहीं है। अगर चीन छूट देता है, तो भय है कि रूस चढ़ बैठेगा। अगर रूस छूट देता है, तो अमरीका प्रतीक्षा में बैठा है। तो सब एक—दूसरे की घात में हैं और कोई भी जीवन को सहज—स्वाभाविक ढंग से खिलने नहीं दे सकता है। प्राकृतिक होना, सहज होना संसार की सर्वाधिक कठिन बात हो गई है।

तो अगर तुम एक बच्चे को शिक्षित करना चाहते हो, तो तुम्हें कामवासना को दबाना पड़ता है। क्योंकि तेरह—चौदह वर्ष के करीब बच्चा यौन के हिसाब से परिपक्व हो जाता है। तब प्रकृति ने उसको दे दी होती है टिकट, अब वह बच्चे पैदा कर सकता है—लेकिन कालेज की पढ़ाई पूरी करनी है। अगर वह विवाह कर ले चौदह वर्ष की अवस्था में, तो डाक्टर कैसे बनेगा वह? इंजीनियर कैसे बनेगा वह? नहीं, उसे डाक्टर बनना ही है। लेकिन डाक्टर बनने के लिए उसे प्रतीक्षा करनी होगी। पच्चीस—छब्बीस वर्ष की उम्र तक वह हो पाएगा इंजीनियर या डाक्टर या प्रोफेसर; तब उसे विवाह की अनुमति मिलेगी—क्योंकि उसी ऊर्जा का तो उपयोग करना है पढ़ाई—लिखाई में।

अगर तुम युवक—युवतियों .को एक ही हॉस्टल में रहने दो, तो यूनिवर्सिटिया गायब हो जाएंगी; वे बनी नहीं रह सकतीं। वे बनी हुई हैं दमन की एक सूक्ष्म प्रक्रिया के कारण। कामवासना का दमन करना होता है, केवल तभी किसी दूसरी चीज के लिए ऊर्जा उपलब्ध होती है। तब युवक और युवतियां अपनी ऊर्जा परीक्षाओं में लगा देते हैं। उनको पसंद नहीं है यह, लेकिन करें क्या? भीतर ऊर्जा मौजूद है।

फिर सारे समाज हस्तमैथुन के विरुद्ध हैं, क्योंकि अगर तुम लड़कियों और लड़कों को एक साथ नहीं रहने देते हो, तो लड़के हस्तमैथुन करेंगे, लड़कियां हस्तमैथुन करेंगी। समाजों को विरुद्ध होना पड़ता है इसके, क्योंकि इससे ऊर्जा खोती है। ऊर्जा को तो जबरदस्ती लगाना होता है यूनिवर्सिटी में; उन्हें इंजीनियर बनना होता है। उन्हें आनंदित नहीं होना होता। तो सभी समाज अपराध— भाव पैदा करते हैं हस्तमैथुन के प्रति। और सारे समाज प्रशंसा करते हैं कि यदि तुम काम—ऊर्जा को सुरक्षित रखो तो तुम बहुत महान हो जाओगे।

निश्चित ही, एक अर्थों में तो महान हो ही जाते हों—महत्वाकांक्षा की दुनिया में महान हो जाते हो। यदि तुमने कामवासना का दमन नहीं किया है तो तुम बड़े राजनेता नहीं बन सकते हो, क्योंकि कौन फिक्र करता है? यह इतनी व्यर्थ की बात है कि कौन जाना चाहता है दिल्ली या व्हाइट हाऊस, वाशिंगटन 1: कोई नहीं फिक्र करता। जरूरत ही क्या है? तुम्हारा छोटा सा घर ही है व्हाइट हाऊस। न, '। सूंदर ढंग से जीते हो और तुम आनंदित होते हो। और क्यों तुम अपना जीवन गवाओगे दिल्ली पाने में या वाशिंगटन जाने में? नहीं, तब तुम बड़े .राजनेता नहीं बन सकते।

काम —ऊर्जा का दमन करना होता है, तभी तुम बनते हो बड़े कलाकार। काम —ऊर्जा को होना

होता है कुंठित, तभी तुम बनते हो बड़े वैज्ञानिक। फ्रायड कहता है कि जिन लोगों की काम—ऊर्जा बहुत ज्यादा दमित होती है, वे वैज्ञानिक बन जाते हैं; क्योंकि रहस्य को उघाड़ने की कोशिश एक कामुक जिज्ञासा है—एक छोटा लड़का जानने की कोशिश कर रहा है कि नग्न लड़की कैसी लगती है; उसे जिज्ञासा होती है।

सारे लड़के दुनिया भर में एक खेल खेलते हैं—'डाक्टर।' वे बन जाते हैं डाक्टर और लड़की बन जाती है मरीज—छोटी लड़कियां, छोटे डाक्टर, छोटे मरीज—बस यह जानने के लिए कि वस्त्रों के भीतर लड़की कैसी लगती है। और डाक्टर को अनुमति है; उसे जांचना ही होता है शरीर। यह जिज्ञासा वैसी ही जिज्ञासा है जैसी किसी वैज्ञानिक की जिज्ञासा। यदि कामवासना का दमन किया गया है, तो बाद में वैज्ञानिक हर कहीं छानबीन करने की कोशिश करेगा—प्रकृति को निर्वस्त्र करेगा रहस्यों से पर्दे उठाएगा—कि क्या छिपा है। वह चाहता है कि सारा संसार, सारा अस्तित्व नग्न प्रकट हो जाए, ताकि वह प्रत्येक रहस्य, प्रत्येक स्थान, प्रत्येक कोना जान ले।

यदि कामवासना को जीने की स्वतंत्रता हो.. उदाहरण के लिए संसार भर में आदिम समाज हैं, थोड़े से आदिम समाज। उन्होंने कोई बड़ा वैज्ञानिक नहीं पैदा किया। वे कर नहीं सकते। बस्तर में भारत में, मैंने देखा है आदिवासियों के एक छोटे से समुदाय को। उनके यहां एक छोटा निवास—स्थान होता है, समुदाय का घर, एक 'घोटुल' होता है प्रत्येक गांव में। बारह वर्ष की आयु के बाद प्रत्येक युवक और युवती को उस घोटुल में जाकर सोने की आज्ञा होती है। सारी युवतियां वहां सोती हैं, सारे युवक वहां सोते हैं। और कोई बंधन नहीं होता उनकी काम— भावना पर—वे आनंदित होते हैं। केवल एक शर्त होती है, जो कि अदभुत है, कि कोई युवक किसी युवती के साथ तीन दिन से ज्यादा नहीं रहेगा। ताकि वह गांव की तमाम लड़कियों को जान ले जिससे वह निर्णय ले सके, और प्रत्येक लड़की जान ले गांव के प्रत्येक लड़के को। तो वे निर्णय ले सकते हैं कि उन्हें जीवन भर किसके साथ रहना है। यह बात सच में बहुत सुंदर है—सहज—सरल, और बड़ी मानवीय। हर लड़के को पूरी स्वतंत्रता मिलती है, हर लड़की को पूरी स्वतंत्रता मिलती है—कोई दमन नहीं होता।

एक बार वे जान लेते हैं अपने समुदाय के सभी लड़कों को और सभी लड़कियों को तो निर्णय कर सकते हैं। जब निर्णय कर लेते हैं, तब फिर कोई स्वतंत्रता नहीं रहती। असल में तब कोई जरूरत ही नहीं रह जाती। वे ऐसे सच्चे प्रेमी होते हैं जैसे तुम्हें संसार में कहीं नहीं मिल सकते। एक बार कोई युवक और युवती विवाह करने का निर्णय ले लेते हैं, तो वे दूसरे युवक और युवतियों को भूल जाते हैं बिलकुल। कोई मतलब नहीं रहता; उन्होंने जान लिया सभी को। और यह उनका अपना चुनाव है। उन्होंने खोज लिया है अपना साथी, खत्म हो गई बात! वे कभी विश्वासघात नहीं करते एक—दूसरे के साथ। ऐसा कभी नहीं हुआ उनके इतिहास में कि कोई पति किसी दूसरी स्त्री के साथ प्रेम करता पाया

गया हो या किसी दूसरी स्त्री में रुचि रखता हो या स्त्री छुपे तौर पर प्रेमिका बन गई हो किसी दूसरे की। नहीं, ऐसा बिलकुल नहीं होता। ऐसा होने की जरूरत ही नहीं रह जाती।

लेकिन उन्होंने कोई बड़े वैज्ञानिक या बड़े कवि या बड़े कलाकार या बड़े योद्धा पैदा नहीं किए। नहीं, उन्होंने किसी तरह के कोई बड़े आदमी नहीं पैदा किए। उन्होंने पैदा किए साधारण सीधे—सादे, सहज आदमी।

असल में सभी तरह की महानता एक तरह की अस्वाभाविकता है, और कहीं न कहीं काम—ऊर्जा का ही उपयोग करना पड़ता है, क्योंकि वही एकमात्र ऊर्जा है।

पतंजलि के समय में लोग सीधे—सादे थे, सहज थे। रेचन की कोई जरूरत न थी : किसी चीज का दमन न था। रेचन के चरण की जरूरत न थी। लेकिन अब हर कोई दमित है। और हर कोई इतने तरीकों से दमित है कि रेचन के कई वर्ष चाहिए, केवल तभी तुम फिर से सहज होओगे। तुमने अचेतन मन में इतना ज्यादा कूड़ा—करकट इकट्ठा कर लिया है कि उसे फेंकना जरूरी है। अभी तुम मार्ग पर नहीं चल सकते—पहले तुम्हें स्वयं को निर्भार करना होगा।

तुम्हें ठीक से समझ लेना है. कि समाज की अपनी जरूरतें हैं, देश की अपनी जरूरतें हैं। जरूरी नहीं है कि वे व्यक्ति की भी जरूरतें हों—यही समस्या है। व्यक्ति की जरूरत है कि वह सुखी हो, आनंदित हो, उसे जो छोटा सा जीवन मिला है उसे आनंद से जीए। यह व्यक्ति की जरूरत है, लेकिन यह समाज की जरूरत नहीं है। समाज को इससे मतलब नहीं है कि तुम सुखी हो कि दुखी हो; समाज चाहता है कि तुम उपयोगी हो, समाज चाहता है कि तुम महान सैनिक बनो ताकि समाज की सुरक्षा के काम आओ, समाज चाहता है कि तुम बड़े वैज्ञानिक बनो क्योंकि विज्ञान शक्ति है। समाज की अपनी जरूरतें हैं। और व्यक्ति की जरूरतें बिलकुल भिन्न हैं।

एक आदर्श समाज में कोई समाज न होगा—केवल व्यक्ति होंगे। एक आदर्श राज्य में कोई राज्य न होगा, कोई शासन न होगा—केवल व्यक्ति होंगे। ज्यादा से ज्यादा एक कामचलाऊ शासन व्यवस्था हो सकती है। उदाहरण के लिए, डाक—व्यवस्था की देख— भाल की जा सकती है किसी केंद्रीय एजेंसी द्वारा। या रेलवे को संचालित किया जा सकता है एक केंद्रीय एजेंसी द्वारा। बस इतना ही। रेलगाड़ियां समय से चलें, डाक—व्यवस्था ठीक से काम करे, बस ऐसी चीजों के लिए सरकार होनी चाहिए। और सरकार को एक नकारात्मक शक्ति होना चाहिए।

जब मैं कहता हूं नकारात्मक शक्ति, तो मेरा मतलब है. सरकार को ध्यान देना चाहिए कि कोई व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति के काम में दखल न दे और दूसरे व्यक्ति की स्वतंत्रता में और उसके जीवन में दखल न दे। बस इतना ही। सरकार को अपने नियम नहीं थोपने चाहिए लोगों पर। इतना पर्याप्त है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपना जीवन जीने की स्वतंत्रता हो, अपना काम करने की स्वतंत्रता हो और कोई दखलंदाजी न करे। अगर कोई दखल दे, तो सरकार बीच में आए, अन्यथा नहीं।

लेकिन यह तो एक आदर्श स्थिति, यूटोपिया की बात मालूम पड़ती है। यह शब्द 'यूटोपिया' बहुत सुंदर है। इसका अर्थ है. 'जो कभी होता नहीं।' यूटोपिया का अर्थ है ऐसी बात जो कभी होती नहीं, जिसका होना संभव ही नहीं लगता है। बात ही असंभव मालूम पड़ती है।

तो मैं तुम्हें किसी यूटोपिया की कामना करना नहीं सिखा रहा हूं। जो किया जा सकता है, और जो व्यावहारिक है, वह है—होशपूर्ण हो जाना, ताकि तुम इस उपद्रव के बाहर आ जाओ। और तुम कृपा करके दूसरों की चिंता में मत पड़ो, क्योंकि कोई उन्हें उनके उपद्रव से बाहर नहीं ला सकता है अगर वे स्वयं ही बाहर नहीं आना चाहते। अगर वे आनंद ले रहे हैं तो लेने दो उनको आनंद। अगर उन्हें सूख मिल रहा है अपने दुख में, तो रहने दो उन्हें दुखी; यह उनकी स्वतंत्रता है। किसी पर कोई चीज थोपने की कोशिश मत करना—यह अनधिकार चेष्टा है, जबरदस्ती है, हस्तक्षेप है।

मेरे देखे, यह हिंसा है। प्रत्येक को अपने जैसा होने दो और अपनी स्वतंत्रता से जीने दो; तब रेचन की कोई जरूरत न रहेगी।

लेकिन अभी तो हर कोई दखल दे रहा है दूसरों के जीवन में; कोई तुम्हें अकेला नहीं छोड़ना चाहता। और ऐसी सूक्ष्म तरकीबें उपयोग की जाती रही हैं कि जब तक तुम बहुत ही ज्यादा सजग न होओ तुम जान न पाओगे कि किन—किन तरकीबों से तुम्हें गुलाम बनाया गया है।

धर्म कहते हैं कि तुम कहीं भी हो, ईश्वर तुम्हें देख रहा है। इसका अर्थ हुआ : कहीं कोई संभावना ही नहीं अकेले होने की और स्वयं होने की। यह ईश्वर तो पीपिंग टाम मालूम पड़ता है! तुम कहीं भी हों—स्नानघर में भी—वह मौजूद है, तुम्हें देख रहा है। वहां भी तुम गुनगुना नहीं सकते; वहां भी तुम दर्पण में मुंह नहीं बिचका सकते; वहां भी तुम नाच नहीं सकते; नहीं, ईश्वर देख रहा है। और 'ईश्वर' का अर्थ है बहुत गंभीर, कोई बूढ़ा—सफेद बाल, सफेद दाढ़ी, और सदा का उदासीन और गहन—गभीर—और वह देख रहा है!

मैंने सुना है एक नन के बारे में जो बिना कपड़े उतारे ही स्नान किया करती थी। तो किसी ने पूछा, 'यह क्या करती हो तुम? स्नान करते समय तो तुम अपने कपड़े उतार सकती हो।' लेकिन उसने कहा, 'ईश्वर हर जगह देख रहा है, तो कैसे मैं नग्न हो सकती हूं? वह बात तो अपमानजनक होगी।' लेकिन यदि ईश्वर सब जगह देख रहा है, तो वह तुम्हारे वस्त्रों के भीतर भी देख रहा होगा! तो क्या मतलब हुआ? इसका तो मतलब हुआ कि तुम कहीं भी नग्न हो सकते हो। ईश्वर सब जगह देख रहा है. तुम बच नहीं सकते। भूल जाओ उसके बारे में।

ये सूक्ष्म तरकीबें हैं। समाज ने तुम्हारे भीतर एक अंतःकरण निर्मित कर दिया है, तो कुछ भी तुम करते हो, वह अंतःकरण काम करता रहता है—समाज की सेवा में। और समाज ने तुम्हें सिखा दिया है, 'यह तुम्हारे भीतर की आवाज है।' यदि तुम मुसलमान परिवार में पैदा हुए हो, तो तुम चार पत्नियां रख सकते हो और तुम्हारा अंतःकरण कोई हस्तक्षेप नहीं करेगा—चार तक। पांचवीं के साथ ही खतरा

पैदा होगा। पांचवीं पत्नी के साथ ही तुम्हारा अंतःकरण बेचैन होने लगेगा और वह कहेगा, 'यह ठीक नहीं।' लेकिन अगर तुम हिंदू हो या ईसाई हो तो केवल एक पत्नी की इजाजत है। दूसरी पत्नी के साथ ही झंझट खड़ी हो जाएगी। तुम्हारा अंतःकरण कहने लगेगा, 'यह गलत है, यह ठीक नहीं, यह अनैतिक है। क्या कर रहे हो तुम? तुम्हें केवल एक ही स्त्री से प्रेम करना चाहिए—और सदा—सदा के लिए करना चाहिए।'

यह अंतःकरण क्या है? मुसलमान का अंतःकरण क्यों अलग होता है? हिंदू का अंतःकरण क्यों अलग होता है?

मेरे बचपन में मेरे घर में टमाटरों की मनाही थी, क्योंकि मैं एक जैन परिवार में पैदा हुआ, और टमाटर मांस जैसा लगता है। बस लगता ही है, होता तो उसमें ऐसा कुछ नहीं। टमाटर तो इतना निर्दोष और किसी को नुकसान न पहुंचाने वाला है। लेकिन बचपन में मैंने टमाटर कभी नहीं खाए थे, क्योंकि मेरे परिवार में इजाजत न थी। और जब पहली बार एक मित्र के घर में मेरे सामने खाने में टमाटर आया तो मैंने वमन कर दिया। पूरा अंतःकरण...! मैं मान ही नहीं सकता था कि लोग टमाटर खाते हैं। टमाटर तो कितनी खतरनाक चीज है, मांस जैसा लगता है। कैसे उसको तुम खा सकते हो?

अंतःकरण सिवाय समाज की एक चालबाजी के और कुछ नहीं है। तुम्हारे अंतःकरण में कुछ धारणाएं भर दी जाती हैं और वहां से वे काम करना शुरू कर देती हैं। वे हैं देलगादो के इलेक्ट्रोड्स की भांति। बहुत सूक्ष्म... जहां भी तुम जाते हो, समाज तुम्हारे साथ आता है, तुम्हारे पीछे छिपा होता है; तुम्हारे भीतर ही होता है। अगर तुम समाज के विपरीत कोई काम करते हो, तो अंतःकरण कचोटने लगता है। यह वास्तविक अंतस की आवाज नहीं है—क्योंकि वास्तविक भीतरी आवाज हिंदू के लिए और मुसलमान के लिए, और जैन के लिए, और ईसाई के लिए अलग— अलग नहीं हो सकती है। वास्तविक भीतरी आवाज तो एक ही होगी, क्योंकि सच्ची भीतर की आवाज समाज के सिखावन से पैदा नहीं होती। सच्ची भीतर की आवाज तो आती है तुम्हारे अस्तित्व के आत्यंतिक केंद्र से। लेकिन उस तक पहुंचने के लिए ध्यान की सारी अवस्थाओं से गुजरना होता है।

जब तक सभी विचार तिरोहित नहीं हो जाते, तुम अपनी भीतर की आवाज नहीं सुन सकते। समाज ने तुम्हारे मन को इतना ज्यादा भर दिया है कि तुम जो भी सुनोगे, वह समाज द्वारा तुम्हें भीतर से नियंत्रित करने की कोशिश ही होगी। बाहर से समाज नियंत्रण करता है पुलिस द्वारा और अदालतो द्वारा। भीतर से वह नियंत्रण करता है ईश्वर द्वारा, अंतःकरण द्वारा, नैतिकता द्वारा, स्वर्ग—नर्क द्वारा और ऐसी ही हजार चीजों द्वारा।

इसीलिए रेचन की जरूरत है। तुम नैसर्गिक नहीं हो, और केवल रेचन द्वारा ही तुम स्वयं को निर्भार कर पाओगे समाज के बोझ से; तुम मुक्त हो पाओगे समाज से। समाज से मुक्त होकर तुम प्रकृति के

प्रति खुले हो जाते हो। प्रकृति के प्रति खुलने से तुम अस्तित्व के प्रति खुले हो जाते हो। और मेरे देखे, अस्तित्व ही ईश्वर है।

छठवां प्रश्न :

आप क्यों जोर देते हैं कि हमें सीधे सातवें चरण— ध्यान— पर छलांग लगा देनी चाहिए और फिर दूसरे चरण पूरे करने चाहिए ताकि समग्र समाधि उपलब्ध हो?

एक खास कारण है। मैं जोर देता हूं कि पहले ध्यान में छलांग लगा दो और फिर दूसरे चरण पूरे करो, क्योंकि तुमने ध्यान का स्वाद बिलकुल ही खो दिया है। इस कदर खो दिया है कि जब तक तुम एक बार स्वाद को अनुभव न कर लो, तब तक तुम दूसरी चीजों को पूरा करने का कष्ट ही नहीं उठाओगे।

पतंजलि के समय में ध्यान एक अनुभव की बात थी। प्रत्येक व्यक्ति ध्यान करता था। प्रत्येक बच्चे को भेजा जाता था गुरुकुल में, जंगल के आश्रमों में। वहां बुनियादी शिक्षा ध्यान की थी; शेष सब गौण था। जब वह पच्चीस वर्ष का होता तो समाज में वापस आ जाता, मगर उसने ध्यान की कला सीख ली होती। वह रहेगा बाजार में, पर ध्यान के साथ। पचास वर्ष की उम्र तक वह फिर तैयार हो जाता वापस जंगल जाने के लिए। और पचहत्तर वर्ष की अवस्था तक आते—आते वह ध्यान के लिए ही पूरा समय समर्पित करने लगता।

तो अगर तुम पूरी जीवन— अवधि को देखो, अगर सौ वर्ष की उम्र मानें : तो पहले के पच्चीस वर्षों में, आरंभ में, ध्यान का स्वाद दे दिया जाता था—तुम जान लेते थे उसके सौरभ को, उसकी सुवास को। तुम जान लेते उसके सौंदर्य को, उसके अहोभाव को, आनंद को—और तब तुम आते संसार में। अब तुम कभी न बनोगे संसार का हिस्सा। तुम जानते हो, वहां जंगल में कोई सुंदर चीज अस्तित्व रखती है। तुमने जान लिया होता है एकांत को; अब भीड़ में, संसार में रहते हुए, तुम कभी पूरे चैन से न रहोगे। तुमने चख लिया परम स्वाद. अब बाकी के सारे स्वाद मूल्यहीन हो गए। तुम रहोगे संसार में एक कर्तव्य की तरह।

ऐसा ही हिंदू—शास्त्र कहते हैं कि व्यक्ति को संसार में जीना चाहिए कर्तव्य की तरह। तुम्हारे माता—पिता ने तुम्हें पैदा किया : तुम्हारे ऊपर एक कर्तव्य है, तुम्हें दूसरों को जन्म देना है, ताकि समाज और उसकी श्रृंखला निरंतर चलती रहे और धारा बहती रहे—तुम्हें धारा पर रोक नहीं लगानी है।

लेकिन भीतर एक पुकार उठती ही रहती है। व्यक्ति काम करता है दुकान में, जाता है बाजार, बच्चों को बड़ा करता है, विवाह करता है, हजार चीजें करता रहता है वह, लेकिन किसी बुलावे की अनुगूंज उठती रहती है। किन्हीं घड़ियों में, सुबह—सुबह जब बाजार में सन्नाटा है और संसार अभी भी सोया ही हुआ है—वह उठ आता है.. वह डुबकी ले लेता है उस ध्यान में जिससे कि उसका परिचय हुआ था अपने पहले पच्चीस वर्षों में। रात को, जब सब सो जाते हैं तो वह बैठ जाता है अपनी शय्या पर......किसी निमंत्रण की पुकार उसके पीछे—पीछे चलती रहती है छाया की भांति।

पचास वर्ष की अवस्था आते—आते वह संसार से हटने लगता, क्योंकि अब उसके बच्चे करीब—करीब पच्चीस वर्ष के हो जाते, वे जंगल से लौट आए होते। अब वे सम्हालेंगे संसार, अब उसका कर्तव्य पूरा हुआ। लेकिन पचास वर्ष की अवस्था में वह सचमुच ही नहीं चला जाता जंगल। संस्कृत का शब्द है 'वानप्रस्थ'. वह मुंह कर लेता जंगल की ओर। वह घर को छोड़ता नहीं है, क्योंकि कुछ वर्ष अभी उसकी जरूरत होगी उन बच्चों को जो अभी गुरुकुल से आए हैं, ताकि वह उन्हें अपने जीवन का अनुभव दे दे, उन्हें व्यवस्थित होने में मदद करे। अन्यथा यह उन बच्चों के लिए बहुत अराजकता हो जाएगी—कि वे घर आएं और बूढ़ा पिता जंगल चला जाए। तब तो संसार के साथ कोई संबंध ही न जुड़ेगा उनका। उन युवा बच्चों ने कुछ सीखा है, जाना है अस्तित्व के विषय में; अब उन्हें संसार के संबंध में कुछ सीखना है पिता से।

लेकिन अब पिता पीछे होगा, बच्चे आगे आ जाएंगे। पिता पीछे हट जाएंगे, मां पीछे हट जाएगी—बहू आगे आ जाएगी, बेटा आगे आ जाएगा। अब वे हैं असली मालिक, और माता—पिता सिर्फ इसलिए हैं कि अगर उन लोगों को किसी सलाह—मशवरे की जरूरत पड़े तो सलाह ली जा सकती है। लेकिन अब उनका रुख होता जंगल की तरफ; वे तैयार हो रहे होते।

और जब वे पचहत्तर वर्ष के होते तो उनके बच्चे हो गए होंगे करीब पचास वर्ष के। अब माता—पिता तैयार होते जंगल वापस जाने के लिए—वें लौट जाते, वे फिर चले जाते जंगल।

भारतीय जीवन शुरू होता जंगल से, फिर समाप्त होता जंगल में; शुरू होता स्वात से, समाप्त होता एकांत में; शुरू होता ध्यान से, समाप्त होता ध्यान में। असल में पचहत्तर वर्ष ध्यान के लिए होते, केवल पच्चीस वर्ष संसार के लिए होते; संसार कभी हावी नहीं हो पाता, एक अंतर्धारा ध्यान की बनी रहती। वस्तुत: सारा जीवन ही ध्यानमय था—केवल पच्चीस वर्षों के लिए व्यक्ति संसार को कर्तव्य की भाति जीता था।

उन दिनों कोई जरूरत न थी तुम्हें ध्यान का स्वाद देने की, तुमने जाना ही होता था उसको। लेकिन अब चीजें बिलकुल भिन्न हैं। तुम नहीं जानते कि ध्यान क्या है। जब मैं कहता हूं ' ध्यान' तो बस एक शब्द गूंजता है तुम्हारे कानों में, कोई प्रतिसवेदन नहीं होता। यदि मैं कहता हूं 'नींबू' तो तुम्हारे

मुंह में पानी आ जाता है, लेकिन जब मैं कहता हूं 'ध्यान' तो कोई संबंध नहीं बनता। जब मैं कहता हूं 'परमात्मा' तो रूखा—सूखा ही रहता है मुंह। तुमने स्वाद ही नहीं लिया, वह शब्द अर्थहीन है।

इसीलिए मैं कहता हूं. पहले ध्यान करो। यानी थोड़ा स्वाद लो, थोड़ी झलक लो। तब तुम अपने से चलने लगोगे, और फिर तुम दूसरे चरण पूरे करने लगोगे। तुम्हें चाहिए एक झलक, पहले उसकी कोई जरूरत न थी; इसलिए मेरा जोर है सीधे ध्यान पर। एक बार तुम ध्यान में उतर जाओ, फिर सब कुछ पीछे—पीछे चला आएगा। मुझे उसके बारे में कहने की जरूरत नहीं; तुम स्वयं ही वैसा करने लगोगे।

जब तुम ध्यान में उतरते हो, तो तुम मौन और शात बैठ जाना चाहोगे ही : आसन सध जाएगा। जब तुम ध्यान में उतरते हो, तो तुम देखोगे कि श्वास की एक मौन लय होती है. प्राणायाम सध जाएगा। जब तुम मौन होते हो, ध्यानपूर्ण होते हो, आनंदमग्न होते हो अपने एकांत में, तो तुम्हारा चरित्र बदल जाएगा; तुम किसी के जीवन में दखलंदाजी न करोगे : तुम अहिंसक हो जाओगे। तुम प्रामाणिक हो जाओगे, क्योंकि जब भी तुम अप्रामाणिक होओगे तो तुम्हारा आंतरिक संतुलन खो जाएगा। झूठे होकर, बेईमान होकर तुम शायद बचा लो पांच रुपए, लेकिन झूठे होकर तुम भीतर का बहुत कुछ खो दोगे। अब तुम्हें एक नया उपलब्ध हुआ धन खोना पड़ेगा। और मैंने ऐसा व्यक्ति नहीं देखा जो इतना मूढ़ हो कि मात्र पांच रुपए के लिए वह भीतर का खजाना खोने को राजी हो, जो कि ज्यादा मूल्यवान है, अपार मूल्यवान है। फिर चला आता है 'यम'। जब तुम और—और मौन, और— और शात हो जाते हो तो जीवन स्व—स्फूर्त हो जाता है : 'नियम', एक आंतरिक अनुशासन अपने आप चला आता है। बस जरा सी तुम्हारी मदद और थोड़ी समझ, तो चीजें एक कम में उतरने लगती हैं। लेकिन पहली बात है यह जानना कि ध्यान क्या है; शेष सब पीछे चला आता है।

जीसस ने कहा है, 'पहले प्रभु का राज्य खोज लो, फिर सब कुछ पीछे—पीछे चला आता है।' वही मैं तुम से कहता हूं।

अंतिम प्रश्न :

स्पष्ट है कि मैं पिछले सभी बुद्ध पुरुषों से बचता रहा जिनसे मेरा पहले मिलना हुआ। लेकिन अब मैं जानता हूं कि जब तक मैं इस शरीर में हूं मैं इस बुद्ध को नहीं छोडूंगा लेकिन फिर एक छिपा—छिपा भय बना रहता है कि कहीं ऐसा न हो जाए कि अभौतिक मिलन होने के पहले ही मैं देह छोड़ हूं या आप विदा हो जाएं।

भय स्वाभाविक है, और एक तरह से अच्छा ही है। इससे घबड़ाने की कोई बात नहीं, यह भय मदद करेगा। सारे भय बुरे नहीं होते और सारी बहादुरी अच्छी नहीं होती। कई बार बहादुरी केवल मूढ़ता होती है और कई बार भय एक बुद्धिमानी होता है। इस भय को मैं बुद्धिमानी कहता हूं क्योंकि तुम जानते हो कि ऐसा संभव है। अतीत में तुम चूकते रहे हो बहुत से बुद्ध पुरुषों को—ज्यादा संभावना इसी बात की है कि तुम मुझे भी चूक जाओगे, क्योंकि तुम चूकने में बहुत कुशल हो चुके हो। तो अच्छा है भय। यह मदद करेगा। यह भय बुद्धिमानी है; यह तुम्हें चैन से न बैठने देगा और असजग न रहने देगा—यह तुम्हें फिर से न चूकने में मदद देगा।

धन्यवाद दो इस भय को और याद रखो : भय सदा ही बुरा नहीं होता। जब तुम्हें रास्ते पर सांप मिल जाता है, तो तुम क्या करते हो? तुम छलांग लगा कर हट जाते हो। क्या तुम डरपोक हो? क्या तुम कायर हो? कोई मूर्ख कह सकता है कि तुम कायर हो। लेकिन तुम क्या सोचते हो, बुद्ध क्या करेंगे? वह तुम से ज्यादा तेज छलांग लगाएंगे; इतना ही करेंगे। लेकिन क्या बुद्ध भयभीत हैं सांप से? नहीं, सवाल भयभीत होने या न होने का नहीं है। वे होशपूर्ण हैं, और वे होश से जीते हैं।

यह भय एक तरह की सजगता है। इसे 'छिपा भय' मत कहो; बल्कि इसे 'नई सजगता' कहो क्योंकि तुम किसी चीज को जिस ढंग से कहते हो, उससे बहुत अंतर पड़ता है। अगर तुम इसे ' भय' कहते हो, तो तुमने इसकी निंदा कर दी। अगर तुम इसे 'नई सजगता' कहते हो, तो तुमने इसे स्वीकार किया, इसकी प्रशंसा की।

और अगर तुम सजग हो, तो इस बार तुम चूकोगे नहीं। सारी बात है—सजगता। यदि तुम सजग हो तो तुम नहीं चूकोगे। तुम अतीत में चूकते रहे क्योंकि तुम गहरी नींद में थे, एक सम्मोहन में थे। तुम्हारी आंखें बंद थीं। तुम चूकते रहे क्योंकि तुम बुद्ध को पहचान न पाए। एक बार तुम पहचान लेते हो कि बुद्ध सामने मौजूद हैं, तो कैसे चूक सकते हो तुम? एक बार तुम जान लेते हो कि यह हीरा है, तो तुम उसे फेंक नहीं सकते। तुमने दूसरे हीरे यह सोच कर फेंक दिए होंगे कि वे कंकड़—पत्थर हैं।

मैंने एक सूफी कहानी सुनी है। ऐसा हुआ : एक फकीर, एक गरीब भिखारी एक छोटी सी झील के किनारे टहल रहा था। उसे अचानक एक थैला मिल गया। ब्रह्ममुहूर्त का समय था। सूर्योदय नहीं हुआ था, अभी भी अंधेरा था। उसने थैला खोला, टटोल कर देखा कि भीतर क्या है; पत्थर ही पत्थर भरे थे उसमें। झील के किनारे बैठे—ठाले करने को कुछ था नहीं, वह उन पत्थरों को फेंकने लगा झील में। वे पानी में गिरते, छपाक की आवाज होती, तरंगें उठतीं—उसे मजा आने लगा। फिर धीरे— धीरे सुबह हुई, अंधकार कम हुआ। जब पर्याप्त रोशनी हुई और उसने देखा कि वह क्या कर रहा था, तब एक अंतिम

पत्थर ही बचा था। वह हीरा था। वह तो रोने—चीखने लगा। वे सभी हीरे ही थे। लेकिन अब वह इसे नहीं फेंक सकता था।

तुमने शायद फेंक दिया होगा पत्थरों के पूरे थैले को—और बुद्ध पुरुषों को। इस बार अगर थोड़ी सी सजगता तुम्हें मिली है और प्रकाश की एक किरण उतरी है, तो कैसे तुम उसे फेंक सकते हो? यह असंभव है।

आज इतना ही।

प्रवचन 51 - योग का आधार—पंच महाव्रत

योग—सूत्र

(साधनपाद)

अहिंसाप्रतष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्याग:।। 35।।

जब योगी सुनिश्चित रूप से अहिंसा में प्रतिष्ठित हो जाता है,

तब जो उसके सान्निध्य में आते हैं, वे शत्रुता छोड़ देते हैं।

सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम्।। 36।।

जब योगी सुनिश्चित रूप से सत्य में प्रतिष्ठित हो जाता है,

तब वह बिना कर्म किए भी फल प्राप्त कर लेता है।

अस्तेयप्रतिष्ठाया सर्वरत्नोपस्थनम्।। 37।।

जो योगीसुनिश्चित रूप से अस्तेय में प्रतिष्ठित होत जाता है,

तब आंतिरिक समृद्धियां स्वयं उदित होती है।

ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्यलाभ:।। 38।।

जब योगी निश्चल रूप से ब्रह्मचर्य में प्रतिष्ठित हो जाता है,

तब तेजस्विता की उपलब्धि होती है।

अपरिग्रहस्थैर्ये जन्मकिन्तासंबोध:।। 39।।

जब योगी सुनिश्चित रूप से अपरिग्रह में प्रतिष्ठित हो जाता है,

तब अस्तित्व के 'कैसे' और कहां से का ज्ञान उदित होता है।

एक बार ऐसा हुआ, मैं कुछ मित्रों के साथ एक पहाड़ी स्थान पर ठहरा हुआ था। हम एक जगह देखने गए जो 'ईको प्याइंट' कहलाता था; सुंदर स्थल था, बहुत शांतिपूर्ण, पहाड़ियों से घिरा हुआ। एक मित्र ने कुत्ते की तरह भौंकने की आवाज की। सारी पहाड़ियां उसकी अनुगूंज से गज उठीं—ऐसा लगा जैसे वह स्थान हजारों कुत्तों से भरा हुआ है। फिर किसी ने बौद्ध मंत्रों का जाप शुरू कर दिया : 'सब्बे संघार अनिच्चा। सब्बे धम्मा अनत्ता। गते, गतें, परागते, परा संगते। बोधि स्वाहा!' पहाड़ियां बौद्ध बन गईं; उन्होंने उसे गुंजा दिया। मंत्र का अर्थ है : 'सब कुछ नश्वर है, कोई चीज अनश्वर नहीं; सब कुछ एक बहाव है, कुछ भी स्थायी नहीं। हर चीज आत्म—विहीन है। गई, गई, खो गई, अंततः हर चीज खो गई—शब्द भी, ज्ञान भी, बुद्धत्व भी।'

जो मित्र मेरे साथ थे मैंने उनसे कहा कि जीवन भी इसी 'ईको प्याइंट' की भांति है : तुम भौंकते हो उस पर, तो वह वापस भौंकता है तुम पर; तुम पढ़ते हो सुंदर मंत्र, तो जीवन एक मधुर गुंजार से भर जाता है। जीवन एक दर्पण है। लाखों—लाखों दर्पण हैं तुम्हारे चारों ओर—प्रत्येक चेहरा एक दर्पण है; प्रत्येक चट्टान एक दर्पण है; प्रत्येक बादल एक दर्पण है। सारे संबंध दर्पण हैं। जिस ढंग से भी तुम जीवन से संबंधित होते हो, वह तुम्हें प्रतिबिंबित करता है। जीवन के प्रति क्रोध से मत भर जाना अगर वह तुम पर भौंकने लगे। तुम्हीं ने आरंभ की होगी श्रृंखला। तुमने जरूर कुछ किया होगा तभी यह हो रहा है। जीवन को बदलने का प्रयास मत करो; बस अपने को बदलो और जीवन बदल जाता है।

ये दो दृष्टिकोण हैं : एक को मैं कहता हूं कम्मुनिस्टवादी दृष्टिकोण, जो कहता है, 'जीवन को बदलो, केवल तभी तुम सुखी हो सकते हो'; दूसरे को मैं कहता हूं धार्मिक दृष्टिकोण, जो कहता है, 'स्वयं को बदलो, और जीवन अनायास ही सुंदर हो जाता है।' समाज को, संसार को बदलने की कोई जरूरत नहीं है। यदि तुम उस दिशा में चल रहे हो, तो तुम गलत दिशा में चल रहे हो जो तुम्हें कहीं नहीं ले जाएगी। पहली तो बात, तुम उसे बदल नहीं सकते—वह बहुत जटिल और विराट है। यह असंभव है। वह बहुत जटिल है और तुम्हारी जिंदगी छोटी है! और जीवन सनातन है और जीवन अनंत है। तुम एक मेहमान हो; रात भर का पड़ाव है और तुम चल दोगे : गते, गते—हमेशा के लिए विदा हो जाओगे। कैसे तुम कल्पना कर सकते हो इसको बदलने की?

यह कहना कि जीवन बदला जा सकता है, निपट नासमझी की बात है। लेकिन बहुत अच्छा रन गत। है इस बात से। कम्मुनिस्टवादी दृष्टिकोण का अपना एक गहरा आकर्षण है। इसलिए नहीं कि वह सही है—आकर्षण है किसी दूसरे कारण से—क्योंकि वह तुम्हें जिम्मेवार नहीं ठहराता है, यही उसका आकर्षण है। तुम्हारे अतिरिक्त हर चीज जिम्मेवार है; तुम तो बस एक शिकार हो! 'पूरा जीवन जिम्मेवार है। तो जीवन को बदलना है।' साधारण मन को यह बात अच्छी लगती है, क्योंकि मन जिम्मेवारी नहीं लेना चाहता।

जब भी तुम दुखी होते हो तो तुम जिम्मेवारी किसी दूसरे पर डाल देना चाहते हो—कोई भी चलेगा, कोई भी बहाना चलेगा—तुम निर्भार हो जाते हो। तुम्हें लगता है : तुम इस आदमी की वजह से दुखी हो—या इस स्त्री की वजह से, या इस समाज की, इस सरकार की, इस सामाजिक ढांचे की, इस अर्थव्यवस्था की वजह से दुखी हो—या, अंततः ईश्वर या भाग्य जिम्मेवार है। ये सभी कम्मुनिस्टवादी दृष्टिकोण हैं। जैसे ही तुम जिम्मेवारी दूसरों पर डाल देते हो, तुम कम्युनिस्ट हो जाते हो, तुम फिर धार्मिक नहीं रहते।

अगर तुम ईश्वर पर भी जिम्मेवारी डालते हो, तो भी तुम कम्मुनिस्ट हो। मुझे समझने की कोशिश करना, क्योंकि कम्युनिस्ट तो ईश्वर में विश्वास नहीं करते, लेकिन किसी दूसरे पर जिम्मेवारी डालने का पूरा दृष्टिकोण ही कम्मुनिस्टवादी दृष्टिकोण है—तब तो ईश्वर को ही बदलना पड़ेगा।

यही तो लोग कर रहे हैं मंदिरों में. वे वहा जाते हैं और प्रार्थना करते हैं ईश्वर से कि वह बदले। वे लोग बिलकुल कम्युनिस्ट हैं। वे छिपे होंगे धार्मिक वस्त्रों में, लेकिन वे हैं कम्मुनिस्ट। वे क्या प्रार्थना कर रहे हैं? वे कह रहे हैं ईश्वर से, 'ऐसा करो, वैसा मत करो', 'मेरी पत्नी बीमार है, उसको ठीक कर दो।' तुम कह रहे हो अस्तित्व से कि अस्तित्व जिम्मेवार है! तुम शिकायत कर रहे हो; गहरे में तुम्हारी प्रार्थना एक शिकायत ही है। शायद तुम बहुत विनम्रतापूर्वक कह रहे हो, लेकिन तुम्हारी विनम्रता झूठी है। तुम शायद स्तुति कर रहे हो उसकी, लेकिन गहरे में तुम कह रहे हो, 'तुम ही जिम्मेवार हो—अब कुछ करो!'

इस दृष्टिकोण को मैं कम्मुनिस्टवादी दृष्टिकोण कहता हूं। कम्मुनिस्टवादी दृष्टिकोण से मेरा मतलब है वह दृष्टिकोण जो कहता है, 'मैं जिम्मेवार नहीं हूं मैं तो शिकार हूं। सारा जीवन जिम्मेवार है।' धार्मिक दृष्टिकोण कहता है, 'जीवन तो केवल प्रतिबिंबित करता है।'

जीवन कोई कर्ता नहीं है, वह एक दर्पण है। वह तुम्हारे प्रति कुछ कर नहीं रहा है, क्योंकि वही जीवन बुद्ध पुरुष के साथ अलग ढंग से व्यवहार करता है। जीवन वही है, तुम्हारे साथ वह अलग ढंग से व्यवहार करता है। दर्पण वही है, लेकिन जब तुम आते हो दर्पण के सामने तो वह तुम्हारे चेहरे को प्रतिबिंबित करता है। और यदि तुम्हारा चेहरा बुद्ध पुरुष का चेहरा नहीं है, तो दर्पण क्या कर सकता है? जब बुद्ध पुरुष आते हैं दर्पण के सामने तब दर्पण उनके बुद्धत्व को प्रतिबिंबित करता है। मैं तुम से यह इसलिए कह रहा हूं, क्योंकि मेरा भी अनुभव यही है। जब तुम्हारा चेहरा बदलता है तो दर्पण में प्रतिबिंब भी बदल जाता है; क्योंकि दर्पण की कोई निर्धारित दृष्टि नहीं है। दर्पण तो बस प्रतिबिंबित कर रहा है। वह अपनी तरफ से कुछ नहीं कहता। वह तो बस प्रतिबिंबित करता है—वह तुम्हें ही तुम्हारे सामने प्रकट कर देता है। यदि जीवन में दुख है, तो जरूर तुम ने शुरू की होगी श्रृंखला। यदि हर कोई तुम्हारे विरुद्ध है, तो तुम्हीं ने शुरू की होगी श्रृंखला। यदि हर कोई शत्रुता अनुभव करता है, तो तुमने ही शुरू की होगी श्रृंखला।

कारण को बदलों। और कारण तुम हो। धर्म तुमको ही जिम्मेवार ठहराता है—और इस तरह धर्म तुमको स्वतंत्रता देता है, क्योंकि तब चुनने की स्वतंत्रता तुम्हारी अपनी है। दुखी होना है या सुखी होना है, यह तुम पर निर्भर करता है। इस बात से किसी दूसरे का कोई संबंध नहीं है। संसार तो वैसा ही रहेगा; तुम शुरू कर सकते हो नृत्य करना, और तब सारा संसार तुम्हारे साथ नृत्य करने लगता है।

एक प्रसिद्ध कहावत है कि जब तुम रोते हो तो तुम अकेले रोते हो, जब तुम हंसते हो तो सारा संसार तुम्हारे साथ हंसता है। नहीं, यह बात भी सच नहीं है। जब तुम रोते हो तो सारा संसार प्रतिबिंबित करता है तुम्हारे रोने को। और जब तुम हंसते हो, तो सारा संसार तुम्हारे हंसने को प्रतिबिंबित करता है। जब तुम रोते हो, तब सारा संसार रोता हुआ मालूम पड़ता है। जब तुम उदास होते हो, तब जरा देखना चांद की तरफ—चांद उदास मालूम पड़ता है; जरा देखना तारों की तरफ—वे घोर निराशा में डूबे हुए मालूम पड़ते हैं; देखना नदी की ओर—लगता है कि वह बह नहीं रही है, उदास है, अंधेरे में खोई हुई

है। जब तुम प्रसन्न होते हो, तब जरा देखना चांद की तरफ—वह मुस्कुरा रहा होता है; और वही तारे नाच—गा रहे होते हैं, और वही नदी बह रही होती है गुनगुनाते हुए; सारा विषाद, सारी उदासी खो जाती है।

न कहीं कोई नरक है और न कहीं कोई स्वर्ग है। जब तुम्हारे भीतर स्वर्ग होता है, तो इसी संसार में... और यही एकमात्र संसार है। स्मरण रखना, दूसरा और कोई संसार नहीं है। जब तुम भीतर स्वर्ग से भरे होते हो, तो संसार उसे प्रतिबिंबित करता है। जब तुम नरक से भरे होते हो, तो संसार कुछ नहीं कर सकता इसमें, वह उसे ही प्रतिबिंबित करता है।

यदि तुम स्वयं को जिम्मेवार अनुभव करते हो, तो तुमने धर्म की दिशा में बढ़ना शुरू कर दिया है। धर्म विश्वास करता है व्यक्तिगत क्रांति में। दूसरी कोई क्रांति क्रांति नहीं है। बाकी सब क्रांतिया झूठी हैं, नकली हैं। ऐसा लगता है कि बहुत बदलाहट हो रही है, लेकिन कुछ बदलता नहीं। बड़ा शोरगुल मचता है बदलाहट का, लेकिन कहीं कुछ बदलता नहीं। कोई बदलाहट संभव नहीं है, जब तक तुम स्वयं नहीं बदल जाते।

ये सूत्र इसी जिम्मेवारी की खबर देते हैं—व्यक्तिगत जिम्मेवारी की। शुरू—शुरू में तुम थोड़ा बोझ सा अनुभव करोगे—कि मैं जिम्मेवार हूं—और तुम इसे किसी दूसरे पर नहीं डाल सकते। लेकिन ठीक से समझ लो कि यदि तुम जिम्मेवार हो, तो थोड़ी आशा है; कुछ तुम कर सकते हो। यदि दूसरे जिम्मेवार हैं तब तो कोई आशा भी नहीं, क्योंकि क्या कर सकते हो तुम? तुम ध्यान करोगे, लेकिन दूसरे लोग झंझटें खड़ी करते रहेंगे, तुम दुखी के दुखी रहोगे। तुम बुद्ध हो जाओ, तो भी संसार नरक बना रहेगा। तुम दुखी होओगे। शुरू—शुरू में प्रत्येक स्वतंत्रता बोझ जैसी लगती है। इसीलिए लोग स्वतंत्रता से डरते हैं।

एरिक फ्रॉम ने एक सुंदर पुस्तक लिखी है, 'दि फिअर ऑफ फ्रीडम'—स्वतंत्रता का भय। मुझे यह शीर्षक बहुत अच्छा लगा। लोग इतने ज्यादा भयभीत क्यों हैं स्वतंत्रता से? होना तो इसके विपरीत चाहिए; उन्हें स्वतंत्रता से भयभीत नहीं होना चाहिए। बल्कि उलटे हम सोचते हैं कि हर कोई स्वतंत्रता चाहता है। लेकिन मेरे देखने में भी ऐसा आया है कि कहीं गहरे में कोई नहीं चाहता स्वतंत्रता—क्योंकि स्वतंत्रता एक बड़ी जिम्मेवारी है। तब केवल तुम्हीं जिम्मेवार हो। तब तुम किसी दूसरे के कंधों पर जिम्मेवारी नहीं थोप सकते। तब तुम्हारे पास कोई सांत्वना नहीं होती—यदि तुम दुखी हो, तो अपने कारण दुखी हो; तुम्हीं ने निर्मित किया है अपना दुख।

लेकिन उस बोझ के साथ ही एक नया द्वार खुल जाता है. तुम फेंक सकते हो उसे। यदि मैं ही निर्मित कर रहा हूं अपने दुखों को तो मैं उनको निर्मित करना बंद कर सकता हूं। मैं ही पैडल चलाता रहा हूं साइकिल के और मैं थक गया हूं और मैं चाहता हूं कि बंद हो यह, और मैं चलाए जाता हूं

पैडल... मुझे ही पैडल चलाना बंद करना है, और साइकिल रुक जाएगी। कोई और उसे नहीं चला रहा है।

यही गहरे में अर्थ है कर्म के सिद्धात का. कि तुम्हीं जिम्मेवार हो। एक बार तुम समझ लेते हो इस बात को गहरे में कि 'मैं जिम्मेवार है, तो आधा काम पूरा हो गया। वस्तुत: जिस क्षण तुम समझ लेते हो कि 'मैं ही जिम्मेवार हूं उस सब के लिए जिससे मैं दुखी होता रहा या सुखी होता रहा', तो तुम स्वतंत्र हो—समाज से स्वतंत्र, संसार से स्वतंत्र। अब तुम जीने के लिए अपना संसार चुन सकते हो। यही है एकमात्र संसार—ध्यान रखना। लेकिन तुम चुन सकते हो अब। अब तुम नृत्य कर सकते हो और सारा संसार तुम्हारे साथ नृत्य करता है।

पतंजलि के ये सूत्र बहुत महत्वपूर्ण हैं:

जब योगी सुनिश्चित रूप से अहिंसा में प्रतिष्ठित हो जाता है तब जो उसके सान्निध्य में आते हैं वे सब शत्रुता छोड़ देते हैं।

बहुत सी बातो की ओर संकेत है। पहली तो बात, भारत में हमने कभी 'प्रेम' शब्द का प्रयोग नहीं किया है। हम सदा अहिंसा शब्द का प्रयोग करते हैं—अहिसाप्रतिष्ठाया। जीसस 'प्रेम' शब्द का प्रयोग करते हैं, महावीर, पतंजलि, बुद्ध, वे कभी 'प्रेम' शब्द का प्रयोग नहीं करते, वे ' अहिंसा' शब्द का प्रयोग करते हैं। क्यों? 'प्रेम' बेहतर शब्द मालूम पड़ता है, ज्यादा विधायक, ज्यादा काव्यात्मक।’अहिंसा' शब्द काव्यात्मक नहीं है, नकारात्मक है। लेकिन उसमें कुछ सार है। जब तुम कहते हो 'प्रेम', तो उसमें एक सूक्ष्म हिंसा है। जब मैं कहता हूं 'मैं तुम से प्रेम करता हूं, तब मैं अपने केंद्र से सरक चुका होता हूं तुम्हारी ओर। वह हिंसा प्रीतिकर लगती है, तो भी है तो हिंसा ही। पतंजलि कहते हैं, 'अहिंसा।’ यह एक नकारात्मक अवस्था है, एक क्रिया—शून्य अवस्था। मैं इतना ही कहता हूं : 'मैं तुम्हें चोट न पहुंचाऊंगा', बस इतना ही।

प्रेम कहता, 'मैं तुम्हें सुखी करूंगा', जो कि असंभव है। कौन किसे सुखी कर सकता है? प्रेम आश्वासन देता है। सारे आश्वासन झूठे सिद्ध होते हैं। कैसे तुम किसी को सुखी कर सकते हो? यदि हर कोई स्वयं के लिए जिम्मेवार है, तो यह सोचना भी कैसे संभव है कि तुम किसी को सुखी कर सकते हो? जब मैं कहता हूं 'मैं तुम को प्रेम करता हूं,, तो मैं बहुत आश्वासन निर्मित कर रहा हूं मैं तुम्हें बहुत सब्ज—बाग दिखा रहा हूं मैं तुम्हें सपने दे रहा हूं।

नहीं, पतंजलि उस शब्द का उपयोग नहीं करेंगे, क्योंकि गहरे में तो यही कहा जा रहा होता है, 'मैं तुम्हें सुख दूंगा। मेरे निकट आओ; मेरे करीब आओ। मैं तैयार हूं तुम्हें सुखी करने को'—जो

अएसंभव है। कोई किसी को सुखी नहीं कर सकता है। ज्यादा से ज्यादा मैं इतना ही कह सकता हूं 'मैं तुम्हें चोट नहीं पहुंचाऊंगा।' उतनी बात मेरे सामर्थ्य में है कि मैं चोट न पहुंचाऊं। लेकिन मैं कैसे कह सकता हूं कि 'मैं तुम्हें सुखी करूंगा!'

इसीलिए प्रेम में विषाद होता है। प्रेमी परस्पर आश्वासन देते हैं—जाने, अनजाने—सुंदर सपने, स्वर्ग के आश्वासन देते हैं; और प्रत्येक राह देख रहा होता है आश्वासनों के पूरे होने की, और फिर कोई आश्वासन कभी पूरा नहीं होता। कोई सुखी नहीं कर सकता तुम्हें—सिवाय तुम्हारे। जब तुम प्रेम में पड़ते हो, तो पुरुष सोच रहा होता है कि स्त्री उसे एक सुंदर जीवन, एक सम्मोहक, एक अदभुत संसार देगी; और स्त्री भी सोच रही होती है कि पुरुष उसे परम स्वर्ग में ले जाएगा।

लेकिन कोई किसी को कहीं नहीं ले जा सकता। इसीलिए प्रेमी विषाद अनुभव करते हैं; आश्वासन झूठा निकलता है। ऐसा नहीं है कि वे धोखा दे रहे होते हैं एक—दूसरे को, वे स्वयं ही धोखे में होते हैं। ऐसा नहीं है कि वे जान—बूझ कर धोखा दे रहे थे एक—दूसरे को, उन्हें पता नहीं था, उन्हें होश नहीं था कि वे क्या कर रहे हैं।

महावीर, बुद्ध, पतंजलि—वे एक अकाव्यात्मक शब्द का प्रयोग करते हैं।

हालाकि यह अच्छा नहीं लगता है, यह नकारात्मक है। वे कहते हैं, 'हिंसा नहीं' —बस इतना ही! 'मैं तुम्हें चोट नहीं पहुचाऊंगा'—इतनी बात पूरी की जा सकती है। फिर भी कोई पक्की गारंटी नहीं है कि तुम चोट अनुभव नहीं करोगे।'मैं तुम्हें चोट नहीं पहुंचाऊंगा,' बस इतना ही; फिर भी कोई पक्का नहीं है कि तुम चोट अनुभव नहीं करोगे। अभी भी तुम चोट अनुभव कर सकते हो, क्योंकि तुम निर्मित करते हो अपने घाव, तुम निर्मित करते हो अपनी पीड़ा।'मैं उसमें सहयोगी न होऊंगा,' बस इतना ही कह सकते हैं पतंजलि, 'मेरा उसमें कोई हाथ न होगा। मैं तुम्हें चोट नहीं पहुंचाऊंगा।' 'जब योगी सुनिश्चित रूप से प्रतिष्ठित हो जाता है—अहिसा के इस दृष्टिकोण में कि वह किसी को चोट न पहुंचाएगा—तब जो उसके सान्निध्य में आते हैं, वे सब शत्रुता छोड़ देते हैं।'

ऐसा आदमी जो किसी भी प्रकार से हिंसा का विचार नहीं करता, कल्पना नहीं करता—चेतन, अचेतन जिसकी कोई इच्छा नहीं रहती किसी को चोट पहुंचाने की—उसके सान्निध्य में शत्रुता का त्याग घटित होता है।

लेकिन इससे पहले कि तुम यह निष्कर्ष बनाओ और बहुत से प्रश्न खड़े हो जाते हैं। जीसस को सूली दी गई; शत्रुता का भाव नहीं छोड़ा गया! इसलिए अगर तुम जैनों से पूछो, तो वे नहीं कहेंगे कि जीसस बुद्धत्व को उपलब्ध थे, क्योंकि लोगों ने उनको सूली दी। लेकिन यही तो हुआ महावीर के साथ। उनके बुद्धत्व के बाद उनको पत्थर मारे गए। यही हुआ बुद्ध के साथ—हा, उन्हें सूली नहीं दी गई, लेकिन पत्थर मारे गए, अपमानित किया गया। लोगों ने बहुत कोशिशें कीं उन्हें मार डालने की। तो कैसे समझाएं इसे? जैन और बौद्ध—उनके पास इसके लिए व्याख्याएं हैं। जब जीसस की बात आती

है, तो वे कह देते हैं कि वे बुद्धत्व को उपलब्ध नहीं थे—सीधी व्याख्या कर देते हैं, बात समाप्त हो जाती है। लेकिन यदि महावीर की बात आ जाए तो वे कहते हैं कि महावीर अपने पिछले जन्मों का लेन—देन पूरा कर रहे हैं।

दोनों बातें गलत हैं। दोनों गलत हैं, क्योंकि जब कोई बुद्धत्व को उपलब्ध होता है तो वह अपने सारे लेन—देन पूरे कर चुका होता है। उसने सभी कर्म समाप्त कर दिए होते हैं; अब कहीं कुछ शेष नहीं रहता। फिर भी घटनाएं हैं. जीसस को सूली दी गई; सुकरात को जहर पिलाया गया; अलहिल्लाज मंसूर की हत्या की गई, बहुत ही क्रूरता से हत्या की गई; महावीर को पत्थर मारे गए, अपमानित किया गया, गौवों के बाहर खदेड़ा गया; बुद्ध को बहुत बार मार डालने की कोशिशें की गईं। तो फिर पतंजलि के इस सूत्र की व्याख्या कैसे हो? यदि यह सूत्र सत्य है तो ये सब घटनाएं नहीं घटनी चाहिए। यदि ऐसी घटनाएं घटती हैं तो केवल दो संभावनाएं हैं. या तो ये सब—अलहिल्लाज मंसूर, जीसस, महावीर, बुद्ध—ये सब बुद्धत्व को उपलब्ध नहीं हैं, सच में प्रतिष्ठित नहीं हैं अहिंसा में, या फिर नियम के बाहर कुछ अपवाद हैं।

कुछ अपवाद हैं। वस्तुत:, जब भी कोई व्यक्ति अहिंसा में प्रतिष्ठित हो जाता है तो समस्त जीवन—सिवाय मनुष्य के—उसके प्रति बिलकुल अहिंसक हो जाता है। मनुष्य एक विकृत प्राणी है। दर्पण स्वच्छ नहीं है। मनुष्य को छोड़ कर समस्त जीवन... वृक्ष अहिंसक होते हैं बुद्ध पुरुष के प्रति, पशु अहिंसक होते हैं।

ऐसा हुआ कि बुद्ध का एक चचेरा भाई, जो बहुत गहरी ईर्ष्या का भाव रखता था उनके प्रति. व्यर्थ ही, क्योंकि बुद्ध तो किसी के प्रतिद्वंद्वी नहीं थे। लेकिन वह लगातार सोचता रहता, 'बुद्ध कितने महान हो गए हैं और मैं पीछे छूट गया हूं। मैं कुछ भी नहीं, कोई हस्ती नहीं मेरी।' उसने हर ढंग से कोशिश की कुछ शिष्य इकट्ठे कर लेने की और स्वयं को घोषित कर दिया कि मैं बुद्ध हूं लेकिन कोई उसकी सुनता न था। निश्चित ही कुछ बुद्धू जरूर इकट्ठे हो गए थे। आखिर वह बुद्ध के बहुत खिलाफ हो गया; उसने उन्हें मार डालने की कोशिश की।

कहा जाता है कि बुद्ध एक पहाड़ी के निकट वृक्ष के नीचे बैठे ध्यान कर रहे थे, और देवदत्त, बुद्ध के चचेरे भाई ने एक बड़ी चट्टान लुढ़का दी पहाड़ी से। पूरी संभावना थी कि बुद्ध कुचल जाते। लेकिन न जाने कैसे चट्टान ने अपनी राह बदल ली, बुद्ध अछूते ही बैठे रहे। किसी ने पूछा, 'क्या हुआ?' बुद्ध ने कहा, 'एक चट्टान ज्यादा संवेदनशील है देवदत्त से, मेरे भाई से; चट्टान ने अपना मार्ग बदल दिया।'

फिर देवदत्त ने एक पागल हाथी बुद्ध के पीछे छुड़वा दिया। वह हाथी पागल था; वह तेजी से दौड़ता हुआ आया। शिष्य भागे बचने के लिए, वे सब कुछ भूल— भाल गए, और बुद्ध मौन—शात बैठे रहे वृक्ष के नीचे। वह हाथी पास आया, फिर कुछ हुआ—वह बुद्ध के चरणों में झुक गया। लोग बुद्ध से

पूछने लगे, 'क्या हुआ?' उन्होंने कहा, 'एक पागल हाथी भी उतना पागल नहीं है जितना देवदत्त। इस पागल हाथी में भी थोड़ी समझ शेष है।'

जो प्रसिद्ध मनस्विद मनुष्य के मस्तिष्क पर काम कर रहे हैं और गहरी खोज कर रहे हैं उनमें से एक है देलगादो। उसने इलेक्ट्रोड्स को लेकर एक प्रयोग किया है। कुछ ऐसा ही हुआ होगा जब हाथी ठहर गया और झुक गया। देलगादो ने एक बैल के मस्तिष्क में इलेक्ट्रोड्स लगा दिए। उन इलेक्ट्रोड्स को रेडियो, वायरलेस द्वारा दूर से संचालित किया जा सकता था। हजारों लोग इकट्ठे हुए थे देखने के लिए। उसने दबाया बटन और मस्तिष्क का वह केंद्र सक्रिय हो गया जहां से क्रोध उठता था : बैल क्रोध से पागल हो गया। वह क्रोध से भड़क उठा और दौड़ा देलगादो की ओर'। लोगों की

सांसें थम गईं, क्योंकि मौत सुनिश्चित थी। बस एक कदम की दूरी, देलगादो ने दूसरा बटन दबाया—और अचानक ही कुछ हुआ भीतर, और बैल रुक गया! बस एक कदम की दूरी, मौत एक कदम दूर थी।

देलगादो ने तो ऐसा किया विद्युत उपकरणों द्वारा, लेकिन ऐसा ही कुछ हुआ होगा. बुद्ध ने नहीं किया कुछ, लेकिन तो भी कुछ हुआ—स्व गहरी अहिंसा, एक सहज उगेरणा, कुछ हुआ हाथी के मस्तिष्क में। वह पागल न रहा; उसने समझा। कोई अनुभूति हुई उसको; वह रुक गया, झुक गया।

मनुष्यता अब सम्यक दर्पण नहीं रही है। मनुष्यता उतनी शुद्ध नहीं है जितनी कि अनुगूंज करती घाटियां। मनुष्यता विकृत हो गई है, इसलिए यह संभव नहीं है। मैं पिछले जन्मों को लेकर कोई व्याख्या नहीं खोजता। मैं कोई व्याख्या नहीं करता कि जीसस बुद्ध पुरुष नहीं थे। नहीं, असली बात यह है कि जीवन केवल तभी प्रतिबिंबित कर सकता है जब वह जीवंत हो। आदमी मुर्दा हो गया है। तुम्हारी संवेदनशीलता मर गई है। यदि तुम बुद्ध से मिलने भी आते हो, तो तुम्हें कुछ ज्यादा अनुभूति नहीं होती। तुम कहते हो. बुद्ध भी वैसे हैं जैसे कि कोई और आदमी।

निश्चित ही, हड्डियां वैसी ही हैं और चमड़ी वैसी ही है और शरीर वैसा ही है। परिधि पर सब कुछ वैसा ही है—लेकिन केंद्र पर, वह ज्योति कौन है? लेकिन तुम उसे केवल तभी अनुभव कर सकते हो, जब तुमने उसे अपने भीतर अनुभव किया हो। अन्यथा कैसे तुम उसको अनुभव कर सकते हो? तुम बुद्ध को केवल तभी पहचान सकते हो जब तुमने अपने बुद्धत्व को पहचान लिया हो। वहीं से बनता है सेतु। यदि तुमने अपने भीतर के बुद्धत्व को, अपने भीतर की भगवत्ता को नहीं पहचाना है, तो तुम्हारे लिए असंभव है बुद्ध को पहचानना, उनकी अहिंसा को पहचानना, यह पहचानना कि वे पार जा चुके हैं, वे अब तुम्हारे पागलपन का हिस्सा नहीं हैं।

इसीलिए महावीर को पत्थर मारे गए : उन लोगों ने महावीर को पत्थर मारे जो बिलकुल विकृत हो चुके थे। कोई प्राकृतिक नियम उनके साथ काम नहीं करता; अन्यथा नियम तो बिलकुल निश्चित है।

यदि तुम शांत और मौन हो और तुम बुद्ध के पास आते हो, तो अचानक तुम अनुभव करोगे कि तुम्हारे भीतर एक बड़ा परिवर्तन घट रहा है। तुम कोई शत्रुता अनुभव नहीं कर सकते।

इसीलिए तो बुद्ध के पास आने में एक डर लगता है। उनसे दूर रह कर तुम शत्रुता का भाव रख सकते हो। यदि तुम उनके सामने आ जाते हो, तो बात कठिन हो जाती है—बहुत कठिन हो जाती है। अगर तुम उनके सान्निध्य में रहो, तो अगर तुम पागल भी हो, तो संभावना यही है कि उनकी मौजूदगी एक चुंबकीय शक्ति बन सकती है; संभावना यही है कि तुम अपने पागलपन के बावजूद परिवर्तित हो जाओ, रूपांतरित हो जाओ। इसीलिए लोग सदा बुद्ध पुरुषों से बचते रहे हैं—महावीर, पतंजलि, जीसस या लाओत्सु से बचते रहे हैं। वे उनके करीब नहीं आते। वे उनसे संबंधित अफवाहें इकट्ठी करते रहते हैं और उन अफवाहों में विश्वास करने लगते हैं, लेकिन वे पास नहीं आएंगे। वे यह देखने नहीं आएंगे कि क्या हो रहा है।

और फिर जब वे आते हैं, तो उन्होंने इतना कूड़ा—कचरा इकट्ठा कर लिया होता है, इतनी ज्यादा गंदगी घिर चुकी होती है उनके आस—पास, कि वे पहले से ही मुर्दा होते हैं। उनके इतने पूर्वाग्रह होते हैं कि उनका दर्पण अब काम ही नहीं करता। उनका दर्पण धूल से ढंका होता है। निश्चित ही एक

दर्पण प्रतिबिंबित करता है, लेकिन यदि वह धूल से ढंका हो तो तुम उसमें देखते रहो पर तुम्हारा चेहरा प्रतिबिंबित न होगा।

पशु, पेड़, पक्षी—उन्होंने भी महसूस किया। ऐसा कहा जाता है कि जब बुद्ध बुद्धत्व को उपलब्ध हुए तो बिना मौसम के फूल खिल उठे। और ऐसा केवल बुद्ध के साथ ही नहीं हुआ; ऐसा बहुत बार हुआ है। यह कोई कपोल—कल्पना नहीं है। वृक्ष इतना आह्लादित हो गया...! इसीलिए बौद्ध सुरक्षित रखे हुए हैं उस वृक्ष को, बोधि—वृक्ष को, जिसके नीचे बुद्ध बुद्धत्व को उपलब्ध हुए। कुछ तरंगें उसने—वह साक्षी रहा है संसार की महानतम घटना का। केवल एक वही साक्षी बचा है। उसके पास असली इतिहास है, कि उस रात क्या घटित हुआ जब बुद्ध बुद्धत्व को उपलब्ध हुए।

अब वैज्ञानिक कहते हैं कि बोधि—वृक्ष संसार का सर्वाधिक बुद्धिमान वृक्ष है। उसमें कुछ ऐसे रसायन हैं जो बुद्धि के लिए नितांत आवश्यक हैं, जिनके बिना बुद्धि का विकास नहीं हो सकता है। दूसरे अनेक वृक्ष हैं, लेकिन बोधि—वृक्ष के समान नहीं हैं। उसमें उन रासायनिक तत्वों की प्रचुर मात्रा है जो मस्तिष्क को बुद्धिमान बनाते हैं। शायद वह संसार का सर्वाधिक बुद्धिमान वृक्ष है। वह साक्षी रहा है बुद्ध के दूसरे ही आयाम में खिल उठने का। उसने अस्तित्व के उच्चतम शिखर— क्षण को जाना है।

लेकिन मनुष्य का दर्पण धूल से ढंक गया है—विश्वासो की धूल, विचारों की धूल, सिद्धांतो की धूल। अभी दो—तीन दिन पहले एक परिवार ने संन्यास लिया। परिवार के छोटे लड़के ने भी संन्यास लिया। मैंने उसे सर्वाधिक सुंदर नामों में से एक नाम दिया—स्वामी कृष्ण भारती। लेकिन वह बोला, 'नहीं, यह तो लड़कियों जैसा नाम है।' कृष्ण! वह परिवार जैन है; वे कृष्ण के प्रति कोई भाव अनुभव नहीं करते।

वह नाम लड़कियों जैसा लगता है। कृष्ण जरूर जैनियों को लड़कियों जैसे लगते होंगे—उनके वस्त्र पहनने का ढंग, उनका नृत्य, उनका चेहरा, लंबे बाल! यह तो अच्छा है कि वे पुराने दिनों में हुए। अगर वे अभी हुए होते तो किसी सरकार ने काट दिए होते उनके बाल। लंबे बालों और बांसुरी के साथ तो वे हिप्पी लगते। तो वह लड़का कहने लगा, 'यह नाम। लड़कियों जैसा है। मुझे कुछ और कहें, कोई और नाम दें।'

अगर जैन आए कृष्ण से मिलने, तो वह नहीं पहचान पाएगा। अगर हिंदू मिले महावीर से, तो वह नहीं पहचान पाएगा। विश्वास, धारणाएं, ये सब तुम्हारे आस—पास इकट्‌ठी हो गई धूल हैं —तुम देख नहीं सकते ठीक से, तुम्हारी दृष्टि खो गई है। अगर तुम मुसलमान हो तो तुम गीता नहीं पढ़ सकते। अगर तुम हिंदू हो तो तुम कुरान नहीं पढ़ सकते—असंभव है—क्योंकि सदा तुम्हारा हिंदू होना बीच में आ जाएगा।

गांधी, जो कि कहा करते थे कि सभी धर्म समान हैं, उन्होंने भी कुरान के वही उद्‌धरण चुने जो बिलकुल अनुवाद लगते हैं—गीता के अनुवाद मालूम पड़ते हैं; बाकी उद्‌धरण उन्होंने छोड़ दिए। उन्होंने गीता पढ़ी और कुरान पढ़ी और वे अंश चुन लिए जो उनकी विचारधारा के साथ मेल खाते थे और फिर वे कहते हैं कि सब ठीक है। लेकिन उन्होंने असली अंश, जो विपरीत पड़ते हैं गीता के, जो कुरान को कुरान बनाते हैं, वे उन्होंने छोड़ दिए!

विश्वासों, विचारों, धारणाओं, सिद्‌धांतो से लदा मन पंगु होता है—गति क़े लिए मुक्त नहीं होता—बंद होता है, बंधन में होता है, गुलाम होता है। और बुद्‌ध को देखने के लिए, जानने के लिए

तुम्हें एक उन्मुक्त मन चाहिए—स्व निर्मल मन चाहिए—कोई बंधन नहीं, कोई पूर्वाग्रह नहीं; कोई विश्वास—धारणाएं उसे घेरे हुए न हों।

यह सूत्र बिलकुल ठीक है : 'जब योगी सुनिश्चित रूप से अहिंसा में प्रतिष्ठित हो जाता है, तब जो उसके सान्निध्य में आते हैं, वे सब शत्रुता छोड़ देते हैं।'

अचानक एक प्रेम उमड़ आता है—बिना किसी प्रकट कारण के। बस उनकी उपस्थिति काम करती है, उनके होने का ढंग ही ऐसा होता है कि तुम उनके ऊर्जा— क्षेत्र में प्रवेश करते हो, और तुम फिर वही नहीं रह जाते। इसीलिए ऐसे व्यक्तियों के सामने साधारण लोगों को तो सदा ऐसा ही लगता है कि वे किसी भांति सम्मोहित हो जाते हैं। कोई सम्मोहित नहीं कर रहा होता है तुम्हें, तो भी सम्मोहन घटता है। उनकी उपस्थिति ही शीतल होती है। उनकी उपस्थिति तुम्हें शात कर देती है; तुम्हारा भीतरी शोरगुल बंद हो जाता है उनकी मौजूदगी में। तुम अपने को पहले जैसा अनुभव नहीं करते; तुम अपने को बदला हुआ अनुभव करते हो। जब तुम वापस लौट आते हो अपने घर, फिर तुम वैसे ही हो जाते हो, पहले जैसे ही। तब तुम पीछे विचार करते हो कि तुम सम्मोहित हो गए थे या कि क्या हुआ था?

कोई सम्मोहित नहीं कर रहा है, तो भी ऐसा सदा लगता रहा है कि बुद्ध सम्मोहित करते हैं, जीसस सम्मोहित करते हैं। कोई नहीं सम्मोहित कर रहा है तुमको, लेकिन उनकी उपस्थिति ही इतनी शांति देने वाली होती है कि तुम नींद सी अनुभव करने लगते हो। तुम न जाने कब से ठीक से सोए नहीं हो, उनकी उपस्थिति तुम्हें शिथिल करती है, एक विश्राम देती है। उनके ऊर्जा— क्षेत्र की छांव में कुछ जो अप्रकट था प्रकट हो जाता है और जो प्रकट था पीछे चला जाता है। तुम वही नहीं रहते; तुम्हारा सारा ढंग बदल जाता है।

अगर तुम इस प्रक्रिया को समझ सको तो तुम हिंदुओं के शब्द 'सत्संग' को समझ सकते हो। बस, बुद्ध पुरुष की मौजूदगी में होना। किसी और चीज की जरूरत नहीं है। पश्चिम करीब—करीब असमर्थ है इसे समझने में कि केवल मौजूदगी ही काफी है। सत्संग का अर्थ है, जिसने सत्य को पाया है, उसकी मौजूदगी में रहना—उसके साथ होना, उसके ऊर्जा— क्षेत्र में होना, उसकी तरंगों को आत्मसात करना।

उस अंतिम रात्रि, जब जीसस अपने मित्रों से विदा ले रहे थे, उन्होंने रोटी के टुकड़े अपने शिष्यों को दिए और कहा, 'खाओ इसे; यह मैं हूं।' ऐसा संभव है। जब जीसस जैसा व्यक्ति अपने हाथ में रोटी लेता है, तो वह रोटी फिर वही नहीं रहती; वह दिव्य हो जाती है। और जब जीसस कहते हैं, 'यह मैं हूं' तो उनका मतलब यही है। गुरु की मौजूदगी में होना उन्हें भोजन के रूप में ग्रहण करने जैसा ही है।

असल में पुराने हिंदू शास्त्र कहते हैं कि सदगुरु के साथ होना उसके गर्भ में, उसके अंतर्गर्भ में होना है। वह ऊर्जा— क्षेत्र गुरु का गर्भ होता है। और जब तुम उस गर्भ में होते हो, तब तुम बदलने लगते हो, परिवर्तित होने लगते हो, रूपांतरित होने लगते हो। एक नई अंतस सत्ता का जन्म होता है। गुरु के द्वारा व्यक्ति एक नए जन्म को उपलब्ध होता है—वह 'द्विज' हो जाता है। उसका दोबारा जन्म होता है। एक जन्म मिलता है माता—पिता से—वह है शरीर का जन्म। एक और जन्म मिलता है गुरु से—वह है आत्मा का जन्म।

बुद्ध के निकट होना, उनकी मौजूदगी में होना बुद्ध होने के मार्ग पर होना है। किसी और चीज की जरूरत नहीं होती। अगर तुम आत्मसात कर सको उस मौजूदगी को, अगर तुम उस मौजूदगी को अपने में प्रवेश होने दो, अगर तुम चेष्टाविहीन रह सको उस मौजूदगी में, उसे भीतर आने दो, ग्रहणशील रहो, तो सब कुछ अपने आप घटित होगा।

हिंदुओं के पास दो शब्द हैं। एक तो है 'सत्संग', जिसे समझना करीब—करीब असंभव है पश्चिमी लोगों के लिए क्योंकि 'वे कहते हैं कि कोई शिक्षा होनी चाहिए। हिंदू कहते हैं. मौजूदगी पर्याप्त है, किसी और शिक्षा की जरूरत नहीं है। दूसरा शब्द है 'दर्शन'। उसे समझना भी कठिन है : सदगुरु को देखना भर पर्याप्त है। दर्शन का अर्थ है : देखना।

पश्चिम से लोग आते हैं मेरे पास, वे बहुत से प्रश्न लेकर आते हैं। जब वे यहां कुछ दिन रह जाते हैं तो वे समझ जाते हैं; तब वे अनुभव करने लगते हैं कि प्रश्न व्यर्थ हैं। तब वे आते हैं और कहते हैं, 'मेरे पास कहने को, पूछने को कुछ नहीं है; बस यहां रहना है।' उन्हें थोड़ा समय लगता है यह समझने में कि मेरे साथ होना ही पर्याप्त है।

प्रश्न लेकर आना एक बाधा लेकर आना है। प्रश्नों को साथ लाना, बाधाओं को साथ लाना है। बिना प्रश्नों के आना—कुछ पूछना नहीं, मात्र यहां होना—यह है बिना अवरोध, बिना किसी बाधा के आना। तब ऊर्जा बहती है, मिलती है, एक हो जाती है—तुम मेरे अंतर्गर्भ का हिस्सा बन सकते हो, मैं तुममें प्रवाहित हो सकता हूं। लेकिन यदि तुम्हारे पास प्रश्न हैं तो बुद्धि बीच में आ जाती है। जब तुम्हारे पास प्रश्न नहीं होते, तब तुम्हारी अंतस सत्ता उपलब्ध होती है; तुम खुले होते हो, ग्राहक होते हो, संवेदनशील होते हो।

जब योगी सुनिश्चित रूप से सत्य में प्रतिष्ठित हो जाता है तब वह बिना कर्म किए भी फल प्राप्त कर लेता है।

यह और भी कठिन है। जब योगी सत्य में प्रतिष्ठित हो जाता है: 'सत्यप्रतिष्ठाया।' तुम्हें शुरुआत से ही सजग रहना है कि जब पूरब के शास्त्र 'सत्य' कहते हैं, तो उनका अर्थ केवल सत्य बोलने से नहीं है। नहीं; सत्य में प्रतिष्ठित होने का अर्थ है : प्रामाणिक होना, स्वयं होना—झूठ का, नकलीपन का एक कण भी भीतर न रहे। निश्चित ही, ऐसा व्यक्ति सत्य ही बोलता है, लेकिन उसकी बात नहीं है। ऐसा व्यक्ति जीता है सत्य में—असली बात यह है।

पश्चिम में सत्य का अर्थ है सत्य बोलना, बस इतना ही। पूरब में इसका अर्थ है—सत्य होना। सत्य बोलना तो अपने आप चला आएगा, उसका सवाल नहीं है—वह छाया है—लेकिन सत्य में प्रतिष्ठित होने का अर्थ है पूरी तरह 'स्वयं' होना, कोई मुखौटा नहीं, कोई पर्सनैलिटी नहीं, बस तुम जैसे हो प्रामाणिक रूप से वैसे होना।

यह शब्द 'पर्सनैलिटी' बहुत अर्थपूर्ण है। यह आता है ग्रीक मूल 'पर्सोना' से। पर्सोना का अर्थ होता है मुखौटा। ग्रीक नाटक के कलाकार मुखौटे का उपयोग करते थे जिन्हें 'पर्सोना' कहा जाता था। वास्तविकता पीछे छिपी रहती है और पर्सोना ही लोगों के सामने आता है—चेहरे के रूप में।

तो बिना किसी ओढ़े हुए व्यक्तित्व के, बस अपने मौलिक स्वरूप में.. झेन गुरु कहते हैं : 'अपना चेहरा खोजो—अपना मौलिक चेहरा खोजो।' यही है ध्यान का कुल अर्थ। वे अपने शिष्यों से कहते हैं, 'पीछे लौटो, और खोजो वह चेहरा जो तुम्हारे जन्म से पहले था। वही है सत्य।' तुम्हारे जन्म से पहले!

क्योंकि जैसे ही तुम पैदा होते हो, झूठ की शुरुआत हो जाती है। जिस क्षण तुम परिवार का हिस्सा बनते हो, तुम एक झूठ का हिस्सा हो गए। जिस क्षण तुम समाज का हिस्सा बनते हो, तुम एक ज्यादा बड़े झूठ का हिस्सा हो गए। सारे समाज झूठ हैं—सुंदर ढंग से सजे हैं, पर झूठ हैं। तुम्हें खोज लेना है वह चेहरा जो तुम्हारे पास इस संसार में आने से पहले था—वह मौलिक कुंआरापन।

तुम्हें पीछे लौटना है, भीतर जाना है। अपने केंद्र तक पहुंचना है, अपनी अंतस सत्ता तक आना है, जिसके पार जाने की फिर कोई संभावना नहीं रह जाती है। हर चीज को हटाते जाना है : तुम शरीर नहीं हो, शरीर बदलता रहता है; तुम मन नहीं हो, मन एक सतत प्रवाह है—विचार, विचार और विचार—स्व प्रवाह। तुम भावनाएं नहीं हो, वे आती हैं और चली जाती हैं। तुम तो वह हो जो सदा रहता है और देखता रहता है। शरीर आता है और जाता है; मन आता है और जाता है। वह जो सदा मौजूद रहता है पीछे छिपा, वही है सत्य। वही होने का अर्थ है : सत्यप्रतिष्ठाया—वह जो सत्य में प्रतिष्ठित हो जाता है।

'वह बिना कर्म किए भी फल प्राप्त कर लेता है।'

यहां तुम लाओत्सु की बात समझ सकते हो : अगर तुम अपने आंतरिक सत्य में प्रतिष्ठित हो जाते हो तो तुम्हें कुछ करने की जरूरत नहीं रह जाती, चीजें अपने आप घटती हैं। ऐसा नहीं है कि तुम बस लेटे रहते हो अपने बिस्तर पर और सोए रहते हो; नहीं। लेकिन तुम कर्ता नहीं रहते। तुम सब कुछ करते हो, लेकिन तुम कर्ता नहीं रहते। अस्तित्व ही तुम्हारे माध्यम से करता है। तुम अस्तित्व को उपलब्ध हो जाते हो, एक माध्यम हो जाते हो। जिसे कृष्ण कहते हैं 'निमित्त' : समग्र के निमित्त मात्र हो जाते हो—वह प्रवाहित होता है तुमसे और काम करता है। तुम्हें परिणाम की चिंता करने की कोई जरूरत नहीं; तुम्हें कोई योजना बनाने की चिंता करने की जरूरत नहीं। तुम जीते हो क्षण में, वर्तमान में, और संपूर्ण अस्तित्व तुम्हारा ध्यान रखता है और सब कुछ ठीक ही होता है।

एक बार तुम अपनी अंतस सत्ता में प्रतिष्ठित हो जाते हो, तो तुम संपूर्ण अस्तित्व में प्रतिष्ठित हो जाते हो, क्योंकि तुम्हारी अंतस सत्ता समग्र अस्तित्व का एक हिस्सा है। तुम्हारा चेहरा समाज का हिस्सा है और तुम्हारा व्यक्तित्व संसार का हिस्सा है; तुम्हारी अंतस सत्ता समग्र अस्तित्व का हिस्सा है। अपने आत्यंतिक केंद्र में तुम परमात्मा हो। सतह पर तुम चोर हो सकते हो, सतह पर तुम साधु हो सकते हो; भले आदमी हो सकते हो, बुरे आदमी हो सकते हो; अपराधी हो सकते हो, जज हो सकते हो—हजारों तरह के नाटक, खेल—लेकिन गहरे में तुम परमात्मा हो। जब तुम उस भगवत्ता में स्थित हो जाते हो, तो समग्र अस्तित्व तुम्हारे द्वारा काम करने लगता है।

क्या तुम देखते नहीं? किसी पेड़ को कोई चिंता नहीं होती फूलों की, वे बस खिलते हैं। किसी नदी को फिक्र नहीं होती सागर तक पहुंचने की, वह कभी पागल नहीं होती और कभी किसी मनस्विद के पास

नहीं जाती सलाह—मशविरा करने के लिए। वह बस सहज रूप से पहुंच जाती है सागर तक। तारे घूम रहे हैं। हर चीज चल रही है इतने सहज रूप से, कहीं कोई गड़बड़ी नहीं होती और कभी

कोई भटकता नहीं। केवल आदमी ही चिंताओं का इतना बोझ ढोए रहता है : कि क्या करे, क्या न करे; क्या अच्छा है और क्या बुरा है; मंजिल तक कैसे पहुंचें, प्रतियोगिता में कैसे सफल हों—दूसरों को पहुंचने से कैसे रोकें और सबसे पहले कैसे पहुंचें—कैसे कुछ हो जाएं! बुद्‌ध ने इसे कहा है तन्हा का रोग, तृष्णा का रोग।

जो सत्य में प्रतिष्ठित हो जाता है उसका होना हो ही गया। अब कोई रोग नहीं बच रहता कुछ होने का; वह हो गया जो होना था। कुछ होने की कोशिश है रोग; अपने में होना है स्वास्थ्य। और अंतस सत्ता अभी इसी क्षण उपलब्ध है अगर तुम भीतर मुड़ जाओ। भीतर देखने भर की बात है।

मैंने एक झेन फकीर के बारे में सुना है। बुद्‌धत्व को उपलब्ध होने के पहले वह सरकारी दफ्तर में एक छोटा—मोटा अफसर था। वह अपने गुरु के पास आया और वह भिक्षु हो जाना चाहता था, वह त्याग देना चाहता था संसार को। गुरु ने कहा, 'इसकी कोई जरूरत नहीं, क्योंकि अंतस सत्ता को कहीं भी रह कर पाया जा सकता है। आश्रम में आने की कोई जरूरत नहीं। वहीं रह कर बुद्‌धत्व उपलब्ध हो सकता है जहां तुम हो। वहीं रहो, वहीं उसको घटित होने दो।'

वह ध्यान करने लगा, और यही ध्यान था—मौन बैठना, कुछ न करना। विचार आते और चले जाते। वह बस देखता रहता, न निंदा करता, न प्रशंसा करता—कोई मूल्यांकन नहीं—केवल देखता रहता उन्हें निर्लिप्त, तटस्थ।

वर्षों बीत गए। एक दिन वह अपने आफिस में बैठा था, कुछ आफिस का काम कर रहा था। अचानक—बरसात के दिन थे—जोर से बिजली कड़की और एक झटका लगा उसे, और वह अपने अंतरतम केंद्र में उतर गया : और वह हंसने लगा। और ऐसा कहा जाता है कि फिर उसने कभी बंद नहीं किया हंसना। वह हंसते हुए गया गुरु के पास और उसने कहा, 'बादलों का अचानक गरजना और मैं जाग गया। मैंने भीतर देखा और वह सनातन पुरुष भीतर वहा विराजमान था। खोजता था जन्मों—जन्मों से जिसे, वह भीतर ही बैठा था शांत और तृप्त!'

बादलों का अचानक गरजना। अगर तुम तैयार हो तो कोई भी चीज बहाना बन सकती है। गुरु की एक पुकार, गुरु की एक चोट, गुरु की एक दृष्टि—बादलों का अचानक गरजना—और कुछ हो जाता है।. तुम वही हो जिसे तुम खोजते रहे हो। भीतर मुड़ कर देखने भर की बात है। तुम अपने आत्यंतिक केंद्र में स्थित हो जाते हो। और फिर तुम समग्र के माध्यम हो जाते हो, समग्र तुमसे होकर बहता है—और समग्र के माध्यम हो जाना ही सब कुछ है। फिर और कुछ नहीं बचता। तब तुम्हारी नदी बहती है सागर की ओर, तुम्हारे वृक्ष पर वसंत आ जाता है, फूल खिलने लगते हैं।

'जब योगी सुनिश्चित रूप से सत्य में प्रतिष्ठित हो जाता है, तब वह बिना कर्म किए भी फल प्राप्त कर लेता है।'

तब करने को कुछ नहीं बचता; हर चीज घटती है। ऐसा नहीं कि तुम कुछ करते नहीं—ध्यान रहे इस बात का—समग्र अस्तित्व तुम्हारे माध्यम से करता है; तुम करने वाले नहीं होते।

जब योगी सुनिश्चित रूप से अस्तेय में प्रतिष्ठित हो जाता है तब आंतरिक समृद्धियां स्वयं उदित होती हैं।

तुम सदा ही खजानों की खोज में रहे हो और वे कहीं मिलते नहीं, और वे मृग—मरीचिकाए सिद्ध होते हैं, और वे दूर दिखते हैं और लंबी यात्राओं के बाद जब तुम वहां पहुंचते हो तो वे ओझल हो जाते हैं—क्योंकि असली खजाना तो तुम्हारे भीतर छिपा है। वह तुम स्वयं हो! और कोई खजाना नहीं है, तुम्हीं हो खजाना।

जब कोई अस्तेय में प्रतिष्ठित हो जाता है. 'अस्तेयप्रतिष्ठाया।' अस्तेय शब्द का ठीक—ठीक अर्थ है—अचौर्य। इस बात को ठीक से समझ लेना है। ईमानदारी शब्द वही अर्थ नहीं रखता। निश्चित ही ईमानदारी एक हिस्सा है अचौर्य का, बहुत से हिस्सों में एक हिस्सा, लेकिन अचौर्य बड़ी अलग बात है। तुम शायद चोर नहीं हो, लेकिन अगर तुम्हें दूसरों की संपत्ति देख कर ईर्ष्या होती है तो तुम चोर हो। अगर एक कार गुजरी करीब से और ईर्ष्या पकड़ गई या महत्वाकांक्षा उठ खड़ी हुई, इच्छा उत्पन्न हो गई कार पाने की—तो चोरी हो गई। कोई अदालत तुम्हें नहीं पकड़ सकती, लेकिन उस परम अस्तित्व की अदालत में तुम चोर हो गए; चोरी हो गई।

अचौर्य का अर्थ है. इच्छारहित मन। क्योंकि इच्छाओं के रहते कैसे तुम अ—चोर हो सकते हो? मन और— और चीजों पर मालकियत करने की कोशिश करता है—और जब भी तुम मालकियत जमाना चाहते तो तुम्हें उसे छीनना होता है किसी दूसरे से। यह चोरी है। तुमने वस्तुत: न भी की हो, लेकिन मन तो कर ही चुका होता है चोरी। अचौर्य का अर्थ है वह मन जो ईर्ष्यालु नहीं है, जो प्रतियोगी नहीं है। और फिर एक बड़ी क्रांति घटती है जब यह अचौर्य आ जाता है तुम्हारे अंतस में, तो अचानक तुम अपने खजाने में उतर जाते हो। क्योंकि जब तुम चोर होते हों—प्रतियोगी, महत्वाकांक्षी, ईर्ष्यालु—तो तुम सदा दूसरों के खजानों की तरफ देख रहे होते हो। और तुम अपना खजाना चूक रहे होते हो। दृष्टि सदा बाहर लगी रहती है और दूसरों के खजानों को देखती रहती है. कौन क्या—क्या लिए है, किस के पास क्या—क्या है। जब तुम और की दौड़ में पड़े होते हो तो तुम उसे चूक रहे होते हो जो तुम्हारे पास पहले से ही है। उसी 'और—और' के कारण तुम हमेशा दौड़ते रहते हो और कभी उस शांत भाव—दशा में नहीं होते जहां कि तुम अपनी अंतस सत्ता को आविष्कृत कर सकते हो।

तुम्हारा अपना खजाना एक सुनिश्चित भाव—दशा में ही पाया जा सकता है। और वह भाव—दशा तभी उपलब्ध होती है, जब तुम ईर्ष्यारहित होते हो, जब तुम इसकी फिक्र नहीं कर रहे होते कि दूसरों के पास क्या है। तुम बंद कर लेते हो अपनी आंखें, संसार कोई महत्व नहीं रखता; और की दौड़ अब कुछ अर्थ नहीं रखती : तब अंतस उदघाटित होता है। और दो तरह के लोग होते हैं. एक वे, जो रुचि रखते हैं ज्यादा इकट्ठा करने में; और दूसरे वे, जिन्हें रस है ज्यादा होने में। अगर तुम्हें और—और इकट्ठा करने में रस है—इकट्ठा करने का विषय चाहे कुछ भी हो, उससे कुछ फर्क नहीं पड़ता—तुम धन इकट्ठा किए जा सकते हो, तुम ज्ञान इकट्ठा किए जा सकते हो, तुम मान—सम्मान इकट्ठा किए जा सकते हो, तुम कुछ भी इकट्ठा किए जा सकते हो, लेकिन यदि तुम्हें इकट्ठा करने में रस है, तो तुम चूक जाओगे। क्योंकि इकट्ठा करने के इस निरंतर प्रयास की कोई जरूरत नहीं है, तुम्हारे पास भीतर मौजूद ही है खजाना।

'जब योगी निश्चित रूप से अस्तेय में प्रतिष्ठित हो जाता है, तब आंतरिक समृद्धियां स्वयं उदित होती हैं।'

ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठाया वीर्यलाभ:।

जब योगी निश्चल रूप से ब्रह्मचर्य में प्रतिष्ठित हो जाता है तब तेजस्विता की उपलब्धि होती है।

संस्कृत से अनुवाद करना करीब—करीब असंभव ही है। सदियों —सदियों के परिष्कार से, सदियों—सदियों की आध्यात्मिक खोज से, ध्यान से संस्कृत ने एक सुगंध उपलब्ध की है जो किसी और भाषा के पास नहीं है। उदाहरण के लिए, इस 'ब्रह्मचर्य' शब्द का अनुवाद करना असंभव है। शाब्दिक रूप से तो इसका अर्थ है : ब्रह्म जैसी चर्या, परमात्मा जैसा आचरण, परमात्मा की भांति होना। लेकिन साधारणतया इसका अनुवाद किया जाता है : 'काम—निरोध।' और दोनों में बहुत बड़ा अंतर है—ब्रह्मचर्य केवल काम—निरोध नहीं है। इसे ठीक से समझ लेना. तुम कामवासना पर रोक लगा सकते हो और हो सकता है तुम ब्रह्मचर्य को उपलब्ध न होओ, लेकिन यदि तुम ब्रह्मचर्य को उपलब्ध हो जाते हो तो तुम्हारी कामवासना अपने आप खो जाती है।

काम—निरोध दमन है, तुम दमन करते हो अपनी काम—ऊर्जा का। और वह दमन कभी रूपांतरण की दिशा में नहीं ले जाता। लेकिन ऐसी विधियां हैं जिनके द्वारा तुम्हारा ब्रह्मरूप तुम्हारे सामने उदघाटित हो जाता है : अचानक कामवासना खो जाती है। ऐसा नहीं कि उसका दमन हो जाता है। उस भगवत्ता में ऊर्जा बिलकुल अलग ही रूप ले लेती है। तुम ब्रह्मचर्य को उपलब्ध हो जाते हो बिना किसी प्रयास के; अगर कोई प्रयास हो तो दमन हो जाएगा। कामवासना का खो जाना परिणाम है ब्रह्मचर्य का। तो कैसे हों ब्रह्मचर्य को उपलब्ध?

'जब योगी निश्चल रूप से ब्रह्मचर्य में प्रतिष्ठित हो जाता है...।'

अगर तुम निश्चित रूप से प्रतिष्ठित हो अहिंसा में, अगर तुम निश्चित रूप से प्रतिष्ठित हो सत्य में, अगर तुम निश्चित रूप से प्रतिष्ठित हो अचौर्य में, तो बहुत सहज होता है परमात्मा की भांति होना, ब्रह्म जैसी चर्या। तुम ही परमात्मा होते हो। जब तुम दूसरों को कोई चोट नहीं पहुंचा रहे होते हो, तुम कोई जंजीरें नहीं बना रहे होते हो; तुम अपने बंधन काट रहे होते हो, तुम मुक्त हो रहे होते हो, जब तुम कोई दिखावा करने की कोशिश नहीं कर रहे होते हो और तुम प्रामाणिक होते हो, जब तुम अपने को मुखौटों में छिपाने की कोशिश नहीं कर रहे होते हो—तुम सच्चे होते हो अपने आत्यंतिक प्राणों तक—तो काम—ऊर्जा रूपांतरित होने लगती है।

क्या तुमने खयाल किया कि जब तुम हिंसक होते हो तो ज्यादा काम—ऊर्जा अनुभव होती है? असल में पति—पत्नी भली— भाति जानते हैं कि जब वे लड़ते—झगड़ते हैं, तो उस रात वे बहुत प्रेम कर सकते हैं। क्यों होता है ऐसा? हिंसा कामवासना पैदा करती है। जितना ज्यादा हिंसक होता है व्यक्ति, उतना ज्यादा वह कामुक होता है। अहिंसा काम—ऊर्जा को रूपांतरित करती है। यदि तुम कोशिश में हो कि किसी को चोट न पहुंचे, अगर तुम्हें किसी को चोट पहुंचाने में कोई रस नहीं है, अगर तुम में गहन प्रेम है, स्नेह है, करुणा है दूसरों के लिए, तो तुम पाओगे कि तुम्हारी कामवासना कम हो रही है।

कामवासना एक खास वातावरण में ही रह सकती है. क्रोध, हिंसा, घृणा, ईर्ष्या, प्रतियोगिता) महत्वाकांक्षा—ये तमाम बातें मौजूद हों तो इनके साथ कामवासना बनी रहती है। अगर तुम दूसरी बातो को छोड़ देते हो, तो धीरे— धीरे तुम पाओगे कि कामवासना ने —बल खो दिया है; वह स्नेह बन गई है, प्रेम बन गई है, करुणा बन गई है—वही ऊर्जा ऊपर उठने लगी, ज्यादा ऊंचे तल पर पहुंचने लगी।

कामवासना के दमन से कोई ब्रह्मचर्य में प्रतिष्ठित नहीं हो सकता। अगर तुम जाओ और देखो उन लोगों को जिन्होंने अपनी कामवासना को दबाया है, तो तुम पाओगे कि वे ज्यादा क्रोधी हो गए हैं, वे ज्यादा हिंसक हो गए हैं। इसीलिए मनुष्य का सारा इतिहास बताता है कि सेनाओं को जबरदस्ती कामवासना के दमन में रखा गया। क्योंकि जब सैनिकों को जबरदस्ती कामवासना के दमन में रखा जाता है, तो वे ज्यादा हिंसक हो जाते हैं : वह ऊर्जा जो कामवासना में निर्मुक्त हो सकती थी, वह निर्मुक्त नहीं होती। असल में मनस्विदों की खोज से पता चला है कि हिंसा और दमित काम—ऊर्जा के बीच एक गहरा संबंध है। सारे हिंसात्मक हथियार—चाकू या खंजर या तलवार—भोंके जाते हैं किसी के शरीर में. यह ऐसा ही है जैसे काम—ऊर्जा प्रविष्ट होती है स्त्री में। दूसरे का शरीर स्त्री बन जाता है और तुम्हारे हथियार लैंगिक प्रतीक बन जाते हैं। अब चाहे यह मशीनगन से निकली गोली हो और तुम दूर खड़े हो, लेकिन बात वही है। जब भी तुम्हारी काम—ऊर्जा का दमन होता है, तो तुम दूसरे तरीके और साधन खोज लेते हो कि दूसरों के शरीर में कैसे प्रविष्ट हों।

तो सैनिकों को प्रेमिकाएं साथ रखने की इजाजत नहीं है। केवल अमरीकी सेना में इजाजत है—वे हर जगह हारेंगे। वे संसार में कहीं ठीक से लड़ नहीं सकते। अमरीकी सैनिक युद्ध नहीं कर सकते। अगर तुम्हारी कामवासना तृप्त है, तो लड़ने की इच्छा मिट जाती है। वे दोनों बातें जुड़ी हुई हैं। इसलिए ऐसा होता है कि जब भी कोई संस्कृति बहुत विकसित हो जाती है तो वह सदा कम विकसित संस्कृति से हार जाती है। भारत हारा हूणों से, तुर्कों से, मुसलमानों से—वे सब बहुत अविकसित जगहों से आए और उन्होंने बहुत ज्यादा सभ्य, विकसित संस्कृति को हरा दिया। जब भी कोई संस्कृति बहुत ज्यादा विकसित हो जाती है तो वह बहुत तृप्त हो जाती है, संतुष्ट हो जाती है। हर चीज इतनी शांति से चल रही होती है तो फिर कौन युद्ध करना चाहेगा? और जो बाहर से आए, वे एकदम जंगली थे, खूंखार थे। बिलकुल असभ्य थे और यौन की दृष्टि से बहुत कुंठित थे। अगर तुम चाहते हो कि सेना बहुत अच्छी तरह लड़े, तो सैनिकों की कामवासना को कुंठित कर दो। फिर वे जी—जान से लड़ेंगे, क्योंकि तब लड़ना यौन का प्रतीक बन जाता है।

ऐसा अभी वियतनाम में हुआ। ऐसा नहीं है कि कम्युनिस्ट जीत गए और अमरीका हार गया, बात केवल यह है कि ज्यादा समृद्ध संस्कृति सदा हार जाती है। अविकसित संस्कृति या गरीब देश, हर ढंग से असंतुष्ट—यौन के लिहाज से बहुत दमन भरी अवस्था वाले—उनकी जीत होगी ही। जब भी एक गरीब देश लड़ता है किसी अमीर देश से, तो अमीर देश ही अंततः हारेगा। तुम देखते हो. अगर कोई अमीर परिवार गरीब परिवार से लड़ता है, तो अमीर परिवार हारेगा। क्योंकि जब तुम समृद्ध होते हो, संतुष्ट होते हो, तो लड़ने का भाव नहीं रह जाता है; और लड़ाई में तुम कुछ खोने ही वाले हो, तो तुम लड़ना टालते हो। और गरीब के पास खोने को कुछ है नहीं—क्यों वह बचेगा लड़ाई से? असल में वह मजा लेता है लड़ाई का। उसके पास पाने को सब कुछ है, खोने को कुछ नहीं।

और ऐसा ही होता है व्यक्तियों के जीवन में। यदि तुम अहिंसक हो जाते हो, यदि तुम सत्य में स्थित हो जाते हो, यदि तुम अचौर्य में प्रतिष्ठित हो जाते हो, तो अचानक तुम पाते हो कि कामवासना का बल खो जाता है। अब वह पागल आवेश न रहा। तुम चाहो तो उसका सुख ले सकते हो, लेकिन

अब वह पागलपन नहीं रहता। वह ज्यादा सौम्य हो जाता है, और अंततः वह तिरोहित हो जाता है। और जब वह तिरोहित हो जाता है, तो वह ऊर्जा जो कामवासना में बंधी थी, निर्मुक्त हो जाती है। वह ऊर्जा तुम्हारा संचित ऊर्जा—कुंड बन जाती है।

इसीलिए पतंजलि कहते हैं, 'जब योगी निश्चल रूप से ब्रह्मचर्य में प्रतिष्ठित हो जाता है, तब तेजस्विता की उपलब्धि होती है।'

अदभुत ऊर्जा उपलब्ध होती है। ऐसा नहीं कि तुम कोई बड़े खिलाड़ी बन जाते हो, या बड़े मुक्केबाज बन जाते हो; नहीं। उस ऊर्जा का आयाम पूरी तरह अलग होता है। वह ऊर्जा है असंघर्ष की। वह ऊर्जा इस संसार की नहीं है। वह ऊर्जा वस्तुतः पुरुष जैसी नहीं है, वह ऊर्जा स्त्रैण है। जो योगी इसको

उपलब्ध हो जाते हैं, वे ज्यादा स्त्रैण हो जाते हैं। बुद्ध को देखो. उनका चेहरा, उनका शरीर—उसकी गोलाई, उसकी सुकोमलता—वह स्त्रैण जान पड़ती है।

हिंदुओं ने बिलकुल ठीक किया है—उन्होंने बुद्ध को, महावीर को, कृष्ण को या राम को कभी दाढ़ी—मूंछ सहित नहीं दिखाया; कभी नहीं। ऐसा नहीं है कि उनमें किसी तरह के हार्मोन्स की कमी थी और उनके दाढ़ी—मूंछ नहीं थी। उनकी दाढ़ी—मूंछ जरूर सुंदर रही होगी, लेकिन हिंदुओं ने वह भाव ही गिरा दिया। क्योंकि दाढ़ी—मूंछ के साथ तो वे पुरुष लगते, और उनकी अनुभूति की अभिव्यक्ति के लिए स्त्रैण भाव— भंगिमा चाहिए : बुद्ध के शरीर की वह गोलाई, वह सुकोमलता। और संगमरमर ने अदभुत रूप से मदद की, संगमरमर उसे एक स्त्रैण गुणवत्ता दे देता है।

नीत्से ने बुद्ध की और जीसस की आलोचना में उन्हें 'स्त्रैण' कहा है। उसकी आलोचना बिलकुल बेतुकी है, लेकिन उसने एक बात यह बिलकुल ठीक पकड़ी कि वे स्त्रैण हैं।

जब काम—ऊर्जा तिरोहित हो जाती है, तो वह कहां जाती है? वह बाहर नहीं जाती; वह भीतर एक कुंड बन जाती है। व्यक्ति सहज ही शक्ति और ऊर्जा से भरा हुआ अनुभव करता है। ऐसा नहीं कि वह उसका प्रयोग करता है और लड़ने लगता है। अब तो कोई भाव ही नहीं रह जाता लड़ने का। व्यक्ति इतना शक्तिशाली होता है कि वस्तुत: लड़ना संभव ही नहीं होता। केवल कमजोर व्यक्ति लड़ते हैं। जिन्हें अपनी शक्ति के प्रति आशंका होती है वे लड़ते हैं—यह प्रमाणित करने के लिए कि वे शक्तिशाली हैं। असल में शक्तिशाली व्यक्ति लड़ते ही नहीं। वे पूरी बात को खेल की भांति लेते हैं, बच्चों के खेल की भांति लेते हैं।

जब योगी सुनिश्चित रूप से अपरिग्रह में प्रतिष्ठित हो जाता है तब अस्तित्व के 'कैसे' और 'कहां से' का ज्ञान उदित होता है।

जब योगी अपरिग्रह में प्रतिष्ठित हो जाता है, जब वह अपने सिवाय किसी और चीज पर मालकियत नहीं रखता; वह सम्राट हो सकता है, वह महल में रह सकता है, लेकिन वह उस पर मालकियत नहीं रखता। अगर वह छिन जाए, तो एक हलकी सी तरंग भी न उठेगी उसके मन में।

एक महान योगी के विषय में एक कथा है; उसका नाम था जनक। भारत में उसे बहुत सम्मान से याद किया जाता रहा है सदियों से, और भारत ने उसकी भांति किसी और को इतना सम्मान कभी

नहीं दिया, क्योंकि एक ढंग से वह अनूठा है। बुद्ध ने अपना महल छोड़ा, राज्य छोड़ा; महावीर ने अपना महल और राज्य छोड़ा; जनक ने कभी कुछ नहीं छोड़ा। बुद्ध और महावीर तो हजारों हैं, पूरा

इतिहास भरा पड़ा है उनसे—जनक अनूठे हैं। उन्होंने इस राह का अनुसरण नहीं किया। वे महल में रहे; वे सम्राट बने रहे।

ऐसा हुआ कि एक साधक युवक से उसके गुरु ने कहा, 'अब तुम जनक के पास जाओ। तुम्हारी अंतिम दीक्षा उनके द्वारा संपन्न होगी। जो कुछ मैं सिखा सकता था, मैंने तुमको सिखा दिया है, लेकिन मैं तो एक भिक्षु हूं। मैं कुछ जानता नहीं संसार के विषय में, मैंने उसे त्यागा हुआ है। तुम्हें जाना चाहिए उस आदमी के पास जो संसार के विषय में जानता है। यही तुम्हारी अंतिम दीक्षा होगी। इससे पहले कि तुम त्यागो, तुम्हें किसी ऐसे व्यक्ति से सब सीख लेना चाहिए जो संसार को ठीक से जानता हो। मैं उसे नहीं जानता, इसलिए तुम सम्राट जनक के पास जाओ।'

शिष्य थोड़ा हिचकिचाया, क्योंकि वह तो सब छोड़ देने को तैयार ही बैठा था और उसे भरोसा भी नहीं होता था कि यह जनक प्रज्ञावान पुरुष हो सकता है। अगर वह प्रज्ञावान है, तो फिर क्यों वह महल में रह रहा है? साधारण तर्क की बात है उसे तो त्याग देना चाहिए सब कुछ। उसे किसी चीज पर मालकियत नहीं रखनी चाहिए, क्योंकि यही मूलभूत बातो में से एक है—सादगी में जीना, अपरिग्रह में जीना, संयम में जीना। तब तो व्यक्ति इतना सरल हो जाता है, इतना सीधा—सादा हो जाता है, तो वह क्यों जी रहा है सम्राट की भांति?

लेकिन जब गुरु ने कहा, तो उसको जाना ही पड़ा। हिचकते हुए, अनिच्छा से वह पहुंचा वहा। शाम को वह पहुंचा; जनक ने उसे निमंत्रित किया दरबार में। बहुत राग—रंग भरा उत्सव चल रहा था वहा। सुंदर स्त्रियां नृत्य कर रही थीं, सुरा—सुंदरी का दौर चल रहा था, और करीब—करीब हर कोई नशे में चूर था। आश्रम से आए युवक को तो अपनी आंखों पर विश्वास नहीं हुआ, और उसे अपने वृद्ध गुरु पर भी भरोसा नहीं आया कि क्यों उस नासमझ ने उसे यहां भेजा है! किस लिए?

वह इतना घबड़ा गया कि वह तुरंत ही वहा से लौट जाना चाहता था, लेकिन जनक ने कहा, 'यह तो अपमानजनक होगा। तुम आए हो तो कम से कम एक रात तो रुको, कल सुबह चले जाना। और तुम इतने अशात क्यों हो? थोड़ी देर आराम करो। सुबह हम बात करेंगे कि आप यहां किस काम से आए हैं।' उस युवक ने कहा, 'अब कुछ पूछने की जरूरत नहीं। मैंने अपनी आंखों से देख लिया है कि यहां क्या हो रहा है।'

जनक हंस दिए। उस युवक की आवभगत की गई—अच्छा भोजन खिलाया गया, अच्छी मालिश और स्थान का इंतजाम किया गया, बहुत सुंदर कमरे में ठहराया गया, बहुत मूल्यवान आरामदायक पलंग दिया गया। वह बहुत थका हुआ था, जंगल के आश्रम से पैदल चल कर आया था राजधानी तक। जैसे ही वह बिस्तर पर लेटा, उसने देखा कि एक तलवार बहुत पतले धागे से बंधी ठीक उसके ऊपर लटक रही है। वह बहुत चकित हुआ कि आखिर इस सब का मतलब क्या है! और उसका इतनी अच्छी तरह स्वागत किया गया और अब ऐसा मजाक क्यों! वह सो न सका रात भर, लगातार भय बना रहा। न

वह बिस्तर के आराम का आनंद ले सका, न वह महल का कोई सुख ले सका—तलवार लटकी थी उसके ठीक ऊपर।

सुबह सम्राट ने पूछा, 'आप ठीक से सोए न?'

उसने कहा, 'कैसे सो सकता था मैं? आप कैसी उलटी—सुलटी बातें कर रहे हैं मुझसे? हर चीज बिलकुल ठीक थी, लेकिन वह जो पतले धागे से तलवार लटक रही थी—किसी भी क्षण गिर सकती थी। हवा का जरा सा झोंका, और मैं तो मारा जाता!'

सम्राट ने कहा, 'तो तुम आराम से सो नहीं पाए उस बिस्तर पर? वह तो हमारे महल का सर्वाधिक सुंदर पलंग है और वह कमरा जो मैंने तुमको दिया सर्वाधिक ऐश्वर्यपूर्ण है।'

उसने कहा, 'मुझे याद भी नहीं रहा वह कमरा और वह पलंग। मैंने कभी इतनी तकलीफ नहीं झेली जितनी इस तलवार के कारण।'

सम्राट ने कहा, 'तब तो बेहतर है कि तुम थोड़ा रुक जाओ। मैं यहां इस महल में हूं, लेकिन तलवार लटकी ही रहती है मुझ पर—मौत की तलवार। और धागा इससे भी ज्यादा बारीक है, और मैं किसी भी क्षण मर सकता हूं।'

जब कोई व्यक्ति मृत्यु का स्मरण रखता है, तो वह कैसे मालिक हो सकता है किसी चीज का? यह राज्य है, महल है, लेकिन मृत्यु हर समय सामने है। तो कैसे कोई मालिक हो सकता है? जब मौत लटकी है सिर पर और तुम उसे याद रखते हो, तो तुम किसी चीज पर मालकियत नहीं करते। तब तुम जानते हो, 'मैं केवल अपना ही मालिक हो सकता हूं। बाकी हर चीज मौत छीन लेगी।'

'जब योगी सुनिश्चित रूप से अपरिग्रह में प्रतिष्ठित हो जाता है, तब अस्तित्व के 'कैसे' और 'कहां से' का ज्ञान उदित होता है।'

जब कोई गैर—मालकियत की भाव—दशा में जीता है तो फिर ऊर्जा बाहर की तरफ नहीं जाती। वह बाहर जाती है मालकियत जमाने की इच्छा के कारण। जब तुम जान लेते हो कि किसी चीज पर मालकियत नहीं की जा सकती—तुम संसार में आते हो और चले जाते हो, तुम से पहले संसार मौजूद था, तुम्हारे बाद भी मौजूद रहेगा—किसी चीज पर मालकियत नहीं की जा सकती; मालकियत करने की धारणा ही मूढ़ता की बात है; जिस क्षण तुम इस बात के प्रति जाग जाते हो तो अचानक तुम्हारी पूरी ऊर्जा जो हजारों दिशाओं में बह रही थी संसार पर मालकियत जमाने के लिए, वह भीतर की तरफ बहने लगती है।

और पतंजलि कहते हैं, '... तब अस्तित्व के 'कैसे' और 'कहां से' का ज्ञान उदित होता है।'

और तब तुम जान लेते हो कि तुम कहां से आए हो, तुम कौन हो। तब तुम जीवन के, अस्तित्व के मूल स्रोत का साक्षात्कार करते हो। तब तुम आमने—सामने होते हो उस स्रोत के, उस मौलिक स्रोत के। वह स्रोत है परमात्मा. वही है आदि और वही है अनादि—वही है अल्फा और वही है ओमेगा।

आज इतना ही।

प्रवचन 52 - कर्तव्य नहीं—प्रेम

प्रश्न—सार:

1—सत्संग—सदगुरु की उपस्थिति में होना—अत्यंत महत्वपूर्ण है, तो यदि संभव हो तो क्या आप विश्व भर के अपने सन्यासियों को साथ ही रखना पसंद करेंगे?

2—आप विवाह के पक्ष में नहीं है, फिर भी आप अनेक लोगों को विवाह का सुझाव क्यों देते हैं?

3—आश्रम में आपके निकट मैं शांत और सुखी हो जाता हूं, लेकिन बाहर निकलते ही सड़क पर बैठे भिखारियों को देख कर दुःखी हो जाता हूं, इस दुख के लिए मैं क्या करूं?

4—एक साथ आप इतने अधिक शिष्यों पर कैसे काम कर पाते है?

5—अगर मैंने आपसे संन्यास न लिया होता तो मैंने आपको छोड़ दिया होता। बहरहाल, मैं आप में श्रद्धा नहीं खोना चाहता। अगर आप मुझे आपने चरणों में बांधे रख सकें तो मुझे लगेगा कि आपने गुरु के रूप में अपना कर्तव्य पूरा किया।

6—कोई कैसे चिंता करना छोड़े?

7—क्या मूल्यांकन करने और विवेक करने के बीच कोई अंतर है?

8—पद्‌यसंभव की भविष्यवाणी है कि जब पृथ्वी पर लोहे का पक्षी उड़ेगा, तब धर्म का अवतरण होगा। क्या इस वचन को पूरा करना आपके काम का हिस्सा है?

पहला प्रश्न:

आपने बहुत बार हमें बताया है कि सत्संग— किसी बुद्‌ध पुरुष की किसी मुक्त पुरुष की उपस्थिति में होना— कितना अधिक महत्वपूर्ण है फिर भी आपके बहुत से संन्यासी अपना अधिक जीवन आप से दूर ही व्यतीत करते हैं अगर आप पर निर्भर होता तो क्या आप हम सबको यहां पूना में हर समय अपने साथ रहने देते?

नहीं। क्योंकि सदगुरु की उपस्थिति में बहुत अधिक जीना भी एक अति हो सकती है। मदद देने की बजाय वह तुम्हें हानि पहुंचा सकती है। हर चीज सदा एक अनुपात में और संतुलन में होनी चाहिए। इसकी संभावना है कि जब कोई चीज मीठी हो तो तुम उसे जरूरत से ज्यादा खा लो। तुम भूल जाओ अपनी आवश्यकता; तुम खूब ठूंस—ठूंस कर भर लो अपना पेट। और सत्संग मधुर होता है—वह संसार की सबसे मधुर चीज है। वस्तुत: सत्संग मादक होता है, तुम मदहोश हो सकते हो। तब वह तुम्हें मुक्त नहीं करेगा; वह एक नया बंधन निर्मित कर देगा।

तो सदगुरु के पास होना बंधन भी हो सकता है, मुक्ति भी, यह निर्भर करता है। केवल पास होने से जरूरी नहीं है कि तुम मुक्त हो ही जाओगे. तुम्हें बदहजमी हो सकती; और तुम आदी हो सकते हो मौजूदगी के। नहीं, वह ठीक नहीं है। जब भी मुझे लगता है कि किसी को जरूरत है अकेले होने की, जब भी मुझे लगता है कि किसी को मुझ से दूर चले जाना चाहिए, तो मैं उसे दूर भेज देता हूं। अच्छा है एक प्यास निर्मित करना, तब तृप्ति भी गहरी होती है। और अगर तुम बहुत ज्यादा मेरे साथ रहते हो तो तुम मुझे भूल भी सकते हो। केवल बदहजमी ही नहीं, हो सकता है तुम मुझे बिलकुल ही भूल जाओ।

अभी कल ही शीला कह रही थी कि जब वह अमरीका में थी तो वह मेरे ज्यादा निकट थी। अब जब कि वह यहां है तो उसे लगता है कि वह दूर हो गई है। कैसे होता है ऐसा? वह बड़ी परेशान थी, बहुत उलझन में थी। बात सीधी—साफ है। जब वह अमरीका में थी तो वह निरंतर सोच रही थी मेरे बारे में, यहां आने और मेरे पास होने के बारे में, वह जी रही थी एक स्वप्न में। उस स्वप्न में उसे लगता होगा कि वह मेरे निकट है। अब जब कि वह यहीं है, तो कैसे सपना देख सकती है वह? मैं सामने मौजूद हूं; सपनों की अब कोई जरूरत नहीं है। और मैं इतना उपलब्ध हूं यहां कि वह भुलने लगी है मुझे —इसीलिए वह अनुभव कर रही है कि वह मुझ से दूर हो गई है।

चीजें जटिल हैं। कई बार मैं तुम्हें दूर भेज देता हूं ताकि तुम मुझे ज्यादा अनुभव कर सको। उसकी जरूरत होती है। एक पृथकता चाहिए, ताकि तुम फिर निकट आ सको। सदगुरु के पास होने और सदगुरु के पास न होने की एक लय चाहिए। उस लय में बहुत सी संभावनाएं खुलती हैं, क्योंकि अंततः तुम्हें निर्भर होना है स्वयं पर। गुरु तुम्हारे साथ सदा—सदा के लिए नहीं रह सकता। एक दिन मैं अचानक खो जाऊंगा—मिट्टी मिट्टी में गिर जाएगी, तुम मुझे कहीं नहीं खोज पाओगे। तब, अगर तुम मेरे प्रति बहुत आसक्ति बना लोगे और तुम मेरे बिना रह ही न सकोगे तो तुम दुख पाओगे, नाहक पीड़ित होओगे। और मैं यहां तुम्हें पीड़ा देने के लिए नहीं हूं : मैं यहां तुम्हें और ज्यादा आनंदित होने में सक्षम बनाने के लिए हूं। कई बार यह अच्छा होता है कि तुम दुनिया में कहीं दूर चले जाओ, अपने साथ रहो, अपने एकांत में रहो, भीतर उतरो, अकेले में जीओ।

और जो कुछ भी तुमने मेरे साथ यहां पाया है, उसे संसार में कसौटी पर कसो, क्योंकि आश्रम संसार नहीं है। आश्रम ज्यादा से ज्यादा एक सीखने की जगह हो सकता है, वह कोई वैकल्पिक संसार नहीं है। अधिक से अधिक यह एक स्कूल हो सकता है जहां तुम्हें थोड़ी झलक मिलती है। फिर तुम उस झलक के साथ जाते हो संसार में—वहां होती है कसौटी, वहां होती है परीक्षा। अगर वे अनुभव वहां भी खरे उतरते हैं, केवल तभी वे वास्तविक हैं।

आश्रम में रहते हुए, बुद्‌ध पुरुष के साथ रहते हुए, उसके ऊर्जा— क्षेत्र में रहते हुए, बहुत बार तुम्हें धोखा हो सकता है कि तुम्हें कुछ उपलब्ध हो गया है। हो सकता है कि वह तुम्हारी उपलब्धि न हो; हो सकता है कि केवल उस चुंबकीय शक्ति के कारण तुमने छू लिए हों नए आयाम। लेकिन जब मैं पास नहीं होता और आश्रम का वातावरण मौजूद नहीं होता और तुम साधारण दैनंदिन जीवन में गति करते हो—बाजार के, आफिस के, फैक्टरी के जीवन में गति करते हो—अगर तुमने जो यहां पाया है उसे साथ लिए रहते हो और वह डांवाडोल नहीं होता, तब सच में तुमने कुछ पाया है। वरना तो तुम यहां एक स्वप्न में, एक भ्रम में जी सकते हो।

नहीं, अगर मेरे लिए तुम सब को यहां रखना संभव भी होता, तो भी मैं तुम्हें दूर भेजता। मैं बिलकुल यही करता जैसा कि मैं अब कर रहा हूं; कोई अंतर न होता। जैसा अभी है बिलकुल ठीक है। तो जब मैं तुम्हें दूर भेजूं तो खराब अनुभव मत करना—तुम्हें जरूरत है उसकी।

और जब मैं तुम से यहां रहने को कहूं तो बहुत गर्व अनुभव मत करना—वह भी एक जरूरत है। दोनों बातें जरूरी हैं। और कोई जड़ सिद्धात मत बना लेना, क्योंकि चीजें जटिल हैं और हर व्यक्ति अनूठा है। कई बार मैं किसी को यहां रहने देता हूं क्योंकि वह इतना मुर्दा होता है कि उसके विकसित होने में बहुत समय लगता है। कोई बहुत जल्दी विकसित हो जाता है, तो कुछ सप्ताह के भीतर ही मैं कह देता हूं कि जाओ। तो यहां होने से ही गर्व अनुभव मत करना; और अगर मैं तुम्हें दूर भेज दूं तो चोट अनुभव मत करना। कई बार मैं किसी को यहां रहने देता हूं क्योंकि वह बहुत संतुलित होता है और कोई डर नहीं होता कि वह जरूरत से ज्यादा ग्रहण कर लेगा, या कि अति भोजन का शिकार हो जाएगा; तो मैं रहने देता हूं उसे।

कई बार, जब मुझे लगता है कि किसी ने कुछ उपलब्ध कर लिया है, तो भी मैं उसे दूर भेज देता हूं; क्योंकि केवल संसार हो इसकी कसौटी हो सकता है कि तुमने सच में कुछ पा लिया है या नहीं। आश्रम के एकांत में, एक अलग वातावरण में, तुम्हें पार की एक झलक मिल सकती है, क्योंकि तुम एक हिस्सा बन जाते हो उस सामूहिक मन का जो यहां मौजूद है। तुम मेरी तरंगों पर यात्रा करने लगते हो, वे तुम्हारी नहीं हैं। लेकिन जब तुम वापस घर जाते हो, तो तुम्हें अपनी ही तरंगों पर यात्रा करनी होती है—चाहे वे छोटी हों, किंतु बेहतर हैं, क्योंकि वे तुम्हारी अपनी हैं, और अंततः उन्हें ही ले जाना है तुम्हें दूसरे किनारे तक। मैं तो केवल राह दिखा सकता हूं।

गुरु को बंधन नहीं बन जाना चाहिए; और बहुत आसान होता है गुरु का बंधन बन जाना। प्रेम सदा बदल सकता है बंधन में। वह सदा ही बन सकता है कारागृह। प्रेम को होना चाहिए स्वतंत्रता, उसे तुम्हारी मदद करनी चाहिए तमाम बेड़ियों और बंधनों से मुक्त होने में। इसलिए मुझे सतत देखते रहना पड़ता है कि किसे दूर भेजना है, किसे यहां रहने देना है, और कितनी देर रहने देना है।

एक लय चाहिए—कभी मेरे साथ रहो और कभी मुझसे दूर चले जाओ। एक दिन आएगा, तुम एक जैसा ही अनुभव करोगे। तब मैं प्रसन्न होऊंगा तुम्हारी स्थिति से। चाहे मेरे साथ रहो चाहे मुझसे दूर रहो, तुम वैसे ही रहते हो; चाहे यहां आश्रम में ध्यान करो या बाजार में काम करो, तुम वैसे ही रहते हो—कोई बात तुम्हें छूती नहीं; तुम होते हो संसार में लेकिन संसार नहीं होता तुम में. तब तुम मुझे प्रसन्न करते हो। तब तुम संतुष्ट होते हो, तृप्त होते हो।

दूसरा प्रश्न :

आप विवाह के पक्ष में नहीं हैं और फिर भी आप लोगों से विवाह करने के लिए कह देते हैं ऐसा क्यों है?

पूछा है अनुराग ने। मेरे देखे, विवाह एक मुर्दा चीज है। यह एक संस्था है, और तुम संस्थाओं में जी नहीं सकते; केवल विक्षिप्त व्यक्ति रहते हैं संस्थाओं में। विवाह प्रेम का विकल्प है। प्रेम खतरनाक बात है : प्रेम में जीना निरंतर तूफानों में जीना है। तुम्हें जरूरत होती है साहस की, और तुम्हें जरूरत होती है सजगता की, और तुम्हें तैयार रहना होता है किसी भी चीज के लिए। प्रेम में कोई सुरक्षा नहीं होती; प्रेम असुरक्षित होता है। विवाह है सुरक्षा : रजिस्ट्री आफिस है, पुलिस है, अदालत है। राज्य, समाज, धर्म—ये सभी उसे सम्हाले हैं। विवाह एक सामाजिक घटना है। प्रेम होता है व्यक्तिगत, वैयक्तिक, अंतरंग।

क्योंकि प्रेम खतरनाक होता है, असुरक्षित होता है.. और कोई नहीं जानता कि प्रेम कहां ले जाएगा। वह बादल की भांति होता है—बिना किसी मंजिल के, बस हवाओं में तिरता हुआ। प्रेम है रहस्यमय बादल, जिसका कोई गंतव्य नहीं। कोई नहीं जानता कि वह किस क्षण कहां होगा। जिसकी कोई भविष्यवाणी नहीं हो सकती—कोई ज्योतिषी भविष्यवाणी नहीं कर सकता प्रेम के बारे में। और विवाह के बारे में? उसमें तो ज्योतिषी बहुत मददगार होते हैं; वे भविष्यवाणी कर सकते हैं।

मनुष्य को विवाह की ईजाद करनी पड़ी क्योंकि मनुष्य अज्ञात से भयभीत है। जीवन और उस्तित्व के हर तल पर मनुष्य ने विकल्प निर्मित कर लिए हैं. प्रेम के स्थान पर विवाह है; असली धर्म की जगह संप्रदाय हैं—वे विवाह जैसे ही हैं। हिंदू धर्म, मुसलमान धर्म, ईसाई धर्म, जैन धर्म — वे असली धर्म नहीं हैं। असली धर्म का कोई नाम नहीं होता; वह प्रेम की भांति होता है।

लेकिन क्योंकि प्रेम खतरनाक होता है और तुम अज्ञात से इतने भयभीत होते हो कि तुम कोई न कोई सुरक्षा खड़ी कर लेना चाहते हो। तुम जीवन की अपेक्षा बीमा कंपनियों में ज्यादा विश्वास करते हो। इसीलिए तुमने विवाह की ईजाद कर ली है।

प्रेम की अपेक्षा विवाह ज्यादा स्थायी होता है। प्रेम अनंत—असीम हो सकता है, लेकिन वह स्थायी नहीं होता है। वह बना रह सकता है हमेशा—हमेशा, लेकिन जरूरी नहीं है कि वह हमेशा बना रहे। वह एक फूल की भांति है : सुबह खिलता है, सांझ खो जाता है। वह चट्टान की भांति नहीं है। विवाह ज्यादा स्थायी होता है; तुम निर्भर कर सकते हो उस पर। बुढ़ापे में वह मददगार होगा। यह एक ढंग है कठिनाइयों से बचने का।

लेकिन जब भी तुम कठिनाइयों से और चुनौतियों से बचते हो तो तुम विकसित होने से भी बच जाते हो। विवाहित व्यक्ति कभी विकसित नहीं होते। प्रेमी विकसित होते हैं, क्योंकि उन्हें हर क्षण चुनौती का सामना करना होता है—और कोई सुरक्षा नहीं होती। उन्हें एक आंतरिक सजगता निर्मित करनी पड़ती है। सुरक्षा हो तो तुम्हें सजगता की चिंता नहीं करनी पड़ती; समाज मदद करता है।

विवाह एक औपचारिकता है, एक कानूनी बंधन है। प्रेम हृदय की बात है विवाह बुद्धि की। इसीलिए मैं विवाह के बिलकुल पक्ष में नहीं हूं।

लेकिन प्रश्न ठीक है, प्रासंगिक है, क्योंकि कई बार मैं लोगों से विवाह करने को कह देता हूं। विवाह नरक है, लेकिन कई बार लोगों को नरक के अनुभव की जरूरत होती है। करो क्या? तो मुझे उनसे विवाह करने के लिए कहना पड़ता है। उन्हें जरूरत है उस नरक में से गुजरने की, और वे नहीं समझ सकते उसकी नारकीयता को जब तक कि वे उसमें से गुजरें नहीं।

मैं यह नहीं कह रहा हूं कि विवाह में प्रेम का फूल नहीं खिल सकता है; वह खिल सकता है, लेकिन आवश्यक नहीं है कि ऐसा हो। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि प्रेम से विवाह नहीं पैदा हो सकता है; वह हो सकता है पैदा, लेकिन उसकी कोई जरूरत नहीं है; उसकी कोई तर्कसंगत अनिवार्यता नहीं है। प्रेम बन सकता है विवाह, लेकिन तब वह बिलकुल अलग ही तरह का विवाह होता है. तब वह कोई सामाजिक औपचारिकता नहीं होती है, तब वह संस्थागत बात नहीं होती है, तब वह कोई बंधन नहीं होता है। जब प्रेम विवाह बनता है, तब उसका अर्थ है कि दो व्यक्तियों ने साथ रहने का निर्णय लिया—लेकिन पूरी स्वतंत्रता के साथ, एक—दूसरे पर मालकियत जमाए बिना। प्रेम मालकियत नहीं जमाता, वह स्वतंत्रता देता है।

और जब प्रेम विकसित होता है विवाह में, तो विवाह कोई साधारण बात नहीं रह जाती। वह एकदम असाधारण बात होती है। उसका रजिस्ट्री आफिस से कोई लेना—देना नहीं होता। शायद तुम्हें रजिस्ट्री आफिस जाना भी पड़े, सामाजिक औपचारिकताएं भी निभानी पड़ें; लेकिन वे बातें केवल परिधि पर ही रहती हैं, वे केंद्रीय नहीं होतीं। केंद्र में होता है हृदय, केंद्र में होती है स्वतंत्रता।

और कभी—कभी विवाह में भी प्रेम पैदा हो सकता है, लेकिन ऐसा कभी—कभार ही घटता है। दुर्लभ बात है विवाह में प्रेम का पैदा होना। अधिकतर तो यह एक परिचय मात्र होता है। अधिक से अधिक एक प्रकार की सहानुभूति होती है—प्रेम नहीं। प्रेम में ऊर्जा होती है; सहानुभूति ठंडी होती है। प्रेम होता है जीवंत; सहानुभूति होती है औपचारिक, कुनकुनी!

लेकिन मैं क्यों कहता हूं लोगों से विवाह करने को? जब मैं देखता हूं कि वे सुरक्षा के पीछे भाग रहे हैं, जब मैं देखता हूं कि उन्हें सामाजिक समर्थन की फिक्र है, जब मैं देखता हूं कि वे प्रेम में उतर ही नहीं सकते अगर विवाह न हो, तो मैं उनसे विवाह करने को कह देता हूं—लेकिन मैं उनकी मदद करता रहूंगा उसके पार जाने में। उसका अतिक्रमण करने में मैं उनकी मदद करता रहूंगा।

विवाह का अतिक्रमण होना चाहिए; केवल तभी वास्तविक विवाह घटित होता है। विवाह पूरी तरह से भुला दिया जाना चाहिए। असल में जिसे तुम प्रेम करते हो उसे सदा अजनबी बने रहना चाहिए और कभी भी उसे पूरी तरह परिचित नहीं मान लेना चाहिए। जब दो व्यक्ति अजनबियों की भांति रहते हैं,

तो उसमें एक सौंदर्य होता है—बहुत सहज, निर्दोष सौंदर्य होता है। और जब तुम किसी के साथ अजनबी की तरह रहते हो...।

और हर कोई अजनबी ही है। तुम किसी व्यक्ति को नहीं जान सकते। सब जानना बहुत ऊपर—ऊपर होगा; व्यक्ति बहुत विराट घटना है। व्यक्ति एक असीम रहस्य है। इसीलिए हम कहते हैं कि हर एक के भीतर परमात्मा है। कैसे तुम जान सकते हो परमात्मा को? ज्यादा से ज्यादा तुम परिधि को छू सकते हो। और जितना ज्यादा तुम जानते हो किसी व्यक्ति को, उतने ही ज्यादा विनम्र तुम हो जाओगे—उतना ही ज्यादा तुम अनुभव करोगे कि रहस्य छूट—छूट जाता है। असल में रहस्य और गहरा हो जाता है। जितना ज्यादा तुम जानते हो, उतना ही तुम अनुभव करते हो कि तुम कम जानते हो।

अगर प्रेमी सच में ही प्रेम में हैं, तो वे कभी एक—दूसरे को नहीं कहेंगे कि जान लिया; क्योंकि केवल चीजों को जाना जा सकता है—व्यक्तियों को नहीं। केवल चीजें ही जानकारी का हिस्सा बन सकती हैं। व्यक्ति तो एक रहस्य ही रहता है—गहनतम रहस्य।

तो विवाह के ऊपर उठो। यह कोई कानून की, औपचारिकता की, परिवार की बात नहीं है—वह सब कोरी बकवास है। इसकी जरूरत है क्योंकि तुम समाज में रहते हो, लेकिन उसके ऊपर उठो; उसी पर समाप्त मत हो जाना। और किसी व्यक्ति पर मालकियत करने की कोशिश मत करना। ऐसा मत सोचने लगना कि दूसरा व्यक्ति पति है—तब तुमने व्यक्ति के सौंदर्य को एक असुंदर चीज में बदल दिया : पति। कभी मत कहना कि यह स्त्री तुम्हारी पत्नी है—फिर वह अजनबी नहीं रह जाती, तुमने उसे बहुत भौतिक तल तक, चीजों के बहुत साधारण तल तक उतार लिया होता है। पति और पत्नी सांसारिक संबंध हैं। प्रेमियों का संबंध दूसरे जगत का संबंध है।

तो दूसरे की पवित्रता और दिव्यता को याद रखना। कभी अतिक्रमण मत करना उसका, कभी दखल मत देना उसमें। प्रेमी सदा झिझकता है। वह तुम्हें सदा एक खुला आकाश देता है स्वयं होने के लिए। वह कृतज्ञ होता है; वह कभी अनुभव नहीं करता कि तुम उसके अधिकार में हो। वह अनुगृहीत होता है कि कभी—कभी किन्हीं अदभुत घड़ियों में तुम उसे आने देते हो अपने आत्यंतिक मंदिर में और अपने साथ होने देते हो। वह सदा अनुगृहीत होता है।

लेकिन पति—पत्नी तो सदा शिकायतो से भरे होते हैं, कभी अनुगृहीत नहीं होते—सदा लड़ते —झगड़ते रहते हैं। और अगर तुम देखो उनकी लड़ाई, वह कुरूप होती है। प्रेम का पूरा सौंदर्य ही खो जाता है। केवल क्षुद्र बातें ही रह जाती हैं. पत्नी है, पति है, बच्चे हैं, और रोज — रोज की कलह है। वह अनजाना, अपरिचित अब स्पर्श नहीं करता। इसीलिए तुम पाओगे कि एक धूल सी जम जाती

है—पत्नी थकी— थकी दिखाई पड़ती है; पति बेजान दिखाई देता है। जीवन ने खो दिया होता है अर्थ, जीवंतता और उल्लास। अब जीवन एक काव्य न रहा; वह एक बोझ बन चुका होता है।

प्रेम काव्य है। विवाह है साधारण गद्य, अच्छा है साधारण लेन—देन के लिए; अगर तुम्हें सब्जी खरीदनी है तो अच्छा है; लेकिन यदि तुम आकाश की तरफ देख रहे हो और बातचीत कर रहे हो परमात्मा से तो पर्याप्त नहीं है—तो जरूरत है काव्य की। साधारणतया तो जीवन गद्य जैसा होता है। धार्मिक जीवन काव्यमय होता है : एक लय होती है, एक छंद होता है, उसमें कुछ अज्ञात, अपरिचित रहस्य उतर आता है।

मैं विवाह के पक्ष में नहीं हूं। और मुझे गलत मत समझ लेना—मैं यह नहीं कह रहा हूं कि अविवाहित रह कर साथ—साथ रहो। वह सब औपचारिकता पूरी कर लो जो समाज चाहता है, लेकिन उसे ही सब कुछ मत मान लेना। वह तो ऊपर—ऊपर की बात है; उसके पार जाना है। और अगर मुझे लगता है कि तुम्हें विवाह की जरूरत है मैं तुमसे विवाह करने को कहता हूं।

असल में यदि मुझे लगता है कि तुम्हें नरक के अनुभव से गुजरने की जरूरत है तो मैं तुम्हें जाने देता हूं—मैं तुम्हें और धक्का दे देता हूं —कि नरक से गुजर ही लो, क्योंकि उसी की जरूरत है तुम्हें, और उससे गुजर कर ही तुम विकसित होओगे।

तीसरा प्रश्न :

मुझे यहां आए अब चार हफ्ते हो गए हैं और मैं अभी भी सड़क पर दिखती दीनता— दरिद्रता को नहीं झेल पाता उस ओर से आख बंद कर लेने 'के सिवाय कोई उपाय नहीं बचता। तो जितना मैं आश्रम में खुलता हूं जब मैं साइकिल से घर लौटता हूं तो उतना ही बंद हो जाता हूं। कृपया इस विषय में कुछ कहें।

मैं पहले ही कह चुका हूं और मैंने पहले ही इस प्रश्न का उत्तर दे दिया है। अगर तुम यहां किसी भीतर की खोज के लिए हो, तो कृपा करके कुछ दिनों के लिए—जब तक तुम यहां मेरे साथ हों—संसार को भूल जाओ। लेकिन ऐसा लगता है कि यह कठिन है। तो अब केवल एक ही रास्ता बचता है—दुखी हो जाओ, जितना दुखी हो सको हो जाओ। जाओ और बैठ जाओ सड़क पर भिखारियों के साथ और रोओ और चीखो और दुखी होओ—और खतम करो बात। अगर तुम नरक चाहते हो, तो गुजरो नरक से।

यह एक बड़ा अहंकारी दृष्टिकोण है। तुम सोच रहे होओगे कि यह करुणा है। लेकिन यह नासमझी है—क्योंकि तुम्हारे दुखी हो जाने से ही सड़क के किसी भिखारी को मदद नहीं मिल जाती है। अगर

सौ व्यक्ति दुखी थे, तो तुम्हारे दुखी होने से एक सौ एक हो जाते हैं। दुखी होकर तुम कैसे किसी की मदद कर सकते हो? लेकिन यह एक सूक्ष्म अहंकार होता है जो अच्छा महसूस करता है : 'मैं कितना दयालु हूं कितना करुणावान हूं। मैं दूसरे कठोर व्यक्तियों की तरह नहीं हूं, पत्थर जैसा नहीं हूं; मेरे पास हृदय है। जब मैं गुजरता हूं सड़कों से तो मैं दुखी हो जाता हूं, क्योंकि मैं इतनी गरीबी देखता हूं चारों तरफ।' यह एक पवित्र अहंकार है—बहुत पवित्र मालूम होता है, लेकिन कहीं गहरे में बहुत ही अपवित्र होता है।

लेकिन अगर तुम्हें गुजरना ही है इससे, तो गुजरो। मैं क्या कर सकता हूं?

तुम यहां अपने अंतस की खोज के लिए हो। यह अवसर मत गंवा देना। भिखारी तो सदा रहेंगे; तुम बाद में भी दुखी हो सकते हो। वे इतनी जल्दी संसार से विदा नहीं हो जाएंगे—डरो मत। तुम उन्हें सदा पाओगे। अगर और कहीं नहीं, तो भारत में तो तुम उनको सदा ही पाओगे। चिंता मत करो. तुम सदा भारत आ सकते हो और दुखी हो सकते हो; इसके लिए जल्दी करने की कोई जरूरत नहीं है। लेकिन मैं यहां नहीं रहूंगा सदा, यह स्मरण रखना। अगली बार जब तुम आओगे, तो भिखारी रहेंगे—मैं शायद न रहूं।

तो यदि तुम जरा सा भी होश रखते हो, तो मेरे साथ होने के अवसर का उपयोग कर लेना। इसे गंवा मत देना किसी मूढ़ता में। लेकिन अगर तुम्हें लगता है कि तुम इसे नहीं भूल सकते, तो केवल एक ही रास्ता है कि भूल जाओ मुझे और बैठो भिखारियों के साथ और दुखी होओ—जितना हो सकते हो दुखी होओ। शायद इसी तरह तुम इसके बाहर आ सकते हो। तुम्हें मदद की जरूरत है, गुजरो इससे। मैं प्रतीक्षा करूंगा। जब तुम्हारे लिए यह बात खतम हो जाए, तो आ जाना।

चौथा प्रश्न:

आप एक ही साथ हम सब लोगों पर कैसे काम करते हैं? इसका राज क्या है?

इसमें राज जैसा कुछ भी नहीं है। क्योंकि मैं तुम सबको प्रेम करता हूं तुम बहुत नहीं रहते। मेरा प्रेम तुम्हारे चारों ओर छाया रहता है; उसमें तुम एक हो जाते हो। असल में मैं एक—एक व्यक्ति पर काम नहीं कर रहा हूं अन्यथा तो बहुत कठिन हो जाए। जब मैं तुमको देखता हूं तो मैं तुम्हें अलग—अलग नहीं देखता। मैं तुम्हें संपूर्ण के हिस्से की भांति देखता हूं। मेरे प्रेम की छांव में तुम एक हो। जिस क्षण तुम समर्पण करते हो, तुम अहंकार की तरह मिट जाते हो—तुम एक विराट घटना का

हिस्सा हो जाते हो। तुम हो बूंद की भांति. जब तुम समर्पण करते हो, तब तुम सागर का हिस्सा हो जाते हो। मैं काम करता हूं सागर पर—बूंदों पर नहीं। इसमें रहस्य जैसा कुछ नहीं है।

और असल में यह कहना कि मैं काम करता हूं ठीक नहीं है। यह मेरे होने का ढंग है। यह कोई काम नहीं है; यह केवल मेरे होने का ढंग है। यह एक 'होना' है। इससे अन्यथा मैं हो नहीं सकता। एक बार तुम धड़कने देते हो अपने हृदय को मेरे साथ, तो वह काम करने लगता है। असल में यह बात तुम्हारे निर्णय की है। अगर तुम चाहते हो कि मैं कुछ करूं, तो बस उसे होने दो। मैं तो कर ही रहा हूं काम। शायद तुम पूरी दुनिया में पच्चीस हजार हो—या शायद पच्चीस लाख, उससे कुछ अंतर न पड़ेगा। मेरा काम वही रहता है। अगर पूरा संसार भी संन्यास ले ले, तो भी मेरा काम वही रहता है।

यह ऐसा ही है जैसे कि एक दीया जल रहा हो कमरे में. कोई व्यक्ति भीतर आता है—तो एक को प्रकाश मिलता है; फिर दस व्यक्ति आ जाते हैं कमरे में, तो ऐसा नहीं होता कि दीए पर बहुत बोझ हो जाता है। जब वहा कोई न था तो भी दीए से प्रकाश झर रहा था उस नितांत मौन और एकांत में। कोई एक प्रवेश करता है, वह देख सकता है। अब दस भीतर आएं, वे देख सकते हैं। लाखों भीतर आएं, और वे देख सकते हैं। प्रकाश वहा बरस रहा है, जब वहा कोई नहीं होता है, तो भी वह बरस रहा होता है।

अगर यहां कोई न हो, तो भी मैं इसी तरह काम करता रहूंगा। यह गिनती का प्रश्न नहीं है, और इसमें कोई राज नहीं है। और असल में यह काम नहीं है; यह प्रेम है। जब तुम प्रेम की अवस्था को उपलब्ध हो जाते हो, तो तुम प्रकाश से भर जाते हो। वह प्रकाश तुमसे बरसता रहता है, एक ज्योति जलती रहती है : जो भी अपनी आंखें खोलने को तैयार हो, वह उस प्रकाश का लाभ ले सकता है।

पांचवां प्रश्न:

अगर मैने आपसे संन्यास न लिया होता तो मैने आपको छोड़ दिया होता और मेरे पहले गुरु भी शायद अब मुझे स्वीकार नहीं करेंगे क्योंकि मैने उनको छोड़ दिया और अपनी श्रद्धा खोई। बहरहाल मैं आप में श्रद्धा नहीं खोना चाहता। अब मैं बुद्धत्व की भी आकांक्षा नहीं करता हूं। अगर आप मुझे अपने चरणों में बांधे रख सके तो मैं सोचता हूं कि आपने गुरु के रूप में अपना कर्तव्य पूरा किया।

इसमें बहुत सी बातें समझने जैसी हैं; उनसे मदद मिलेगी।

पहली बात : मेरा किसी के प्रति कोई कर्तव्य नहीं है जिसे मुझे पूरा करना है। 'कर्तव्य' एक गंदा शब्द है, मेरे देखे एक भद्दा शब्द है, सर्वाधिक भद्दा शब्द है। प्रेम कोई कर्तव्य नहीं है। अगर लोगों की मदद करना तुम्हारा प्रेम है, तो तुम आनंदित होते हो। यह कर्तव्य नहीं है, यह कोई बोझ नहीं हैं। कोई मुझे जबरदस्ती मजबूर नहीं कर रहा है कुछ करने के लिए। ऐसा करने के लिए किसी भी ढंग से मैं बाध्य नहीं हूं—यह बस प्रेम का एक प्रवाह है।

जब प्रेम मर जाता है, तो कर्तव्य आता है। तुम लोगों से कहते हो, 'यह मेरा कर्तव्य है कि मैं आफिस में काम करूं क्योंकि मेरे पत्नी—बच्चे हैं और कर्तव्य तो निभाना ही होता है।' तो तुम प्रेम नहीं करते अपने बच्चों से—इसीलिए यह शब्द 'कर्तव्य' अर्थपूर्ण हो जाता है। तुम्हारी की मां मर रही है और तुम कहते हो, 'यह मेरा कर्तव्य है कि मैं मां की सेवा करूं।' तुम मां से प्रेम नहीं करते। अगर तुम प्रेम करते हो, तो कैसे तुम प्रयोग कर सकते हो यह शब्द— 'कर्तव्य'?

एक पुलिस वाला सड़क पर खड़ा हुआ अपना कर्तव्य पूरा कर रहा होता है। ठीक है बात, वह प्रेम नहीं करता उन लोगों से जो कि ट्रैफिक में अव्यवस्था पैदा कर रहे हैं। जब तुम अपने आफिस जाते हो, तो तुम एक कर्तव्य पूरा कर रहे हो, एक नौकरी। किंतु यदि तुम कहते हो कि दुम अपने बच्चों के प्रति अपना कर्तव्य पूरा कर रहे हो, तो तुम इस शब्द का प्रयोग करके पाप कर रहे हो। तुम प्रेम नहीं करते बच्चों से : तुम बोझ ढो रहे हो।

नहीं, मेरा कोई कर्तव्य नहीं है जिसे पूरा करना है। मैं तुमको प्रेम करता हूं? इसलिए बहुत सी बातें होती हैं। मेरे प्रति कृतज्ञ होने की भी जरूरत नहीं है, क्योंकि मैं कोई कर्तव्य नहीं निभा रहा हूं। यदि मैं कर्तव्य पूरा कर रहा होऊं, तो तुम्हें मेरे प्रति कृतज्ञ होना होगा। यह तो बस प्रेम की बात है।

असल में मैं तुम्हारा कृतज्ञ हूं कि तुमने मेरे प्रेम को अपने ऊपर बरसने दिया। तुम इनकार कर सकते थे। और यही है प्रेम का राज : जितना ज्यादा तुम प्रेम बांटते हो, उतना ज्यादा वह बढ़ता है। जितना ज्यादा तुम बांटते हो, उतने ज्यादा जीवंत स्रोत फूट पड़ते हैं और वह ज्यादा बरसता है और उपलब्ध होता है बांटने के लिए। जितना ज्यादा तुम देते हो, उतना ज्यादा तुम पर बरस जाता है। मैं थका नहीं हूं। मैं किसी भी ढंग से उससे बोझिल नहीं हूं। यह बात सुंदर है।

पहली तो बात : मेरा कोई कर्तव्य नहीं है तुम्हारे प्रति पूरा करने के लिए। यदि तुम ऐसा गुरु चाहते हो जिसका कोई कर्तव्य हो, तो तुम गलत आदमी के पास आ गए हो। कहीं और जाओ। बहुत से गुरु हैं जो बड़े—बड़े कर्तव्यों को पूरा कर रहे हैं। मैं तो बस आनंदित हूं स्वयं में। क्यों पूरा करूं मैं कोई कर्तव्य? मैं आनंदित हूं अपने साथ। और जो कुछ मैं करता हूं वह मेरा आनंद है, मेरा उत्सव है।' अगर मैंने आपसे संन्यास न लिया होता तो मैंने आपको छोड़ दिया होता।'

अगर ऐसा विचार आ गया है, तो तुम छोड़ ही चुके हो। शारीरिक रूप से ही तुम यहां मौजूद हो, जो कि अर्थहीन है। अगर तुम कहते हो, ' अगर मैंने आपसे संन्यास न लिया होता तो मैंने आपको छोड़

दिया होतां।’ तो तुम छोड़ ही चुके हो और संन्यास का कोई अर्थ नहीं है। कृपा करके इसे वापस कर दो—क्योंकि यह तो एक बंधन हो गया। तुम कहते हो, 'मैंने आपको छोड़ दिया होता'—अब यह संन्यास तुम्हारी जंजीर बन रहा है। गिरा दो उसे। मैं यहां तुम्हें मुक्ति देने के लिए हूं तुम्हें बांधने के लिए नहीं। भूल जाओ उसे।

'और मेरे पहले गुरु भी शायद अब मुझे स्वीकार नहीं करेंगे, क्योंकि मैंने उनको छोड़ दिया और अपनी श्रद्धा खोई।’

यह तुम्हारे अपने निर्णय की बात है। अगर पुराना गुरु तुम्हें स्वीकार नहीं करेगा तो तुम किसी नए गुरु के पास जा सकते हो, या तुम पुराने गुरु के पास जा सकते हो और दोबारा कोशिश कर सकते हो। अगर पुराना गुरु सच में ही गुरु था तो वह हजारों बार स्वीकार करेगा, क्योंकि जब कोई शिष्य धोखा देता है, तो यह कुछ ज्यादा उपद्रव की बात नहीं होती। यह करीब—करीब स्वाभाविक बात होती है। अज्ञानी व्यक्तियों से इससे ज्यादा की?, तो अपेक्षा भी नहीं रखी जा सकती। तो जाओ और आजमाओ पुराने गुरु को ही। शायद वह तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा हो। और यदि वह क्षमा नहीं कर सकता तो वह गुरु नहीं; तो फिर कहीं और ढूंढ लेना किसी को।

और तुम कहते हो, 'बहरहाल, मैं आप में श्रद्धा नहीं खोना चाहता।’

तुम खो ही चुके श्रद्धा। असल में, तुम्हारे पास कभी वह थी ही नहीं। क्योंकि एक बार तुम्हें श्रद्धा हो तो कैसे उसको तुम खो सकते हो? कठिन है इसे समझना, लेकिन एक बार तुम्हें श्रद्धा हो तो तुम उसको खो नहीं सकते। यह कुछ ऐसी बात नहीं है जिसे वापस लिया जा सके। कौन लेगा उसे वापस? श्रद्धा का अर्थ होता है : तुम अपने अहंकार को समर्पित कर देते हो। यह अंतिम कृत्य हो सकता है अहंकार का। एक बार अहंकार समर्पित हो गया, फिर कैसे तुम वापस ले सकते हो उसको? यदि तुम वापस ले सकते हो उसको, तो उसका मतलब समर्पण समर्पण था ही नहीं—तुम खेल रहे थे शब्द के साथ, तुम्हें पता ही नहीं था कि इसका अर्थ क्या होता है। अगर तुम समर्पण करते हो, तो समर्पण समग्र और अंतिम होता है—आत्यंतिक होता है। पीछे जाने का, पीछे लौटने का कोई उपाय नहीं रहता।

'बहरहाल, मैं आप में श्रद्धा नहीं खोना चाहता।’

यह विचार ही क्यों उठ रहा है? तुम्हारे पास श्रद्धा है नहीं; तुम खो ही चुके हो उसको। असल में वह कभी थी ही नहीं तुम्हारे पास। यह बात विरोधाभासी मालूम पड़ेगी, लेकिन यह सच है।

पहली तो बात केवल वही श्रद्धा खो सकती है जो कभी थी ही नहीं। अगर तुम में श्रद्धा नहीं है तो ही तुम खो सकते हो उसको; अगर श्रद्धा है तो खोने की कोई संभावना नहीं है। बिलकुल असंभव है उसे खो देना, क्योंकि श्रद्धा में तुमने अपने को ही खो दिया होता है, अब कोई पीछे बचता नहीं जो इसे वापस ले सके और अपने घर चला जाए।

'अब मैं बुद्धत्व की भी आकांक्षा नहीं करता हूं।'

तुम आकांक्षा कर रहे हो, अन्यथा क्या जरूरत है मेरे पैरों से चिपके रहने की? मेरे पैरों का क्या मूल्य है? क्यों चिपके रहना चाहते हो उनसे? वे क्या दे देंगे तुमको? कहीं गहरे में कामना है, आकांक्षा है। शायद अब ज्यादा सूक्ष्म हो, ज्यादा परोक्ष हो, उतनी स्थूल न हो, लेकिन वह मौजूद है अभी भी।

'अगर आप मुझे अपने चरणों में बांधे रख सकें..।'

लेकिन क्यों? मेरे पैरों ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है? क्या बुरा किया है? क्यों तुम मेरे पैरों के पीछे पड़े हो? जरूरत क्या है? सार क्या है?

अभी दो दिन पहले एक बड़ी मूढ़ स्त्री मुझ से मिलने आई। मूड इसलिए क्योंकि वह कहने लगी, 'मैं परमात्मा की तलाश में हूं।' मैंने उससे पूछा कि वह क्यों तलाश कर रही है परमात्मा की, क्या बिगाड़ा है परमात्मा ने उसका! मैंने उससे पूछा, 'तुम जरूर किसी और चीज की तलाश कर रही हो—सुख, प्रसन्नता, आनंद...?'

उसने कहा, 'नहीं, मुझे कोई रुचि नहीं सुख में, प्रसन्नता में। मैं परमात्मा को खोज रही हूं।'

लेकिन किसलिए? वह इतनी क्रोधित हो गई, क्योंकि मैंने पूछा कि किसलिए। वह तुरंत चली गई। क्यों कोई खोजेगा परमात्मा को? सार क्या है? एकदम मूढ़ता की बात मालूम पड़ती है। परमात्मा को कोई खोजता है आनंदित होने के लिए। आत्म—ज्ञान को कोई खोजता है सुखी होने के लिए—दुखी होने के लिए नहीं। सत्य को कोई खोजता है शाश्वत आनंद पाने के लिए।

वस्तुत: हर कोई सुख की तलाश में है, और इसके अतिरिक्त कुछ और हो नहीं सकता—और कोई संभावना नहीं है। और जो लोग कहते हैं कि वे सुख की तलाश में नहीं हैं, वे मूढ़ होते हैं किसी न किसी ढंग से। वे नहीं जानते कि वे क्या कह रहे हैं। तुम्हारा सुख इस संसार का हो सकता है, तुम्हारा सुख इस संसार से परे पारलौकिक संसार का हो सकता है—उससे कुछ फर्क नहीं पड़ता—लेकिन हर कोई सुख चाहता है। हर कोई तलाश कर रहा है सुख की, और हर कोई गहरे में स्वार्थी है। इससे अन्यथा संभव नहीं है। मैं निंदा नहीं कर रहा हूं किसी की—ध्यान में ले लेना इस बात को। ऐसा ही है जैसा होना चाहिए।

लोग आते हैं मेरे पास और वे कहते हैं कि वे लोगों की सेवा करना चाहते हैं। किसलिए? अगर कोई डूब रहा हो नदी में और तुम कूद पड़ो नदी में और अपना जीवन दाव पर लगा दो और उस व्यक्ति की मदद करो बाहर आने में, तो क्या तुम समझते हो तुमने उस व्यक्ति की मदद की? यदि तुम सोचते हो कि तुमने उस व्यक्ति की मदद की है और तुमने उस व्यक्ति की सेवा की है और तुमने अपना जीवन दाव पर लगाया है और तुम महान परोपकारी हो, तो तुम गहरे नहीं देख रहे हो। उस

व्यक्ति की मदद करके तुमने बहुत प्रसन्नता अनुभव की। मदद न करके तुमने अपराध— भाव अनुभव

किया होता। यदि तुम वहां से उपेक्षा करके चले गए होते, तो तुम्हारा हृदय सदा—सदा के लिए अपराध से भरा रहता। तुम दुखी होते। बार—बार सपने में तुम उस व्यक्ति को डूबते हुए देखते—और तुम उसे बचा सकते थे और तुमने उसे नहीं बचाया।

जब तुम किसी आदमी को नदी में डूबने से बचाते हो तो तुम प्रसन्नता अनुभव करते हो। असल में तुम्हें धन्यवाद देना चाहिए उस आदमी को : 'तुम बहुत अदभुत हो। तुम ठीक उसी समय पर डूबे, जब मैं यहां से गुजरा। तुमने मुझे बहुत खुशी दी, बहुत गहरी खुशी, बहुत गहरा संतोष कि मैं किसी आदमी की मदद कर सका। मैं किसी के काम आ सका; मैं धरती पर बेकार ही बोझ नहीं हूं। मैं कितना अच्छा अनुभव कर रहा हूं।' तुम्हारे पांवों में थिरकन आ जाती है। तुम्हारी आंखों में रोशनी आ जाती है। तुम एक गौरव अनुभव करते हो। तुम अपनी ही दृष्टि में उठा हुआ अनुभव करते हो। यह अपने ही सुख की तलाश है।

कोई किसी की मदद नहीं करता—कर नहीं सकता। हर व्यक्ति तलाश कर रहा है अपने सुख की, अपनी खुशी की। बुद्धत्व वह परम आनंद है जो एक बार उपलब्ध होने पर खोता नहीं। उस अवस्था को उपलब्ध होने की आकांक्षा तुम कैसे छोड़ सकते हो? वह मौजूद है, अन्यथा क्यों तुम मेरे चरणों से चिपके रहना चाहते हो?

सजग होओ। अपनी आकांक्षाओं के प्रति सजग होओ। क्योंकि जब तुम सजग होते हो, केवल तभी तुम समझ सकते हो; और समझ के द्वारा ही रूपांतरण घटित होता है।

मुझे पता है कि जब तक सारी आकांक्षा न गिर जाए, बुद्धत्व संभव नहीं है। और यही मैं कहता रहता हूं तुम से—इसीलिए तुम अब कहते हो कि तुम कोई आकांक्षा नहीं कर रहे हो। तो फिर तुम यहां कर क्या रहे हो? अगर तुम ठीक—ठीक समझते हो, तो न तुम कहोगे, 'मैं आकांक्षा नहीं करता हूं, न तुम कहोगे, 'मैं आकांक्षा करता हूं।' अगर तुम समझ लेते हो तो आकांक्षा विदा हो जाती है—कोई चिह्न तक नहीं बचता। तब तुम यह भी नहीं कहते, 'मैं आकांक्षा नहीं करता हूं।' बस, सहज रूप से आकांक्षा मिट जाती है। तुम प्रकाश से भर जाते हो, आनंद से भर जाते हो, आकांक्षा का अंधकार खो जाता है।

लेकिन उसके लिए तुम्हें निरंतर होशपूर्ण रहना है, क्योंकि आकांक्षा बहुत से रूप लेगी और बहुत—बहुत ढंग से तुम्हें धोखा देगी, और आकांक्षा इतनी सूक्ष्म हो सकती है कि तुम करीब—करीब भूल ही जाओ कि वह आकांक्षा है। वह कुछ और होने का दिखावा कर सकती है। आकांक्षा दिखावा कर सकती है आकांक्षाशून्य होने का भी, लेकिन तुम पहचान सकते हो—जब किसी व्यक्ति में कोई आकांक्षा नहीं बचती, तो पूछने को कुछ नहीं रहता। वह तो बस होता है, और अस्तित्व जहां ले जाना चाहे वहां जाता

है। जब तुम आकांक्षा को गिरा देते हो, तब संपूर्ण अस्तित्व तुम्हें सम्हाल लेता है, तुम बहते हो नदी के साथ। तब तुम्हारा कोई अपना निजी लक्ष्य नहीं रहता।

अभी कुछ दिन पहले मैं तुम्हें 'ईडियट' शब्द का अर्थ बता रहा था। वह आता है ग्रीक मूल से, ग्रीक शब्द है—'ईडियाटिकी'। इसका अर्थ होता है 'विशिष्ट लक्ष्य'। वह व्यक्ति जिसका अपना कोई विशिष्ट लक्ष्य होता है, वह व्यक्ति जिसका अपना कोई विशिष्ट संसार होता है —समग्रि के विरुद्ध—वह 'ईडियट' है, मूढ़ है।

जब तुम समष्टि के साथ बहते हो—धारा में तैरते तक नहीं बल्कि धारा के साथ बहते हो, जहां भी वह ले जाए—तो तुम क्षण— क्षण बुद्धत्व में जीते हो। जब बुद्धत्व की आकांक्षा मिट जाती है, तब बुद्धत्व घटित होता है। प्रश्नकर्ता के लिए अभी वह घटित नहीं हुआ है। जरूर कोई आकांक्षा होगी; जरा ध्यान से उसे देखना।

छठवां प्रश्न:

कोई कैसे चिंता करना छोडे?

पूछा है 'पथिक दि पैथेटिक' ने! वह नाहक ही 'पैथेटिक' बना हुआ है। अब, 'कोई कैसे चिंता करना छोड़े?' चिंता छोड़ने की जरूरत क्या है? अगर तुम चिंता छोड़ने की कोशिश में लग जाते हो, तो तुम एक नई चिंता बना लेते हो : कैसे चिंता करना छोड़े! तब तुम चिंताओं की चिंता करने लगते हो; तब चिंता दुगनी हो जाती है, तब कोई उपाय नहीं रह जाता है।

और अगर कोई कहता है, जैसे कि बहुत लोग हैं.. डेल कार्नेगी ने किताब लिखी है: 'चिंता कैसे छोड़े और जीना शुरू करें।' ये लोग और चिंता निर्मित कर देते हैं, क्योंकि ये तुम्हें आशा दे देते हैं कि चिंताएं छोड़ी जा सकती हैं। वे छोड़ी नहीं जा सकतीं; लेकिन वे खो जाती हैं—इतना मैं जानता हूं। वे छोड़ी नहीं जा सकतीं, किंतु वे तिरोहित हो जाती हैं! तुम उनके विषय में कुछ कर नहीं सकते। यदि तुम उन्हें आने दो और जरा भी परवाह न करो, तो वे तिरोहित हो जाती हैं। चिंताएं तिरोहित होती हैं, वे छोड़ी नहीं जा सकतीं—क्योंकि जब तुम कोशिश करते हो उन्हें छोड़ने की, तो तुम हो कौन? वही मन जो कि चिंताएं खड़ी कर रहा है वह एक नई चिंता बना लेता है कि चिंता कैसे छोड़े! अब तुम पागल हो जाओगे। परेशान हो जाओगे। अब तुम्हारी हालत उस कुत्ते जैसी हो जाएगी जो अपनी ही पूंछ को पकड़ने की कोशिश कर रहा है।

देखना किसी कुत्ते को; वह देखने जैसी बात है। सर्दियों में भारत में तुम कहीं भी देख सकते हो कुत्तों को धूप सेंकते हुए, धूप का मजा लेते हुए। फिर वह अचानक ही अपनी पूंछ के प्रति सजग हो जाता है कि यह क्या है। इतना आकर्षण, कि वह छलांग लगा देता है। लेकिन पूंछ भी छलांग लगा देती है। निश्चित ही एक कुत्ते के लिए यह बात सहना जरा ज्यादा ही है, यह असंभव है। यह बात चोट करती है कि यह साधारण सी पूंछ और परेशान कर रही है—इतने बड़े कुत्ते को! वह पागल हो जाता है, गोल—गोल घूमता है। तुम देखोगे उसको हांफते हुए, परेशान, और वह विश्वास ही नहीं कर पाता कि यह क्या हो रहा है। वह—और इस पूंछ को नहीं पकड़ पा रहा?

अपनी ही पूंछ को पकड़ने वाले कुत्ते जैसा व्यवहार मत करो, और मत सुनो डेल कार्नेगियों को। यही है एकमात्र विधि जो वे तुम्हें सिखा सकते हैं : अपनी ही पूंछ का पीछा करो और पागल हो जाओ। एक दृष्टि है—विधि नहीं—एक दृष्टि से चिंताएं मिट जाती हैं : अगर तुम उनको बस देखते भर रहो, तटस्थता से, अलग— थलग; तुम उन्हें देखते रहो जैसे तुम्हारा कोई लेना—देना न हो। वे हैं; तुम उनको स्वीकार कर लो। जैसे कि बादल तिरते हैं आकाश में : विचार चलते हैं मन में, अंतर—आकाश में। ट्रैफिक चलता है सड़क पर : विचार चल रहे हैं भीतरी सड़क पर। बस, तुम उनको देखते रहते हो।

तुम क्या करते हो जब तुम सड़क के किनारे खड़े बस की प्रतीक्षा कर रहे होते हो? तुम केवल देखते रहते हो। ट्रैफिक चलता रहता है; तुम्हारा कुछ लेना—देना नहीं होता उससे। जब तुम्हारा कुछ लेना—देना नहीं होता, चिंताएं कम होने लगती हैं। तुम्हारा जुड़ाव ही उन्हें ऊर्जा देता है। तुम उन्हें पोषित करते हो; तुम उन्हें शक्ति देते हो; और फिर तुम पूछते हो—उन्हें छोड़े कैसे। और जब तुम पूछते हो कि उन्हें छोड़े कैसे, तो वे तुम पर हावी हो चुकी होती हैं।

गलत प्रश्न मत पूछो। चिंताएं हैं, स्वाभाविक है यह। जीवन इतनी विराट और जटिल घटना है कि चिंताएं होंगी ही। उन्हें देखो। साक्षी बने रहो और कर्ता मत बनो। मत पूछो कि कैसे छोड़े। जब तुम पूछते हो कैसे छोड़े, तो तुम पूछ रहे हो कि क्या करें। नहीं, कुछ नहीं किया जा सकता है। स्वीकार करो उनको—वे हैं। गौर से देखो उनको, प्रत्येक कोण से देखो उनको, कि वे क्या हैं। छोड़ने की बात ही भूल जाओ।

और एक दिन अचानक तुम देखते हो कि केवल ध्यान देने से, केवल देखने से, एक अंतराल पैदा होता है। चिंताएं नहीं हैं; ट्रैफिक रुक गया है; रास्ता खाली है; कोई नहीं गुजर रहा है। उस खालीपन में, उस शून्यता में भगवत्ता प्रकट होती है। उस शून्यता में अचानक तुम्हें झलक मिलती है अपने बुद्धत्व की, अपने आंतरिक वैभव की, और हर चीज एक प्रसाद हो जाती है।

लेकिन तुम चिंताओं को छोड़ नहीं सकते। तुम उनको स्वीकार कर सकते हो; उनको होने दे सकते हो; ध्यान दे सकते हो उन पर—बहुत ही उपेक्षापूर्ण, तटस्थ दृष्टि से, जैसे कि उनका कोई अस्तित्व ही न हो। और वे बस विचारों के बुदबुदे ही हैं, उनका सच में ही कोई अस्तित्व नहीं है। जितने ज्यादा तुम

उनसे जुड़ जाते हो, उतनी ही वे महत्वपूर्ण हो जाती हैं। जितनी ज्यादा वे महत्वपूर्ण हो जाती हैं, उतने ज्यादा तुम उनसे जुड़ जाते हो। अब तुम एक दुष्चक्र निर्मित कर लेते हो। इस दुक्कक्र के बाहर आओ।

सातवां प्रश्न:

क्या मूल्यांकन करने और विवेक करने के बीच कोई अंतर है?

हां, बहुत अंतर है। मूल्यांकन आता है तुम्हारे विश्वासों से, सिद्धांतो से, धारणाओं से, मूल्यांकन आता है तुम्हारे अतीत से, तुम्हारे ज्ञान से। विवेक आता है तुम्हारे वर्तमान से, तुम्हारे बोधपूर्ण प्रतिसंवेदन से।

उदाहरण के लिए. तुम किसी शराबी को देखते हो। तुरंत एक मूल्यांकन आ जाता है. यह आदमी अच्छा काम नहीं कर रहा है—'शराबी' है। तुरंत एक निंदा—यह है मूल्यांकन! यदि तुम्हारे पास कोई निश्चित धारणाएं नहीं हैं कि क्या ठीक है और क्या गलत है, तो कैसे तुम इतनी जल्दी निर्णय कर सकते हो! तुम उस आदमी को बिलकुल नहीं जानते, उसकी परिस्थिति को नहीं जानते। उसकी समस्याओं का तुम्हें कुछ पता नहीं, उसकी पीड़ाओं का तुम्हें कुछ पता नहीं। उस आदमी की पूरी जिंदगी जाने बिना तुम कोई निर्णय कैसे दे सकते हो? एक हिस्से से ही कैसे निर्णय कर सकते हो तुम? कैसे कह सकते हो तुम कि यह आदमी बुरा है? अगर वह शराबी न होता तो क्या तम सोचते हो कि वह कुछ बेहतर आदमी होता? संभव है कि वह और भी बुरा होता।

ऐसा मेरा बहुत से शराबियों के साथ अनुभव रहा है कि वे अच्छे आदमी होते हैं—बहुत कोमल, बहुत भरोसे के, चालाक नहीं होते, सीधे—साफ होते हैं—बच्चों जैसा निर्दोष भाव होता है। तो क्यों वे शराब पीते हैं फिर? संसार ज्यादा भारी हो जाता है उनके लिए; वे उसका सामना नहीं कर पाते। वे इस संसार के लिए नहीं बने होते; यह संसार बहुत धूर्त है। वे भुला देना चाहते हैं इसे, और वे नहीं जानते कि क्या करें—और शराब आसानी से मिल जाती है; ध्यान को तो खोजना पड़ता है व्यक्ति को। मेरे देखे. वे सब लोग जो शराबी हैं उन्हें ध्यान की जरूरत होती है। वे ध्यान की खोज में होते हैं—आनंद की गहरी खोज में होते हैं, लेकिन उन्हें कोई द्वार, कोई रास्ता नहीं मिलता। अंधेरे में टटोलते हुए शराब उनके हाथ लग जाती है। बाजार में शराब आसानी से मिल जाती है; ध्यान इतनी आसानी से नहीं मिलता। लेकिन गहरे में उनकी तलाश ध्यान के लिए ही होती है।

संसार भर में जो लोग मादक द्रव्य ले रहे हैं उन्हें भीतरी आनंद की ही तलाश है। वे एक संवेदनशील हृदय निर्मित करने की बड़ी कोशिश करते हैं और उन्हें ठीक उपाय, ठीक मार्ग नहीं मिलता। इतनी आसानी से नहीं मिलता है ठीक मार्ग, और मादक द्रव्य आसानी से मिल जाते हैं। और मादक द्रव्य दे देते हैं झूठी झलकियां. वे तुम्हारे मन में एक रासायनिक स्थिति निर्मित कर देते हैं जिसमें तुम ज्यादा तीव्रता से, ज्यादा संवेदनशील ढंग से अनुभव करना शुरू कर देते हो। वे तुम्हें वास्तविक ध्यान नहीं दे सकते हैं, लेकिन फिर भी वे तुम्हें उसकी एक झूठी छाया दे सकते हैं।

लेकिन मेरी समझ है कि जो खोज रहा है, वह झूठी घटना का शिकार हो सकता है, लेकिन वह खोज तो रहा ही है। किसी भी दिन वह इससे बाहर आ जाएगा, क्योंकि यह बात उसे असली अनुभव तो दे नहीं सकती और यह सदा उसको धोखा नहीं दे सकती। किसी न किसी दिन वह जान लेगा कि वह स्वयं को धोखा देता रहा है रासायनिक पदार्थों द्वारा। लेकिन उसके भीतर खोज है। वे लोग जिन्होंने कभी शराब नहीं पी, वे लोग जिन्होंने कभी कोई नशा नहीं किया, वे लोग जो बिलकुल बुरे नहीं हैं—अच्छे लोग, सम्मानित लोग—वे ध्यान की खोज में बिलकुल नहीं हैं।

तो कैसे हो निर्णय? कैसे उस व्यक्ति को 'बुरा' कहो जो खोजी है? और कैसे उस व्यक्ति को 'अच्छा' कहो जो बिलकुल नहीं है खोज की राह पर? शराबी तो शायद किसी दिन पहुंच भी जाए परमात्मा तक, क्योंकि वह उसे खोज रहा है। और असल में जब तक वह परमात्मा को न उपलब्ध हो जाए, उसकी शराब नहीं छूट सकती—क्योंकि केवल वही तृप्ति दे सकता है। तब झूठ छूट जाएगा। लेकिन सम्मानित व्यक्ति—जो हर रविवार को चर्च जाता है, शराब नहीं पीता, सिगरेट नहीं पीता, बाइबिल पढ़ता है, कुरान पढ़ता है, गीता पढ़ता है—यह आदमी तो खोज ही नहीं रहा है। तो कौन बुरा है? कैसे तय करोगे?

अब संसार भर में मादक द्रव्यों को लेकर नई पीढ़ी के बारे में बहुत चिंता है। युवा पीढ़ी पूरी तरह मादक द्रव्यों में उत्सुक है। क्या हो रहा है 2: कैसे निर्णय करें? क्या कहें इस बारे में? यदि तुम सजग हो तो निर्णय देना इतना आसान न होगा। यदि तुम सजग नहीं हो, तो तुम तुरंत निर्णय दे सकते हो कि वे गलत हैं या वे गलत नहीं हैं। फिर ऐसे लोग हैं जो मादक द्रव्यों के पक्ष में हैं, टिमोथी लिअरी और कई दूसरे लोग, जो कहते हैं, 'यह सुंदर अनुभव है।' और फिर ऐसे लोग हैं—संसार की तमाम व्यवस्थाएं—जो विरुद्ध हैं; वे कहते हैं, 'यह बहुत विनाशकारी बात है।'

लेकिन सचाई क्या है? जो लोग मादक द्रव्य ले रहे हैं वे वियतनाम नहीं बना रहे, कश्मीर नहीं बना रहे, मिडिल—ईस्ट नहीं बना रहे। जो लोग मादक द्रव्य ले रहे हैं वे कहीं भी कोई युद्ध खड़ा नहीं कर रहे। उन्होंने किसी मुजीबुर्रहमान का कत्ल नहीं किया है; वे किसी की हत्या नहीं कर रहे हैं। अगर तुम सोचते भी हो कि वे हानि पहुंचा रहे हैं, विनाशकारी हैं, तो वे अपने को ही हानि पहुंचा रहे हैं, किसी और को नहीं। वे किसी के जीवन में हस्तक्षेप नहीं कर रहे हैं। और ये सम्मानित लोग, ये जिम्मेवार हैं संसार भर में हो रही अत्यधिक हिंसा के लिए। ये सम्मानित लोग हैं। अब जिन्होंने मुजीबुर्रहमान

को और उसके सारे परिवार को मार डाला—अब वे राष्ट्रपति हो गए हैं और न जाने क्या—क्या हो गए हैं, और वे सम्मानित व्यक्ति हैं।

तो वास्तविक अपराधी कौन है? रिचर्ड निक्सन ने कोई मादक द्रव्य नहीं लिए। क्या तुम्हें पता है, एडोल्फ हिटलर ने कभी शराब नहीं पी, कभी सिगरेट नहीं पी, पक्का शाकाहारी था। क्या तुम उससे बड़ा अपराधी खोज, सकते हो? वह पक्का जैन था—शाकाहारी, धूम्रपान न करने वाला, शराब न पीने वाला, और वह बड़ा अनुशासित जीवन जीता था, घड़ी के हिसाब से चलता था—और उसने नरक बना दिया धरती को! कई बार मैं सोचता हूं कि अगर उसने थोड़ी शराब पी ली होती तो क्या बेहतर न होता? शायद तब वह इतना हिंसात्मक न होता। अगर वह थोड़ा धूम्रपान कर लेता—मूढ़तापूर्ण है, पर निर्दोष खेल है धूम्रपान—तो वह इतना कठोर न होता, क्योंकि धूम्रपान एक प्रकार का रेचन है।

इसीलिए जब भी तुम क्रोधित अनुभव करते हो, तो तुम धूम्रपान करना चाहते हो; जब भी तुम चिड़चिड़ाहट अनुभव करते हो, तो तुम धूम्रपान करना चाहते हो। जब भी तुम अशांत होते हो, व्याकुल होते हो, तो तुम धूम्रपान करना चाहते हो। वह मदद करता है। लेकिन करने के लिए बेहतर चीजें हैं. तुम किसी मंत्र का प्रयोग कर सकते हो। धूम्रपान भी एक प्रकार का मंत्र है। इसकी जगह तुम कह सकते हो, 'राम, राम, राम, राम..।' धूम्रपान एक प्रकार का मंत्र है : तुम धुआं भीतर खींचते हो, तुम धुआं बाहर छोड़ते हो; तुम धुआं भीतर लेते हो, तुम धुआं बाहर फेंकते हो.. एक पुनरुक्ति! धूम्रपान द्वारा एक प्रकार का जप करते हो। तुम कह सकते हो, 'राम, राम, राम'—वह बात भी मदद देगी। अब जब क्रोध आए तो जरा प्रयोग करना, दोहराना. 'राम, राम, राम.।' वह धूम्रपान से बेहतर है। लेकिन बात वही है, कुछ ज्यादा अंतर नहीं है।

अगर एडोल्फ हिटलर किसी की पत्नी के प्रेम में पड़ गया होता, तो उसकी निंदा की जाती कि बुरा आदमी है, लेकिन वह इतना हिंसात्मक न होता। तब वह थोड़ा शिथिल, थोड़ा शांत होता—तो संसार बेहतर होता।

तो क्या कहा जाए? कैसे हो निर्णय? चीजें जटिल हैं। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि शराबी हो जाओ, और मैं यह नहीं कह रहा हूं कि मादक द्रव्य लेने लगो। मैं यह कह रहा हूं कि जीवन की जटिलता ऐसी है कि किसी को निर्णय नहीं लेना चाहिए।

निर्णय आते हैं क्षुद्र मनों से; वे सदा तैयार रहते हैं निर्णय करने के लिए। तुम्हारे निर्णय ऐसे हैं जैसे कि तुम्हें एक छोटा सा टुकड़ा मिल जाए कागज का किसी बड़े उपन्यास के पन्ने का और तम पढ़ लो कुछ पंक्तियां —वे भी पूरी न हों—बस थोड़ी सी पंक्तियां, पन्ने का एक हिस्सा ही : और का दे दो निर्णय। इसी तरह तो तुम कर रहे हो। किसी व्यक्ति के जीवन का एक हिस्सा ही आता है तुम्हारी निगाहों के सामने और तुम निर्णय कर लेते हो पूरे व्यक्ति के संबंध में—कि वह बुरा है, कि वह अच्छा है। नहीं, बुद्धिमान व्यक्ति निर्णय नहीं लेते।

ऐसा हुआ जीसस के साथ। लोग एक स्त्री को लेकर उनके पास आए; और सारा शहर पागल हुआ जा रहा था। मूढ़ व्यक्ति सदा पागल होते हैं; भीड़ सदा पागल होती है—छोटी—छोटी बातो के लिए, वस्तुत: ना—कुछ बातो के लिए। उन्होंने कहा, 'इस स्त्री ने पाप किया है। यह व्यभिचारिणी है। तो क्या करना चाहिए हमें इसके साथ? पुराने शास्त्र कहते हैं कि इसे पत्थर मार—मार कर मार डालना चाहिए।'

वे एक तीर से दो शिकार करना चाहते थे—उस स्त्री और जीसस दोनों को मुश्किल में डालना चाहते थे। क्योंकि अगर जीसस कहते, 'ही, पुराना शास्त्र सही है। इस स्त्री को मार डालो।' तो वे पूछते, 'आपके सिद्धात का क्या हुआ—कि अपने शत्रु से भी प्रेम करो? आपके सिद्धात का क्या हुआ—कि दूसरा गाल सामने कर दो? अगर कोई तुम्हारे एक गाल पर मारता है तो उसे दूसरा गाल भी दे दो? आपके क्षमा के सिद्धात का क्या हुआ? क्या आप उसे बिलकुल ही भूल गए?' और अगर जीसस कहते हैं कि पुराना शास्त्र गलत है, तो वे अधार्मिक हैं, धर्मद्रोही हैं—वें विरुद्ध हैं शास्त्रों के। उन्हें मार डालना चाहिए। लोग तैयार ही थे। असल में स्त्री में उन्हें ज्यादा रस न था; उन्हें जीसस में ज्यादा रस था। स्त्री तो केवल बहाना थी जीसस को घेरने के लिए।

जीसस सोचते रहे कुछ देर। निर्णय में देर नहीं लगती है, क्योंकि वह बना—बनाया तैयार होता है। वह तैयार ही होता है, रेडीमेड होता है : बंधा—बंधाया होता है। एक सजग व्यक्ति थोड़ा ठहरता है, देखता है चारों तरफ, अनुभव करता है, अपने बोध के स्पर्श से टटोलता है पूरी बात—कि स्थिति क्या है? उन्होंने देखा वहां बैठी हुई उस गरीब स्त्री को। आंसू बह रहे थे। उन्होंने देखा इन क्रोधित व्यक्तियों को। उन्होंने अनुभव किया पूरी स्थिति को, फिर उन्होंने कहा, 'हां, शास्त्र की आशा है कि इस स्त्री को पत्थर मार—मार कर मार डालो, लेकिन पहला पत्थर वह आदमी मारे जिसने कभी कोई पाप न किया हो। अगर तुमने कभी व्यभिचार नहीं किया, अगर तुमने कभी व्यभिचार का सोचा भी नहीं, तो उठाओ पत्थर।'

वे नदी के किनारे बैठे हुए थे, बहुत सारे पत्थर पड़े थे आस—पास। जो लोग बिलकुल आगे—आगे खड़े थे—शहर के सम्मानित व्यक्ति—वे पीछे हटने लगे। वे भयभीत हो गए; अब यह खतरनाक बात थी। धीरे— धीरे सब लोग वहा से चले गए। केवल जीसस और वह स्त्री रह गए। उस स्त्री ने जीसस को बहुत श्रद्धा से देखा। बहुत अदभुत बात है : वे सम्मानित व्यक्ति नहीं पहचान सके जीसस को और पापी ने पहचान लिया!

वह स्त्री जीसस के चरणों में गिर पड़ी, और उसने कहा, 'मैंने पाप किया है। मुझे क्षमा करें।' जीसस ने कहा, 'यह बात तुम्हारे और तुम्हारे परमात्मा के बीच की है। मैं कौन होता हूं निर्णय करने वाला? अगर तुम सोचती हो कि तुमने कुछ गलत किया है तो याद रखना और उसे फिर मत करना, बस इतना ही। लेकिन मैं कौन होता हूं निर्णय करने वाला और कहने वाला कि तुम पापी हो। यह तुम्हारे और तुम्हारे परमात्मा के बीच की बात है।'

समझदार व्यक्ति प्रतिसंवेदित होता है—निर्णय के साथ नहीं, बल्कि विवेक के साथ। जीसस ने बहुत विवेक से काम लिया। उन्होंने कहा, 'हा, यह बात ठीक है, शास्त्र ठीक कहता है। मार डालो इस स्त्री को।' फिर उन्होंने विवेक से थोड़ा भेद किया, 'अब, जो स्वयं पापी नहीं हैं, उन्हें ही अपने हाथों में उठाने चाहिए पत्थर और वही मारें स्त्री को।' यह है विवेक—सम्मत निर्णय। यह आया बोध से; यह कोई मुर्दा निर्णय नहीं था। उन्होंने किसी शास्त्र का अनुसरण नहीं किया। उन्होंने खुद बनाया अपना शास्त्र—सजगता के उस क्षण में।

सजग व्यक्ति लकीर का फकीर नहीं होता; सजग व्यक्ति की सजगता ही उसका मार्गदर्शक होती है। और वह सजगता कभी गलत नहीं होती, मैं यह कहता हूं तुम से। वह कभी गलत नहीं होती। और वह सदा प्रामाणिक होती है, सच्ची होती है—वर्तमान क्षण के प्रति सच्ची होती है।

अंतिम प्रश्न :

पद्‌यसंभव का कहना है 'जब लोहे का पक्षी उड़ेगा तब धर्म लाल मनुष्य की भूमि में पहुंचेगा।' क्या इस भविष्यवाणी को पूरा करना आपके काम का हिस्सा है?

मैं यहां किसी की भविष्यवाणी पूरा करने के लिए नहीं हूं। और क्यों करूं मैं पूरा? यह पद्‌यसंभव की अपनी कल्पना हो सकती है, लेकिन वह अपनी कल्पना मुझ पर जबरदस्ती क्यों लादे? मैं यहां स्वयं होने के लिए हूं। मैं कोई प्रोफेट नहीं हूं, और मैं यहां किसी को उसके पापों से मुक्ति दिलाने के लिए नहीं हूं। मैं यहां धर्म का कोई युग लाने के लिए नहीं हूं। ये तमाम बातें एकदम व्यर्थ और मूढ़ता भरी हैं।

मैं तो अपना आनंद मनाता हूं। अगर तुम भी आनंद मनाना चाहते हो तो तुम मेरे आनंद में सम्मिलित हो सकते हो, बस इतना ही। मेरे देखे, जीवन कोई गंभीर बात नहीं है। प्रोफेट जीवन को बड़ी गंभीरता से लेते हैं। संत सरल होते हैं। प्रोफेट सदा खतरनाक होते हैं।

बुद्‌ध कोई प्रोफेट नहीं हैं; असल में भारत ने प्रोफेट पैदा नहीं किए। प्रोफेट यहूदी धर्म की विशेष देन हैं। हमने संत पैदा किए—लाखों —लाखों संत—लेकिन वे सरल व्यक्ति हैं। जैसे तुम फूलों के साथ खुश होते हो—वे किसी खास उपयोग के नहीं होते। असल में प्रोफेट धर्म के राजनीतिज्ञ हैं। उन्हें बदलना होता है सारे संसार को; उन्हें एक लक्ष्य पूरा करना होता है, और बहुत कुछ करना होता है।

मेरा कोई लक्ष्य नहीं है। मैं कोई मिशनरी नहीं हूं। मैं एक ऐसा संसार चाहता हूं जिसमें न कोई प्रोफेट हों, न कोई मिशनरी हों, ताकि लोग अपना जीवन जीने के लिए स्वतंत्र हों। प्रोफेट और मिशनरी ऐसा

कभी नहीं होने देते। वे सदा तुम्हारे पीछे पड़े रहते हैं—अपने निर्णय सहित। वे सदा तुम्हारी छाती पर बैठे रहते हैं—अपनी धारणाओं और तुलनाओं के साथ। वे सदा तैयार रहते हैं तुम्हें नरक में फेंकने को या तुम्हें स्वर्ग का पुरस्कार देने को।

मेरे पास कुछ नहीं है—न तो कोई नरक है जिसमें तुम्हें फेंकना है और न कोई स्वर्ग है जिसे तुम्हें देना है—सिर्फ होने का आनंद है। और यह संभव है, बिलकुल संभव है। अगर तुम उसे होने दो तो यह अभी संभव है।

मेरे देखे, जीवन कोई गंभीर चीज नहीं है। असल में जीवन अस्तित्व की शाश्वतता में होने वाली एक कहानी, एक गुफ्तगू के सिवाय और कुछ नहीं है। मैं गुफ्तगू कर रहा हूं यहां; तुम सुन रहे हो, बस इतनी सी बात है। यदि तुम आनंदित हो तो तुम यहां हो। यदि मैं आनंदित हूं तो मैं यहां हूं। यदि परस्पर आनंदित होना कठिन हो जाए, तो हम अलग हो जाते हैं—और कोई बंधन नहीं है।

और मैं किसी को इजाजत नहीं देता—चाहे वह पद्‌यसंभव ही क्यों न हो—कि वह अपने जाल का लक्ष्य मुझे बनाए।

आज इतना ही।

प्रवचन 53 - शरीर और मन की शुद्‌धता

योग—सूत्र

(साधनपाद)

शौचात्स्वाङ्गजुगुप्सा परैरसंसर्ग:।। 40।।

जब शुद्‌धता उपलब्ध होती है, तब योगी में स्वयं के शरीर के प्रति एक जुगुप्सा और दूसरों के साथ शारीरिक संपर्क में आने के प्रति एक अनिच्छा उत्पन्न होती है।

सत्वशुद्धिसौमनस्यैकग्रयैन्द्रियजयात्मदर्शनयोग्यत्वानि च।। 41।।

मानसिक शुद्धता से उदित होती है—प्रफुल्लता, एकाग्रता की शक्ति, इंद्रियों पर नियंत्रण और आत्म—दर्शन की योग्यता।

संतोषादनुत्तमसुखलाभः।। 42।।

संतोष से उपलब्ध होता है परम सुख।

अहिंसा, अपरिग्रह, अचौर्य और अंतस की प्रामाणिकता से शुद्धता आती है। ये बातें कोई नैतिक धारणाएं नहीं हैं पतंजलि के लिए; इसे सदा स्मरण रखना। पश्चिम में ये बातें नैतिक धारणाओं की भांति सिखाई गई हैं, पूरब में आंतरिक स्वास्थ्य की भांति सिखाई गई हैं, नैतिक धारणाओं की भांति नहीं। पश्चिम में वे परोपकार की भांति सिखाई गई हैं, पूरब में उनमें परोपकार जैसी कोई बात नहीं है—यह बिलकुल स्वार्थ की बात है। यह तुम्हारा आंतरिक स्वास्थ्य है। ये बातें तुम्हें एक शुद्धि देती हैं, और उस शुद्धि से असंभव संभव हो जाता है, अनुपलब्ध उपलब्ध हो जाता है। शुद्धि द्वारा तुम्हारे भीतर की स्थूलता खो जाती है। तुम सुकोमल, सूक्ष्म और सौम्य हो जाते हो। शुद्धता अस्तित्व के लिए भेजा एक निमंत्रण है कि तुम उसके अवतरण के लिए तैयार हो... और एक दिन सागर उमड़ आता है, और उतर जाता है बूंद में।

जब ये बातें नैतिक धारणाओं की भांति सिखाई जाती हैं, जैसा कि पश्चिम में—या भारत में भी जैसा कि महात्मा गांधी सिखाते आए हैं—तब उनकी पूरी गुणवत्ता बदल जाती है। जब तुम कहते हो, 'तुम्हें अहिंसक होना चाहिए, क्योंकि हिंसा दूसरों को चोट पहुंचाती है। किसी को चोट मत पहुंचाओ। मानवता एक परिवार है, और दूसरों को चोट पहुंचाना पाप है।' तो तुमने सारी बात को एक बिलकुल ही अलग आयाम में मोड़ दिया।

पतंजलि कहते हैं, 'अहिंसक होओ : क्योंकि यह बात तुम्हें शुद्ध करती है। किसी को चोट मत पहुंचाओ—किसी को चोट पहुंचाने के बारे में सोचो भी मत—क्योंकि जैसे ही तुम उस ढंग से सोचते हो तुम भीतर अशुद्धता में गिर जाते हो।' बात दूसरे की नहीं है, बात तुम्हारी है। निश्चित ही जब कोई अहिंसक होता है तो दूसरे लोगों को इससे लाभ मिलता है, लेकिन वह लक्ष्य नहीं है अहिंसक होने का। वह तो केवल एक उप—उत्पत्ति है, एक छाया मात्र है।

यदि तुम इसलिए अहिंसक हो कि कहीं दूसरों को चोट न पहुंचे, तो तुम वस्तुत: अहिंसक नहीं हो। तुम एक अच्छे सामाजिक नागरिक हो, सुसभ्य हो, लेकिन धर्म की कोई घटना नहीं घटी है तुम्हारे भीतर। तुम्हारी अहिंसा तुम्हारे और दूसरों के बीच एक सौहार्दपूर्ण वातावरण का काम करेगी। तुम्हारा जीवन थोड़ा ज्यादा शात हो जाएगा, लेकिन ज्यादा शुद्ध न होगा, क्योंकि लक्ष्य से पूरी गुणवत्ता बदल जाती है। किसी दूसरे को बचाने का लक्ष्य नहीं है; दूसरा बच जाता है, वह बात गौ''। है। लक्ष्य है शुद्ध होने का, ताकि तुम परम शुद्धता को जान सको।

पूरब के धर्म स्वार्थी हैं, क्योंकि वे जानते हैं कि अन्यथा होने का कोई उपाय नहीं है, और जब कोई स्वार्थी होता है तो दूसरे बहुत लाभान्वित होते हैं। असल में सच्चा परोपकार, प्रामाणिक परोपकार गहन स्वार्थ से ही आता है। ये विपरीत नहीं हैं, ये विरोधाभासी नहीं हैं. परोपकार के फूल केवल उस अंतस में खिलते हैं जो गहन रूप से स्वार्थी होता है। स्वार्थी होना एकदम स्वाभाविक बात है। लोगों पर इससे विपरीत होने की जबरदस्ती करना उन्हें अस्वाभाविक बनाना है, और जो भी अस्वाभाविक है वह परमात्मा का ढंग नहीं है। जो भी अस्वाभाविक है वह दमन बन जाएगा; वह तुममें कोई शुद्धता न लाएगा।

तो इसे स्मरण रखना है : यह कोई नैतिक लक्ष्य नहीं है। असल में पूरब में नैतिकता कभी लक्ष्य नहीं रही; वह धर्म की छाया है। जब धर्म घटता है, तो नैतिकता अपने ऊपर घटती है—उसके बारे में चिंता करने की कोई जरूरत नहीं रहती व्यक्ति को, वह अपने आप आती है। पश्चिम में नैतिकता लक्ष्य की भांति सिखाई जाती है—असल में धर्म की भांति सिखाई जाती है। पूरब के शास्त्रों में 'टेन कमांडमेंट्स'—दस आज्ञाओं जैसी कोई चीज नहीं, ऐसी कोई आशाएं पूरब में नहीं हैं।

जीवन को कमांडमेंट्स, आज्ञाओं के अनुसार नहीं जीना चाहिए, वरना तो तुम गुलाम हो जाओगे। और अगर तुम गुलामी से स्वर्ग भी पहुंच जाते हो, तो तुम्हारा स्वर्ग कोई स्वर्ग न होगा, गुलामी उसका एक हिस्सा होगी। स्वतंत्रता, मुक्ति तुम्हारे विकास का एक अभिन्न अंग होनी चाहिए। तो ये हैं स्वास्थ्य के, शुद्धि के उपाय। वे तुम्हें शुद्ध करते हैं, वे तुम्हें आंतरिक स्वास्थ्य देते हैं।

जब शुद्धता उपलब्ध होती है— पतंजलि कहते है— तब योगी में स्वयं के शरीर के प्रति एक जुगुप्सा और दूसरों के साथ शारीरिक संपर्क में आने के प्रति एक अनिच्छा उत्पन्न होती है।

'जुगुप्सा' शब्द के साथ थोड़ी कठिनाई है। सारे अनुवादों में इसे घृणा, 'डिसगस्ट' कहा गया है। यह 'डिसगस्ट' नहीं है, घृणा नहीं है; घृणा शब्द ही गलत है। यह घृणा शब्द ही घृणास्पद है।

और योगी के विषय में सोचना कि उसमें घृणा उत्पन्न होती है अपने शरीर के लिए, यह बात ही अविश्वसनीय है, क्योंकि योगियों ने तो अपने शरीर का ऐसा ध्यान रखा है जैसा ध्यान कभी किसी ने नहीं रखा। वे अपने शरीर को इतने खयाल से सम्हालते हैं, जितना कोई कभी नहीं सम्हालता है। उनके पास सुंदर शरीर होते हैं, बड़े सुंदर और सुडौल। महावीर या बुद्ध को देखो—कितनी सुंदर काया है उनकी! मानो पदार्थ में दिव्य संगीत उतर आया हो। नहीं, यह बात संभव नहीं। घृणा एक गलत शब्द है, पहली बात यह समझ लेनी है।

'जुगुप्सा' का अर्थ घृणा नहीं है। अर्थ बड़ा कठिन है, मुझे स्पष्ट करना होगा तुमको। तीन तरह के लोग होते हैं। एक जो पागलों की तरह अपने शरीर के प्रेम में होते हैं; वस्तुत: वे शरीर से आविष्ट होते हैं। विशेषकर स्त्रियां—बहुत शरीर से बंधी होती हैं। देखना किसी स्त्री को : जितनी खुश वह दर्पण के सामने होती है उतनी खुश वह किसी और वक्त नहीं होती—नार्सिसिस्टिक, आत्म—मोह से ग्रस्त। घंटों वे खड़ी रह सकती हैं दर्पण के सामने—आविष्ट! कुछ गलत नहीं है दर्पण के सामने खड़े होने में, लेकिन बस वहीं जमे रहना घंटों तक पागलपन जैसा मालूम पड़ता है।

यह है पहला प्रकार, जो निरंतर ग्रस्त होता है शरीर से—इतना ज्यादा ग्रस्त कि वह भूल जाता है कि शरीर से पार भी उसका अस्तित्व है। शरीर के पार का तत्व भुला दिया जाता है, वह मात्र शरीर हो जाता है। वह शरीर का मालिक नहीं होता है; शरीर मालिक होता है उसका। यह है पहली प्रकार का व्यक्ति।

दूसरी प्रकार का व्यक्ति पहले के ठीक विपरीत होता है : वह भी शरीर से आविष्ट होता है—उलटी दिशा में। वह शरीर के विरुद्ध होता है, उसके प्रति घृणा से भरा होता है. उसने तोड़ दिया है दर्पण। वह लाखों ढंग से अपने शरीर को सताता रहता है, वह घृणा करता है शरीर से। पहला व्यक्ति उससे प्रेम करता है पागल की भांति; दूसरा दूसरी अति पर चला जाता है—वह घृणा करता है उससे। वह आत्महत्या कर लेना चाहता है।'

तुम देख सकते हो दूसरे प्रकार के लोगों को, वे शायद योगी होने का दिखावा कर रहे होंगे, लेकिन वे योगी नहीं हैं। योगी घृणा नहीं कर सकता है। यह किसी चीज से घृणा करने का प्रश्न नहीं है. योगी घृणा ही नहीं कर सकता। क्योंकि घृणा से अशुद्धता पैदा होती है। यह किसी दूसरे को या किसी चीज को या अपने शरीर को घृणा करने का प्रश्न नहीं है. घृणा का विषय चाहे कुछ भी हो, घृणा अशुद्धता पैदा करती है। योगी अपने शरीर को घृणा नहीं कर सकता है। लेकिन तुम इस तरह के विकृत योगी देख सकते हो बनारस की गलियों में जो लेटे हुए हैं काटो पर या लोहे की नुकीली कीलों पर, अपने शरीर को सता रहे हैं। यह एकदम विपरीत अति पर है उस स्त्री से जो कि दर्पण के सामने खड़ी मजा ले रही है।

फिर उपवास है : उपवास अपने आप में अच्छी बात हो सकती है, बुरी बात हो सकती है। यह निर्भर करता है। उपवास एक ढंग हो सकता है शरीर को सताने का; तो यह बुरी बात है, तो यह हिंसा है। मेरे देखे ऐसा ही है : जो लोग दूसरों के प्रति हिंसक नहीं हैं, जिन्होंने दूसरों के प्रति हिंसा को दबा लिया है और अहिंसक हो गए हैं—उनकी हिंसा नया रुख ले लेती है : वे अपने शरीर पर ही हिंसा निकालने लगते हैं। विकृत लोगों की कथाएं हैं जिन्होंने अपनी आंखें फोड़ लीं ताकि वे सुंदर स्त्रियों को न देख सकें। ऐसी बहुत सी कथाएं हैं लोगों की—और कोई इक्की—दुक्की कथाएं नहीं हैं, हजारों कथाएं हैं।

रूस में क्रांति से पहले एक संप्रदाय था, हजारों उस संप्रदाय के मानने वाले थे, जिन्होंने अपनी जननेंद्रियाँ काट दीं—शरीर से अतिशय घृणा करने के कारण। वे बच्चे नहीं पैदा कर सकते थे। लेकिन फिर अनुयायियों की संख्या कैसे बढ़े? क्योंकि प्रत्येक संस्था को इसमें रस होता है। तो वे कठिनाई में थे। तो वे बच्चों को गोद ले लेते और उनकी जननेंद्रिया काट देते—अपने ही शरीर के प्रति एक अपराधपूर्ण कृत्य।

ईसाइयत में ऐसे संप्रदाय हुए हैं जिनकी एकमात्र प्रार्थना थी रोज सुबह अपने को कोडे मारना। और जो अपने शरीर पर इतने ज्यादा कोड़े मारता कि वह नीला पड़ जाता, उसे सबसे महान संत समझा जाता था—तमाम शरीर लहूलुहान हो जाता और खून बहने लगता। ऐसा लिखा जाता था बड़े संतो की जीवन—कथाओं में कि सुबह उन्होंने अपने शरीर पर कितने कोड़े मारे —सौ, कि दो सौ, कि तीन सौ....।

जैसे भारत में जैन मुनि अपने दिन गिनते रहते हैं कि साल में कितने दिन उन्होंने उपवास किया—सौ दिन, पचास दिन, कितने दिन। सबसे बड़ा मुनि वह होता है, जो उपवास ही करता रहा है—अपने शरीर को करीब—करीब भूखा ही रखता है।

ईसाइयत में ऐसे फकीर हुए हैं जिनके जूतो में कीलें ठुंकी रहतीं। जो चुभती रहतीं उनके पैरों में; और वे चलते उन जूतो को पहने हुए और वे अपने पैरों में हमेशा घाव बनाए रहते। खून बह रहा होता, मवाद भर गया होता—वे बड़े संत माने जाते थे!

अगर कोई धर्म को वैज्ञानिक दृष्टि से देखे तो नब्बे प्रतिशत धर्म रुग्ण मालूम होगा। इन लोगों को मानसिक चिकित्सा की जरूरत थी। ये लोग धार्मिक न थे, बिलकुल नहीं थे। इन्हें धार्मिक कहना नितांत मूढ़ता है. ये तो स्वाभाविक भी न थे; ये विक्षिप्त थे।

ये दो साधारण प्रकार हैं, और फिर इन दोनों के बीच—एकदम ठीक मध्य में—तीसरा प्रकार है, जिसके लिए पतंजलि 'जुगुप्सा' शब्द का प्रयोग करते हैं। उसे अपने शरीर से घृणा भी नहीं होती है और वह देह से ग्रस्त भी नहीं होता है। वह एक गहन संतुलन में होता है। वह शरीर का खयाल रखता है, क्योंकि शरीर एक माध्यम है। वह शरीर को पवित्र वस्तु के रूप में समझता है, सम्हालता है। शरीर पवित्र है—परमात्मा ने उसे बनाया है; और जो भी परमात्मा ने बनाया है, वह अपवित्र कैसे हो सकता

है? वह मंदिर है, उसकी निंदा नहीं करनी है। न ही उसके पीछे इतने पागल हो जाना है कि तुम खो ही जाओ उसमें।

मंदिर प्रतिमा नहीं है; मंदिर गर्भगृह नहीं है। गर्भगृह तो वह अंतरस्थ केंद्र है जिसके लिए मंदिर है। तुम्हें मंदिर की दीवारों को नहीं पूजने लगना है, लेकिन उसके विरोध में हो जाने की भी कोई जरूरत नहीं है—कि तुम मंदिर को ही नष्ट करने लगो।

एक गहन अतादात्म्य चाहिए। तुम्हें जानना है : 'मैं शरीर में हूं लेकिन शरीर के पार हूं। मैं शरीर में हूं लेकिन मैं शरीर नहीं हूं। मैं शरीर में हूं लेकिन उसमें ही सीमित नहीं हूं। मैं शरीर में हूं लेकिन मैं उसके पार हूं।' शरीर एक बंधन नहीं होना चाहिए। निश्चित ही, वह एक आश्रय है, और एक सुंदर आश्रय है। व्यक्ति को उसके प्रति अनुगृहीत होना चाहिए; उससे लड़ने की कोई जरूरत नहीं है। उससे लड़ना एकदम मूढ़ता भरी और बचकानी बात है। उसका उपयोग करना चाहिए—और ठीक से उपयोग करना चाहिए।

'जुगुप्सा' का अर्थ है... अगर मुझे इसे कहना हो तो मैं कहूंगा : योगी का मोह— भंग हो जाता है शरीर के प्रति। घृणा नहीं होती, केवल मोह— भंग होता है। वह नहीं सोचता कि शरीर द्वारा, आत्मा जिस आनंद को खोज रही है, वह संभव है। नहीं। लेकिन वह इसके विपरीत भी नहीं सोचता कि शरीर को नष्ट करके वह आनंद संभव है। नहीं, वह द्वैत को गिरा देता है। वह शरीर में मेहमान की भांति रहता है और वह शरीर को मंदिर समझता है।

'जब शुद्धता उपलब्ध होती है, तब योगी में स्वयं के शरीर के प्रति एक जुगुप्सा और दूसरों के साथ शारीरिक संपर्क में आने के प्रति एक अनिच्छा उत्पन्न होती है।'

जब तुम शरीर में बहुत ज्यादा जीते हो, तब तुम सदा उत्सुक होते हो दूसरे शरीरों के संपर्क में आने के लिए, दूसरों के शरीरों से संपर्क बनाने की एक कामना होती है। इसे तुम प्रेम कहते हो।

यह प्रेम नहीं है, यह केवल कामना है। क्योंकि शरीर अकेला नहीं जी सकता। वह दूसरे शरीरों से संबंधित होकर ही जी सकता है।

एक बच्चा मां के गर्भ में होता है; नौ महीने मां का शरीर बच्चे के शरीर को पोषित करता है। बच्चे का शरीर बढ़ता है मां के शरीर से, जैसे कि वृक्ष से शाखाएं फूटती हैं। जब बच्चा बड़ा होता है, तो निश्चित ही वह गर्भ से बाहर आ जाता है, लेकिन फिर भी गहन रूप से जुड़ा रहता है। मां के स्तन से जुड़ा रहता है बच्चा—केवल दूध ही नहीं ग्रहण करता—शरीर की ऊष्मा भी पाता है, जो कि एक शारीरिक जरूरत है।

और अगर बच्चे को मां की ऊष्मा नहीं मिलती, तो वह कभी स्वस्थ नहीं हो सकता। उसका शरीर सदा बीमार रहेगा। शायद उसे सब कुछ मिल रहा हो जो शरीर के लिए जरूरी है—भोजन, दूध, विटामिन—

लेकिन यदि स्त्री की ऊष्मा उसे न मिले. और वह भी बड़े प्रेमपूर्ण ढंग से, क्योंकि अगर तुम किसी व्यक्ति के प्रति प्रेमपूर्ण नहीं हो तो गरमी तो संभव है, वह पहुंच सकती है तुम्हारे शरीर से दूसरे व्यक्ति तक, लेकिन वह ऊष्मा नहीं है।

प्रेम द्वारा गरमी ऊष्मा बन जाती है। उसका आयाम गुणात्मक रूप से अलग होता है। वह केवल गरमी नहीं है, वरना तो तुम बच्चे को पहुंचा सकते हो गरमी। अब तो बहुत से प्रयोग किए गए हैं. बच्चे को उचित तापमान के कमरे में रखा जाता है—लेकिन उससे मदद नहीं मिलती। मां का शरीर प्रेम की सूक्ष्म तरंगें प्रेषित करता है : अपनेपन की, प्रेम की, इस अहसास की कि उसका होना अर्थपूर्ण है। ये बातें बच्चे के लिए पोषण का काम करती हैं।

इसीलिए निरंतर व्यक्ति जीवन भर तलाश में रहेगा—अन्वेषण करेगा, खोजेगा—स्त्री के शरीर को; और स्त्री जीवन भर खोजती रहेगी पुरुष के शरीर को। विपरीत लिंग के प्रति एक आकर्षण होता है, क्योंकि शरीरों की ध्रुवताएं मदद देती हैं; वे ऊर्जा देती हैं। यह विपरीत ध्रुवता ही एक तनाव और एक ऊर्जा देती है। तुम बढ़ते हो उसके द्वारा; तुम शक्तिशाली बनते हो उसके द्वारा।

यह स्वाभाविक है, इसमें कुछ गलत नहीं है। लेकिन जब कोई शुद्ध हो जाता है—अहिंसा, अपरिग्रह, सत्य के द्वारा जब कोई शुद्ध हो जाता है—तो जितना कोई व्यक्ति शुद्ध हो जाता है, उतना ही चेतना का फोकस शरीर से आत्मा की ओर मुड़ जाता है। आत्मा नितांत अकेली हो सकती है।

इसीलिए जो व्यक्ति बहुत ज्यादा जुड़ा होता है शरीर से, वह कभी मुक्त नहीं हो सकता। वह जुड़ाव ही उसे बहुत तरह के बंधनों में, कारागृहों में ले जाएगा। तुम किसी स्त्री को प्रेम करते हो, तुम किसी पुरुष को प्रेम करते हो, लेकिन गहरे में तुम प्रतिरोध भी करते हो—क्योंकि प्रेमी भी एक बंधन होता है। प्रेम—संबंध तुम्हें पंगु कर देता है। वह तुम्हें तृप्त भी करता है, पंगु भी करता है। तुम उसके बिना नहीं रह सकते, और तुम उसके साथ भी नहीं रह सकते।

यही सारे प्रेमियों की समस्या है। वे अलग भी नहीं रह सकते और साथ भी नहीं रह सकते। जब वे अलग होते हैं, तो एक—दूसरे के बारे में सोचते हैं, जब वे साथ होते हैं, तो लड़ते हैं एक — दूसरे से। ऐसा क्यों होता है?

सीधी—साफ बात है। जब तुम उस स्त्री के साथ नहीं होते जिसे तुम प्रेम करते हो और जो तारे: प्रेम करती है, तो तुम उस ऊष्मा की भूख अनुभव करने लगते हो जो प्रवाहित होती है स्त्री के शरीर से। और जब तुम अपनी प्रेमिका के साथ होते हो तो तुम भूखे नहीं रहते, तुम खूब तृप्त होते हो। और जल्दी ही तुम्हारा मन भर जाता है। जल्दी ही तुम ऊब जाते हो। अब तुम अलग होना चाहते हो, दूर होना चाहते हो और अकेले होना चाहते हो।

सारे प्रेमी, जब साथ होते हैं, तो सोचते हैं, 'कैसा सुंदर होगा अकेले रहना!' और जब वे अलग होते हैं, अकेले होते हैं, तो देर—अबेर वे दूसरे की जरूरत अनुभव करने लगते हैं और कल्पना करने लगते हैं और सपने देखने लगते हैं, 'कैसा सुंदर होगा साथ रहना!'

शरीर को चाहिए साथ, और तुम्हारी अंतरतम आत्मा को चाहिए स्वात। यह है समस्या। तुम्हारी आत्मा अकेली हो सकती है—हिमालय के उत्तुंग शिखर की भांति। तुम्हारी आत्मा एकांत में विकसित होती है। लेकिन तुम्हारे शरीर को जरूरत होती है संग—साथ की। शरीर को चाहिए भीड़, ऊष्मा, क्लब, सभाएं, संस्थाएं; जहां भी तुम बहुत से लोगों के साथ होते हो, शरीर को अच्छा लगता है। भीड़ में तुम्हारी आत्मा दीन—हीन अनुभव करती है, क्योंकि वह स्वात में विकसित होती है, लेकिन तुम्हारा शरीर अच्छा अनुभव करता है भीड़ में। स्वात में तुम्हारी आत्मा अच्छा अनुभव करती है, लेकिन शरीर भूख अनुभव करने लगता है संबंध के लिए।

और जीवन में अगर तुम इसे ठीक से नहीं समझ लेते, तो तुम व्यर्थ ही बहुत दुख पाते हो। अगर तुम इसे समझ लेते हो, तो तुम एक लय बना लेते हो : तुम शरीर की आवश्यकता पूरी करते हो और तुम आत्मा की आवश्यकता भी पूरी करते हो। कभी तुम संबंधों में जीते हो, कभी तुम संबंधों से हट जाते हो। कभी तुम संग—साथ में जीते हो और कभी तुम अकेले जीते हो। कभी तुम उड़ा शिखर हो जाते हों—इतने अकेले कि दूसरे का विचार भी मौजूद नहीं होता। एक लय होती है।

लेकिन जब कोई स्वात को उपलब्ध हो जाता है और चेतना का फोकस बदल चुका होता है वही तो सारा प्रयास है योग का : कैसे फोकस बदले शरीर से आत्मा पर, पदार्थ से अपदार्थ पर, दृश्य से अदृश्य पर, शात से अज्ञात पर—संसार से परमात्मा पर। कुछ भी कह लो इसे तुम, उससे कुछ अंतर नहीं पड़ता। यह है फोकस का बदलना। जब फोकस पूरी तरह बदल जाता है, तो योगी इतना सुखी होता है अपने स्वात में, इतना आनंदित होता है, कि शरीर की जो सामान्य चाह होती है दूसरों के साथ होने की वह भी धीरे— धीरे तिरोहित होने लगती है।

जब शुद्धता उपलब्ध होती है, तब योगी में एक मोह— भंग उत्पन्न होता है अपने शरीर के प्रति अब वह जानता है कि जो स्वर्ग वह खोजता आया है, वह शरीर के द्वारा नहीं पाया जा सकता है। जिस आनंद की वह कल्पना करता रहा है, वह शरीर के द्वारा नहीं संभव है। यह शरीर के लिए असंभव है सीमित के द्वारा तुम असीम तक पहुंचने की कोशिश कर रहे हो। पदार्थ के द्वारा तुम शाश्वत को पाने की, अमृत को पाने की कोशिश कर रहे हो।

कुछ गलत नहीं है शरीर में, तुम्हारा प्रयास ही बेतुका है। शरीर के प्रति क्रोधित मत होओ; शरीर ने तुम्हारा कुछ नहीं बिगाड़ा है। यह ऐसे ही है जैसे कोई आंखों से सुनने की कोशिश कर रहा हो। अब आंखों की तो कोई गलती नहीं है आंखें बनी हैं देखने के लिए, न कि सुनने के लिए। शरीर बना है

पदार्थ से, वह अपदार्थ से बना नहीं है। वह बना है नश्वर से, वह अनश्वर नहीं हो सकता है। तुम असंभव की मांग कर रहे हो। असंभव की मांग मत करो।

यही है मोह— भंग होने का अर्थ : योगी सहज ही यह बोध पा लेता है कि शरीर द्वारा क्या संभव है और क्या संभव नहीं है। जो संभव है वह ठीक; जो संभव नहीं है उसकी वह मांग ही नहीं करता। वह क्रोधित नहीं होता शरीर पर। वह घृणा नहीं करता शरीर से। वह हर तरह से देखभाल करता है उसकी, क्योंकि शरीर सीढ़ी बन सकता है, द्वार बन सकता है; वह मंजिल नहीं बन सकता, लेकिन फिर भी वह द्वार बन सकता है।

मोह— भंग उसके अपने शरीर के प्रति—और जब यह मोह— भंग घटित होता है तब एक अनिच्छा उत्पन्न होती है दूसरों के साथ शारीरिक संपर्क में आने के प्रति। तब दूसरों के साथ शारीरिक संपर्क में आने की आवश्यकता धीरे— धीरे शिथिल पड़ जाती है। असल में यही है वह क्षण जब तुम कह सकते हो कि व्यक्ति गर्भ के बाहर आया—उसके पहले नहीं।

कुछ लोग कभी गर्भ के बाहर नहीं आते। मरते क्षण भी दूसरों की मौजूदगी की, संपर्क की, संबंध बनाने की उनकी जरूरत बनी ही रहती है। वे गर्भ के बाहर नहीं आए। शारीरिक रूप से तो वे बहुत पहले ही बाहर आ गए हैं—व्यक्ति अस्सी—नब्बे वर्ष का हो सकता है। तो नब्बे वर्ष पहले वह आ गया था गर्भ के बाहर, लेकिन इन नब्बे वर्षों में भी वह संबंधों में जीता रहा—खोजता रहा, उत्सुक रहा शारीरिक संपर्क के लिए। अपने स्वप्नों में वह फिर—फिर उसी खो गए गर्भ में ही जीया। ऐसा कहा जाता है कि जब भी कोई आदमी किसी स्त्री के प्रेम में पडता है—वह सोचे चाहे कुछ भी, सवाल उसका नहीं है—वह फिर गर्भ में उतर रहा होता है। और शायद यह सच है—मैं कहता हूं 'शायद' क्योंकि यह परिकल्पना अभी वैज्ञानिक रूप से सिद्ध नहीं हुई है—कि स्त्री—शरीर में प्रविष्ट होने का इतना आकर्षण, कामवासना का इतना प्रबल आकर्षण, शायद गर्भ में फिर से प्रविष्ट होने का एक सञ्जीटघूट है। कामवासना संभवत: एक तलाश है कि कैसे गर्भ में फिर से प्रविष्ट हों। और मनुष्य ने जो भी ढंग खोजे हैं अपने शरीर को सुख देने के, मनस्विद कहते हैं कि वह कोशिश करता है बाहर एक गर्भ निर्मित करने की। किसी सुखद कमरे को देखना. अगर वह सच में ही सुखद है तो जरूर कुछ न कुछ गर्भ से मिलता—जुलता होगा—ऊष्मा, नरम, कोमल, मखमली—मां की त्वचा का वह अंत—स्पर्श। तकिए, गद्दे—कोई भी चीज तुम्हें सुखद आराम की अनुभुति केवल तभी देती है, जब वह किसी न किसी ढंग से गर्भ से मिलती—जुलती है।

अब पश्चिम में उन्होंने छोटे —छोटे टैंक बनाए हैं, गर्भ जैसे। उन टैंकों में कुनकुना पानी भरा रहता है, ठीक उसी तापमान पर जितना कि मां के गर्भ का तापमान होता है। गहन अंधेरे में व्यक्ति तैरता है उस टैंक में, पूरे विश्राम में, अंधेरे में—बिलकुल गर्भ की तरह। वे उन्हें ' ध्यान—टैंक' कहते हैं। उससे बहुत मदद मिलती है. व्यक्ति बहुत ही शात अनुभव करता है, एक आंतरिक आनंद का अनुभव होता है—तुम फिर से बच्चे हो गए होते हो।

बच्चा गर्भ में एक सुनिश्चित तापमान के द्रव में तैरता है। उस द्रव में सागर के पानी के सारे लवण होते हैं। उसी कारण वैज्ञानिक इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि मनुष्य का विकास मछलियों से हुआ होगा—क्योंकि अभी भी गर्भ में वही सागर का वातावरण बनाए रखना पड़ता है।

सारी सुखद चीजें गहरे में गर्भ जैसी ही होती हैं। और जब भी तुम लेटे होते हो स्त्री के साथ, आलिंगनबद्ध, तब तुम्हें अच्छा लगता है। प्रत्येक पुरुष, चाहे वह कितनी ही उम्र का हो, फिर से बच्चा बन जाता है; और प्रत्येक स्त्री, चाहे कितनी ही छोटी हो, फिर मां बन जाती है। जब भी वे प्रेम में पड़ते हैं, तो स्त्री मां की भूमिका करने लगती है और पुरुष बच्चे जैसा व्यवहार करने लगता है। एक युवा स्त्री भी मां बन जाती है और एक वृद्ध पुरुष भी बच्चा बन जाता है।

योगी में यह आकांक्षा तिरोहित हो जाती है। और इस आकांक्षा के जाते ही, वह वस्तुत: फिर से जन्म लेता है। हमने भारत में उसे कहा है—द्विज। यह दूसरा जन्म है, असली जन्म। अब उसे किसी दूसरे की जरूरत न रही; वह एक अलौकिक प्रकाश हो गया है। अब वह उठ सकता है धरती से ऊपर; अब वह उड़ सकता है आकाश में। अब वह धरती से बंधा हुआ नहीं होता। वह बन गया होता है फूल—असल में फूल भी नहीं, क्योंकि फूल भी धरती से जुड़ा होता है—वह बन गया होता है फूल की सुवास। पूर्णरूपेण मुक्त। वह आकाश में उड़ता है—धरती में उसकी जड़ें नहीं होतीं। दूसरों के शरीरों के संपर्क में आने की उसकी इच्छा तिरोहित हो जाती है।

मानसिक शुद्धता से उदित होती है— प्रफुल्लता एकाग्रता की शक्ति इंद्रियों पर नियंत्रण और आत्म— दर्शन की योग्यता।

ऐसा व्यक्ति बहुत आनंदित होता है—ऐसा व्यक्ति जिसे अब कोई जरूरत नहीं दूसरों के संपर्क में आने की—इतना आनंदित होता है अपनी मुक्ति में, इतना प्रफुल्ल होता है, इतना उत्सवमय होता है, उसका प्रत्येक क्षण एक प्रगाढ़ उल्लास का क्षण होता है। जितने अधिक तुम बंधे होते हो शरीर में, उतने ज्यादा उदास होओगे तुम, क्योंकि शरीर स्थूल है। शरीर पदार्थ है, बोझिल है। जितने ज्यादा तुम पार चले जाते हो शरीर के, उतने ज्यादा तुम हलके हो जाते हो।

जीसस ने अपने शिष्यों को कहा है, 'आओ मेरे पीछे। मेरा बोझ हलका है। वे सब जो भारी बोझ तले दबे हैं, आएं, मेरे पीछे आएं। मेरा भार हलका है; निर्भार हूं मैं।'

'मानसिक शुद्धता से उदित होती है—प्रफुल्लता.....।'

यदि तुम उदास हो, यदि तुम सदा विषादग्रस्त हो, यदि तुम सदा दुखी हो, तो सीधे—सीधे तुम्हारे दुख के लिए कुछ नहीं किया जा सकता है। और जो कुछ भी किया जाएगा, वह व्यर्थ सिद्ध होगा। पूरब ने

समझ ली है यह बात कि यदि तुम उदास, दुखी और निराश हो, सदा ही भारी बोझ लिए चल रहे हो, तो यह कोई रोग नहीं है, यह केवल रोग का लक्षण है। रोग यह है कि तुम गहरे में शरीर से बंधे हो।

तो सवाल यह नहीं है कि तुम्हारे अंधकार को कैसे दूर किया जाए और कैसे तुम्हें सुखी किया जाए; सवाल इसका नहीं है। सवाल इसका है कि शरीर में तुम्हारे तादात्म्य को तोड़ने में तुम्हें कैसे मदद मिले, कैसे तुम्हारी मदद की जाए कि तुम्हारा शरीर के साथ तादात्मय और— और कम होता जाए।

रोज मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं, 'हम उदास हैं, दुखी हैं। रोज सुबह ऐसा लगता है कि फिर एक निराश दिन शुरू हुआ। किसी भांति हम स्वयं को बिस्तर से बाहर घसीटते हैं; कोई आशा नहीं होती। हम जानते हैं, हमने जिंदगी जीयी है.. वही पुनरुक्ति है दुखों की! तो करें क्या? क्या आप हमें कोई उपाय बता सकते हैं जिससे कि हम स्वयं को उदासी के बाहर ला सकें?'

सीधे —सीधे तो कुछ भी नहीं किया जा सकता, केवल परोक्ष रूप से ही कुछ किया जा सकता है। यह लक्षण है; यह कारण नहीं है। और अगर तुम लक्षण का इलाज करते हो तो रोग मिटेगा नहीं।

पश्चिमी मनोविज्ञान लक्षणों का इलाज करता रहा है, और योग वह मनोविज्ञान है जो कारण का इलाज करता है। पश्चिमी मनोविज्ञान लक्षणों को देखता है : जो कुछ तुम कहते हो, वह तुम्हारे संबंध में एक लक्षण है, वे उसे ही पकड़ लेते हैं और वे उसे मिटाने में लग जाते हैं। वे सफल नहीं हुए हैं। पश्चिमी मनोविज्ञान एक प्रवंचना, एक पूर्ण असफलता ही सिद्ध हुआ है।

लेकिन अब वह इतना बड़ा व्यवसाय हो गया है कि मनोवैज्ञानिक इस विषय में कुछ कह नहीं सकते। उनका पूरा जीवन इस पर निर्भर है—उनकी बड़ी—बड़ी तनख्वाहें... और उनका व्यवसाय सर्वाधिक सफल व्यवसायों में से एक है। वे इस सचाई को स्वीकार नहीं कर सकते। और वे भलीभांति जानते हैं कि वे किसी की मदद नहीं कर पाए हैं। ज्यादा से ज्यादा वे खींच सकते हैं थोड़ा समय और, ज्यादा से ज्यादा वे आशा बंधा सकते हैं, ज्यादा से ज्यादा वे तुम्हारी मदद करते हैं अपने दुखों के साथ समायोजन बनाने में, लेकिन उससे कोई बदलाहट नहीं होती। जैसे—जैसे समय बीतता है, व्यक्ति दुख के साथ राजी हो जाता है, व्यक्ति दुख को स्वीकार कर लेता है। व्यक्ति ज्यादा चिंता नहीं करता उस विषय में, लेकिन बदलता कुछ भी नहीं।

अब वे यह जानते हैं। लेकिन अब मनोविज्ञान इतना बड़ा व्यवसाय हो गया है, और हजारों व्यक्ति उस पर जी रहे हैं—और वह निश्चित ही बहुत सफल व्यवसाय है, बहुत से न्यस्त स्वार्थ जुड़े हुए हैं उसमें—कि कहेगा कौन कि यह सारी बात एक धोखा है, एक प्रवंचना है; किसी को कोई मदद नहीं मिली है? लेकिन ऐसा होना ही था, क्योंकि लक्षण नहीं बदले जा सकते हैं। तुम उन पर रंग—रोगन कर सकते हो, लेकिन गहरे में चीजें वैसी ही बनी रहती हैं। तुम उन्हें नया नाम दे सकते हो, नए लेबल दे सकते हो; उससे कुछ अंतर नहीं पड़ता है।

कारण को ही बदलना है। और कारण यह है. तुम उसी अनुपात में दुखी रहोगे जितने तुम शरीर से बंधे रहोगे। जितने तुम शरीर से मुक्त होते हो, उसी अनुपात में तुम आनंदित होते हो। शरीर से मुक्त होने के साथ ही आनंद बढ़ता जाता है। जब तुम शरीर से पूरी तरह मुक्त हो जाते हो तो तुम आकाश में तैरती सुगंध हो जाते हो। तुम परम आनंद को उपलब्ध हो जाते हो—जिस आनंद की. जीसस बात करते हैं, जिस धन्यता की जीसस बात करते हैं, जो बुद्ध का निर्वाण है। महावीर ने इसे एकदम ठीक नाम दिया; वे इसे 'कैवल्य' कहते हैं। तुम पूर्णरूपेण स्वतंत्र होते हो और अकेले होते हो। अब किसी चीज की जरूरत न रही; तुम स्वयं में पर्याप्त हो। यही है लक्ष्य। लेकिन लक्ष्य केवल तभी पाया जा सकता है, जब तुम बड़ी सजगता से आगे बढ़ो और लक्षणों में उलझो नहीं।

किसी को बुखार है, शरीर गरम हो जाता है, टेम्प्रेचर बढ़ जाता है—यह एक लक्षण है। टेम्प्रेचर चाहे एक सौ तीन हो, एक सौ चार हो या एक सौ पांच हो, यह एक लक्षण है, शरीर के ताप का इलाज मत करने लगना। तुम टेम्प्रेचर कम कर सकते हो : तुम व्यक्ति को ठंडे पानी के फव्वारे के नीचे खड़ा कर सकते हो, बर्फ के ठंडे पानी से नहला सकते हो। शुरू—शुरू में ऐसा भी लग सकता है कि कुछ मदद मिल रही है। लेकिन ध्यान रहे, इससे बीमारी दूर नहीं होगी, शायद बीमार ही चल बसे। बीमार मर सकता है—क्योंकि बुखार एक लक्षण है। बुखार इतना ही बताता है कि शरीर के भीतर बड़ी लड़ाई चल रही है—प्राकृतिक लड़ाई। शरीर के तत्व संघर्ष कर रहे हैं, इसीलिए गरमी निर्मित हो रही है। इसीलिए बुखार है। शरीर बेचैन है। गृहयुद्ध छिड़ गया है शरीर के भीतर। शरीर के कुछ तत्व लड़ रहे हैं दूसरे तत्वों से, बाहरी तत्वों से। वे संघर्ष कर रहे हैं, संघर्ष के कारण ही गरमी पैदा हो रही है।

गरमी तो केवल एक सूचना है कि भीतर संघर्ष चल रहा है। संघर्ष को ठीक करना है, न कि टेम्प्रेचर को। टेम्प्रेचर तुम्हें संदेश देने के लिए है : 'अब तुम्हें कुछ करना चाहिए; चीजें मेरी शक्ति के बाहर जा चुकी हैं।' शरीर तुम्हें एक संकेत दे रहा है. 'चीजें अब मेरी शक्ति के बाहर हैं; मैं कुछ नहीं कर सकता। कुछ करो। डाक्टर के पास जाओ, चिकित्सक के पास जाओ। मदद लो उनकी; अब यह बात मेरी शक्ति के बाहर है। जो भी किया जा सकता था मैंने कर लिया, अब और कुछ नहीं किया जा सकता है। संघर्ष आरंभ हो गया है।'

तो लक्षण का इलाज कभी मत करना और समय मत गंवाना लक्षण के इलाज में; सदा कारण को देखना।

और पतंजलि जो कह रहे हैं वह कोई परिकल्पना नहीं है, वह कोई सिद्धात नहीं है। योग सिद्धांतो में विश्वास नहीं करता। और पतंजलि कोई दार्शनिक नहीं हैं, वे अंतर्जगत के वैज्ञानिक हैं। और जो कुछ भी वे कह रहे हैं, वे इसलिए कह रहे हैं क्योंकि लाखों—लाखों योगियों ने उसे अनुभव किया है। निरपवाद रूप से ऐसा ही है।

साधारण जीवन में भी यदि तुम ध्यान दो तो तुम पाओगे कि जब भी तुम आनंद अनुभव करते हो, तो तुम शरीर को भूल जाते हो। जब भी कोई आनंदित होता है, वह अपने शरीर को भूल जाता है, और जब भी कोई दुखी होता है तो वह अपने शरीर को नहीं भूल सकता।

असल में आयुर्वेद में स्वास्थ्य की परिभाषा सबसे अर्थपूर्ण है, सबसे महत्वपूर्ण है; संसार के किसी भी अन्य चिकित्सा—वितान ने ऐसी परिभाषा नहीं की है। असल में पश्चिमी चिकित्सा—विज्ञान के पास स्वास्थ्य की कोई परिभाषा ही नहीं है। ज्यादा से ज्यादा वे कह सकते हैं. 'जब कोई रोग नहीं होता, तब तुम स्वस्थ होते हो।' लेकिन यह कोई परिभाषा न हुई स्वास्थ्य की। कैसी है यह परिभाषा, जब स्वास्थ्य की परिभाषा करने के लिए तुम्हें रोग को बीच में लाना पड़ता है? तुम कहते हो, 'जब कोई रोग नहीं होता, तब तुम स्वस्थ होते हो।' यह एक नकारात्मक परिभाषा हुई, विधायक नहीं। आयुर्वेद कहता है कि जब तुम देह को भूल जाते हो, तब तुम स्वस्थ होते हो। यह बड़ी सुंदर बात है। विदेह : जब तुम अनुभव नहीं करते शरीर को—तुम शरीर को बिलकुल भूल जाते हो।

तुम इसे देख सकते हो सिर केवल तभी अनुभव होता है, जब सिर में दर्द होता है। वरना तो कौन परवाह करता है सिर की? तुम कभी सजग नहीं होते सिर के प्रति। सिरदर्द से सिर का पता चलता है, अन्यथा तो तुम बिना सिर के होते हो। और अगर तुम निरंतर स्मरण रखते हो अपने सिर का, तो जरूर कुछ गड़बड़ है। जब श्वास ठीक चलती है तब तुम बिलकुल सजग नहीं होते उसके प्रति। लेकिन जब कुछ गड़बड़ हो जाती है—दमा, ब्रॉन्काइटिस—कुछ गड़बड़ हो जाती है, तब तुम सजग होते हो। सांस लेने में तकलीफ होती है, आवाज होती है और तुम उसे भूल नहीं सकते। जब तुम्हारी टांगें दुखती हैं, तब तुम जानते हो कि वे हैं। जब कहीं कोई तकलीफ होती है, केवल तभी तुम सचेत होते हो। अगर हर चीज ठीक से काम कर रही होती है, तो तुम शरीर को भूल जाते हो।

यह स्वास्थ्य की परिभाषा है. जब तुम शरीर को पूरी तरह भूल जाते हो, तब तुम स्वस्थ हो। और कौन शरीर को पूरी तरह भूल सकता है? केवल योगी ही।

हमारे पास तीन शब्द हैं : रोगी, भोगी, योगी। रोगी : वह जो बीमार है। भोगी. वह जो शरीर से आविष्ट है। और योगी : वह जो शरीर के पार जा चुका है। भोगी कभी—कभार योग के कुछ क्षणों को उपलब्ध होगा, जिन क्षणों में वह शरीर को भूल जाएगा। उसके जीवन का निन्यानबे प्रतिशत संबंधित होगा 'रोगी' के संसार से; जीवन का केवल एक प्रतिशत, बहुत दुर्लभ घड़ियां, जब वह योगी हो जाएगा।

कई बार हर चीज ठीक काम कर रही होती है, ठीक से एक लयबद्धता में चल रही होती है—बिलकुल ऐसे ही जैसे कि कोई सुंदर, बिलकुल ठीक काम कर रही कार आवाज करती है, गुनगुनाती है, उसी तरह तुम्हारी सारी बाहरी— भीतरी संरचना ठीक समस्वरता से गुनगुना रही होती है सुदरतापूर्वक—तो कभी—कभार ऐसा होता है भोगी को। रोगी को कभी —नहीं होता, योगी को सदा ही होता है। रोगी रुग्ण व्यक्ति है; भोगी ग्रसित है और जा रहा है रोगी की तरफ, देर— अबेर बीमार होगा और मरेगा,

और योगी. योगी वह है जो शरीर के पार चला गया है, वह जीता है शरीर के पार—वह आनंदित होता है। रोगी कभी आनंदित नहीं होता, भोगी कभी—कभार आनंदित होता है, योगी सदा आनंदित होता है। आनंद उसका स्वभाव हो जाता है, बिना किसी प्रकट कारण के वह आनंदित रहता है।

तुम्हारी अवस्था एकदम उलटी है : बिना किसी प्रकट कारण के तुम दुखी रहते हो। यदि कोई तुम से पूछे, 'क्यों तुम इतने दुखी हो?' तुम अपने कंधे बिचका दोगे। तुम नहीं जानते कि क्यों! तुमने इसे मान ही लिया है कि यही मेरे जीवन का ढंग है—दुखी रहना। असल में यदि तुम किसी दुखी व्यक्ति को देखते हो तो तुम कभी नहीं पूछते, 'क्यों तुम दुखी हो?' तुम स्वीकार कर लेते हो। जब तुम किसी व्यक्ति को प्रसन्न, बहुत प्रसन्न देखते हो, तो तुम पूछते हो, 'बात क्या है? क्यों तुम इतने प्रसन्न हो? क्या हुआ है?' दुख स्वीकृत है, दुखी होना स्वीकृत है। प्रसन्नता इतनी दुर्लभ हो गई है, इतनी असाधारण, कि ऐसा लगता है कि यह सच हो ही नहीं सकती।

ऐसा होता है, लोग मेरे पास आते हैं. जब वे ध्यान शुरू करते हैं, और यदि वे त्वरा से ध्यान में उतरते हैं, तो चीजें बदलने लगती हैं। जब वे आए थे, तब वे दुखी थे, उदास थे; फिर कोई झरना फूट पड़ता है—आनंद बरसने लगता है। वे विश्वास नहीं कर पाते इस पर। वे दौड़े आते हैं मेरे पास और वे कहते हैं, 'क्या हो गया है? अचानक मैं बहुत आनंदित अनुभव कर रहा हूं। क्या मैं कल्पना कर रहा हूं?' वे विश्वास नहीं कर पाते कि यह बात सच हो सकती है। मन कहता है, 'तुम जरूर कल्पना कर रहे होओगे। तुम, इतने दुखी व्यक्ति, और तुम आनंदित हो? असंभव है।' वे आते हैं मेरे पास और वे कहते हैं, 'क्या हम कल्पना कर रहे हैं, या आपने सम्मोहित कर दिया है हमको?'

जब वे दुखी थे तब उन्होंने कभी नहीं सोचा कि शायद किसी ने उन्हें सम्मोहित कर दिया है। जब वे दुखी थे तब उन्होंने कभी नहीं सोचा कि शायद यह उनकी कल्पना है। लेकिन जब वे प्रसन्नता अनुभव करते हैं —प्रसन्नता इतनी दुर्लभ घटना हो गई है, इतनी अविश्वसनीय हो गई —है कि वे पूछते हैं, क्या यह सच है पर?'

अंग्रेजी में तुम्हारे पास एक मुहावरा है, 'टू गुड टु बी टू'; तुम्हारे पास ऐसा कोई मुहावरा नहीं है—'टू बैड टु बी टू'। दूसरे मुहावरे को ज्यादा प्रचलित होना चाहिए। लेकिन 'गुड' पर तो विश्वास ही नहीं आता है; इसीलिए यह मुहावरा है : 'टू गुड टु बी टू'। इस मुहावरे को पूरी तरह भुला देना चाहिए। जब कोई कुछ बुरी बात कहे तो तुम्हें कहना चाहिए, 'टू बैड टु बी टू' इस पर विश्वास नहीं किया जा सकता है। तुमने जरूर कल्पना कर ली होगी। लेकिन नहीं, ऐसा नहीं है। दुख तो बहुत स्वाभाविक मालूम पड़ता है; आनंद बहुत अस्वाभाविक लगता है।

'मानसिक शुद्धता से उदित होती है—प्रफुल्लता, एकाग्रता की शक्ति..।'

लोग शरीर से जुड़े रह कर ही एकाग्रता पाने की कोशिश करते हैं; तब एकाग्रता बड़ी कठिन बात हो जाती है, करीब—करीब असंभव ही हो जाती है। तुम एक क्षण को भी एकाग्र नहीं हो सकते। मन

डांवाडोल रहता है; हजारों विचार चलते रहते हैं, और इससे पहले कि तुम्हें पता चले, तुम कहीं और चले गए होते हो : दिवास्वप्न शुरू हो जाता है। जब भी तुम किसी चीज पर एकाग्र होना चाहते हो, करीब—करीब असंभव हो जाता है। लेकिन कारण यही है कि तुम शरीर से बहुत ज्यादा बंधे हुए हो। यदि तुम शरीर के माध्यम से देखते हो, तो एकाग्रता संभव नहीं है। यदि तुम शरीर के पार से देखते हो, तो एकाग्रता बड़ी आसान बात होती है।

ऐसा हुआ, विवेकानंद एक बड़े विद्वान के साथ ठहरे हुए थे। उसका नाम था देवसेन, बहुत बड़ा विद्वान, जिसने संस्कृत शास्त्रों का पश्चिमी भाषाओं में अनुवाद किया। देवसेन उपनिषदों के अनुवाद में संलग्न था—और वह सर्वाधिक गहरे अनुवादकों में से एक था। एक नई पुस्तक प्रकाशित हुई थी। विवेकानंद ने पूछा, 'क्या मैं इसे देख सकता हूं? क्या मैं इसे पढ़ने के लिए ले सकता हूं?' देवसेन ने कहा, 'हां—हां, जरूर ले सकते हो। मैंने इसे बिलकुल नहीं पढ़ा है।'

कोई आधे घंटे बाद विवेकानंद ने पुस्तक लौटा दी। देवसेन को तो भरोसा न हुआ; इतनी बड़ी पुस्तक पढ़ने के लिए तो कम से कम एक सप्ताह चाहिए; और अगर तुम उसे ठीक से पढ़ना चाहते हो, तब तो और भी समय चाहिए। और यदि तुम सच में ही समझना चाहते हो उसको, कठिन है पुस्तक, तब तो और भी समय चाहिए। उसने कहा, 'क्या आपने पूरा पढ़ लिया इसे? क्या आपने सच में ही पढ़ा इसे? या कि बस यूं ही इधर—उधर निगाह डाली है?'

विवेकानंद ने कहा, 'मैंने भलीभांति अध्ययन किया है इसका।'

देवसेन ने कहा, 'मैं विश्वास नहीं कर सकता। आप मुझ पर एक कृपा करें। मुझे पढ़ने दें यह पुस्तक, और फिर मैं आपसे पुस्तक के संबंध में कुछ प्रश्न पूछूंगा।'

देवसेन ने सात दिन तक पुस्तक पढ़ी, उसका अध्ययन किया; और फिर उसने कुछ प्रश्न पूछे और विवेकानंद ने एकदम ठीक उत्तर दिए, जैसे कि वे उस पुस्तक को जीवन भर. पढ़ते रहे हों। देवसेन ने लिखा है अपने संस्मरणों में : मेरे लिए असंभव थी यह बात और मैंने पूछा कि 'कैसे संभव है यह?' तो विवेकानंद ने कहा, 'जब तुम शरीर द्वारा अध्ययन करते हो तो एकाग्रता संभव नहीं है। जब तुम शरीर में बंधे नहीं होते, तो तुम किताब से सीधे—सीधे जुड़ते हो तुम्हारी चेतना सीधे—सीधे स्पर्श करती है। तुम्हारे और किताबें के बीच कोई बाधा नहीं होता: तब आधा घंटा भी पर्याप्त होता है। तुम उसका अभिप्राय, उसका सार आत्मसात कर लेते हो।'

यह बिलकुल ऐसे ही है : जब कोई छोटा बच्चा पढ़ता है—वह बड़े शब्द नहीं पढ़ सकता है; उसे शब्दों को छोटे—छोटे हिस्सों में तोड़ना पड़ता है। वह पूरा वाक्य नहीं पढ़ सकता है। जब तुम पढ़ते हो तो तुम पूरा वाक्य पढ़ते हो। अगर तुम तेज पढ़ने वाले हो, तो तुम पूरा पैराग्राफ पढ़ सकते हों—झलक भर—और पढ़ जाते हो उसे।

तो एक संभावना है, अगर शरीर कोई दखलंदाजी नहीं कर रहा है, तो तुम पूरी किताब पढ़ सकते हो एक नजर भर डालते हुए। और यदि तुम शरीर से पढ़ते हो, तो तुम भूल सकते हो। अगर तुम शरीर को एक ओर हटा कर पढ़ते हो, तो फिर उसे स्मरण रखने की कोई जरूरत नहीं होती; तुम उसको नहीं भूलोगे—क्योंकि तुमने समझ लिया होता है उसे।

शुद्ध शरीर वाले, शुद्ध चेतना वाले, शुद्धता से आपूरित व्यक्ति में एकाग्रता की शक्ति उदित

होती है।

'.. इंद्रियों पर नियंत्रण...।'

ये परिणाम हैं, ध्यान रहे। उनका अभ्यास नहीं किया जा सकता है; यदि तुम अभ्यास करते हो तो तुम कभी उन्हें उपलब्ध नहीं होओगे। वह सब अपने आप होता है। यदि आधारभूत कारण हटा दिया जाता है, अगर तुम शरीर के साथ तादात्म्य नहीं बनाए रहते, तब घटता है इंद्रियों पर नियंत्रण। तब वे तुम्हारे नियंत्रण में होती हैं। तब यदि तुम सोचना चाहते हो, तो तुम सोचते हो, अगर तुम नहीं सोचना चाहते हो, तो तुम मन से कह देते हो, 'ठहरो'। यह एक यांत्रिक प्रक्रिया है जिसे तुम चला सकते हो और बंद कर सकते हो।

लेकिन कुशलता चाहिए। और यदि तुम पूरी तरह कुशल नहीं हो और तुम मालिक होने की कोशिश करते हो, तो तुम अपने लिए ज्यादा उलझन और मुसीबत पैदा कर लोगे। और तुम बार—बार हारोगे, और इंद्रियां ही मालिक बनी रहेंगी। उन्हें जीतने का ढंग यह नहीं है। उन्हें जीतने का ढंग यह है कि शरीर के साथ तुम अपना तादात्म्य हटा लो।

तुम्हें जानना है कि तुम शरीर नहीं हो; और फिर तुम्हें जानना है कि तुम मन नहीं हो। तुम्हें उन सब का साक्षी होना है जो—जो तुम्हें घेरे हुए है। शरीर है पहला वर्तुल; फिर है मन—दूसरा वर्तुल; फिर है हृदय—तीसरा वर्तुल। और फिर इन तीनों वर्तुलों के पीछे है केंद्र—तुम। यदि तुम स्वयं में केंद्रित हो, तो ये तीनों पर्तें तुम्हारा अनुसरण करेंगी। यदि तुम स्वयं में केंद्रित नहीं हो, तो तुम्हें उनका अनुसरण करना पड़ेगा।

'.....इंद्रियों पर नियंत्रण और आत्म—दर्शन की योग्यता।'

और यही है ढंग योग्य होने का, स्वयं को जानने की पात्रता हासिल करने का। हर कोई आत्म—बोध को उपलब्ध होना चाहता है, लेकिन कोई अनुशासन से नहीं गुजरना चाहता—कोई पकना नहीं चाहता। हर कोई चाहता है कि कोई चमत्कार हो जाए।

लोग आते हैं मेरे पास और वे कहते हैं, 'क्या आप हमें आशीर्वाद नहीं दे सकते, ताकि हम आत्म — ज्ञानी हो जाएं?'

अगर यह बात इतनी ही आसान होती कि मेरे आशीर्वाद से काम चल जाता, तो मैंने सारे संसार को आशीर्वाद दे दिया होता। एक —एक व्यक्ति को अलग— अलग आशीर्वाद देने की फिक्र क्या करनी? थोक के भाव ही दे दो आशीर्वाद, और सारा संसार बुद्धत्व को उपलब्ध हो जाए। तो बुद्ध ने पहले ही आशीर्वाद दे दिया होता, महावीर ने आशीर्वाद दे दिया होता—बात खतम हो गई होती। सारे लोग संबुद्ध हो गए होते!

लेकिन ऐसा नहीं हो सकता। कोई नहीं दे सकता तुम्हें आशीर्वाद; तुम्हें अर्जित करना होता है आशीर्वाद। तुम्हें गुजरना होता है गहरे अनुशासन से, तुम्हें बदलना होता है अपने अंतस का फोकस; तुम्हें बनना होता है सक्षम; तुम्हें बनना होता है सम्यक माध्यम। अन्यथा कई बार ऐसा हुआ है कि सांयोगिक रूप से कोई उस परम घटना के सामने आ जाता है, लेकिन वह बहुत घबड़ाने वाली बात हो जाती है और उसने किसी की कोई मदद नहीं की है। उससे तुम्हारा पूरा व्यक्तित्व डावाडोल हो सकता है—तुम शायद पागल ही हो जाओ। यह बिलकुल ऐसे है जैसे एक शक्तिशाली विद्युत— धारा तुम में अचानक दौड़ जाए जिसके लिए तुम तैयार नहीं हो—हर चीज गड़बड़ा जाएगी। यहां तक कि फ्यूज भी उड़ सकता है—तुम मर सकते हो।

तो तुम्हें शुद्धता उपलब्ध करनी होती है; शरीर के साथ, मन के साथ अतादात्म्य उपलब्ध करना होता है; तुम्हें साक्षीभाव की एक सुनिश्चित स्थिति उपलब्ध करनी होती है। केवल तभी, केवल उसी अनुपात में, आत्म—ज्ञान संभव होता है। तुम इसे मुफ्त में नहीं पा सकते। तुम्हें इसका मूल्य चुकाना होता है—और मूल्य चुकाना होता है आंतरिक बदलाहट द्वारा। ऐसा नहीं है कि तुम इसका मूल्य धन से चुका सकते हो, कोई ऐसी चीज मदद न देगी तुम्हें मूल्य चुकाना होता है अपनी आंतरिक बदलाहट द्वारा।

'.....और आत्म—दर्शन की योग्यता।'

संतोष से उपलब्ध होता है परम सुख।

और यह शुद्धता अंततः संतोष ले आती है। यह शब्द सर्वाधिक गढ़ शब्दों में से एक है; तुम्हें इसे ठीक से समझ लेना है; इसे अनुभव करना है, इसे आत्मसात करना है।

संतोष का अर्थ है : जैसी भी स्थिति है, तुम बिना किसी शिकायत के उसे स्वीकार कर लेते हो। असल में तुम न केवल उसे बिना किसी शिकायत के स्वीकार करते हो, तुम बहुत धन्यवाद के साथ उसका आनंद मनाते हो। यह क्षण अपने आप में संपूर्ण है।

जब तुम्हारा मन कहीं दौड़ता नहीं, जब तुम किसी और समय या कहीं किसी और स्थान की इच्छा नहीं करते, जब तुम किसी और ढंग से अस्तित्व की मांग नहीं करते, जब तुम किसी भी चीज की मांग नहीं करते, जब मांगना मात्र गिर चुका होता है; तुम बस अभी और यहीं होते हो, आनंदित होते हो, जैसे पक्षी चहचहाते हैं वृक्षों पर, फूल खिलते हैं वृक्षों में, चांद—तारे घूमते हैं, हर चीज ऐसे स्वीकृत होती है जैसे कि यही है सब कुछ, संपूर्ण, सर्वश्रेष्ठ, कोई और सुधार इसमें संभव नहीं है; जब भविष्य छूट जाता है, जब कल खो जाता है—तो संतोष उपलब्ध होता है। जब 'अभी' होता है एकमात्र समय, शाश्वतता, तो संतोष उपलब्ध होता है। और उसी संतोष में पतंजलि कहते हैं 'परम सुख होता है।'

'संतोष से उपलब्ध होता है परम सुख।'

इसलिए संतोष है योगी का अनुशासन; वह संतुष्ट रहता है। अगर कोई बात तुम्हें असंतुष्ट नहीं कर सकती, अगर कोई बात तुम्हें बेचैन नहीं कर सकती, अगर कोई बात तुम्हे अपने केंद्र से नहीं हटा सकती—तो परम सुख उमड़ आता है।

आज इतना ही।

प्रवचन 54 - आत्म—सुख से परोपकार का जन्म

प्रश्नसार:

1—प्रेमपूर्ण हृदय वाला व्यक्ति स्वार्थी कैसे हो सकता है?

2—स्वार्थी होकर भी कोई दूसरों के प्रति सजग हो सकता है या नहीं?

3—निराश होने में क्या आपके प्रति निराश होना भी सम्मिलित है? बिना आशा के विकास कैसे होता है?

4—आपने कहा कि आप लोगों पर 'काम' नहीं करते, तो शिष्य बनाने का क्या अर्थ है?

5—सुख पाने के लिए मनुष्य पुन: गर्भ को खोजना है, तो क्या आप हम शिष्यों के लिए एक गर्भ है?

6—बिना जरूरत के भी आप सदा एक नैपकिन क्यों साथ रखते है?

7—मैं बिलकुल बेकार हो गया हूं, क्या मैं दूसरों के खर्च पर जीऊं?

8—मादक द्रव्यों और ध्यान के बीच क्या संबंध है?

9—आपने कहा कि जीवन एक कहानी है अस्तित्व की मौन शाश्वतता मैं, तो फिर मनुष्य क्या है?

10—शिष्य पर क्रोधित होने पर यदि गुरु अभिनय ही कर रहा है, तो उसका मुस्कुरा कर देखना भी क्या अभिनय ही नहीं है?

पहला प्रश्न :

प्रेमपूर्ण हृदय वाला व्यक्ति स्वार्थी कैसे हो सकता है?

प्रेम सबसे बड़ा स्वार्थ है दुनिया में। मौलिक रूप से प्रेम होता है स्वयं के प्रति प्रेम। यदि तुम स्वयं से प्रेम करते हो, केवल तभी तुम किसी दूसरे से प्रेम कर सकते हो। यदि तुम स्वयं से प्रेम नहीं करते, तो किसी दूसरे से प्रेम करना करीब—करीब असंभव ही होता है। प्रेम की गुणवत्ता तुम्हारे भीतर होनी चाहिए केवल तभी वह सुगंध किसी और तक पहुंच सकती है। यदि तुम स्वयं को प्रेम नहीं करते हो तो तुम केवल दिखावा कर सकते हो दूसरों से प्रेम करने का। तुम्हारा प्रेम नकली ही होगा, एक झूठ होगा, एक प्रवंचना होगा। सौ में से निन्यानबे मौकों में यही हो रहा है—क्योंकि मनुष्यता को रोका गया है, संस्कारित किया गया है। प्रत्येक बच्चे को संस्कारित किया गया है कि वह स्वयं को प्रेम न करे, बल्कि दूसरों को प्रेम करे। यह असंभव है। ऐसा हो नहीं सकता; ऐसा चीजों का ढंग नहीं है। हर बच्चे को सिखाया जाता है कि स्वार्थी मत बनो, और वही है होने का एकमात्र ढंग।

ध्यान रहे, यदि तुम स्वार्थी नहीं हो, तो तुम परार्थी भी नहीं हो सकते। स्मरण रहे, यदि तुम स्वार्थी नहीं हो तो तुम निःस्वार्थी भी नहीं हो सकते। केवल एक अत्यंत स्वार्थी व्यक्ति ही निःस्वार्थी हो सकता है। लेकिन यह बात ठीक से समझ लेनी है, क्योंकि यह विरोधाभासी मालूम पड़ती है।

स्वार्थी होने का अर्थ क्या है? पहली मूलभूत बात है : आत्म—केंद्रित होना। दूसरी मूलभूत बात है : सदा अपनी प्रसन्नता की खोज में रहना। यदि तुम आत्म—केंद्रित हो तो तुम कुछ भी करो, तुम रहोगे स्वार्थी ही। तुम सेवा कर सकते हो लोगों की, लेकिन तुम सेवा इसलिए करोगे क्योंकि तुम्हें इसमें सुख मिलता है, क्योंकि ऐसा करने में तुम्हें रस है, ऐसा करने में तुम प्रसन्नता और आनंद अनुभव करते हो। तुम्हें लगता है कि ऐसा करना चाहिए।

तुम कोई कर्तव्य नहीं पूरा कर रहे हो। तुम मनुष्यता की सेवा नहीं कर रहे हो। तुम कोई शहीद नहीं हो; तुम कोई कुर्बानी नहीं कर रहे हो। ये सब व्यर्थ की बातें हैं। तुम तो बस प्रसन्न हो अपने होने के इस ढंग में। यह बात तुम्हें अच्छी लगती है। तुम अस्पताल जाते हो और वहां रोगियों की सेवा करते हो, या तुम गरीबों के पास बैठते हो और उनकी मदद करते हो। लेकिन यह तुम्हारे प्रेम की अभिव्यक्ति है। इस तरह तुम विकसित होते हो। कहीं गहरे में तुम आनंद और शांति अनुभव करते हो, तुम आह्लादित होते हो स्वयं के प्रति।

आत्म—केंद्रित व्यक्ति सदा अपना सुख खोज रहा होता है। और यही इसका सौंदर्य है कि जितना ज्यादा तुम अपना सुख खोजते हो, उतनी ज्यादा तुम दूसरों की मदद करोगे सुखी होने में। क्योंकि वही एकमात्र ढंग है संसार में सुखी होने का। अगर तुम्हारे आस—पास के व्यक्ति दुखी हैं, तो तुम सुखी नहीं हो सकते, क्योंकि व्यक्ति कोई अलग— थलग द्वीप नहीं है। वह हिस्सा है बड़े विशाल महाद्वीप का। अगर तुम सुखी होना चाहते हो, तो जो लोग तुम्हारे आस—पास हैं, तुम्हें उनकी मदद करनी होगी सुखी होने में। केवल तभी—और केवल तभी—तुम सुखी हो सकते हो।

तुम्हें अपने चारों ओर सुख का वातावरण निर्मित करना होता है। यदि हर कोई दुखी है, तो कैसे तुम सुखी हो सकते हो? तुम पर उनका प्रभाव पड़ेगा ही। तुम कोई पत्थर तो नहीं हो। तुम एक संवेदनशील, बहुत संवेदनशील प्राणी हो। यदि तुम्हारे आस—पास के व्यक्ति दुखी हैं, तो उनका दुख तुम्हें प्रभावित करेगा ही। दुख उतना ही संक्रामक है जितना कि कोई और रोग। आनंद भी उतना ही संक्रामक है। यदि तुम दूसरों की मदद करते हो सुखी होने में, तो अंततः तुम अपनी ही मदद करते हो सुखी होने में। वह व्यक्ति जो अपने सुख में बहुत उत्सुक होता है, वह सदा दूसरे के सुख में भी उत्सुक होता है—लेकिन लक्ष्य दूसरा नहीं होता। गहरे में उसे स्वयं में ही रुचि होती है, इसीलिए वह मदद करता है। यदि संसार में सभी को स्वार्थी होने की शिक्षा दी जाए, तो सारा संसार सुखी हो जाएगा। दुख की कोई संभावना नहीं रह जाएगी।

यदि तुम स्वस्थ होना चाहते हो, तो तुम बीमार लोगों के बीच स्वस्थ नहीं रह सकते हो। कैसे रह सकते हो तुम स्वस्थ? यह बात असंभव है। यह नियम के विरुद्ध है। तुम्हें दूसरों की मदद करनी होगी स्वस्थ होने में। तुम्हारा स्वास्थ्य स्वस्थ लोगों के बीच ही संभव है।

हर व्यक्ति को स्वार्थी होने की शिक्षा दो, उसी में से निःस्वार्थ आता है। निःस्वार्थ अंततः स्वार्थ ही है। शुरुआत में वह निःस्वार्थ जैसा लगता है, लेकिन अंततः वह तुम्हें ही सुखी करता है। और सुख बढ़ता जाता है. जितने व्यक्ति तुम्हारे आस—पास सुखी होते हैं, उतना ही सुख तुम पर बरसने लगता है। तुम परम सुखी हो सकते हो।

लेकिन अपने को कभी मत भूलना। तुम्हें अपने को छोड़ना सिखाया जाता रहा है। राजनीतिज्ञ, पंडित—पुरोहित यही सिखाते आए हैं, क्योंकि संसार में राजनीतिज्ञों और पंडित—पुरोहितो के होने का यही एकमात्र उपाय है। यदि तुम दुखी हो, तो पंडित—पुरोहित की जरूरत है। यदि तुम परेशान हो, दुखी हो, तो जरूरत है राजनीतिज्ञों की। यदि तुम उच्छृंखल हो, तो शासक चाहिए। अगर तुम बीमार हो, केवल तभी चिकित्सक चाहिए। तो राजनीतिज्ञ चाहते हैं कि तुम अव्यवस्थित रहो; अन्यथा वे किस पर लादेंगे व्यवस्था? तुम्हारी अव्यवस्था के कारण वे शासक बन जाते हैं; और वे तुम्हें निःस्वार्थी होना सिखाते हैं। वे तुम्हें सिखाते हैं. कुर्बान हो जाओ देश पर, ईश्वर पर, धर्म पर इस्लाम पर, हिंदुत्व पर, कुरान पर, गीता पर, बाइबिल पर—कोई भी नाम काम दे देगा, कोई भी शब्द चलेगा—लेकिन बलिदान कर दो स्वयं को। यदि तुम बलिवेदी पर चढ़ जाओ, तो पुरोहित खुश होता है, राजनीतिज्ञ खुश होता है।

पंडित—पुरोहित और राजनीतिज्ञ एक गहरी साजिश में जीते हैं—अनजाने, शायद उन्हें होश भी नहीं है कि वे क्या कर रहे हैं, लेकिन वे तुम्हें सुखी नहीं देखना चाहते। जब वे देखते हैं कि तुम सुखी हो रहे हो, तो वे चौकन्ने हो जाते हैं। तब तुम उनके लिए, उनके समाज के लिए, उनके व्यवस्थित संसार के लिए एक खतरा बन जाते हो—तुम खतरनाक हो जाते हो। सुखी व्यक्ति संसार का सबसे ज्यादा खतरनाक व्यक्ति होता है। वह विद्रोही हो सकता है, क्योंकि सुखी व्यक्ति मुक्त व्यक्ति होता है। और सुखी व्यक्ति परवाह नहीं करता युद्धों की, वियतनाम की, इजरायल की। सुखी व्यक्ति को ये बातें पागलपन लगती हैं, मूढ़तापूर्ण लगती हैं।

एक सुखी व्यक्ति इतना प्रसन्न होता है कि वह चाहता है कि तुम उसे उसकी प्रसन्नता में अकेला छोड़ दो। वह अपने एकांत के जगत में जीना चाहता है। वह फूलों और काव्य और संगीत के बीच जीना चाहता है। वह क्यों फिक्र करेगा युद्ध पर जाने की, मरने—मारने की? वह क्यों दूसरों की हत्या करना या आत्महत्या करना चाहेगा? केवल स्वार्थहीन लोग ऐसा कर सकते हैं, क्योंकि उन्हें कोई अनुभव नहीं है कि कितना सुख संभव है। वैसा कोई अनुभव नहीं होता उनका : उन्हें पता नहीं कि होने का आनंद क्या है, कि उत्सवपूर्ण जीवन क्या है। उन्होंने कभी नृत्य नहीं किया। उन्होंने कभी जीवन को नहीं जाना। उन्होंने कभी अज्ञात को स्पर्श नहीं किया; वे झलकें आती हैं गहन प्रसन्नता से, गहन तृप्ति से, गहन संतोष से।

स्वार्थरहित व्यक्ति उखड़ा हुआ, केंद्ररहित होता है। वह गहन पागलपन में होता है। वह प्रकृति के विरुद्ध है; वह स्वस्थ और समग्र नहीं हो सकता। वह जीवन की, स्वभाव की, अस्तित्व की धार के विरुद्ध लड़ रहा है—वह कोशिश कर रहा है निःस्वार्थी होने की। वह हो नहीं सकता निःस्वार्थी, क्योंकि

केवल स्वार्थी व्यक्ति ही हो सकता है निस्वार्थी। जब तुम्हारे पास आनंद होता है तो तुम उसे बांट सकते हो; जब तुम्हारे पास ही आनंद नहीं है, तो कैसे तुम बांट सकते हो? पहली तो बात, बांटने के लिए व्यक्ति के पास आनंद होना चाहिए। स्वार्थरहित व्यक्ति सदा गंभीर होता है, गहरे में बीमार होता है, व्यथा में जीता है। वह चूक गया है अपना जीवन।

और ध्यान रहे, जब भी तुम अपने जीवन को चूक जाते हो तो तुम विध्वंसक हो जाते हो। जब भी कोई व्यक्ति पीड़ा में जीता है, तो वह नष्ट करना चाहता है, तोड़ना चाहता है। पीड़ा विध्वंसक होती है; प्रसन्नता सृजनात्मक होती है। केवल एक ही सृजनात्मकता है और वह आती है आनंद से, प्रफुल्लता से, आह्लाद से। जब तुम आनंदित होते हो, तब तुम कुछ सृजन करना चाहते हो—बच्चों के लिए कोई खिलौना, या कोई कविता, या कोई चित्र—कोई भी चीज। जब भी तुम बहुत प्रसन्न होते हो जीवन में, तो कैसे उसे अभिव्यक्त करोगे? तुम कुछ सृजन करते हो—कुछ भी। लेकिन जब तुम दुखी होते हो, पीड़ित होते हो, तो तुम चीजों को तोड़ना चाहते हो, मिटाना चाहते हो। तुम राजनीतिज्ञ होना चाहते हो, तुम सैनिक होना चाहते हो—तुम कोई ऐसी स्थिति बना देना चाहते हो जिसमें कि तुम विध्वंस कर सको।

इसीलिए सदा धरती पर कहीं न कहीं युद्ध चलता रहता है। यह एक बड़ी बीमारी है। और सारे राजनीतिज्ञ बातें करते हैं शांति की। वे तैयारी करते हैं युद्ध की और बातें करते हैं शांति की! असल में वे कहते हैं, 'हम शांति के लिए ही युद्ध की तैयारी कर रहे हैं।' बिलकुल असंगत बात है। यदि तुम तैयारी कर रहे हो युद्ध की, तो कैसे शांति हो सकती है? शांति बनाए रखने के लिए व्यक्ति को शांति की तैयारी करनी चाहिए।

इसीलिए सारे संसार में नई पीढ़ी एक बड़ा खतरा बन गई है व्यवस्था के लिए। उसे केवल आनंदित होने में रस है। उन्हें रस है प्रेम में, उन्हें रस है ध्यान में, उन्हें रस है संगीत में, नृत्य में...। संसार भर में राजनीतिज्ञ बड़े चौकन्ने हो गए हैं। नई पीढ़ी को राजनीति में कोई रस नहीं है—चाहे वह दक्षिणपंथी हो या वामपंथी। नहीं, उन्हें जरा भी रस नहीं है। वे कम्युनिस्ट नहीं हैं; वे किसी भी वाद से संबंधित नहीं हैं।

एक सुखी व्यक्ति अपने से संबंधित होता है। क्यों वह संबंधित होगा किसी संस्था से? वह तो दुखी व्यक्ति का ढंग है : कि किसी संस्था से जुड़ जाना, कि किसी भीड़ में सम्मिलित हो जाना। क्योंकि उसकी स्वयं के भीतर कोई जड़ें नहीं होतीं, वह अपने से जुड़ा नहीं होता—और यह बात उसे बहुत बेचैन करती है : उसे किसी से जुड़ना चाहिए—तो वह वैकल्पिक संबंध निर्मित कर लेता है। वह सदस्य बन जाता है किसी राजनैतिक पार्टी का, किसी क्रांतिकारी पार्टी का, या किसी और संस्था का—किसी धर्म का। अब उसे लगता है कि वह कहीं संबंधित है, जुड़ा हुआ है : एक भीड़ है जिसका कि वह अंग है।

व्यक्ति को केंद्रित होना चाहिए स्वयं में, क्योंकि स्वयं से मार्ग जाता है परमात्मा तक, अस्तित्व तक। यदि तुम भीड़ से जुड़े हो, तो तुम एक बंद गली में हो; वहां से फिर और कोई विकास संभव नहीं है। तुम एक दीवार के सामने खड़े हो।

लेकिन राजनीतिज्ञ निर्भर करते हैं तुम्हारे बलिदान पर। वे तुम्हें प्रसन्न नहीं देखना चाहते; वे नहीं देखना चाहते तुम्हारी मुस्कुराहटें, तुम्हारी हंसी। वे तुम्हें दुखी देखना चाहते हैं, इतना दुखी कि तुम रोष में आकर विध्वंसक हो जाओ, क्रोधी हो जाओ। तब तुम्हारा उपयोग किया जा सकता है, साधन के रूप में तुम्हारा उपयोग किया जा सकता है। वे तुम्हें सिखाते हैं स्वार्थरहित होना, वे तुम्हें सिखाते हैं शहीद होना; वे तुम्हें सिखाते हैं, 'दूसरों के लिए अपना जीवन बलिदान कर दो।' और यही वे दूसरों को भी सिखा रहे हैं। यह बहुत मूढ़तापूर्ण खेल जान पड़ता है।

मैं तुम्हें निःस्वार्थी होना नहीं सिखाता, क्योंकि मैं जानता हूं कि यदि तुम स्वार्थी हो तो तुम अपने आप ही, सहज ही निःस्वार्थी हो जाते हो। यदि तुम स्वार्थी नहीं हो तो तुम चूक गए हो स्वयं को ही; अब तुम किसी और के संपर्क में भी नहीं आ सकते—उस आधारभूत संपर्क का ही अभाव है। पहला चरण ही चूक गया है।

तो भूल जाओ संसार को और समाज को और यूटोपिया को और कार्ल मार्क्स को, भूल जाओ इन सब बातो को। जिंदगी छोटी है। आनंदित होओ, प्रफुल्लित होओ, प्रसन्न होओ, नाचो और डूबो प्रेम में; और तुम्हारे प्रेम और नृत्य से, तुम्हारे गहन स्वार्थ से उमड़ने लगेगी एक ऊर्जा। तुम दूसरों के साथ उसे बांट पाओगे।

मेरे देखे प्रेम सबसे बड़ा स्वार्थ है। यदि इससे भी गहरा स्वार्थ चाहते हो, तो है ध्यान, प्रार्थना। यदि तुम इससे भी गहरा स्वार्थ चाहते हो, तो है परमात्मा। तुम किसी दूसरे के माध्यम से नहीं संबंधित हो सकते परमात्मा से; कोई दूसरा सेतु नहीं बन सकता। परमात्मा के साथ तुम्हें सीधा साक्षात्कार करना होता है, एकदम प्रत्यक्ष, बिना किसी माध्यम के। उस परम अनुभव का साक्षात्कार तुम अकेले ही करोगे, अपने परम स्वात में।

तो मैं स्वार्थ सिखाता हूं लेकिन यदि तुम मेरे स्वार्थ का अर्थ समझते हो तो तुम समझ लोगे उस सब को जो सुंदर है, उस सब को जो निःस्वार्थ है।

दूसरा प्रश्न:

स्वार्थी होकर भी कोई दूसरों के प्रति सजग हो सकता है या नहीं?

यदि तुम स्वयं के प्रति सजग हो तो तुम दूसरों के प्रति भी सजग हो जाते हो। इससे अन्यथा हो ही कैसे सकता है? यदि तुम स्वयं के प्रति सजग नहीं हो, तो तुम दूसरों के प्रति सजग कैसे हो सकते हो? सजगता घटित होनी चाहिए पहले तुम्हारे अपने भीतर। प्रकाश पहले तुम्हारे भीतर होना चाहिए, ज्योति पहले तुम्हारे भीतर जलनी चाहिए; केवल तभी प्रकाश फैल सकता है और दूसरों तक पहुंच सकता है। तुम जीते हो अंधकार में, बेहोशी में—कैसे तुम सजग हो सकते हो दूसरों के प्रति? तुम खोए हो विचारों में, सपनों में—तुम दूसरों के प्रति सजग नहीं हो सकते।

पति कह सकता है, 'मैं सजग हूं अपनी पत्नी के प्रति और उसकी भावनाओं के प्रति।' लेकिन यह संभव नहीं है, क्योंकि पति अपने प्रति ही सजग नहीं है। वह जीता है गहन अंधकार में और बेहोशी में। वह नहीं जानता कि उसका क्रोध कहां से आता है; वह नहीं जानता कि उसका प्रेम कहा से आता है; वह नहीं जानता कि यह अस्तित्व, यह जीवन—प्रवाह कहा से आता है। वह सजग नहीं है अपने प्रति—और यह निकटतम घटना है जिसके प्रति तुम सजग हो सकते हो—और वह कहता है, 'मैं सजग हूं अपनी पत्नी के प्रति और उसकी भावनाओं के प्रति।' मूढ़ता भरी बात है। शायद वह सोच रहा है, सपने देख रहा है कि वह सजग है, सचेत है।

हर कोई अपने सपनों में घिरा हुआ जीता है और उन सपनों में उसके प्रक्षेपण होते हैं। व्यक्ति सोचता है. 'मैं सजग हूं।' जरा पूछो पत्नी से; वह कहती है, 'वे कभी मुझे देखते तक नहीं।' पत्नी सोचती है कि वह सजग है पति के प्रति, उसकी जरूरतो के प्रति, लेकिन वे जरूरतें जिनके बारे में वह सोचती है कि वह सजग है—वे पति की जरूरतें ही नहीं हैं। ऐसा वह 'सोचती' है कि वे पति की जरूरतें हैं। एक संघर्ष चलता रहता है, और दोनों सजग हैं और दोनों एक—दूसरे की फिक्र करते हैं और दोनों एक—दूसरे का ध्यान रखते हैं!

कोई नहीं ध्यान रख सकता दूसरे का, जब तक उसने अपना ध्यान रखने का पहला पाठ न सीख लिया हो स्वयं के भीतर अंतरतम केंद्र में। पहले अपना खयाल करना सीखो। वह सबसे करीब है, आसान है। सजगता का पहला पाठ वहा सीखो, तब तुम सजग होओगे दूसरों के प्रति। तब पहली बार तुम अपने को आरोपित नहीं करोगे, तुम व्याख्या नहीं करोगे; तुम प्रत्यक्ष देखोगे। तुम दूसरे को वैसा ही देखोगे जैसा वह है, वैसा नहीं देखोगे जैसा कि तुम चाहते हो कि वह हो या जैसा तुम सोचते हो कि वह है। तब तुम वास्तविकता को देखोगे।

जब तुम्हारी आंखों से सपने खो जाते हैं और तुम्हारी आंखें सपनों से खाली होती हैं, केवल तभी तुम सजग हो सकते हो। अन्यथा तुम्हारी आंखें धुंधली होती हैं; बहुत बादल और बहुत धुआं वहा छाया रहता है। तुम देखते हो, लेकिन तुम पर्दों के पीछे से देखते हो, और वे पर्दे हर चीज को बदल देते हैं। वे विकृत कर देते हैं। वे प्रतिबिंबित नहीं करते, अपना आरोपण करते हैं। जब तुम्हारे

स्वप्न तिरोहित हो जाते हैं और तुम सजग होते हो—सचेत, सजग, होशपूर्ण—तो तुम्हारी आंखें कैमरे की आख की भांति हो जाती हैं। तुम बस वही देखते हो, जो है; तुम प्रक्षेपण नहीं करते। तुम वास्तविकता को बदलते नहीं; तुम तो बस वास्तविकता को उदघाटित होने देते हो। तुम्हारी आंखें सरल, निर्दोष मार्ग होती हैं, वे सीधा—सीधा देखती हैं। अभी तो जैसे तुम हो, तुम सीधा—सीधा नहीं देख सकते। तुम्हारी आंखें पहले से ही पूर्वाग्रहों, विचारों, धारणाओं, विश्वासों से भरी हैं। तुम देख नहीं सकते। तुम्हारी आंखें खाली नहीं हैं देखने के लिए।

कैसे तुम सजग हो सकते हो दूसरों के प्रति? केवल बुद्ध पुरुष सजग होते हैं, वे जो कि जाग गए हैं स्वयं के भीतर। लेकिन बुद्ध बहुत स्वार्थी हैं, महावीर स्वार्थी हैं, पतंजलि भी बिलकुल स्वार्थी हैं—लेकिन वे लाखों व्यक्तियों की मदद करते हैं। वे लाखों व्यक्तियों के लिए आशीष बन जाते हैं। जिन्हें भी जरूरत है और जो खोज रहे हैं, उनके प्रकाश का उपयोग कर सकते हैं। वे प्रकाशित हैं। वही बुद्धत्व का अर्थ है. उनका दीया जल गया है। तुम सम्मिलित हो सकते हो उसमें। उनके दीए से तुम अपना दीया भी जला सकते हो। तुम सहभागी हो सकते हो।

तो सजगता सीखनी होती है भीतर। जब तुम अपने भीतर जाग जाते हो, तो तुम सारे संसार के प्रति, सारे अस्तित्व के प्रति जाग जाते हो। अचानक पर्दे हट जाते हैं। अचानक तुम्हारी आंखें आच्छादित नहीं रहती—वे शून्य, ग्रहणशील और निर्मल हो जाती हैं। तुम देखते हो; तुम आरोपित नहीं करते, तुम व्याख्या नहीं करते। आरोपित करने के लिए तुम्हारे पास कुछ बचता नहीं। तुम एक खाली जगह, एक अंतर— आकाश, एक आंतरिक शून्य हो जाते हो।

तीसरा प्रश्न:

निराश होने में क्या आपके प्रति निराश होना भी सम्मिलित है? बिना आशा के विकास कैसे संभव है?

आशा बड़े से बड़े अवरोधों में से एक है, क्योंकि आशा के द्वारा स्वप्न निर्मित होते हैं, आशा के द्वारा भविष्य निर्मित होता है, आशा के द्वारा समय निर्मित होता है। जब मैं कहता हूं कि आशा छोड़ दो, तो मेरा मतलब है अभी और यहीं जीओ। यदि तुम आशा करते हो, तो अभी और यहां से तुम हट चुके होते हो।

तुम आशा के द्वारा जीवन को स्थगित करते हो; तुम कहते हो, 'मैं कल जीऊंगा, जब सब ठीक होगा।' जब हर चीज जैसी तुम चाहते हो वैसी होगी—जब तुम्हारे पास पर्याप्त धन होगा, शक्ति होगी, रुपया

होगा, मान—प्रतिष्ठा होगी—तब जीओगे तुम। और तुम आशा करते हो कि कल सब कुछ हो जाएगा। कल न होगा तो परसों हो जाएगा। यदि इस वर्ष न होगा तो अगले वर्ष हो जाएगा। और यदि इस जीवन में न होगा तो अगले जीवन में हो जाएगा! पूरब में आशा जहां तक फैल सकती थी फैल गई है—हजारों जन्म हैं भविष्य में! यह मन की चालाकी है। एक बार तुम मन को आशा बनाने देते हो, तो वह तुम्हें खूब भटकाता है।

जीवन है मात्र इसी क्षण में। जीवन का और कोई काल नहीं होता, उसका केवल एक काल होता है. वर्तमान। अतीत एक स्मृति है; वह अस्तित्व का हिस्सा नहीं है। वह जा चुका है; वह कहीं है नहीं। बस मन पर बने चिह्न छूट गए हैं; स्मृति पर पड़ी रेखाएं हैं। भविष्य भी नहीं है; वह अभी आया ही नहीं। केवल यह क्षण, यह छोटा सा, आणविक क्षण अस्तित्व रखता है। यदि तुम्हें जीना है, तो तुम्हें इसी क्षण में जीना है। यदि तुम जीवन चूकना चाहते हो, तो तुम आशा में जी सकते हो।

लेकिन जब मैं कहता हूं 'निराशा', तो तुम मुझे गलत समझ सकते हो; क्योंकि 'निराशा' से सदा ही तुम्हारा मतलब होता है. जब कोई आशा असफल होती है, तो तुम निराश हो जाते हो। लेकिन जब मैं निराशा शब्द का उपयोग करता हूं तो मेरा यह मतलब नहीं होता कि कोई आशा असफल हुई। मेरा मतलब है. सभी आशाएं, आशा मात्र असफल हो गई। तब तुम वस्तुत: आशा छोड़ देते हो, और वह एक सुंदर घड़ी होती है। वह कोई हताश अवस्था नहीं है। ऐसा नहीं है कि तुम उदास हो।

तुम बहुत बार निराश अनुभव करते हो—कोई आशा टूट जाती है। तुम प्रेम में पड़े और स्त्री ने धोखा दे दिया, या पुरुष ने धोखा दिया—एक आशा टूट गई। लेकिन और भी स्त्रियां हैं, और भी पुरुष हैं; आशा जी सकती है। वह नए सहारे खोज सकती है; वह नए भ्रम बना सकती है। एक भ्रम टूटता है—लेकिन तुम भ्रम निर्मित करना नहीं छोड़ते। तुम किसी मार्ग पर चलते हो। उसका अंत आ जाता है; आगे मार्ग नहीं होता; एक खाई आ जाती है तुम्हारे सामने : एक मार्ग बंद हो गया। लेकिन और लाखों मार्ग हैं सामने। जीवन एक भूल— भुलैया है; तुम और— और मार्गों पर जा सकते हो। तुम पूरी तरह निराश नहीं हुए हो।

व्यक्ति पूरी तरह निराश हो जाता है जब वह पूरे जीवन को उसकी समग्रता में देखता है और देखता है कि कहीं कोई मार्ग नहीं है, सपने देखने को कुछ नहीं है, आशा करने को कुछ नहीं है। उस निराशा में कहीं कोई उदासी नहीं होती। व्यक्ति बस जीवन के सत्य को जानता है जैसा वह है। ऐसा नहीं कि जीवन निष्फल हुआ, बस व्यक्ति देखता है : 'मेरी आशाएं निष्फल गईं।' और जीवन किसी की आशाओं को स्वीकार नहीं करता। वह किसी की आशाओं के अनुसार नहीं चलता, वह किसी के सपने पूरे नहीं करता। जीवन असफल नहीं हुआ; केवल तुम्हारा आशा करने वाला मन असफल हो गया है। मन काम करना बंद कर देता है। थोड़ी देर तो घबड़ाहट लगती है, हर चीज अस्तव्यस्त हो जाती है; लेकिन यदि तुम इस अराजकता को जी लो, तो अचानक एक नया जीवन आविर्भूत होता है तुम में—ताजा, युवा, इसी क्षण का।

वह जीवन होता है—अभी और यहां। वह कहीं और गति नहीं करता। उसमें कोई प्रयोजन नहीं होता; वह इच्छा—शून्य होता है। ऐसा नहीं कि वह आनंदित नहीं होता—केवल वही आनंदित होता है। जब कोई इच्छा नहीं रहती तब तुम्हारी संपूर्ण ऊर्जा एक आहलाद बन जाती है। तुम स्पंदित होते हो, थिरकते हो प्रसन्नता से। तुम अस्तित्व के उस उत्सव में सम्मिलित होते हो जो निरंतर चल रहा है; जो निरंतर प्रवाहमान है।

तुम इसे चूक रहे थे तो केवल इसीलिए क्योंकि तुम स्वप्न देख रहे थे। तुम इसके हिस्से न थे, क्योंकि तुमने अपनी निजी आशाएं बना ली थीं। तुम मूढ़ थे, 'ईडियट' थे।'ईडियट' का अर्थ होता है वह व्यक्ति जिसकी निजी आशाएं हैं; वह जो समग्र के साथ नहीं बह रहा है, जो अपने ढंग से चलने की कोशिश कर रहा है, जो अपनी मर्जी को समग्र के विरुद्ध चलाने की कोशिश कर रहा है —वह है मूढ़, 'ईडियट'। ईडियट शब्द का मूल अर्थ है अलग, व्यक्तिगत।

आशाएं व्यक्तिगत होती हैं; जीवन समष्टिगत होता है। आशाएं निजी होती हैं। अस्तित्व किसी एक व्यक्ति के लिए नहीं है। सारे व्यक्ति जुड़े हुए हैं अस्तित्व से।

क्या तुमने ध्यान दिया कि तुम्हारे सपने संसार की सबसे निजी घटना हैं? तुम किसी मित्र को भी अपने सपनों में निमंत्रित नहीं कर सकते हो। तुम अपनी प्रेमिका को भी नहीं बुला सकते हो अपने सपनों में। तुम अकेले ही होते हो वहां। क्यों सपनों को झूठ माना जाता है? क्योंकि वे व्यक्तिगत होते हैं। तुम किसी और को नहीं बुला सकते अपने सपनों में गवाह की तरह, वह असंभव है।

मैंने सुना है कि मिस्र का एक सम्राट फैरोह, जो कि थोड़ा झक्की था, जैसे कि सम्राट करीब—करीब होते ही हैं, थोड़े न्यूरोटिक—एक दिन उसने सपना देखा और उसने अपने सपने में अपने एक मंत्री को देखा। वह बहुत क्रोधित हुआ। अगले दिन उसने डुंडी पिटवा दी सारे राज्य में कि किसी को उसके सपनों में आने की इजाजत नहीं है। यह बिना आज्ञा प्रवेश है; और अगर किसी ने बिना आज्ञा प्रवेश किया, उसके सपनों में आया, उसे तुरंत फांसी पर चढ़ा दिया जाएगा। और बहुत से लोग बाद में फांसी पर चढ़ा दिए गए, क्योंकि वे उसके सपनों में आए।

तुम्हारे सपने तुम्हारे हैं, उनमें कोई प्रवेश नहीं कर सकता। और अगर कोई प्रवेश करता है, तो वह तुम्हारा सपना ही है; ऐसा नहीं कि उसने सच में प्रवेश किया है। सपने व्यक्तिगत होते हैं, नितांत व्यक्तिगत। इसीलिए वे झूठे होते हैं। कोई भी चीज जो व्यक्तिगत है, वह झूठी होगी ही। सत्य समष्टिगत होता है। मैं देख सकता हूं इन वृक्षों को, तुम भी देख सकते हो इन वृक्षों को, लेकिन मेरे सपनों के वृक्ष केवल मैं ही देख सकता हूं। मैं तुम से नहीं कह सकता कि आओ और साक्षी हो जाओ। इसीलिए सुबह मैं स्वयं भी अनुभव करता हूं कि वह केवल सपना था, सत्य न था।

तुम्हारी आशाएं तुम्हारी व्यक्तिगत आकांक्षाएं हैं। जब तुम निराश हो जाते हो जब मैं कहता हूं : 'निराश हो जाओ, ' 'सारी आशा गिरा दो,' तो मैं यह कह रहा हूं कि समग्र अस्तित्व के साथ बहो

व्यक्तिगत आकांक्षाएं मत निर्मित करो। अन्यथा तुम सदा दुखी रहोगे, सदा हताश रहोगे। तुम्हारी आशाएं कभी पूरी नहीं होंगी, क्योंकि अस्तित्व अपने ढंग से चलता है। अस्तित्व की अपनी धारा है अस्तित्व का अपना गंतव्य है। नदी जा रही है सागर की तरफ : और नदी की हर बूंद कहीं और ही जाने की सोचे, तो कैसे संभव है यह बात? नदी तो सागर की ओर ही बहेगी। वे बूंदें निराश होंगी क्योंकि वे उस मंजिल तक नहीं पहुंचेंगी जिसका वे सपना देख रही थीं।

बुद्धिमान व्यक्ति उस बूंद की तरह है जो व्यक्तिगत सपना नहीं देखती। सबुद्ध व्यक्ति वह व्यक्ति है जो समग्र के साथ, नदी के साथ बहता है। वह कहता है, 'जहां तुम जा रही हो, मैं भी वहीं जा रहा हूं। और मैं क्यों फिक्र करूं? नदी बह रही है, तो कहीं न कहीं जा ही रही होगी। यह मेरी चिंता का विषय नहीं है।' बूंद गिरा देती है अपनी चिंता. यही है निराशा की घड़ी, निराकाक्षा की घड़ी। उस घड़ी में बूंद नदी हो जाती है। उस क्षण में, अगर गहरे देखें तो, बूंद सागर हो गई होती है। उस क्षण में बूंद समग्र अस्तित्व हो गई होती है।

'क्या निराश होने में आपके प्रति निराश होना भी सम्मिलित है?'

ही। यदि तुम आशा करने लगते हो, यदि तुम मेरे आस—पास आशाएं बना लेते हो, तो तुम अपने सपने निर्मित कर रहे हो। मेरा उनमें कोई सहयोग नहीं है। यह बात ध्यान में रख लेना : मेरा उनमें कोई सहयोग नहीं है, कोई हिस्सा नहीं है। तुम सपने और आकांक्षाएं निर्मित कर रहे हो, वह तुम्हारे निर्णय की बात है। यदि तुम निर्मित करते हो, तो तुम हताश होओगे। अगर तुम निर्मित नहीं करते, तो तुम मेरे साथ बहने लगते हो।

यही अर्थ है समर्पण का, यही अर्थ है शिष्य होने का—सदगुरु के साथ बहना। यदि मैं कहता हूं 'आशाएं गिरा दो', तो तुम गिरा देते हो। तुम बहते हो मेरे साथ। यदि तुम्हारी व्यक्तिगत आशाएं हैं, तो ध्यान रहे—जब तुम हताश होओ तो मुझे जिम्मेवार मत ठहराना। मैं जिम्मेवार नहीं हूं।

वरना यह बात बड़ी आसान लगती है। तुम उस संसार से आते हो जहां तुम्हें हताशा मिली, तब तुम मेरे आस—पास आशा बनाने लगते हो, इच्छाएं, सपने निर्मित कर लेते हो मेरे आस—पास। मैं बहाना बन जाता हूं तुम्हारे लिए फिर से आशा करने का। तुम फिर आकांक्षा करने लगते हो उन्हीं बातो की—अब मेरा सहारा मिल जाता है।

नहीं, इन सब बातो में मैं कोई मदद नहीं करता। मैं केवल तभी मदद करता हूं यदि तुम आकांक्षा—शून्य होना चाहते हो, यदि तुम आशा मात्र को गिरा देना चाहते हो, यदि तुम स्वयं को, अहंकार को छोड़ देना चाहते हो। केवल उसी ढंग से मदद कर सकता हूं मैं। मैं यहां किसी की इच्छाओं और आशाओं को पूरा करने के लिए नहीं हूं। इससे पहले कि हताशा पकड़े, उन्हें गिरा दो; वरना तुम नाहक मुझ पर नाराज होओगे। इस विषय में सचेत रहो; वरना तुम्हें लगेगा कि मैंने तुम्हारा समय बेकार

किया; मैंने तुम्हारी शक्ति नष्ट की। यदि तुम अपने व्यक्तिगत लक्ष्यों तक नहीं पहुंच पाते, तो निश्चित ही तुम मुझे कभी माफ नहीं कर पाओगे; लेकिन मेरा कोई लेना—देना नहीं है उससे।

यदि तुम तैयार हो मेरे साथ बहने के लिए—मैं तो बह ही रहा हूं समग्र अस्तित्व के साथ—यदि तुम तैयार हो मेरे साथ बहने के लिए, तो तुम सीख जाओगे समग्र के साथ बहने की कला। तब तुम मुझे भूल सकते हो। अंततः गुरु को छोड़ देना है। गुरु, ज्यादा से ज्यादा एक द्वार हो सकता है, वह मंजिल नहीं है। तुम गुजरते हो उसमें से, और तुम उसे भुला देते हो। तुम बहते हो समग्र के साथ। सदगुरु के पास, सदगुरु की मौजूदगी में, तुम समग्र के साथ बहने की कुशलता सीखते हो।

हां, मैं भी सम्मिलित हूं। जब मैं तुम्हें निराश होना सिखाता हूं तो उसमें मैं भी सम्मिलित हूं। मेरे आस—पास कोई आशा मत बना लेना। मैं तुम्हारे व्यक्तिगत सपनों में, तुम्हारी मूढ़ताओं में कभी सहयोगी न होऊंगा।

'बिना आशा के विकास कैसे संभव है?'

आशा के जाने पर ही विकास संभव है। तुम विकसित नहीं हुए क्योंकि तुम आशा करते रहे हो। तुम बचकाने बने रहे, तुम बच्चों जैसे बने रहे। बच्चा अज्ञानी है—वह बनाए सपने, आशाएं, भविष्य तो ठीक है। वह नादान है। जब प्रौढ़ता आती है तो सपनों को छोड़ना ही होता है; या तुम सपने देखना छोड़ते हो और प्रौढ़ता आती है। प्रौढ़ता क्या है? प्रौढ़ता है वास्तविकता को देखना।

तो आकांक्षाओं के जगत में जीना छोड़ो। धार्मिक लोग भी, तथाकथित धार्मिक लोग भी सपनों में जीते हैं. वे अपने लिए स्वर्ग की कल्पना करते हैं और दूसरों के लिए नरक की। सपने — अच्छे सपने अपने लिए और बुरे सपने दूसरों के लिए। वे भी बच्चों जैसे हैं।

विकास केवल तभी संभव है, जब कहीं कोई आशा नहीं होती। क्यों? क्योंकि वही उर्जा जो

आशाओं में लगती है, उसी का रूपांतरण करना होता है। वही ऊर्जा विकास के लिए मुक्त होनी चाहिए। इसीलिए सभी बुद्ध पुरुष कहते हैं, 'आकांक्षा मत करो।' इसलिए नहीं कि वे विरुद्ध हैं आकांक्षा के; नहीं। केवल इसलिए कि वे विकास की फिक्र में हैं। और ऊर्जा आकांक्षाओं से मुक्त होनी चाहिए केवल तभी वह आंतरिक विकास बन सकती है।

विकास होता है वर्तमान में और आकांक्षा होती है भविष्य में—वे दोनों कभी मिलते नहीं। तुम विकसित होते हो अभी और यहीं—कल नहीं। वृक्ष अभी विकसित हो रहे हैं, और तुम सोच रहे हो कल विकसित होने की। विकास सदा होता है अभी और यहीं। यदि विकास संभव है, तो वह इस क्षण ही संभव है। यदि वह इस क्षण नहीं हो रहा है, तो अगले क्षण कैसे हो सकता है? कहा से आएगा वह? क्या आसमान से गिरेगा? यही क्षण आधार बनेगा अगले क्षण के लिए। आज आधार बनेगा कल के लिए। यह जीवन आधार बनेगा अगले जीवन के लिए। यदि इस क्षण विकास हो रहा है, तो अगला

क्षण उसी से आएगा; तुम अगले क्षण को शुरू करोगे उसी स्थल से, उसी अवस्था से, उसी स्थिति से और उसी धरातल से—जहां कि इस क्षण ने तुम्हें छोड़ा है। यही ढंग है विकसित होने का। यह क्षण एकमात्र क्षण है विकसित होने के लिए।

क्या तुमने ध्यान दिया कि सारे संसार में—पौधे, पक्षी, जानवर, पहाड़—केवल इसी क्षण, वर्तमान क्षण का अस्तित्व है, और वे विकसित हो रहे हैं? केवल मनुष्य सोचता है भविष्य के बारे में और इसी कारण विकास रुक जाता है। जितना ज्यादा तुम सोचते हो भविष्य के बारे में, उतनी ही कम संभावना होती है विकसित होने की। विकास का अर्थ है : उस वास्तविकता के साथ संबंधित होना जो कि इस क्षण मौजूद है। और कोई दूसरी वास्तविकता नहीं है।

'बिना आशा के विकास कैसे संभव है?'

विकास केवल बिना आशा के ही संभव है।

मैं समझता हूं तुम्हारी मुश्किल। तुम कह रहे हो, 'यदि हम आशा न करें, तो हम विकास के विषय में भी आशा नहीं करेंगे। तो कैसे होगा विकास अगर हम आशा न करें और इच्छा न करें?'

विकास के लिए तुम्हारी आशाओं, तुम्हारी इच्छाओं की जरूरत नहीं है। विकास के लिए तुम्हारी समझ की जरूरत है; विकास के लिए तुम्हारी सजगता की जरूरत है। सजगता काफी है। जो कुछ घटित हो रहा है, यदि तुम उसके प्रति सजग हो इस क्षण में, तो वह सजगता सूरज की रोशनी बन जाती है, और तुम्हारी अंतस सत्ता का वृक्ष विकसित होने लगता है। वह सजगता बन जाती है बरसा का पानी, और तुम्हारी अंतस सत्ता का वृक्ष बढ़ने लगता है। वह सजगता बन जाती है खाद पोषण। विकास के लिए केवल सजगता की जरूरत है। व्यक्ति विकसित होता है सजगता से—आशाओं से नहीं।

चौथा प्रश्न :

आपने कहा कि आप लोगों पर 'काम' नहीं करते तो फिर शिष्य बनाने का क्या अर्थ है?

सदगुरु एक कैटेलिटिक एजेंट है; वह कुछ करता नहीं, फिर भी उसके द्वारा बहुत कुछ होता है। वह कर्ता नहीं होता बल्कि एक मौजूदगी होता है जिसके आस—पास चीजें घटित होती हैं। क्या तुम सोचते हो कि सूर्य उगता है और काम करने लगता है लाखों—लाखों वृक्षों पर? प्रत्येक फूल के पास आता है और उसे खिलने के लिए फुसलाता है? प्रत्येक कली के पास आता है और उसे खोलता है?

प्रत्येक जड़ तक आता है और पोषित करता है? नहीं। सूर्य को तो पता भी न होगा; फिर भी वृक्ष बढ़ते हैं, कलियां खिलती हैं, फूल अपनी सुवास बिखेरने लगते हैं, पक्षी गीत गाने लगते हैं—सारा संसार जाग जाता है। सूर्य कैसे काम करता है? क्या सूर्य कर्ता है?

मैंने एक बहुत पुरानी कहानी सुनी है कि एक बार अंधेरा परमात्मा के पास पहुंचा और कहने लगा, 'अब तो बहुत हुआ। मैंने कोई अपराध नहीं किया—मेरी जानकारी में तो नहीं किया—तो क्यों आपका यह सूर्य मेरे पीछे पड़ा रहता है? निरंतर, रोज, लाखों—लाखों वर्षों से मेरे पीछे पड़ा है। मैं शिकायत करने आया हूं। और मैंने तो सूर्य का कुछ बिगाड़ा नहीं। वह क्यों पीछे पड़ा हुआ है मेरे?'

परमात्मा को भी मानना पड़ा. 'बात तो सच है, क्यों वह तुम्हारे पीछे पड़ा है?' सूर्य को बुलाया गया, और परमात्मा ने पूछा, 'क्यों तुम अंधेरे को परेशान कर रहे हो? क्यों तुम उसके पीछे पड़े हो?'

सूर्य ने कहा, 'मैंने तो अंधेरे के बारे में कभी कुछ सुना ही नहीं। आप क्या कह रहे हैं? मेरी तो कभी अंधेरे से मुलाकात भी नहीं हुई। मैं तो उसे जानता भी नहीं। पीछा करने का तो प्रश्न ही नहीं उठता! मैं तो परिचित तक नहीं। उससे मेरा परिचय भी किसी ने नहीं कराया। कृपया उसे मेरे सामने बुलाएं ताकि मैं देख तो सकूं कि यह अंधेरा है कौन, और फिर मैं याद रखूंगा और पीछा नहीं करूंगा उसका।'

कहा जाता है कि सर्वशक्तिमान परमात्मा भी ऐसा नहीं कर सका कि अंधेरे को सूर्य के सामने ले आए। इसलिए वह मामला फाइल में ही अटका हुआ है, और परमात्मा किसी ऐसे उपाय पर विचार कर रहा है जिससे सूर्य और अंधकार अदालत में आमने—सामने हो सकें। लेकिन ऐसा लगता नहीं कि वह कोई उपाय खोज पाएगा, क्योंकि जब सूर्य होता है, अंधकार नहीं होता। ऐसा नहीं है कि सूर्य पीछे पड़ा है या कुछ कर रहा है। उसकी उपस्थिति काफी है।

सदगुरु एक कैटेलिटिक एजेंट है। इस 'कैटेलिटिक' शब्द को अच्छी तरह समझ लेना है। विशान ने कैटेलिटिक एजेंट खोजे हैं। कैटेलिटिक एजेंट वह पदार्थ है जो किसी प्रक्रिया के लिए, किसी रासायनिक प्रक्रिया के लिए बहुत जरूरी होता है, लेकिन कैटेलिटिक एजेंट स्वयं कोई हिस्सा नहीं लेता प्रक्रिया में। सिर्फ उसकी मौजूदगी चाहिए। उदाहरण के लिए : आक्सीजन और हाइड्रोजन मिलते हैं और पानी बनता है, लेकिन विद्युत चाहिए कैटेलिटिक एजेंट की तरह। यदि विद्युत मौजूद नहीं होती तो हाइड्रोजन और आक्सीजन नहीं मिलते, और विद्युत कुछ करती नहीं—बस उसकी मौजूदगी जरूरी है। बिना मौजूदगी के वह बात घटित नहीं होती, और विद्युत इस घटना में कुछ करती नहीं। वह किसी भी भांति नए तत्व में प्रवेश नहीं करती। वह केवल मौजूद होती है। कैटेलिटिक एजेंट एक वैज्ञानिक शब्द है, लेकिन बहुत सुंदर है।

सदगुरु को कुछ करना नहीं होता है; वह कर्ता नहीं होता है। मात्र उसकी मौजूदगी —यदि तुम प्रवेश करने दो उसकी मौजूदगी को। यह शिष्य पर निर्भर करता है। और शिष्य होने का यही अर्थ है कि तुम प्रवेश करने देते हो, कि तुम सहयोग करते हो, कि तुम ग्रहणशील होते हो—कि अब तुम

कोई बाधा खड़ी नहीं करते मौजूदगी के प्रवेश करने में। गुरु स्वयं कुछ करता नहीं है। उसकी मौजूदगी ही काम करती है—कुछ होने लगता है। यदि शिष्य खुला हुआ है, तो कुछ होने लगता है।

शिष्य जरूर अनुगृहीत अनुभव करेगा सदगुरु के प्रति, क्योंकि उसके बिना यह करीब—करीब असंभव ही है। लेकिन सदगुरु सदा जानता है कि उसने कुछ नहीं किया। तो यदि तुम जाओ सदगुरु के पास और कहो, 'आपकी बहुत कृपा है।' तो वह कहेगा, 'परमात्मा की कृपा है। मैंने कुछ किया नहीं।' यदि गुरु कहे, 'मैंने किया है", तो वह गुरु नहीं है, क्योंकि वह 'मैं' ही बता देता है कि वह गुरु नहीं है। वह तुम्हारे लिए कैटेलिटिक एजेंट नहीं हो सकता। वह सोचता है कि वह कर्ता है; और कर्ता कैटेलिटिक एजेंट नहीं हो सकता।

गुरु तो केवल एक मौजूदगी है तुम्हारे आस—पास, तुम्हें घेरे रहता है बादल की भांति। यदि तुम उसे भीतर आने देते हो, तो वह प्रवेश कर जाता है तुम्हारे अंतरतम केंद्र में। ऐसा नहीं कि वह प्रवेश करता है; तुम आने देते हो उसे—बस ऐसा घटता है। और उस क्षण में जब शिष्य खुला होता है और गुरु मौजूद होता है : एक परिवर्तन घटता है। उसे आमूल रूपातरण कहना बेहतर होगा—एल्केमिकल म्यूटेशन—शिष्य भी तिरोहित हो जाता है, वैसे ही जैसे गुरु तिरोहित हो चुका है। अहंकार खो जाता है। शिष्य भी अकर्ता हो जाता है। अब वह दूसरों के लिए मौजूदगी की भांति काम कर सकता है। अब वह गुरु हो सकता है।

सारिपुत्त, बुद्ध का एक शिष्य, एक दिन बुद्ध की उपस्थिति में डूब गया और उसने बुद्ध को अपने अंतरतम केंद्र में उतरने दिया। वह बुद्धत्व को उपलब्ध हो गया। तत्क्षण बुद्ध ने कहा, 'सारिपुत्त, अब मेरे पास रुके रहने की कोई जरूरत नहीं। अब जाओ। दूर—दूर प्रांतो में जाओ। बहुत लोग प्यासे हैं। अब तुम्हारे पास पानी है उनकी प्यास बुझाने के लिए।' सारिपुत्त ने देखा चारों तरफ। क्या हुआ? उसने कहा, 'आप क्या कह रहे हैं? मुझे कहीं मत भेजिए।' बुद्ध ने कहा, 'तुम्हें पता नहीं है कि क्या हो गया है। अब तुम्हें मेरी मौजूदगी की जरूरत नहीं है। अब तुम स्वयं 'एक मौजूदगी हो सकते हो दूसरों के लिए : घटना घट गई है। मैंने कुछ नहीं किया, तुमने कुछ नहीं किया, और बात हो गई है।'

यदि शिष्य में बहुत ज्यादा कर्ता— भाव है, तो घटना नहीं घटेगी। यदि गुरु में बहुत ज्यादा कर्ता—भाव है, तो वह गुरु नहीं है। जब शिष्य तैयार होता है खुलने के लिए—और सदगुरु होता है सदगुरु—तो घटना घट जाती है। यह एक प्रसाद है। यह बिना किसी के कुछ किए ही घटता है। इसीलिए हम भारत में इसे 'प्रसाद' कहते हैं। अचानक परमात्मा उतर आता है, अचानक परमात्मा काम करने लगता है।

इसीलिए मैं कहता हूं कि मैं काम नहीं करता लोगों पर, और फिर भी मैं शिष्य बनाता हूं।

पांचवां प्रश्न :

सुखद अनुभूति के लिए मनुष्य सदा गर्भ जैसी स्थिति की तलाश में रहता है। हम सब को आपके साथ बहुत अच्छा लगता है क्या हमें गर्भ मिल गया है?

निश्चित ही। गुरु और कुछ नहीं है सिवाय एक गर्भ के : उसके द्वारा तुम दोबारा जन्म लेते हो। तुम मरते हो उसमें; तुम मिटते हो उसके साथ; सदगुरु सूली भी है और पुनरुज्जीवन भी।

यही है जीसस की कहानी का अर्थ : तुम मरते हो उसमें, और तुम फिर जन्म लेते हो उससे। गुरु एक गर्भ है। एक गर्भ होता है—मां का गर्भ। दूसरा गर्भ होता है—गुरु का गर्भ। मां भेजती है तुम्हें इस संसार में; गुरु भेजता है तुम्हें इसके पार। सदगुरु भी मां है।

छठवां प्रश्न :

आप अपने साथ हमेशा एक नैपकिन क्यों लिए रहते हैं जब कि उसकी कोई भी जरूरत नहीं है?

यह प्रतीकात्मक है : कि मैं अपने नैपकिन की भांति ही अनुपयोगी हूं। मैं उपयोगिता में विश्वास नहीं करता हूं। उपयोगिता संसार की चीज है, बाजार की चीज है। मैं विश्वास करता हूं गैर—उपयोगी चीजों में. जैसे कि फूल। एक फूल की क्या उपयोगिता है? क्या लाभ है? वह बिलकुल अनुपयोगी है, और इसीलिए सुंदर है, अदभुत सुंदर है।

मेरे देखे, जीवन प्रयोजनहीन है। उसका कोई प्रयोजन नहीं है। यदि कोई उद्देश्य होता, प्रयोजन होता, तो जीवन इतना सुंदर नहीं हो सकता था। प्रयोजन सदा असुंदरता निर्मित कर देता है। प्रयोजन तुम्हें उपयोगी वस्तुएं देता है—आनंद नहीं। प्रयोजन तुम्हें फैक्टरियां देता है—मदिर नहीं। जीवन कोई फैक्टरी नहीं है, वह मंदिर है। मंदिर का क्या उपयोग है?

पूरब में प्रत्येक गांव में एक मंदिर होता है; कम से कम एक तो होता ही है। ज्यादा हों, तो अच्छा है; वरना एक मंदिर तो होता ही है। बहुत गरीब गांव में भी एक मंदिर जरूर होता है। जब पश्चिमी लोग

पहली बार पूरब आए तो वे विश्वास ही न कर सके इस बात पर, क्योंकि गांव इतने गरीब थे। लोगों के पास ढंग के घर न थे, झोपड़ियां ही थीं। केवल कहने भर को ही उन्हें घर कह सकते थे; लेकिन फिर भी उनके गांवों में सुंदर मंदिर थे। उनके घरों की दीवारें पक्की न थीं, बांसों की दीवारें थीं, लेकिन परमात्मा के लिए सुंदर संगमरमर की दीवारें, संगमरमर के फर्श। छोटे—छोटे मंदिर, लेकिन फिर भी सुंदर। उन्हें भरोसा नहीं आता था—जब लोग इतनी गरीबी में जी रहे हैं, तो फायदा क्या है ऐसे सुंदर—सुंदर मंदिर बनाने का?

पूरब में हमने सदा अनुपयोगिता में विश्वास किया है। कोई रह सकता है घर में, वह एक उपयोगिता की चीज है। परमात्मा नहीं रहता मंदिर में; वह मंदिर के बिना रह सकता है। यदि मंदिर न होता, तो संसार में कुछ कमी न होती। संसार का कुछ लाभ नहीं हुआ है मंदिर से। लाभ होता है फैक्टरी से, अस्पताल से, स्कूल से—मदिर से नहीं। मंदिर तो एकदम अनुपयोगी है।

इसलिए जब कम्युनिस्टों ने रूस पर अधिकार जमा लिया, तो उन्होंने सारे मंदिर, सारे चर्च मिटा दिए—उन्होंने बदल दिया उन्हें फैक्टरियों में, स्कूलों में, अस्पतालों में, इसमें—उसमें—क्योंकि कम्युनिस्ट विश्वास करता है उपयोगिता में। वह फूलों में विश्वास नहीं करता है। वह काव्य में विश्वास नहीं करता है, वह विश्वास करता है गद्‌य में, तर्क में।

मैं विश्वास करता हूं काव्य में। मैं तर्क की जरा भी परवाह नहीं करता; मैं एकदम अतर्क्य हूं। और मैंने जीवन के सौंदर्य को जाना है अतर्क्य के द्‌वारा, तर्कातीत के द्‌वारा। हृदय द्‌वारा मैंने देखा है जीवन के मंदिर को। और मैं कहता हूं तुम से, यदि तुम परमात्मा की तलाश अपनी फैक्टरियों में करते रहे, तो तुम उसे कभी न पाओगे। यदि तुम परमात्मा की तलाश अस्पतालों में और स्कूलों में करते रहे, तो तुम उसे चूक जाओगे सदा—सदा के लिए, क्योंकि परमात्मा कोई उपयोगिता नहीं है। भारत में तो इस संसार को भी हम उसकी सृष्टि नहीं कहते हैं—हम इसे उसकी लीला कहते हैं। लीला प्रयोजनरहित होती है; वह खेल भी नहीं है। वह अपने साथ ही आख—मिचौनी की लीला करता रहता है—कोई प्रयोजन नहीं है। होना ही एकमात्र आनंद है। उसका अपने आप में मूल्य है। मूल्य प्रयोजन में नहीं है; मूल्य तुम में है।

तुम ठीक कहते हो. मैं अपने साथ हमेशा नैपकिन क्यों लिए रहता हूं? बिलकुल प्रयोजनरहित बात है। मैं भी नहीं जानता कि क्यों, लेकिन मैं उसे साथ रखता हूं। वह एक प्रतीक है—अतर्क्य का।

सातवां प्रश्न :

मैं बिलकुल बेकार हो गया हूं अब मैं अपनी आर्थिक स्थिति के संबंध में क्या करूं? क्या मैं दूसरों के खर्च पर ही जीऊं?

अगर तुम सच में बिलकुल बेकार हो गए हो, तो तुम उपलब्ध हो गए; अब पाने को कुछ बचा नहीं। और अगर तुम सच में बिलकुल बेकार हो गए हो, तो फिर तुम परवाह नहीं करोगे अपनी आर्थिक स्थिति के विषय में। जब भी कोई बिलकुल बेकार हो जाता है तो अस्तित्व ध्यान रखता है। अभी भी, उपयोगिता के संसार की कोई न कोई बात जरूर तुम्हारे मन में है; इसीलिए यह प्रश्न उठ रहा है। अगर तुम सच में ही बेकार हो गए होते, तो तुम फिक्र न करते इसकी; तुम अगले क्षण रहोगे या नहीं रहोगे, इस बात की तुम्हें कोई चिंता न होती, अगर तुम सच में बेकार हो गए होते।

तुम क्यों फिक्र करते हो? यदि अस्तित्व को तुम्हारी जरूरत होगी अपनी आख—मिचौनी की लीला के लिए, तो वह रखेगा ध्यान। इसीलिए जीसस अपने शिष्यों से कहते थे, 'जरा बगीचे में खिले लिली के फूलों को तो देखो : वे कोई कठिन श्रम नहीं करते, उन्हें कोई चिंता नहीं कल की—और जितना सम्राट सोलोमन अपने पूरे ऐश्वर्य में सुंदर रहा होगा, वे उससे भी ज्यादा सुंदर हैं।' जीसस कहते थे, 'कल की मत सोचो।'

एक बार तुम सच में ही बेकार हो जाते हो, तो तुम समर्पण कर देते हो परमात्मा को। और अगर तुम समर्पित हो जाते हो, तो तुम नहीं पूछोगे, 'क्या मैं दूसरों के खर्च पर ही जीऊं?' फिर दूसरा कौन है? फिर कोई दूसरा नहीं है। तब तुम्हारी जेब दूसरों की जेब है और दूसरों की जेबें तुम्हारी जेब हैं। दूसरा दूसरा है अहंकार के कारण—क्योंकि 'मैं' है इसीलिए दूसरा है। यदि मैं ही न रहा तो कौन दूसरा होगा?

मैं वर्षों से दूसरों के खर्च पर जी रहा हूं; और मैं उन्हें धन्यवाद भी नहीं कहता हूं। क्योंकि अपने को ही धन्यवाद देने का अर्थ क्या है? मूढ़ता की बात लगेगी। मैं अपने ढंग से आनंद मना रहा हूं और अगर सारे अस्तित्व की मर्जी है कि मैं यहां रहूं तो मैं यहां रहूंगा। अगर उसकी मर्जी होगी कि मैं न रहूं कि मेरी कोई जरूरत नहीं है, तो वह मुझे उठा लेगा। यह उसकी चिंता है। और अगर वह चाहता है कि मैं यहां बना रहूं तो वह किसी के मन में यह विचार डाल देगा कि मुझे कुछ दिया जाए। यह उसके निर्णय की बात है। और अगर तुम मुझे कुछ देते हो, तो वही दे धन्यवाद। मैं क्यों दूं तुम्हें धन्यवाद? मैं बीच में कहीं नहीं आता। मैंने कभी किसी को धन्यवाद नहीं दिया, क्योंकि यह बात मूढ़ता की लगती है।

मैं जिस बात से आनंदित होता हूं वह मैं करता हूं। अगर किन्हीं को इससे लाभ मिलता हो, तो उन्हें एहसान मानने की कोई जरूरत नहीं। यह मेरा आनंद है। मैं बोलता हूं तुम से; यह मेरा आनंद है। ऐसा नहीं है कि मैं तुम्हारी मदद करने की कोशिश कर रहा हूं—यह मेरा आनंद है। अगर तुम मेरी

फिक्र करते हो, तो वह तुम्हारा आनंद है। एक प्रकार से मैं तुम्हारी जरूरतें पूरी कर देता हूं? तुम मेरी जरूरतें पूरी कर देते हो। बात खतम। कौन किसके प्रति अनुगृहीत है, इस विषय में बात करने में कुछ सार नहीं।

यह अस्तित्व अखंड है। यह 'दूसरे' की अनुभूति इसी कारण है क्योंकि 'तुम' हो। यदि तुम तिरोहित हो जाते हो, तो दूसरा भी तिरोहित हो जाता है।

और फिर, अगले क्षण की फिक्र करने में कुछ सार नहीं है। यह क्षण पर्याप्त है। यह क्षण पर्याप्त है अपने आप में।

आठवां प्रश्न :

आपके पास आने के पहले जब मैं मादक द्रव्य लेता था तो मैं सदा अस्तित्व के साथ ज्यादा एक अनुभव करता था छह महीने आपके साथ रहने के बाद जब मैंने कभी मादक द्रव्य लेना चाहा तो ठीक विपरीत अनुभव हुआ : पत्थर की तरह संवेदनहीन होकर मैंने ज्यादा खंड— खंड अनुभव किया क्या आप इस घटना को स्पष्ट करोगे?

स्पष्ट करने की कोई जरूरत नहीं है। यह तो स्वयं स्पष्ट है। यदि तुम न्यूरोटिक हो, तो मादक द्रव्य तुम्हें स्वास्थ्य की एक झलक देंगे, एक होने की झलक देंगे। यदि तुम खंड—खंड हो तो मादक द्रव्य तुम्हें अखंड होने का, अविभाजित होने का सपना देंगे। लेकिन यदि तुम ध्यान करते हो तो तुम सच में ही एक हो जाते हो। तब मादक द्रव्य मदद न करेंगे। यदि तुम ध्यान करते हो, तो अखंडता का बोध हो जाता है; तब सपने का कोई उपयोग न रहेगा। असल में तब मादक द्रव्य लेना विनाशकारी बात होगी : उनके द्वारा तुम खंड—खंड अनुभव करोगे।

इसीलिए मैं कहता रहा हूं : जो लोग मादक द्रव्यों के पीछे भाग रहे हैं उन्हें असल में ध्यान की तलाश है—वे गलत दिशा में तलाश कर रहे हैं। उनकी तलाश बिलकुल ठीक है, उनकी दिशा गलत है। मैं उनके विरुद्ध नहीं, क्योंकि वे खोजी हैं, उनमें प्यास पैदा हो चुकी है, लेकिन वे चल रहे हैं गलत दिशा में। उन्हें सही दिशा की ओर ले जाया जा सकता है।

उन्हें ध्यान की दिशा में ले जाने के लिए और लोगों की मदद की जरूरत है। कोई सरकार कोई राज्य उनका दमन नहीं कर सकता है, यह असंभव है। जितना अधिक उनका दमन होगा, उतना अधिक वे

आकर्षित होंगे मादक द्रव्यों की ओर। जितने ज्यादा वे न्यूरोटिक होंगे, उतनी ज्यादा मादक द्रव्यों की जरूरत होगी।

केवल ज्यादा ध्यान—मंदिरों से, संसार भर में ज्यादा ध्यान—प्रक्रियाओं से, ज्यादा ध्यान में डूबे लोगों से ही मदद संभव है। जब तुम ध्यान करते हो, तो तुम सही दिशा में बढ़ने लगते हो—देर— अबेर मादक द्रव्य अपने आप ही छूट जाएंगे। उन्हें छोड़ने की जरूरत नहीं पड़ेगी; वे अपने आप छूट जाएंगे।

यह ऐसा ही है जैसे तुम पत्थर लिए घूम रहे हो, रंगीन पत्थर—और फिर अचानक मैं तुम्हें असली हीरे दे देता हूं। तो क्या तुम उन रंगीन पत्थरों को अपने हाथों में लिए रहोगे? क्या उन्हें छोड़ने के लिए तुम्हें कोई प्रयास करना पड़ेगा? तुम तो बस पाओगे कि वे छूट गए. मुट्ठियां खुल जाएंगी और पत्थर गिर जाएंगे, क्योंकि अब हीरे उपलब्ध हैं। और अब यदि तुम उन पत्थरों को पकड़े रहना चाहते हो, तो तुम्हें हीरे छोड़ने पड़ेंगे।

तो स्पष्ट करने की कोई जरूरत नहीं है। यह बात स्वयं स्पष्ट है।

नौवां प्रश्न:

आपने कहा 'जीवन एक कहानी है अस्तित्व की मौन शाश्वतता में।' तो फिर मनुष्य क्या है?

कहानी कहने वाला एक जानवर।

अरस्तु ने मनुष्य की व्याख्या रेशनल बीइंग, तार्किक प्राणी की तरह की है। लेकिन मनुष्य तार्किक नहीं है; और यह अच्छा है कि वह तार्किक नहीं है। मनुष्य निन्यानबे प्रतिशत अतार्किक है; और अच्छा है कि वह ऐसा है, क्योंकि अतर्क्य से ही वह सब आता है जो सुंदर है और प्रीतिकर है। तर्क से आता है गणित, अतर्क्य से आता है काव्य; तर्क से आता है विज्ञान, अतर्क्य से आता है धर्म; तर्क से आता है बाजार, धन, रुपया, डॉलर्स, अतर्क्य से आता है प्रेम, गीत, नृत्य। नहीं, यह अच्छा है कि मनुष्य तार्किक प्राणी नहीं है, मनुष्य अतार्किक है।

मनुष्य की बहुत सी परिभाषाएं की गई हैं। मैं कहना चाहूंगा : मनुष्य कहानी गढ़ने वाला प्राणी है। वह मिथक निर्मित कर लेता है—मनगढ़त किस्से—कहानियां। सारे पुराण कहानियां हैं। मनुष्य जीवन के विषय में, अस्तित्व के विषय में कहानियां निर्मित कर लेता है।

मनुष्यता के प्रारंभ से ही मनुष्य निर्माण करता रहा है सुंदर पुराणों का। वह निर्मित करता है परमात्मा। वह निर्मित करता है यह बात कि परमात्मा ने संसार को बनाया; और वह गढ़ता रहता है सुंदर—सुंदर कहानियां। वह कल्पनाएं बुनता रहता है, वह नई—नई कहानियां अपने चारों ओर गढ़ता रहता है। मनुष्य कहानियां गढ़ने वाला प्राणी है; और जीवन एकदम उबाऊ हो जाएगा यदि उसके आस—पास कोई कहानी न हो।

आधुनिक युग की तकलीफ यही है : सारी पुरानी प्रतीक—कथाएं गिरा दी गई हैं। नासमझ बुद्धिवादियों ने बहुत ज्यादा विरोध किया उनका। वे खो गईं, क्योंकि यदि तुम प्रतीक—कथा के विपरीत तर्क करने लगते हो, तो प्रतीक—कथा तर्क से नहीं समझी जा सकती। वह तर्क के सामने नहीं टिक सकती। वह बहुत नाजुक होती है; वह बहुत कोमल होती है। यदि तुम उसके साथ लड़ने लगते हो तो तुम उसे नष्ट कर देते हो, लेकिन उसके साथ तुम मानव—हृदय की कोई बहुत सुंदर बात भी नष्ट कर देते हो। वह कल्पित कथा ही नहीं होती—कथा तो केवल प्रतीक है—गहरे में उसकी जड़ें हृदय में होती हैं। यदि तुम प्रतीक—कथा की हत्या कर देते हो तो तुमने हृदय की हत्या कर दी।

अब संसार भर के बुद्धिवादी, जिन्होंने सारी प्रतीक—कथाओं की हत्या कर दी, अब वे अनुभव कर रहे हैं कि जीवन में कोई अर्थ न रहा, कोई काव्य न रहा, आनंदित होने का कोई कारण न रहा, उत्सव मनाने का कोई कारण न रहा। सारा उत्सव खो गया है। प्रतीक—कथाओं के बिना संसार केवल एक बाजार रह जाएगा; सारे मंदिर खो जाएंगे। प्रतीक—कथाओं के बिना सारे संबंध सौदे हो जाएंगे, उनमें कोई प्रेम न बचेगा। प्रतीक—कथाओं के बिना तुम विराट शून्यता के बीच अकेले पड़ जाओगे।

जब तक तुम बुद्धत्व को उपलब्ध नहीं हो जाते, तुम कहानियों के बिना नहीं जी सकते; अन्यथा तुम अर्थहीनता अनुभव करोगे, और गहरी चिंता पकड़ेगी, और तुम्हारे प्राण विषाद से घिर जाएंगे। तुम आत्महत्या करने की सोचने लगोगे। तुम कोई न कोई रास्ता ढूंढने लगोगे अपने को उलझाए रखने का—मादक द्रव्य, शराब, सेक्स—ताकि तुम भूल सको स्वयं को, क्योंकि जीवन तो अर्थहीन लगता है।

प्रतीक—कथा देती है अर्थ। प्रतीक—कथा और कुछ नहीं सिवाय एक सुंदर कहानी के, लेकिन यह तुम्हें मदद देती है जीने में। जब तक तुम इतने सक्षम न हो जाओ कि बिना कहानी के जी सको—यह तुम्हें मदद देती है यात्रा में, जीवन—यात्रा में। यह तुम्हारे आस—पास एक मानवीय वातावरण बना देती है, वरना संसार तो बहुत रूखा—सूखा है। जरा सोचो : भारत के लोग नदियों के किनारे जाते हैं, गंगा किनारे जाते हैं—वे पूजा करते हैं उनकी। वह एक मिथक है; अन्यथा गंगा केवल एक नदी है। लेकिन मिथक से गंगा मां बन जाती है, और जब एक हिंदू गंगा जाता है तो यह उसके लिए एक तीर्थयात्रा हो जाती है, खुशी की बात हो जाती है।

मक्का में पूजा जाने वाला पत्थर, काबा का पत्थर, पत्थर ही है। वह एक क्यूब—स्टोन है, इसीलिए उसे 'काबा' कहा जाता है; 'काबा' का मतलब है खूब। लेकिन तुम नहीं जान सकते कि एक मुसलमान को

कैसी खुशी होती है, जब वह काबा जाता है। बड़ी अदभुत ऊर्जा उमड़ आती है। ऐसा नहीं है कि काबा कुछ करता है—नहीं, वह तो केवल एक मिथक है। लेकिन जब वह अता है उस पत्थर को, तो उसके पांव धरती पर नहीं पड़ते; वह एक दूसरे ही संसार में, काव्य के संसार में गति कर जाता है। जब वह परिक्रमा करता है काबा की, तो वह परमात्मा की परिक्रमा कर रहा होता है। संसार भर के मुसलमान जब प्रार्थना करने बैठते हैं तो वे काबा की ओर मुंह करके बैठते हैं। दिशाएं अलग होती हैं : कोई इंगलैंड में प्रार्थना कर रहा है, लेकिन मुंह रखता है काबा की ओर, कोई भारत में प्रार्थना कर रहा है, लेकिन मुंह रखता है काबा की ओर; कोई मिस्र में प्रार्थना कर रहा है, लेकिन मुंह रखता है काबा की ओर। संसार भर में मुसलमान पांच बार नमाज पढ़ते हैं, सारे संसार में हर कहीं, और वे मुंह रखते हैं काबा की तरफ—काबा संसार का केंद्र हो जाता है। एक प्रतीक है, एक सुंदर प्रतीक। उस क्षण में सारा संसार एक काव्य से आच्छादित हो जाता है।

मनुष्य अस्तित्व को अर्थ देता है; यही है प्रतीक—कथा का कुल अर्थ। मनुष्य कहानियां गढ़ने वाला प्राणी है। फिर छोटी—छोटी कहानियां हैं—मोहल्ले—पड़ोस की, पड़ोसी की पत्नी की, और बड़ी कहानियां हैं—ब्रहमांड की, परमात्मा की। लेकिन मनुष्य को बड़ा रस आता है कहानियों में।

मुझे एक कहानी बहुत प्रीतिकर है; मैंने बहुत बार कही है। एक यहूदी कहानी है.

बहुत वर्ष पहले, बहुत सदियों पहले एक नगर में एक रबाई रहता था। जब भी नगर में कोई

मुसीबत आती, वह जंगल में जाता, कोई यज्ञ करता, प्रार्थना करता, अनुष्ठान करता; और परमात्मा से कहता, 'मुसीबत दूर करो। हमें बचाओ।' और नगर की सदा रक्षा हो जाती।

फिर वह रबाई मरा; दूसरा आदमी रबाई बना। नगर पर मुसीबत आई; लोग घबडाए, इकट्ठे हुए। रबाई गया जंगल में, लेकिन वह ठीक स्थान नहीं खोज पाया। उसे पता ही नहीं था। तो उसने परमात्मा से कहा, 'मुझे ठीक—ठीक स्थान पता नहीं है जहां वह बूढ़ा रबाई आपसे प्रार्थना किया करता था, लेकिन उससे लेना—देना भी क्या है। आप तो वह स्थान जानते ही हैं, तो मैं यहीं बैठ कर प्रार्थना करूंगा।' नगर पर कभी कोई मुसीबत न आई। लोग प्रसन्न थे।

फिर यह रबाई भी मरा; तो दूसरा रबाई आया। फिर नगर पर कोई मुसीबत आई, लोग इकट्ठे हुए। वह जंगल में गया, लेकिन उसने परमात्मा से कहा, 'मुझे ठीक—ठीक पता नहीं कि वह स्थान कहां है। अनुष्ठान, कर्म —कांड वगैरह कुछ मैं जानता नहीं। मैं तो केवल प्रार्थना जानता हूं। तो कृपा करें, आप तो सब कुछ जानते हैं, शेष विस्तार की फिक्र न करें। मेरी प्रार्थना सुनें.....।' और जो उसे कहना था उसने कहा। संकट टल गया।

फिर वह भी मरा; और दूसरा रबाई आया। नगर के लोग इकट्ठे हुए मुसीबत की घड़ी थी, कोई महामारी फैली थी, और लोगों ने कहा, 'आप प्रार्थना करने जंगल में जाएं; ऐसा ही सदा से होता आया है। पुराने रबाई सदा जंगल जाते रहे हैं।'

वह बैठा हुआ था अपनी आरामकुर्सी पर। उसने कहा, 'वहां जाने की क्या जरूरत है? परमात्मा यहीं से सुन सकता है। और मैं कुछ जानता नहीं।' तो उसने नजरें उठाई आकाश की ओर और कहा, 'सुनो, ठीक स्थान मैं जानता नहीं, मुझे क्रिया—कांड के बारे में कुछ पता नहीं—मैं तो प्रार्थना भी कुछ नहीं जानता। मुझे तो बस यह कहानी मालूम है कि पहला रबाई कैसे वहाॅ जाता था, दूसरा कैसे जाता था, तीसरा कैसे जाता था, चौथा कैसे जाता था... मैं आपसे यही कहानी कह दूंगा—और मैं जानता हूं कि कहानियां आपको प्रिय हैं। कृपया कहानी सुन लें और गांव को मुसीबत से बचा लें।' और उसने पुराने रबाइयों की सारी कहानी कह दी। और ऐसा कहा जाता है, परमात्मा को वह कहानी इतनी पसंद आई कि नगर की रक्षा हो गई।

उसे जरूर कहानियां बहुत प्रिय हैं; वह स्वयं कहानियां गढ़ता रहता है। उसे प्रिय होनी ही चाहिए कहानियां। उसी ने सबसे पहले यह जीवन की पूरी कहानी गढ़ी।

हां, जीवन एक कहानी है, अस्तित्व के शाश्वत मौन में एक छोटी सी कहानी, और मनुष्य है कहानी गढ़ने वाला प्राणी। जब तक कि तुम परमात्मा न हो जाओ तुम्हें कहानियां पसंद आएंगी : तुम्हें भाएगी राम और सीता की कहानियां, महाभारत की कहानियां; तुम्हें भाएगी यूनान की, रोम की, चीन की कहानियां। लाखों—लाखों कहानियां हैं—सभी सुंदर हैं।

यदि तुम तर्क को बीच में न लाओ, तो वे बहुत से भीतरी द्वारों को खोल सकती हैं, वे बहुत से आंतरिक रहस्यों को उदघाटित कर सकती हैं। यदि तुम तर्क करने लगते हो, तो द्वार बंद हो जाते हैं। तब वह मंदिर तुम्हारे लिए नहीं है। प्रेम करो कहानियों से। जब तुम उन्हें प्रेम करते हो, तो वे अपने रहस्यों को खोल देती हैं। और बहुत कुछ छिपा है उनमें : मनुष्यता ने जो भी खोजा है, वह सब छिपा है प्रतीक—कथाओं में। इसीलिए जीसस, बुद्‌ध कहानियों में बोलते हैं। उन सब को कहानियां प्रिय रही हैं।

अंतिम प्रश्न :

आपने कहा कि गुरु को कई बार शिष्य पर क्रोधित भी होना पड़ता है और उस अवस्था में वह अभिनय ही कर रहा होता है तो क्या वह तब भी अभिनय कर रहा होता है जब वह हंस कर मुस्कुरा कर उसकी तरफ देखता है?

गुरु तो सदा ही अभिनय कर रहा होता है; गुरु एक कुशल अभिनेता होता है। वह जीवन को गंभीरता से नहीं लेता। वह जीवन को किसी चिंता, परेशानी की भांति नहीं लेता। जीवन एक खेल है। जब वह क्रोधित होता है, तो वह अभिनय कर रहा होता है; जब वह हंसता है, तो वह अभिनय कर रहा होता है। गुरु केवल अभिनय कर सकता है, क्योंकि वह कर्ता नहीं होता है जो कुछ भी वह करता है वह अभिनय ही है। और यदि तुम बहुत लगाव बना लेते हो अभिनय से, तो तुम चूक जाओगे गुरु को।

तो भूल जाना उसके क्रोध को और भूल जाना उसकी हंसी को, क्रोध के और हंसी के पीछे की घटना को देखना। और वहां तुम पाओगे उस वृद्ध व्यक्ति को. जो न हंसता है, न क्रोधित होता है, न रोता है और न बोलता है—वहा तुम उसे पाओगे परिपूर्ण मौन में। वहा तुम पाओगे बुद्ध को—एक गहन मौन में, एक असीम शांति में, विचार का हलका सा कंपन भी वहां नहीं होता। अन्यथा गुरु हमेशा अभिनय कर रहा होता है।

तो धोखे में मत पड जाना गुरु द्वारा। ध्यान से देखते रहना। मत सुनना उसके शब्दों को; वरना तुम उसे कभी नहीं देख पाओगे। उसके मौन को सुनना। दो शब्दों के बीच जो खाली जगह होती है, उसे सुनना। दो पंक्तियों के बीच की खाली जगह में उसे पढ़ना। जो वह कहता है, जो वह करता है, उस पर ज्यादा ध्यान मत देना; जो वह 'है' उस पर ध्यान देना।

आज इतना ही।

प्रवचन 55 - शुद्धता, शून्यता और समर्पण

योग—सूत्र:

(समाधिपाद)

कायेन्द्रियसिद्धिपशुद्धिक्षयात्तपस:।। 43।।

तपश्चर्या अशुद्धियों को मिटा देती है। और इस प्रकार हुई शरीर तथा इंद्रियों की परिपूर्ण शुद्धि के साथ शारीरिक और मानसिक शक्तियों जाग्रत होती है।

स्वाध्यायदिष्टदेवतासम्प्रयोग:।। 44।।

स्वाध्याय द्वारा दिव्यता के साथ एकत्व घटित होता है।

समाधिसिद्धिरीश्वरप्रणिधानात्।। 45।।

समाधि का पूर्ण आलोक फलित होता है, ईश्वर के प्रति समर्पण घटित होने पर।

मनुष्य एक हिमखंड की भांति है : केवल एक हिस्सा, एक छोटा सा हिस्सा, दिखाई पड़ता है सतह पर; बड़ा हिस्सा भीतर छिपा होता है। या, मनुष्य वृक्ष की भांति है—असली जीवन होता है जड़ों में, धरती के नीचे छिपा हुआ; केवल शाखाएं दिखाई पड़ती हैं। यदि तुम शाखाओं को काट दो तो नई शाखाएं उग आएंगी, क्योंकि शाखाएं स्रोत नहीं हैं; लेकिन यदि तुम जडों को काट दो तो वृक्ष नष्ट हो जाता है। मनुष्य का केवल एक हिस्सा ही दिखाई पड़ता है सतह पर; बड़ा हिस्सा नीचे छिपा होता है। और यदि तुम सोचते हो कि दिखाई पड़ने वाला मनुष्य ही सब कुछ है, तो तुम बड़ी भूल में हो। तब तुम चूक जाते हो मनुष्य के पूरे रहस्य को; और तब तुम चूक जाते हो अपने भीतर के उन द्वारों को जो तुम्हें दिव्यता तक ले जा सकते हैं।

यदि तुम सोचते हो कि किसी व्यक्ति का नाम जान कर, उसका परिवार जान कर, उसका व्यवसाय जान कर, कि वह डाक्टर है कि इंजीनियर है कि प्रोफेसर है, कि उसके चेहरे—मोहरे से, उसकी तस्वीर से परिचित होकर तुमने उसे जान लिया है—तो तुम बड़े भ्रम में हो। ये तो केवल सतह की प्रतीतियां हैं। असली आदमी इन सब से बहुत—बहुत गहरे में है। इस प्रकार तुम केवल परिचित हो सकते हो, लेकिन व्यक्ति को तुम कभी जान नहीं पाते। जहां तक समाज का संबंध है इतना काफी है; इससे ज्यादा की जरूरत नहीं है। यह ऊपर—ऊपर की सतही जानकारी काफी है सांसारिक लेन—देन के लिए, लेकिन यदि तुम सच में ही उस व्यक्ति को जानना चाहते हो, तो तुम्हें गहरे उतरना होगा।

और गहराई में जाने का एकमात्र ढंग यही है कि पहले तुम स्वयं के भीतर गहरे उतरो। जब तक तुम अपने भीतर के अज्ञात रहस्य को नहीं जान लेते हो, तुम कभी किसी दूसरे को न जान पाओगे। मनुष्य के रहस्य को जानने का एकमात्र ढंग यही है कि उस रहस्य को जान लो जो तुम हो। पर्तों के पीछे छिपी पर्तें हैं। मनुष्य असीम है।

यदि तुम मनुष्य में गहरे उतरते चले जाओ तो परमात्मा तक पहुंच जाओगे। मनुष्य तो केवल सतह है सागर की—लहरें। यदि तुम गहरे डुबकी लगाओ, तो तुम अस्तित्व के केंद्र पर पहुंच जाओगे। जिन्होंने परमात्मा को जाना है, उन्होंने उसे किसी विषय की भांति नहीं जाना है। उन्होंने उसे अपनी आत्यंतिक अनुभूति, इनरमोस्ट सब्जेक्टिविटी की भांति जाना है। जिन्होंने परमात्मा को जाना है, उनका कहीं मिलना नहीं हुआ है उससे। उन्होंने उसे किसी विषय की भांति नहीं देखा है; उन्होंने उसे देखने वाले की भाति, अपनी चेतना की भांति देखा है।

सिवाय अपने भीतर, तुम कहीं और नहीं मिल सकते परमात्मा से। वह तुम्हारी गहराई है; तुम उसकी सतह हो। तुम उसकी परिधि हो; वह तुम्हारा केंद्र है। और जितना ज्यादा तुम अपने भीतर उतरते हो, उतने ज्यादा गहरे तुम समग्र अस्तित्व में भी, दूसरों में भी उतरते हो, क्योंकि केंद्र एक ही है। परिधिया तो लाखों हैं, लेकिन केंद्र एक है। समग्र अस्तित्व एक बिंदु पर केंद्रित है—वह बिंदु है परमात्मा। परमात्मा. जो अंतरात्मा की आत्यंतिक गहराई है।

यह एक महत यात्रा है, एक तीर्थयात्रा है—मनुष्य को जानने की। पतंजलि के सूत्र तुम्हें संकेत देते हैं कि कैसे प्रवेश किया जाए।

पहला सूत्र:

कायेन्द्रियसिद्धिरशुद्धिक्षयातपसः।

तपश्चर्या अशुद्धियों को मिटा देती है। और इस प्रकार हुई शरीर तथा इंद्रियों की परिपूर्ण शुद्धि के साथ शारीरिक और मानसिक शक्तियां जाग्रत होती हैं।

इससे पहले कि तुम इस सूत्र को समझो, और बहुत सी बातें समझ लेनी हैं। शरीर का बहुत गलत उपयोग हुआ है। तुमने बहुत अत्याचार किया है अपने शरीर के साथ। तुम अपने शरीर के रहस्य से परिचित नहीं हो। वह केवल चमड़ी ही नहीं है, वह केवल हड्डियां ही नहीं है; वह केवल खून ही नहीं है। वह एक जीवंत इकाई है, एक अदभुत संरचना है।

सदियों—सदियों से मनुष्य सोचता रहा है कि खून शरीर में ऐसे भरा हुआ है जैसे किसी बर्तन में पानी भरा होता है। अभी केवल तीन सौ साल पहले हमें पता चला कि खून शरीर में भरा हुआ नहीं है, वह कोई स्थिर चीज नहीं है—खून दौड़ता रहता है, घूमता रहता है। अभी केवल तीन सौ साल पहले हमें पता चला कि खून दौड़ता रहता है, वह एक सक्रिय शक्ति है। वह शरीर में भरा हुआ नहीं है, बल्कि वह सतत प्रवाहमान है—इतने चुपचाप और इतने निरंतर रूप से, और गति इतनी शांत है, कोई शोर नही—कि हम लाखों जन्म जीए हैं शरीरों के साथ और फिर भी हम रक्त की इस खूबी के प्रति सजग नहीं हुए कि वह दौड़ता रहता है।

और बहुत से रहस्य हैं जो छिपे हुए हैं। यह शरीर तो पहली पर्त है और बहुत से शरीरों की, कुल सात शरीर हैं। यदि तुम इसी शरीर में गहरे उतरो तो तुम्हें पता चलेगा एक नई घटना का। इस स्थूल शरीर के पीछे एक सूक्ष्म शरीर छिपा है। जब वह सूक्ष्म शरीर जाग्रत हो जाता है, तो तुम बहुत शक्तिशाली हो जाते हो, क्योंकि एक नए आयाम की शक्तियां जाग जाती हैं। यह शरीर सोया रह सकता है तुम्हारे बिस्तर पर, और तुम्हारा सूक्ष्म शरीर विचरण कर सकता है। उसके लिए कोई बाधा नहीं है। पृथ्वी का गुरुत्वाकर्षण उसे प्रभावित नहीं करता है, उसके लिए समय और स्थान की कोई बाधा नहीं है। वह विचरण कर सकता है, वह कहीं भी जा सकता है। उसके लिए सारा संसार उपलब्ध होता है। स्थूल शरीर के लिए यह बात संभव नहीं है।

तुम्हारे कुछ सपनों में तो सूक्ष्म शरीर सचमुच ही भौतिक शरीर को छोड़ कर चला जाता है। ध्यान की गहरी अवस्थाओं में भी तुम्हारा सूक्ष्म शरीर तुम्हारे भौतिक शरीर को छोड़ देता है। गहरे

ध्यान में, कई बार तुम्हें ऐसा लगता है जैसे तुम कुछ इंच, कुछ फीट ऊपर उठ गए हो जमीन से। जब तुम आंखें खोलते हो, तो तुम जमीन पर ही बैठे होते हो। तुम सोचते हो कि तुमने कल्पना की होगी। यह सही नहीं है। गहरे ध्यान में, सूक्ष्म शरीर स्थूल शरीर से कुछ ऊपर उठ सकता है। कई बार ऐसा भी होता है कि स्थूल शरीर भी सूक्ष्म शरीर के साथ ऊपर उठ जाता है।

यूरोप में एक स्त्री है; उसकी जांच की गई है वैज्ञानिक विधियों द्वारा। गहरे ध्यान में वह जमीन से चार फीट ऊपर उठ जाती है; सूक्ष्म शरीर ही नहीं, बल्कि स्थूल शरीर भी ऊपर उठ जाता है। इसे तथ्य के रूप में स्वीकार किया गया है। प्राचीन योग—शास्त्रों में उल्लेख है कि गहरे ध्यान में ऐसा होता है कि सूक्ष्म शरीर के साथ स्थूल शरीर ऊपर उठ सकता है जमीन से ऊपर; और ठीक यही उल्लेख है कि बहुत आसानी से शरीर चार फीट ऊपर उठ सकता है।

और स्थूल शरीर तो केवल परिधि है, दूसरे शरीरों की एक ऊपरी पर्त। फिर सूक्ष्म शरीर के पीछे और—और सूक्ष्म शरीर हैं—कुल सात शरीर हैं। वे सातो संबंधित हैं व्यक्ति की सत्ता के सात विभिन्न तलों से। जितने ज्यादा तुम अपने अंतस में प्रवेश करते हो उतने ज्यादा तुम सजग होते हो कि यह स्थूल

शरीर ही सब कुछ नहीं है। लेकिन तुम दूसरे सूक्ष्म शरीर के प्रति तभी सजग होओगे जब यह स्थूल शरीर शुद्ध हो गया हो।

योग शरीर को सताने में विश्वास नहीं करता है, योग मैसोचिस्टिक नहीं है। लेकिन योग शरीर की शुद्धि में विश्वास करता है। और कई बार शरीर की शुद्धि करना और उसे सताना एक समान लग सकता है। तो इस भेद को ठीक से समझ लेना है।

कोई व्यक्ति उपवास करता है, और हो सकता है वह केवल स्वयं को सता रहा हो, हो सकता है वह अपने शरीर के विरुद्ध हो—आत्मघाती हो, स्व—पीड़क हो। लेकिन फिर कोई और व्यक्ति उपवास करता है, और हो सकता है वह शरीर को सता न रहा हो, और वह स्व—पीड़क न हो, और वह किसी भी ढंग से शरीर को नष्ट करने की कोशिश न कर रहा हो, बल्कि वह उसे शुद्ध करने की कोशिश कर रहा हो। क्योंकि गहरे उपवास में शरीर की कुछ शुद्धियां उपलब्ध होती हैं।

तुम रोज निरंतर भोजन किए चले जाते हो; तुम कभी कोई विश्राम नहीं देते शरीर को। शरीर बहुत सी मृत कोशिकाएं इकट्ठी करता रहता है—वे एक बोझ बन जाती हैं। वे न केवल बोझ और भार होती हैं, वे दूषित होती हैं, वे जहरीली भी होती हैं। वे शरीर को अशुद्ध कर देती हैं। जब शरीर अशुद्ध होता है, तो तुम उसके पीछे छिपे सूक्ष्म शरीर को नहीं देख सकते हो। इस शरीर को स्वच्छ, पारदर्शी, शुद्ध होना चाहिए; तब अचानक तुम दूसरी पर्त के प्रति, सूक्ष्म शरीर के प्रति सजग हो जाते हो। जब सूक्ष्म शरीर शुद्ध होता है, तब तुम तीसरे शरीर के प्रति, चौथे के शरीर प्रति सजग हो जाते हो —इसी तरह और—और शरीरों के प्रति तुम सजग हो जाते हो।

उपवास बड़ी मदद करता है, लेकिन बहुत सजग रहने की आवश्यकता है इसके प्रति कि कहीं शरीर नष्ट न हो रहा हो। कोई निंदा का भाव मन में नहीं होना चाहिए। और यही तो समस्या है, क्योंकि करीब—करीब सभी धर्मों ने शरीर की निंदा की है। उन धर्मों के प्रवर्तक निंदक न थे, वे जहर फैलाने वाले न थे। वे प्रेम करते थे अपने शरीर से। वे इतना ज्यादा प्रेम करते थे शरीर से कि उन्होंने उसे हमेशा शुद्ध रखा। उनका उपवास एक शुद्धिकरण था।

फिर आए अंधानुकरण करने वाले अनुयायी, उपवास के गहन विज्ञान से अपरिचित। उन्होंने बिना समझे—बूझे उपवास करना शुरू किया। उन्होंने इसका मजा लिया, क्योंकि मन हिंसक होता है। वह दूसरों के साथ हिंसक होने का मजा लेता है, इसमें वह शक्तिशाली अनुभव करता है, क्योंकि जब भी तुम दूसरों के प्रति हिंसक होते हो तो तुम शक्तिशाली अनुभव करते हो। लेकिन दूसरों के प्रति हिंसक होना खतरनाक है, क्योंकि दूसरा बदला लेगा। तो फिर एक आसान रास्ता है : अपने ही शरीर के प्रति हिंसक हो जाना। उसमें कोई खतरा नहीं होता। शरीर प्रतिकार नहीं कर सकता। शरीर तुम्हें नुकसान नहीं पहुंचा सकता। तुम अपने शरीर को मजे से सता सकते हो; कोई रोकने वाला भी नहीं होता। यह

बहुत आसान है। तुम सता सकते हो और मजा ले सकते हो शक्तिशाली होने का—कि अब तुम नियंत्रित करते हो शरीर को; शरीर नियंत्रित नहीं करता है तुम्हें।

यदि तुम्हारा उपवास आक्रामक है, हिंसक है, यदि उसमें क्रोध और सताने का भाव है, तो तुम असली बात चूक गए। तुम उसकी शुद्धि नहीं कर रहे हो; तुम उसे नष्ट कर रहे हो। और दर्पण को स्वच्छ करना एक बात है और उसे नष्ट करना बिलकुल दूसरी बात है। दर्पण को स्वच्छ करना बिलकुल अलग बात है, क्योंकि जब दर्पण से धूल पोंछ दी जाती है, तब वह स्वच्छ हो जाता है, तुम देख पाते हो उसमें—वह तुमको प्रतिबिंबित करता है। लेकिन यदि दर्पण को तुम नष्ट कर दो, तब कोई संभावना नहीं रह जाती उसमें देख पाने की। यदि तुम स्थूल शरीर को नष्ट कर देते हो, तो तुम दूसरे शरीर से, सूक्ष्म शरीर से संपर्क की पूरी संभावना ही नष्ट कर देते हो। तो उसे शुद्ध करना, लेकिन उसे नष्ट मत करना।

और उपवास क्यों शुद्ध करता है? क्योंकि जब भी तुम उपवास करते हो तो शरीर के पास पचाने का काम नहीं रहता। उस अवधि में शरीर मृत कोशिकाओं को, विषाक्त तत्वों को बाहर फेंकने का काम कर सकता है। यह ऐसा ही है जैसे किसी दिन, रविवार या शनिवार, तुम्हारी छुट्टी होती है और तुम घर में होते हो और तुम दिन भर सफाई करते हो। पूरे सप्ताह तुम कामकाज में इतने उलझे थे और इतने व्यस्त थे कि तुम घर की सफाई नहीं कर सके। इसी तरह जब शरीर के पास पचाने को कुछ नहीं होता, तुमने कुछ खाया नहीं होता, तो शरीर स्वयं को स्वच्छ करना शुरू कर देता है। यह प्रक्रिया अपने आप सहज ढंग से शुरू हो जाती है और शरीर उस सब को बाहर फेंकने लगता है, जिसकी जरूरत नहीं है, जो एक बोझ की भांति है।

तो उपवास एक विधि है शुद्धिकरण की। कभी—कभी उपवास करना सुंदर बात है—कुछ न करना, कुछ न खाना, बस विश्राम में रहना। जितना हो सके उतना तरल पदार्थ लेना और विश्राम करना, और शरीर अपने आप शुद्ध हो जाएगा। कभी यदि तुम्हें लगे कि ज्यादा लंबे उपवास की जरूरत है, तो तुम ज्यादा दिन तक भी उपवास कर सकते हो—लेकिन शरीर के प्रति गहन प्रेम में रहना। और यदि तुम अनुभव करो कि उपवास किसी भी तरह से हानि पहुंचा रहा है शरीर को, तो उसे रोक देना। यदि उपवास मदद कर रहा है शरीर की, तो तुम ज्यादा ऊर्जावान अनुभव करोगे, तुम ज्यादा जीवंत अनुभव करोगे, तुम ज्यादा युवा, ज्यादा शक्तिशाली अनुभव करोगे। यही कसौटी है : यदि तुम्हें लगे कि तुम कमजोर हो रहे हो, यदि तुम्हें लगे कि कोई सूक्ष्म कंपन हो रहा है तुम्हारे शरीर में, तो सजग हो जाना—अब बात शुद्धिकरण की न रही, अब बात विनाशकारी हो गई है। रोक दो उसे।

तो व्यक्ति को इसका पूरा विज्ञान सीख लेना होता है। असल में किसी ऐसे व्यक्ति के निकट रह कर उपवास करना चाहिए जो लंबे समय से उपवास करता आया हो और जो पूरी प्रक्रिया से भलीभांति परिचित हो, जो जानता हो सारे लक्षणों को. कि यदि उपवास से नुकसान हो रहा है तो कैसा लगेगा, यदि नुकसान नहीं हो रहा है तो कैसा लगेगा। ठीक उपवास के बाद तुम एक नयापन, एक युवापन,

ज्यादा स्वच्छ, ज्यादा निर्भार, ज्यादा प्रसन्न अनुभव करोगे, और शरीर बेहतर ढंग से काम करने लगेगा, क्योंकि अब वह निर्भार है।

लेकिन उपवास की जरूरत केवल तभी होती है यदि तुम गलत ढंग से भोजन करते रहे हो। यदि तुम गलत ढंग से भोजन नहीं करते रहे हो, तो उपवास की कोई जरूरत नहीं है। उपवास की जरूरत केवल तभी होती है, जब तुमने कुछ गलत किया होता है शरीर के साथ—और हम सभी गलत ढंग से भोजन लेते हैं।

मनुष्य भटक गया है। कोई जानवर मनुष्य की भांति भोजन नहीं करता है, प्रत्येक जानवर का अपना भोजन होता है। यदि तुम भैंसों को ले जाओ बगीचे में और उन्हें वहां छोड़ दो, तो वे सिर्फ एक खास तरह का घास ही खाएंगी। वे हर चीज और कोई भी चीज नहीं खाने लगेंगी—वें बहुत चुन कर खाती हैं। अपने भोजन के प्रति उनकी एक सुनिश्चित संवेदनशीलता होती है। मनुष्य बिलकुल भटक गया है, अपने भोजन के प्रति वह बिलकुल संवेदनशील नहीं है। वह हर चीज खाता रहता है। असल में तुम कोई ऐसी चीज नहीं खोज सकते जो मनुष्य द्वारा कहीं न कहीं खाई न जाती हो। कुछ स्थानों में चींटियां खाई जाती हैं, कुछ स्थानों में सांप खाए जाते हैं, कुछ स्थानों में कुत्ते खाए जाते हैं। मनुष्य हर चीज खाता है। मनुष्य तो बस विक्षिप्त है। वह नहीं जानता कि किस चीज का उसके शरीर के साथ मेल बैठता है और किस चीज का मेल नहीं बैठता। वह बिलकुल उलझा हुआ है।

स्वभावत: मनुष्य को शाकाहारी होना चाहिए, क्योंकि उसका पूरा शरीर शाकाहारी भोजन के लिए बना है। वैज्ञानिक भी इस तथ्य को स्वीकार करते हैं कि मनुष्य—शरीर का सारा ढांचा यही बताता है कि मनुष्य को मांसाहारी नहीं होना चाहिए। मनुष्य आया है बंदरों से। बंदर शाकाहारी हैं—पक्के शाकाहारी हैं। यदि डार्विन की बात सच है तो मनुष्य को शाकाहारी होना चाहिए।

अब कई तरीके हैं यह निर्णय करने के कि जानवरों की कोई प्रजाति शाकाहारी है या मांसाहारी. यह निर्भर करता है अंतड़ियों पर, अंतड़ियों की लंबाई पर। मांसाहारी जानवरों की आत बहुत छोटी होती है। चीता, शेर—उनकी आत बहुत छोटी होती है, क्योंकि मांस पहले से ही पचाया हुआ भोजन है। उसे पचाने के लिए लंबी आत नहीं चाहिए। पचाने का काम तो जानवर ने ही पूरा कर दिया है। अब तुम खा रहे हो जानवर का मांस। वह पचाया हुआ ही है, लंबी आत की जरूरत नहीं है। मनुष्य की आत बहुत लंबी है. इसका अर्थ हुआ कि मनुष्य शाकाहारी प्राणी है। लंबी पाचन—क्रिया चाहिए, और बहुत कुछ व्यर्थ होता है जिसे बाहर फेंकना होता है।

तो यदि आदमी मांसाहारी नहीं है और वह मांस खाता है, तो शरीर बोझिल हो जाएगा। पूरब में, सभी गहरे ध्यानियों ने—बुद्ध, महावीर—उन्होंने मांसाहार न करने पर बहुत जोर दिया है। अहिंसा की धारणा के कारण नहीं—वह गौण है। लेकिन इस कारण कि यदि तुम सच में ही गहरे ध्यान में उतरना चाहते हो तो तुम्हारे शरीर को निर्भार होने की जरूरत है, स्वाभाविक और प्रवाहापूर्ण होने की

जरूरत है। तुम्हारा शरीर हलका होना चाहिए; और मांसाहारी का शरीर बहुत बोझिल होता है।

कभी ध्यान देना कि क्या होता है जब तुम मांस खाते हो : जब तुम किसी पशु को मारते हो तो क्या होता है उसे जब वह मरता है? निश्चित ही, कोई नहीं मरना चाहता। जीवन स्वयं को जारी रखना चाहता है, पशु स्वेच्छा से तो मर नहीं रहा है। अगर कोई तुम्हारी हत्या करे, तो तुम शाति से तो मर नहीं जाओगे। यदि एक सिंह छलांग लगा दे तुम पर और मार डाले तुमको, तो तुम्हारे मन पर क्या गुजरेगी? वैसी ही तकलीफ सिंह को होती है जब तुम सिंह को मारते हो। यंत्रणा, भय, मृत्यु, पीड़ा, चिंता, क्रोध, हिंसा, उदासी—ये सारी चीजें घटित होती हैं जानवर को। उसके सारे शरीर में हिंसा पीड़ा, यंत्रणा फैल जाती है। सारा शरीर विषाक्त तत्वों से, जहर से भर जाता है। शरीर की सारी ग्रंथियां जहर छोड़ देती हैं। क्योंकि जानवर बड़ी पीड़ा में मर रहा होता है। और फिर तुम खाते हो उस मांस को—उस मांस में वे सब जहर मौजूद हैं जो जानवर ने छोड़े हैं। सारी बात जहरीली है। फिर वे सारे जहर तुम्हारे शरीर में चले आते हैं।

और वह मांस जिसे तुम खा रहे हो, किसी जानवर के शरीर का मांस है। वहां उसका कोई सुनिश्चित उद्‌देश्य था। एक विशिष्ट ढंग की चेतना थी उस जानवर के शरीर में। तुम जानवर की चेतना की तुलना में ज्यादा ऊंचे तल पर हो, और जब तुम जानवर का मांस खाते हो तो तुम्हारा शरीर जानवर के निम्न तल पर आ जाता है। तब तुम्हारी चेतना और तुम्हारे शरीर के बीच एक दूरी पैदा हो जाती है, एक तनाव पैदा हो जाता है, एक बेचैनी होने लगती है।

तो तुम्हें वही चीजें खानी चाहिए जो स्वाभाविक हैं—तुम्हारे लिए स्वाभाविक हैं—फल, मेवा, सब्जियां, जितना हो सके खाओ ये सब। और मजे की बात यह है कि तुम इन चीजों को अपनी जरूरत से ज्यादा नहीं खा सकते। जो कुछ भी स्वाभाविक होता है वह सदा तुम्हें तृप्ति देता है, क्योंकि वह तुम्हारे शरीर को पोषण देता है, तुम्हें सुखद अनुभूति देता है। तुम तृप्त अनुभव करते हो। यदि कोई बात अस्वाभाविक है तो वह तुम्हें कभी तृप्ति की अनुभूति नहीं देती। आइसक्रीम खाते चले जाओ : तुम कभी तृप्त अनुभव नहीं करते। असल में जितना तुम खाते हो, उतना ही तुम्हें लगता है कि और खाओ। वह भोज्य पदार्थ नहीं है। तुम्हारे मन को धोखा दिया जा रहा है। अब तुम शरीर की आवश्यकता के अनुसार नहीं खा रहे हो; तुम बस स्वाद के लिए खा रहे हो। जीभ निर्णायक हो गई है।

जीभ निर्णायक नहीं होनी चाहिए। वह पेट के बारे में कुछ भी नहीं जानती है। वह शरीर के बारे में कुछ भी नहीं जानती है। जीभ का केवल एक काम है : भोजन का स्वाद लेना। स्वभावत:, जीभ को सजग रहना होता है, केवल यह देखना होता है कि कौन सा भोजन शरीर के लिए ठीक है—मेरे शरीर के लिए—और कौन सा भोजन मेरे शरीर के लिए ठीक नहीं है। वह दरवाजे पर बैठा चौकीदार है; वह मालिक नहीं है। और यदि दरवाजे पर बैठा चौकीदार मालिक बन जाए, तो हर चीज गड़बड़ा जाती है।

अब विज्ञापन करने वाले भलीभांति जानते हैं कि जीभ के साथ धोखाधड़ी की जा सकती है, नाक के साथ धोखाधड़ी की जा सकती है। और वे कोई मालिक नहीं हैं। शायद तुम्हें पता भी न होगा, संसार में बहुत खोज चलती है भोजन के संबंध में। और वे कहते हैं कि यदि तुम्हारी नाक बिलकुल बंद कर दी जाए, और तुम्हारी आंखें बंद कर दी जाएं, और फिर तुम्हें प्याज दे दिया जाए खाने के लिए, तो तुम नहीं बता सकते कि तुम क्या खा रहे हो। तुम प्याज और सेव के बीच कोई भेद नहीं कर सकते यदि नाक पूरी तरह बंद हो। क्योंकि आधा स्वाद तो आता है गंध से, आधा निर्णय होता है नाक के द्वारा, और आधा निर्णय होता है जीभ के द्वारा—और ये दोनों निर्णायक हो जाते हैं। अब वे जानते हैं कि आइसक्रीम पौष्टिक आहार है या नहीं सवाल इसका नहीं है, लेकिन एक फ्लेवर होना चाहिए, कुछ केमिकल्स होने चाहिए जो जीभ को स्वाद दें। लेकिन वे शरीर की जरूरत नहीं हैं। आदमी उलझ गया है— भैंसों की अपेक्षा कहीं ज्यादा उलझ गया है। तुम भैंसों को राजी नहीं कर सकते आइसक्रीम खाने के लिए! कभी प्रयोग करना।

तो स्वाभाविक भोजन... और जब मैं कहता हूं 'स्वाभाविक' तो मेरा मतलब है जिसकी जरूरत है तुम्हारे शरीर को। एक शेर की जरूरत अलग है; उसे जानवरों को मार कर खाना है। यदि तुम शेर का मांस खाते हो, तो तुम हिंसक हो जाओगे, फिर वह हिंसा कहां निकलेगी? तुम्हें मानव—समाज में रहना है न कि किसी जंगल में। तब तुम्हें हिंसा को दबाना पड़ेगा। तब एक दुष्चक्र शुरू हो जाता है।

जब तुम हिंसा को दबाते हो, तो क्या होता है? जब तुम क्रोधित, हिंसक अनुभव करते हो तो तुम्हारी ग्रंथियां जहर छोड़ देती हैं शरीर में, क्योंकि वही जहर ऐसी अवस्था निर्मित कर देता है कि तुम सचमुच हिंसक हो सकते हो और किसी को मार सकते हो। ऊर्जा आ जाती है तुम्हारे हाथों में, ऊर्जा आ जाती है तुम्हारे दांतो में—ये दो स्थल हैं जिनके द्वारा जानवर हिंसा करते हैं। मनुष्य आया है जानवरों से। तो जब तुम क्रोधित होते हो, तब ऊर्जा बहती है—वह हाथों में और दांतो में, जबड़ों में आ जाती है। लेकिन तुम रहते हो मनुष्य—समाज में और क्रोधित होना सदा लाभकारी नहीं होता। तुम रहते हो सभ्य समाज में, और तुम जानवर की भांति व्यवहार नहीं कर सकते। यदि तुम जानवर की भांति व्यवहार करते हो, तो तुम्हें उसका बहुत ज्यादा मूल्य चुकाना पड़ेगा—और तुम तैयार नहीं हो उतना मूल्य चुकाने के लिए। तो तुम क्या करोगे? तुम क्रोध को दबा लेते हो हाथों में; तुम क्रोध को दबा लेते हो अपने दांतो में—तुम एक झूठी मुस्कुराहट ऊपर से ओढ़ लेते हो। और तुम्हारे दांतो में, मसूढ़ों में क्रोध इकट्ठा होता रहता है।

मैंने स्वाभाविक मसूढ़ों वाले लोग बहुत कम देखे हैं। लोगों के मसूढे स्वाभाविक नहीं होते—अवरुद्ध होते हैं, सख्त होते हैं, क्योंकि बहुत ज्यादा क्रोध इकट्ठा होता है उनमें। यदि तुम किसी व्यक्ति के मसूढे दबाओ, तो क्रोध प्रकट हो सकता है। हाथ असुंदर हो जाते हैं। वे खो देते हैं सुडौलता, वे खो देते हैं लोच, क्योंकि बहुत ज्यादा क्रोध इकट्ठा हो जाता है वहां। जो लोग गहरी मालिश का काम करते रहे हैं, वे जानते हैं कि जब हाथों को दबाया जाता है, मालिश की जाती है हाथों की, तो व्यक्ति क्रोधित

होने लगता है। कोई कारण नहीं होता। तुम मालिश कर रहे हो व्यक्ति की और अचानक वह क्रोधित अनुभव करने लगता है। यदि तुम उसके मसूढे दबाओ, तो वह व्यक्ति फिर क्रोधित हो जाता है। वहां क्रोध इकट्ठा है।

ये शरीर की अशुद्धियां हैं : उन्हें निर्मुक्त करना पड़ता है। यदि तुम उन्हें निर्मुक्त नहीं करते तो शरीर बोझिल रहेगा। योग के ऐसे आसन हैं जो शरीर में हर प्रकार के जहर को निर्मुक्त कर देते हैं। योग की क्रियाएं उन्हें निर्मुक्त कर देती हैं; और योगी के शरीर की एक अपनी ही संवेदनशीलता होती है। योग के आसन दूसरे व्यायाम से बिलकुल भिन्न हैं। वे तुम्हारे शरीर को शक्तिशाली नहीं बनाते; वे तुम्हारे शरीर को ज्यादा लोचपूर्ण, नमनीय बनाते हैं। और जब तुम्हारा शरीर ज्यादा लोचपूर्ण होता है, तो तुम एक अलग ही ढंग से शक्तिशाली होते हो. तुम ज्यादा युवा होते हो। वे तुम्हारे शरीर को ज्यादा तरल बनाते हैं, ज्यादा प्रवाहपूर्ण बनाते हैं। शरीर में कोई अवरोध नहीं रहता। संपूर्ण शरीर एक जैविक इकाई की भांति काम करता है। वह बाजार के शोर की भांति नहीं होता; वह आर्केस्ट्रा की भांति होता है। गहरी लयबद्धता होती है भीतर, कोई ग्रंथियां नहीं होतीं, तब शरीर शुद्ध होता है। योग के आसन अदभुत रूप से मदद दे सकते हैं।

हर कोई अपने पेट में बहुत कुछ दबाए हुए है, क्योंकि केवल वही जगह है शरीर में जहां कि तुम बातों को दबा सकते हो। और तो कोई जगह नहीं है। यदि तुम किसी बात को दबाना चाहते हो तो उसे पेट में ही दबाना पड़ता है। यदि तुम रोना चाहते हो—तुम्हारी पत्नी मर गई है, कि तुम्हारी प्रेमिका मर गई है, कि तुम्हारा मित्र मर गया है—लेकिन रोना अच्छा नहीं मालूम पड़ता। ऐसा लगता है जैसे कि तुम कमजोर प्राणी हो—एक स्त्री के लिए रो रहे हो। तो तुम उसे दबा लेते हो। लेकिन कहां ले जाओगे तुम उस रोने को? स्वभावत:, तुम्हें उसे पेट में दबाना पड़ता है। केवल वही जगह है शरीर में, एकमात्र खाली जगह, जहां तुम दबा सकते हो।

यदि तुम पेट में दबा लेते हो.. और प्रत्येक व्यक्ति ने दबाई हैं बहुत तरह की भावनाएं—प्रेम की, कामवासना की, क्रोध की, उदासी की, रोने की, हंसने की भी। तुम हंस भी नहीं सकते खुल कर। वह असभ्यता मालूम पड़ती है, अभद्रता मालूम पड़ती है—तो तुम सुसंस्कृत नहीं हो। तुमने हर चीज दबाई है। इसी दमन के कारण ही तुम गहरी श्वास नहीं ले सकते, तुम्हें उथली श्वास लेनी पड़ती है। क्योंकि यदि तुम गहरी श्वास लेते हो, तो दमन से हुए घाव फिर उभरेंगे। तुम भयभीत हो। हर कोई भयभीत है पेट में उतरने से।

प्रत्येक बच्चा जब पैदा होता है, तो वह पेट से श्वास लेता है। देखना किसी सोए हुए बच्चे को. पेट ऊपर—नीचे होता है—छाती से नहीं लेता वह श्वास। कोई बच्चा छाती से श्वास नहीं लेता है, बच्चे पेट से श्वास लेते हैं। वे अभी बिलकुल स्वाभाविक होते हैं, कोई चीज दबाई नहीं गई है। उनके पेट खाली होते हैं और उस खालीपन का एक सौंदर्य होता शरीर में।

जब पेट में बहुत ज्यादा दमन इकट्ठा हो जाता है, तो शरीर दो भागों में बंट जाता है—निम्न और उच्च। तब तुम अखंड नहीं रहते; तुम दो हो जाते हो। निम्न भाग निंदित हिस्सा होता है। एकत्व खो जाता है, द्वैत आ जाता है तुम्हारे अस्तित्व में। अब तुम सुंदर नहीं हो सकते, तुम प्रसादपूर्ण नहीं हो सकते। तुम एक की जगह दो शरीर लिए रहते हो। और उन दोनों के बीच सदा एक दूरी रहेगी। तुम सुंदर ढंग से चल नहीं सकते, तुम्हें घसीटना पड़ता है अपनी टांगों को। असल में यदि शरीर एक होता है, तो तुम्हारी टलें तुम्हें लेकर चलती हैं। यदि शरीर दो में बंटा हुआ है, तो तुम्हें घसीटना पड़ता है अपनी टांगों को। तुम्हें ढोना पड़ता है अपने शरीर को। वह बोझ जैसा लगता है। तुम आनंदित नहीं हो सकते उससे। तुम टहलने का आनंद नहीं ले सकते, तुम तैरने का आनंद नहीं ले सकते, तुम तेज दौड़ने का आनंद नहीं ले सकते—क्योंकि शरीर एक नहीं है। इन सभी गतियों के लिए और उनसे आनंदित होने के लिए, शरीर को फिर से अखंड करने की जरूरत है। एक अखंडता फिर से निर्मित करनी जरूरी है : पेट को पूरी तरह शुद्ध करना होगा।

और पेट की शुद्धि के लिए बहुत गहरी श्वास चाहिए, क्योंकि जब तुम गहरी श्वास भीतर लेते हो और गहरी श्वास बाहर छोड़ते हो, तो पेट उस सब को बाहर फेंक देता है जो वह ढो रहा होता है। श्वास बाहर फेंकने में पेट स्वयं को निर्मुक्त करता है। इसीलिए प्राणायाम का, गहरी श्वास का इतना महत्व है। श्वास छोड़ने पर जोर होना चाहिए, ताकि जो चीज भी पेट अनावश्यक रूप से ढो रहा है, निर्मुक्त हो जाए।

और जब पेट दमित भावनाओं से मुक्त हो जाता है, तो यदि तुम्हें कब्ज रहती है तो अचानक गायब हो जाएगी। जब तुम भावनाओं को दबा लेते हो पेट में, तो कब्जियत रहेगी, क्योंकि पेट कठोर हो जाता है। गहरे में तुम रोक रहे होते हो पेट को; तुम उसे स्वतंत्र रूप से गति नहीं करने देते। इसलिए यदि भावनाओं का दमन किया गया है, तो कब्ज होगी ही। कब्ज एक मानसिक रोग ज्यादा है शारीरिक रोग की अपेक्षा। वह शरीर की अपेक्षा मन से ज्यादा संबंधित है।

लेकिन ध्यान रहे, मैं मन और शरीर को दो में नहीं बांट रहा हूं। वे एक ही घटना के दो पहलू हैं। मन और शरीर दो चीजें नहीं हैं। असल में 'मन और शरीर' कहना ठीक नहीं. इसे 'मनोशरीर' कहना ज्यादा ठीक होगा। तुम्हारा शरीर एक साइकोसोमैटिक घटना है। मन शरीर का सूक्ष्म भाग है और शरीर मन का स्थूल भाग है। और वे दोनों एक—दूसरे को प्रभावित करते हैं; वे साथ—साथ चलते हैं। यदि तुम मन में कुछ दबा रहे हो, तो शरीर में ग्रंथियां बननी शुरू हो जाएंगी। यदि मन निर्भार हो जाता है तो शरीर भी हलका हो जाता है। इसीलिए मेरा रेचन पर इतना जोर है। रेचन एक शुद्धिकारक प्रक्रिया है।

ये सब तप के अंतर्गत आते हैं. उपवास; स्वाभाविक भोजन; गहरी श्वास; योग के आसन; सहज—स्वाभाविक लोचपूर्ण जीवन, कम से कम दमन; शरीर को सुनना; शरीर की समझ से चलना।'तपश्चर्या अशुद्धियों को मिटा देती है।'

इन्हें मैं तपश्चर्या कहता हूं।'तपश्चर्या' का मतलब शरीर को सताना नहीं है। इसका मतलब है शरीर में ऐसी जीवंत अग्नि. का निर्माण करना जिससे शरीर शुद्ध हो जाए। जैसे तुमने सोना डाल दिया हो अग्नि में—तो वह सब जो सोना नहीं होता, जल जाता है; केवल शुद्ध, खरा सोना बच रहता है।'तपश्चर्या अशुद्धियों को मिटा देती है। और इस प्रकार हुई शरीर तथा इंद्रियों की परिपूर्ण शुद्धि के साथ शारीरिक और मानसिक शक्तियां जाग्रत होती हैं।'

जब शरीर शुद्ध हो जाता है, तब तुम पाओगे कि बड़ी अदभुत शक्तियां जाग्रत हो रही हैं, तुम्हारे सामने नए आयाम खुल रहे हैं। अचानक नए द्वार, नई संभावनाएं खुल जाती हैं। शरीर में बड़ी शक्ति छिपी है। जब वह निर्मुक्त होती है, तो तुम भरोसा न कर पाओगे कि शरीर में इतनी शक्ति छिपी थी। और प्रत्येक इंद्रिय के पीछे एक सूक्ष्म इंद्रिय होती है। आंखों के पीछे एक सूक्ष्म दृष्टि होती है —एक अंतर्दृष्टि। जब आंखें शुद्ध होती हैं, निर्मल होती हैं, तो तुम चीजों को केवल वैसा ही नहीं देखते जैसी कि वे सतह पर दिखाई देती हैं। तुम उनको गहराई में देखने लगते हो। एक नया ही आयाम खुल जाता है।

अभी तो जब तुम किसी व्यक्ति को देखते हो, तो तुम उसके आभा —मंडल को नहीं देखते; तुम केवल उसके शरीर को देखते हो। इस भौतिक शरीर के चारों ओर एक लक्ष्म आभा — मंडल तो है। एक धीमा प्रकाश छाया रहता है शरीर के चारों तरफ। और प्रत्येक व्यक्ति का आभा—मंडल अलग रंग का होता है। जब तुम्हारी आंखें स्वच्छ हो जाती हैं, तो तुम उस आभा—मंडल को देख सकते हो, और आभा—मंडल को देख कर तुम उस व्यक्ति के बारे में बहुत कुछ जान सकते हो, जो तुम किसी और ढंग से नहीं जान सकते। और वह व्यक्ति तुम्हें धोखा नहीं दे सकता है, धोखा देना असंभव है, क्योंकि उसका आभा—मंडल उसके भीतर के भाव को प्रकट कर देता है।

कोई आता है बेईमानी के, झूठ के आभा—मंडल के साथ और तुम्हें भरोसा दिलाना चाहता है कि वह बड़ा ईमानदार आदमी है। आभा—मंडल धोखा नहीं दे सकता है, क्योंकि वह आदमी आभा—मंडल को नियंत्रित नहीं कर सकता। यह बात संभव नहीं है। झूठ का आभा—मंडल अलग रंग का होता है। ईमानदार आदमी के आस—पास छाए प्रकाश का रंग अलग होता है।

शुद्ध व्यक्ति का आभा—मंडल बिलकुल शुभ्र होता है। जितना ज्यादा अशुद्ध होता है व्यक्ति, उतनी शुभ्रता कम होती जाती है और अंधेरा बढ़ता जाता है। जो व्यक्ति नितांत झूठा होता है, उसका आभा—मंडल बिलकुल काला होता है। बेचैन व्यक्ति का आभा—मंडल बदलता रहता है, वह एक जैसा नहीं रहता। यदि तुम कुछ मिनट उसे देखते रहो, तो तुम पाओगे कि आभा—मंडल बदल रहा है। वह व्यक्ति भ्रमित है, उलझा हुआ है। उसे स्वयं भी पक्का पता नहीं है कि वह क्या है। उसका आभा—मंडल बदलता रहता है।

ध्यानी व्यक्ति के आभा—मंडल की बड़ी शांतिमय गुणवत्ता होती है; एक शांति, एक शीतलता छाई रहती है उसके आस—पास। ऐसा व्यक्ति जो बहुत चिंतित होता है, अशांत होता है, तनावग्रस्त होता है, उसके आभा—मंडल में भी वही तत्व होते हैं। जो व्यक्ति बहुत तनावग्रस्त है, वह कोशिश कर सकता है मुस्कुराने की, चेहरा कुछ का कुछ बनाने की, मुखौटा ओढ़ने की, लेकिन जब वह तुम्हारे पास आएगा तो उसका आभा—मंडल असलियत को प्रकट कर देगा।

और ऐसा ही कानों के साथ भी होता है। जैसी आंखों की एक गहन अंतर्दृष्टि होती है, वैसे ही कानों के पास श्रवण की गुणवत्ता होती है। तब तुम किसी व्यक्ति के शब्दों को नहीं सुनते, बल्कि उलटे तुम उसके संगीत को सुनते हो। तुम उन शब्दों पर ध्यान नहीं देते जिनका वह प्रयोग करता है, बल्कि भाव पर ध्यान देते हो, उसकी आवाज की लय पर ध्यान देते हो—ध्यान देते हो आवाज की आंतरिक गुणवत्ता पर, जो बहुत कुछ कहती है जिसे शब्द छिपा नहीं सकते, बदल नहीं सकते। वह व्यक्ति शायद बहुत विनम्र होने की कोशिश कर रहा हो, लेकिन उसकी ध्वनि में कठोरता होगी। वह व्यक्ति शायद बहुत शालीनता प्रकट कर रहा हो, लेकिन उसकी ध्वनि उसकी अशालीनता को प्रकट कर देगी। हो सकता है वह आदमी कोशिश कर रहा हो अपनी दृढ़ता दिखाने की, लेकिन उसकी ध्वनि उसकी झिझक को प्रकट कर देगी।

और यदि तुम ध्वनि को सुन सकते हो, और यदि तुम आभा—मंडल को देख सकते हो, और यदि तुम अपने निकट आए व्यक्ति के अंतस की गुणवत्ता को अनुभव कर सकते हो, तो तुम बहुत सी बातों में सक्षम हो जाते हो। और वे बातें बड़ी सरल हैं। जब तपश्चर्या की शुरुआत होती है तब वे जाग्रत होने लगती हैं।

फिर और भी गहरी शक्तियां हैं, जिन्हें योग सिद्धियां कहता है—जादुई शक्तियां, अद्भुत शक्तियां। वे चमत्कार जैसी लगती हैं, क्योंकि हम उनकी प्रक्रिया को नहीं समझते, कि वे कैसे काम करती हैं। जब तुम पूरी प्रक्रिया को समझ लेते हो, तो वे चमत्कार नहीं लगती। असल में चमत्कार जैसा कुछ होता ही नहीं। जो भी होता है किसी नियम के अनुसार होता है। लेकिन जब नियम का पता नहीं चलता, तो तुम उसे चमत्कार कह देते हो। जब नियम का पता चल जाता है तो चमत्कार मिट जाता है। अभी—अभी भारत के गांवों में टेलीविजन पहुंचा। पहली बार, गांव वालों ने इंदिरा गांधी को देखा टेलीविजन के डिब्बों में, जैसा कि गांव वाले उन्हें कहते हैं—'तस्वीर वाले डिब्बे।' उन्हें भरोसा ही न आया। असंभव। उन्होंने चारों तरफ चक्कर काट कर देखा डिब्बों के आस—पास; उन्होंने हर तरफ से देखा! कैसे इंदिरा गांधी छिपी है इस डिब्बे में? चमत्कार है! अविश्वसनीय रूप से चमत्कार है! लेकिन एक बार तुम समझ लेते हो नियम को तो बात बड़ी आसान हो जाती है।

सारे चमत्कार नियमों के पता न होने के कारण चमत्कार लगते हैं। योग कहता है कि संसार में कहीं कोई चमत्कार नहीं होते। क्योंकि 'चमत्कार' का मतलब है कोई ऐसी चीज जो नियम के विरुद्ध है, जो

संभव नहीं है। सार्वभौमिक नियम के विरुद्ध होने की कोई संभावना कैसे हो सकती है? ऐसी कोई संभावना नहीं है। ही, यह हो सकता है कि लोगों को नियम मालूम न हो।

जैसे—जैसे तुम ज्यादा गहरे उतरते हो शुद्धता में और पूर्णता में, सिद्धियां संभव हो जाती हैं। उदाहरण के लिए, यदि तुम स्थूल शरीर से अपने सूक्ष्म शरीर को, एस्ट्रल बॉडी को बाहर ला सको तो तुम बहुत सी बातें कर सकते हो, जो कि चमत्कार जैसी लगेंगी। तुम लोगों से मिलने जा सकते हो। वे तुमको देख सकते हैं, लेकिन वे तुमको छू नहीं सकते। तुम उनसे बात भी कर सकते हो अपने सूक्ष्म प्रक्षेपण, एस्ट्रल प्रोजेक्शन द्वारा। तुम स्वस्थ कर सकते हो लोगों को। यदि तुम सच में ही शुद्ध हो, तो केवल तुम्हारा संस्पर्श, हाथों का स्पर्श, और चमत्कार हो जाएगा। स्वास्थ्य देने वाली एक शक्ति छाई रहेगी तुम्हारे चारों ओर—जहां भी तुम जाओगे, लोग ठीक होने लगेंगे। ऐसा नहीं कि तुम कुछ करते हो। वह शुद्धता ही.. तुम अनंत शक्तियों के माध्यम हो जाते हो।

लेकिन तुम्हें भीतर की ओर मुड़ना है, तुम्हें अपने आत्यंतिक केंद्र को खोज लेना है।

'तपश्चर्या अशुद्धियों को मिटा देती है। और इस प्रकार हुई शरीर तथा इंद्रियों की परिपूर्ण शुद्धि के साथ शारीरिक और मानसिक शक्तियां जाग्रत होती हैं।'

और सब से बड़ी शक्ति जो तुम में जाग्रत होती है वह है मृत्युविहीनता की। ऐसा नहीं है कि तुम्हारे पास कोई सिद्धात है, कोई शास्त्र है, कोई दर्शन है इस बात का कि तुम अमर हो। नहीं, अब तुम्हारे पास एक अनुभूति है। अब यह तुम्हारा अनुभव है—अब तुम इसे जानते हो। अब यह बात कोई सिद्धात नहीं है; यह तुम्हारा अपना अनुभव है कि कहीं कोई मृत्यु नहीं है। यह शरीर बिखर जाएगा अपने तत्वों में, लेकिन तुम्हारी चेतना नहीं बिखर सकती है। मन छूट जाएगा, विचार छूट जाएंगे, शरीर बिखर जाएगा अपने तत्वों में—लेकिन 'तुम', वह साक्षी बना रहेगा।

तुम जानते हो यह, क्योंकि अब तुम देख सकते हो अपने शरीर को दूर खड़े होकर, अलग हट कर। तुम अपने शरीर को देख सकते हो अपने से अलग। तुम शरीर के बाहर आ सकते हो लगे र उसको देख सकते हो। तुम अपने शरीर के आस—पास चक्कर लगा सकते हो। अब तुम जानते हो कि जब तुम मरोगे तो शरीर पीछे पड़ा रह जाएगा, लेकिन तुम नहीं। अब तुम देख सकते हो मन को यंत्र की भांति काम करते हुए, एक बायो—कंप्यूटर की भांति काम करते हुए। तुम द्रष्टा हो—तुम मन नहीं हो। अब शरीर और मन अपना काम करते रहते हैं, लेकिन तुम उनसे तादात्म्य नहीं बनाते।

यह सबसे बड़ा चमत्कार है जो किसी मनुष्य को घट सकता है : कि उसे यह बोध हो जाए कि वह मृत्यु के पार है। तब मृत्यु का भय मिट जाता है, और मृत्यु के भय के मिटते ही सारे भय मिट जाते हैं। और जब सारे भय मिट जाते हैं, तो प्रेम का उदय होता है। जब कहीं कोई भय नहीं रह जाता, तो प्रेम पैदा होता है, केवल तभी प्रेम पैदा होता है। कैसे प्रेम खिल सकता है भय से जकड़े हुए मन में? तुम मित्र बना सकते हो, तुम संबंध निर्मित कर सकते हो, लेकिन तुम भय के कारण ही संबंध बनाते

हो—अपने को भुलने के लिए, स्वयं को संबंध में डुबो देने के लिए। वह कोई प्रेम नहीं है। प्रेम तो तभी होता है, जब तुम मृत्यु के पार चले जाते हो। दोनों बातें एक साथ नहीं हो सकतीं. यदि तुम भयभीत हो मृत्यु से तो कैसे तुम प्रेम कर सकते हो त्र: उस भय के कारण तुम कोई संबंध बना सकते हो, लेकिन वह संबंध भय पर ही आधारित होगा।

इसीलिए निन्यानबे प्रतिशत धार्मिक व्यक्ति प्रार्थना करते हैं, लेकिन उनकी प्रार्थना सच्ची प्रार्थना नहीं है। वह प्रेम से नहीं उठती, वह भय से आती है। उनका परमात्मा से संबंध भय के कारण है। केवल कभी—कभार, कोई एक प्रतिशत धार्मिक व्यक्ति ही मृत्यु के पार उठ पाते हैं। तब जो प्रार्थना जन्मती है वह भय से नहीं उठती, वह उठती है प्रेम से, अहोभाव से, कृतज्ञता से।

स्वाध्यायादिष्टदेवतासम्प्रयोग:।

स्वाध्याय के द्वारा दिव्यता के साथ एकत्व घटित होता है।

यह बहुत महत्वपूर्ण सूत्र है. 'स्वाध्याय के द्वारा दिव्यता के साथ एकत्व घटित होता है।'

व्यक्ति को अपना अध्ययन करना होता है—वही एकमात्र ढंग है दिव्यता तक पहुंचने का। पतंजलि नहीं कहते कि मंदिर जाओ। वे नहीं कहते कि चर्च जाओ। वे नहीं कहते कि कोई धार्मिक अनुष्ठान करो। नहीं, दिव्यता के साथ एक होने का वह ढंग नहीं है। स्वयं में जाओ—स्वाध्याय, स्वयं का अध्ययन—क्योंकि 'वह' तुम में छिपा है, तुम्हारे भीतर छिपा है।'वह' तुम्हारा अंतरतम केंद्र है। तुम मंदिर हो, भीतर उतरो। अध्ययन करो अपना। तुम एक अदभुत घटना हो—देखो, जानो स्वयं को। उस सब का अध्ययन करो जो तुम हो। और जिस दिन तुम अपने को पूरी तरह जान लेते हो, 'वह' प्रकट हो जाएगा।'वह' तुम में ही छिपा है, तुम्हारे भीतर छिपा है। वह तुम ही हो—अपने आत्यंतिक प्राणों में। तो अपना अध्ययन करना।

इस 'अध्ययन' का वही अर्थ है जो गुरजिएफ के 'आत्म—स्मरण' का अर्थ है। पतंजलि के स्वाध्याय का मतलब वही है जिसे गुरजिएफ ने 'सेल्फ—रिमेंबरिंग' कहा है। स्वयं का स्मरण बनाए रखना और ध्यानपूर्वक देखते रहना। तुम लोगों के साथ कैसे संबंधित होते हो—ध्यान .देना इस बात पर। संबंध एक दर्पण है। तुम अजनबियों से किस तरह संबंधित होते हो, जिन लोगों को तुम जानते हो, उनके साथ कैसे संबंधित होते हो? तुम अपने नौकर के साथ किस तरह का व्यवहार करते हो; तुम अपने मालिक के साथ किस तरह का व्यवहार करते हो? बस, देखते रहना सब। प्रत्येक संबंध

को एक दर्पण, एक प्रतिछबि की भांति उपयोग करना। और ध्यान देना कि कैसे तुम अपने मुखौटे बदलते हो। अपने लोभ को देखना, अपनी ईर्ष्या, अपने वैमनस्य को देखना, अपने भय को देखना, अपनी चिंताओं को, अपने मालकियत जमाने के ढंग को देखना—बस देखते रहना और सजग रहना।

कुछ करने की जरूरत नहीं है। यही इस सूत्र का सौंदर्य है। पतंजलि नहीं कहते कि कुछ करो। वे कहते हैं, 'स्वयं का अध्ययन करो।' वही अध्ययन, वही सजगता काम करेगी। जब तुम अपनी संपूर्ण अंतस सत्ता का साक्षात्कार करोगे तो एक रूपांतरण घटित होगा।

तो देखना अपने को विभिन्न भाव—दशाओं में : जब तुम उदास हो, तो देखना; जब तुम निराश हो, तो देखना; जब तुम बहुत ज्यादा भरे हो आशाओं से, तो देखना; आकांक्षा है, हताशा है, तो देखना; हजारों भाव—दशाएं हैं, देखते रहना। हर भाव—दशा को भीतर झांकने का झरोखा बना लेना। जीवन के सभी रंगों में अपने को देखना। जब तुम अकेले हो, तो देखना। जब तुम अकेले नहीं हो, तो देखना। पहाड़ पर हो, अकेले हो, तो देखना। फैक्टरी जाते हो, आफिस जाते हो, तो देखना कि तुम कहां बदलते हो, कैसे बदलते हो।

यदि तुम देखते रहते हो... कभी क्षण भर को शिथिल नहीं होने देना है इस देखने को। बुद्ध ने कहा है, 'जब तुम अपने बिस्तर में सोने जाओ—देखते रहना। जब तुम नींद में उतर रहे हो तो देखते रहना कि कैसे तुम्हें नींद घेर रही है।' देखते ही रहना। किसी भी चीज को बिना देखे मत जाने देना। यही आत्म—स्मरण, यही स्वाध्याय, सब कर देगा। तुम्हें पूछने की कोई जरूरत नहीं कि 'मैं देखने के बाद क्या करूं?' कुछ करने की जरूरत नहीं रह जाती। जब तुम पूरी तरह से देख लेते हो अपनी घृणा को, तो वह खो जाती है।

और यही है कसौटी : जो खो जाता है देखने से, वह पाप है; और जो विकसित होता है देखने से, वह पुण्य है। यही एकमात्र परिभाषा मैं तुमको दे सकता हूं। मैं नहीं कहता कि यह पाप है और वह पुण्य है। नहीं, पाप और पुण्य को बतलाया नहीं जा सकता है। जो विकसित होता है देखने से—पुण्य है; जो खो जाता है देखने से—पाप है। क्रोध खो जाएगा देखने से; प्रेम विकसित होगा। घृणा खो जाएगी; करुणा बढ़ेगी। हिंसा खो जाएगी, प्रार्थना बढ़ेगी; जो खो जाता है देखने से, वह पाप है। उसके प्रति कुछ और करने की जरूरत नहीं होती। बस उसे देखना और वह खो जाता है। वह ऐसे खो जाता है जैसे जब तुम प्रकाश ले आते हो किसी अंधेरे कमरे में तो अंधेरा खो जाता है। वह कमरा नहीं खो जाता, अंधकार खो जाता है।

तुम नहीं खो जाओगे देखने से। असल में देखने से तुम और प्रकट हो जाओगे। केवल अंधेरा खो जाएगा : क्रोध का अंधेरा, मालकियत का अंधेरा, ईर्ष्या का अंधेरा—वह सब खो जाएगा। केवल तुम्हीं बचोगे अपनी मौलिक शुद्धता में। केवल तुम्हारा अंतर— आकाश बचेगा—खाली, शून्य।

'स्वाध्याय के द्वारा दिव्यता के साथ एकत्व घटित होता है।'

कुछ और नहीं चाहिए—केवल सजगता चाहिए।

समाधिसिद्धिरीश्वरप्रणिधानात्।

समाधि का पूर्ण आलोक फलित होता है— ईश्वर के प्रति समर्पण घटित होने पर।

और जब तुमने स्वयं का अध्ययन कर लिया है, जब तुमने स्वयं को जान लिया है—तो समर्पण। तब समर्पण बहुत सहज हो जाता है। तब वह कोई प्रयास नहीं रहता। अभी यदि तुम समर्पण करना चाहो, तो वह एक प्रयास होगा; और फिर भी वह समग्र नहीं होगा। यदि बिलकुल अभी तुम समर्पण करना चाहते हो, तो कैसे तुम समर्पण कर सकते हो जब भीतर घृणा मौजूद है? कैसे तुम समर्पण कर सकते हो जब भीतर ईर्ष्या मौजूद है? कैसे तुम समर्पण कर सकते हो जब भीतर हिंसा मौजूद है? नहीं, समर्पण केवल तभी संभव है, जब तुम पूरी तरह शुद्ध हो।

कैसे तुम परमात्मा के सामने जा सकते हो और अपनी घृणा, हिंसा, ईर्ष्या—वैमनस्य को उसके चरणों में अर्पित कर सकते हो? नहीं। केवल जब तुम शुद्ध होते हो, एक शुद्धता का फूल—तब तुम प्रविष्ट होते हो मंदिर में और उसके चरणों में चढ़ा देते हो।

तुम्हें समर्पण के योग्य होना होता है, क्योंकि समर्पण बहुत बड़ी बात है। उसके पार कुछ नहीं बचता है। तुम अपने संकल्प और प्रयास से समर्पण नहीं कर सकते, क्योंकि संकल्प और प्रयास का संबंध अहंकार से है। अहंकार समर्पण नहीं कर सकता है। जब तुम स्वयं का अध्ययन करते हो, देखते हो स्वयं को, तो अहंकार तिरोहित हो जाता है। तुम तो बचते हो, लेकिन कोई 'मैं' नहीं बचता। तुम एक विराट शून्य होते हो, जिसमें कहीं कोई 'मैं' नहीं होता है। एक अनंत— असीम अस्तित्व होता है, लेकिन कोई 'मैं' नहीं होता है। शुद्ध चेतना होती है, लेकिन अहंकार नहीं होता। तब समर्पण संभव है।'समाधि का पूर्ण आलोक फलित होता है—ईश्वर के प्रति समर्पण घटित होने पर।'

समाधि का पूर्ण आलोक फलित होता है तुम प्रकाश ही हो जाते हो। हर चीज खो जाती है। तुम एक शुद्ध ऊर्जा होते हो; और प्रकाश शुद्धतम ऊर्जा है। अब वैज्ञानिक, भौतिक—शास्त्री, कहते हैं कि यदि कोई चीज प्रकाश की गति से चले, तो वह प्रकाश बन जाएगी। यदि ईंट को प्रकाश की गति से फेंका जाए, तो ईंट खो जाएगी। वह प्रकाश बन जाएगी। क्योंकि उस गति पर चीजें मिट जाती हैं, केवल ऊर्जा ही बचती है। अभी पता लगा है, इसी शताब्दी में पता लगा है कि इस बात की संभावना है कि सभी पदार्थ प्रकाश में, ऊर्जा में परिवर्तित हो सकते हैं। पदार्थ धीमी गति वाली ऊर्जा है; प्रकाश तीव्र गति वाली ऊर्जा है।

अहंकार एक भौतिक पदार्थ है, वह धीमी गति वाली ऊर्जा है। जब उसे तुम समर्पित कर देते हो, तो तुम्हें प्रकाश की गति उपलब्ध होती है। फिर तुम कोई ठोस वस्तु नहीं रहते : तब तुम निर्भार ऊर्जा होते हो। और निर्भार ऊर्जा की कोई सीमा नहीं होती; वह असीम होती है। और निर्भार ऊर्जा की परिभाषा किसी और ढंग से नहीं की जा सकती है, उसे कहने का एकमात्र ढंग यही है कि वह प्रकाश है। बाइबिल कहती है, 'ईश्वर प्रकाश है।' कुरान कहता है, 'ईश्वर प्रकाश है।' उपनिषद कहते हैं, 'ईश्वर प्रकाश है।' तुम प्रकाश हो जाते हो।

'समाधि का पूर्ण आलोक फलित होता है—ईश्वर के प्रति समर्पण घटित होने पर।'

पहले स्वाध्याय से बढ़ना, ताकि तुम भीतर के ईश्वर का साक्षात्कार कर सको। फिर समर्पण कर देना उसके प्रति। पूरे के पूरे जैसे तुम हो—उसके प्रति समर्पित हो जाना। और ध्यान रहे कि वह समर्पण कोई प्रयास नहीं होता है, इसलिए इसकी फिक्र मत करना कि समर्पण कैसे करें। तुम स्वाध्याय की फिक्र करना; समर्पण तो छाया की भांति पीछे चला आता है। समर्पण की कोई विधि नहीं होती। जब तुम जान लेते हो स्वयं को, तो तुम जान लेते हो कि कैसे झुक जाएं और समर्पित हो जाएं। परमात्मा के चरणों में समर्पित होकर तुम स्वयं परमात्मा हो जाते हो। अस्तित्व के साथ संघर्ष में तुम एक कुरूप अहंकार बने रहते हो। अस्तित्व के प्रति समर्पित होकर तुम अस्तित्व के साथ एक हो जाते हो। समर्पण, लेट—गो परम मंत्र है।

लेकिन तुम्हारे मन में लोभ उठ सकता है : 'फिर प्रतीक्षा क्यों करूं? फिर क्यों न मैं अभी समर्पण कर दूं?' तुम अभी समर्पण नहीं कर सकते। तुम्हीं तो बाधा हो, तो तुम कैसे समर्पण कर सकते हो? जब 'तुम' नहीं होते, तो समर्पण होता है। यदि तुम हो, तो समर्पण संभव नहीं है। तुम नहीं करोगे समर्पण; तुम्हारा खो जाना ही समर्पण होगा। तुम बाहर जाते हो एक द्‌वार से; दूसरे द्‌वार से समर्पण प्रवेश करता है। तुम और समर्पण एक साथ नहीं हो सकते।

तो खयाल में ले लेना : तुम समर्पण नहीं कर सकते हो। अपने को देखना, अपना अध्ययन करना, ताकि तुम और—और शुद्‌ध होते जाओ—इतने शुद्‌ध हो जाओ कि करीब—करीब मिट ही जाओ, केवल एक शुद्‌धता, एक सुवास बचे—तो समर्पण घटित होता है।

इस सूत्र में पतंजलि केवल इतना ही कह रहे हैं कि समाधि का पूर्ण आलोक फलित होता है—ईश्वर के प्रति समर्पण घटित होने पर। वे यह नहीं कह रहे हैं कि समर्पण कैसे किया जाए। वे यह नहीं बता रहे हैं कि समर्पण करना ही होता है। वे तो बस संकेत कर रहे हैं एक घटना की तरफ। स्वाध्याय से तुम साक्षात्कार करोगे ईश्वर का। यदि तुमने स्वाध्याय किया है, तो तुम मंदिर में प्रवेश कर जाते हो, तुम्हें साक्षात्कार होता है ईश्वर का, और फिर कोई समस्या नहीं रहती। जिस घड़ी तुम 'उसका' साक्षात्कार करते हो, समर्पण घटित होता है। यह करने की बात नहीं है, ऐसा होता है।

आज इतना ही।

प्रवचन 56 - साक्षी: परम विवेक

प्रश्न—सार:

1—क्या कुछ लोग दूसरों की उपेक्षा अधिक मूढ़ होते है?

2—आत्म—विश्लेषण और आत्म—स्मरण के बीच क्या फर्क है?

3—अब प्रवचन के दौरान कई बार आप दबी—दबी हंसी हंसते है?

4—विजय आनंद की एक फिल्म की सफलता के लिए क्या आपने आर्शीवाद दिया था?

5—आत्म—स्मरण ओर साक्षी के बीच क्या भेद है?

6—कुछ समय तक शुद्‌ध चेतना का अनुभव करने के बाद

क्या फिर नीचे गिरना संभव है?

7—बुद्‌ध की तरह क्या जीसस भी स्वार्थी थे?

जीसस का क्या अर्थ है इस कथन से : 'जिसे मेरे पीछे आना है,

उसे पहले स्वयं को इंकार करना होगा?'

8—जीवन की समस्याओं के आधार में मेरे मन का कितना हिस्सा है?

मेरी जिम्मेदारी क्या है?

9—क्या छोटे बच्चों को आभा—मंडल दिखाई देता है?

10—बुद्धत्व को उपलब्ध लोगों में पुरूषों की अपेक्षा

स्त्रियों की संख्या इतनी कम क्या है।

पहला प्रश्न :

क्या कुछ लोग दूसरों की अपेक्षा अधिक मूड होते हैं?

मन मात्र मूढ़ है। जब तक तुम मन के पार नहीं जाते, तुम मूढ़ता के पार नहीं जाते; जैसा मन है, वह मूढ़ है। और मन दो प्रकार के होते हैं : बहुत जानने वाला मन और कम जानने वाला मन। लेकिन दोनों ही मूढ़ हैं। बहुत जानकारी वाले मन को बुद्धिमान माना जाता है, लेकिन वह बुद्धिमान होता नहीं। कम जानकारी वाला मन मूढ़ माना जाता है, लेकिन दोनों ही मूढ़ हैं।

अपनी मूढ़ता में भी तुम बहुत कुछ जान सकते हो; तुम बहुत जानकारी इकट्ठी कर सकते हो; तुम शास्त्रों का बड़ा बोझ लिए चल सकते हो, तुम प्रशिक्षित कर सकते हो मन को, संस्कारित कर सकते हो मन को; तुम बहुत कुछ कंठस्थ कर सकते हो, तुम करीब—करीब एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका बन सकते हो। लेकिन इन बातों से तुम्हारी मूढ़ता में कोई अंतर नहीं पड़ता है। असल में अगर तुम्हारा मिलना किसी ऐसे व्यक्ति से हो जो मन के पार जा चुका हो—तो तुम्हारी मूढ़ता ज्यादा स्पष्ट होगी उनकी अपेक्षा जिनके पास कोई जानकारी नहीं है, जो कुछ नहीं जानते हैं। केवल ज्यादा जानना ही ज्ञानी होना नहीं है, और केवल कम जानना ही कु होना नहीं है।

मूढ़ता एक तरह की नींद है, एक गहरी बेहोशी है। तुम कुछ बातें किए चले जाते हो, नहीं जानते हुए कि तुम क्यों कर रहे हो। तुम हजारों जाल निर्मित करते रहते हो, नहीं जानते हुए कि क्यों कर रहे हो। तुम जीवन से गुजरते हो गहन निद्रा में। वह निद्रा मूढ़ता है। मन के साथ तादात्म्य बना लेना मूढ़ता है। यदि तुम्हें स्मरण आ जाता है, यदि तुम सजग हो जाते हो और मन के साथ तुम्हारा तादात्म्य खो जाता है, यदि तुम मन नहीं रहते, यदि तुम मन का अतिक्रमण कर जाते हो, तो प्रज्ञा का आविर्भाव होता है। प्रज्ञा एक तरह का जागरण है। सोए हुए तुम मूढ़ होते हो। जागते ही मूढ़ता खो जाती है : पहली बार समझ का, प्रज्ञा का जन्म होता है।

बिना अपने को जाने भी बहुत कुछ जान लेना संभव है; लेकिन तब वह सब जानना मूढ़ता का ही हिस्सा है। ठीक इससे विपरीत बात भी संभव है. स्वयं को जानना—और कुछ भी न जानना। लेकिन स्वयं को जानना पर्याप्त है बुद्धिमान होने के लिए; और वह व्यक्ति जो स्वयं को जानता है वह हर परिस्थिति में विवेक से काम करेगा। वह प्रतिसंवेदन करेगा। उसका प्रतिसंवेद कोई प्रतिक्रिया न होगी; वह अतीत से नहीं आएगा। वह वर्तमान में जीएगा; वह अभी और यहीं जीएगा।

मूढ़ मन सदा अतीत स्मृति से काम करता है। प्रज्ञा का अतीत से कोई संबंध नहीं होता। प्रज्ञा होती है सदा वर्तमान में। मैं तुम से एक प्रश्न पूछता हूं अगर तुम्हारी प्रज्ञा से उसका उत्तर आता है, तुम्हारी स्मृति से उत्तर नहीं आता, तो तुम मूढ़ नहीं हो। लेकिन यदि उत्तर स्मृति से आता है, प्रज्ञा से नहीं—तो तुम प्रश्न को देखते भी नहीं। असल में प्रश्न की तो तुम्हें फिक्र ही नहीं होती; तुम्हारे पास तो अपना रेडीमेड उत्तर होता है।

मुल्ला नसरुद्दीन के विषय में कहानी है कि एक बार सम्राट उसके गाव में आने वाला था। सम्राट से मिलने में गाव वाले बहुत घबडाए हुए थे, तो उन सब ने नसरुद्दीन से कहा, 'आप हमारे प्रतिनिधि हैं। हम मूढ़ हैं, अज्ञानी हैं। केवल आप ही बुद्धिमान हैं यहां, तो कृपा करके स्थिति को सम्हाले, क्योंकि दरबारी तौर—तरीकों का हमें कुछ पता नहीं है, और सम्राट यहां पहली बार आ रहा है।' नसरुद्दीन ने कहा, 'निश्चित ही, मैंने बहुत से सम्राटों को देखा है और मैं बहुत से दरबारों में गया हूं। कोई चिंता मत करो।'

लेकिन दरबारियों को भी चिंता थी गांव की, तो वे आए कि जरा देखें क्या स्थिति है। जब उन्होंने पूछा कि उनका प्रतिनिधित्व कौन करेगा, तो गांव वालों ने कहा, 'मुल्ला नसरुद्दीन हमारा प्रतिनिधि है। वह हमारा नेता है, हमारा मार्गदर्शक है, गाव का समझदार आदमी है।'

तो उन्होंने मुल्ला नसरुद्दीन को कहा, 'तुम्हें बहुत फिक्र करने की जरूरत नहीं। सम्राट सिर्फ तीन ही प्रश्न पूछने वाले हैं। पहला प्रश्न होगा तुम्हारी उम्र के बारे में। तुम्हारी उम्र क्या है?'

नसरुद्दीन ने कहा, 'सत्तर साल।'

'तो याद रखना। बहुत ज्यादा चकित मत हो जाना चकाचौंध से, सम्राट से और राज दरबारियों से। जब सम्राट पूछे कि तुम्हारी उम्र क्या है, कह देना सत्तर साल—न एक शब्द ज्यादा कहना न एक शब्द कम, वरना तुम मुश्किल में पड़ सकते हो। फिर वे पूछेंगे कि तुम कितने समय से गांव की मस्जिद में काम कर रहे हो? तुम कितने समय से मौलवी हो यहां? तो ठीक—ठीक बता देना। कितने दिनों से काम कर रहे हो तुम?'

उसने कहा, 'तीस साल से।'

बस, ऐसे ही प्रश्न। फिर सम्राट आया। जिन लोगों ने नसरुद्दीन को तैयार किया था उन्होंने ही सम्राट को भी तैयार किया था, सम्राट से कहा था, 'इस गांव के लोग बड़े सीधे —सादे हैं और उनका नेता कुछ मूढ़ मालूम पड़ता है, तो कृपया और कुछ न पूछें। ये रहे प्रश्न...।'

लेकिन सम्राट भूल गया। तो 'तुम कितने साल के हो?' पूछने से पहले उसने पूछ लिया, 'कितने साल से तुम यहां मौलवी हो?'

अब नसरुद्दीन के पास तो तय उत्तर थे। उसने कहा, 'सत्तर साल।'

सम्राट थोड़ा उलझन में दिखाई पड़ा क्योंकि यह आदमी सत्तर साल से ज्यादा का लगता नहीं, तो क्या यह जन्म से ही मौलवी है! फिर उसने कहा, ' आश्चर्य है मुझे। तो फिर तुम्हारी उम्र क्या है?' नसरुद्दीन ने कहा, 'तीस साल।' क्योंकि यही तय हुआ था कि पहले उसे कहना है, 'सत्तर साल', फिर उसे कहना है, 'तीस साल।'

सम्राट ने कहा, 'क्या तुम पागल हो?'

नसरुद्दीन ने कहा, 'महाराज, हम दोनों पागल हैं—अपने—अपने ढंग से। आप गलत प्रश्न पूछ रहे हैं—और मुझे ठीक उत्तर देने हैं। यही है समस्या। मैं बदल नहीं सकता, क्योंकि वे लोग यहां मौजूद हैं, जिन्होंने मुझे तैयार किया है। वे मेरी ओर देख रहे हैं। मैं बदल नहीं सकता, और आप गलत प्रश्न पूछ रहे हैं। हम दोनों अपने— अपने ढंग से पागल हैं। मैं विवश हूं ठीक उत्तर देने के लिए—यह मेरा पागलपन है। यदि पहले से ही उत्तर तैयार न होते तो मैंने ठीक उत्तर दिए होते आपको, लेकिन अब मुश्किल है। और आप गलत प्रश्न पूछ रहे हैं, गलत क्रम में पूछ रहे हैं!'

ऐसा होता है मूढ़ मन के साथ। निरंतर अपने पर ध्यान देना : मुल्ला नसरुद्दीन तुम्हारा हिस्सा है। जब भी तुम किसी प्रश्न का रेडीमेड उत्तर देते हो, तो तुम फु ढंग से व्यवहार कर रहे हो। स्थिति भिन्न हो सकती है, प्रसंग भी अलग हो सकता है, संदर्भ नया हो सकता है, और तुम अतीत से ही काम कर रहे हो।

वर्तमान में जीओ। बिना तैयारी के जीओ। वर्तमान की सजगता से जीओ; अतीत से मत जीओ। तब तुम मूड़ नहीं हो।।

अब तुम समझ सकते हो कि मैं क्यों कहता हूं कि मन मूढ़ है : क्योंकि मन केवल अतीत है। मन है संचित अतीत। जीवन तो निरंतर बदल रहा है। मन नहीं बदलता—वह मृत स्मृतियों से, मृत जानकारियों से दबा रहता है। संदर्भ हर घड़ी बदल रहा है, प्रश्न हर घड़ी बदल रहा है, सम्राट हर घड़ी बदल रहा है—और तुम बंधे—बंधाए उत्तर लिए बैठे हो। तुम हमेशा मुश्किल में पड़ोगे; मूढ़ मन हमेशा मुश्किल में पड़ता है, परेशान होता है। और किसी कारण से नहीं, केवल इसी कारण से कि वह बहुत ज्यादा तैयार होता है, बहुत निश्चित होता है।

प्रत्येक क्षण बिना किसी तैयारी के रहो। तब तुम निर्दोष होते हो, तब तुम निर्भार होते हो। जब भी तुम्हारे पास पहले से तैयार उत्तर होता है तो तुम प्रश्न को ठीक—ठीक सुनते ही नहीं। इससे पहले कि तुम प्रश्न सुनो, उत्तर पहले से ही मन में तैयार होता है; तो उत्तर तुम्हारे और प्रश्न के बीच खड़ा हो जाता है। इससे पहले कि तुम परिस्थिति को भलीभांति समझ पाते, तुम प्रतिक्रिया करने लगते हो।

मन है अतीत, मन है स्मृति—इसीलिए मन मूढ़ है—सभी मन। तुम गांव के ग्रामीण हो सकते हो, शायद संसार के बारे में बहुत ज्यादा नहीं जानते। तुम पूना यूनिवर्सिटी के प्रोफेसर हो सकते हो, बहुत ज्यादा जानते हो। उससे कुछ अंतर नहीं पड़ता। असल में कई बार ऐसा होता है कि ग्रामीण ज्यादा बुद्धिमान होते हैं, क्योंकि वे कुछ नहीं जानते। उन्हें निर्भर रहना पड़ता है बुद्धिमत्ता पर। वे अपनी जानकारी पर निर्भर नहीं रह सकते; उनके पास कोई जानकारी होती ही नहीं। यदि तुम सजग हो, तो तुम देख सकते हो ग्रामीण के भोले —भालेपन को। वह बच्चों जैसा होता है।

बच्चे ज्यादा बुद्धिमान होते हैं बडों की अपेक्षा, बच्चे ज्यादा बुद्धिमान होते हैं बूढ़ों की अपेक्षा। इसीलिए तो बच्चे इतनी सरलता से सब कुछ सीख सकते हैं। वे ज्यादा बुद्धिमान होते हैं। अभी मन मौजूद नहीं होता। वे मनविहीन होते हैं। वे अतीत को नहीं ढोते, उनके पास वह होता ही नहीं। ने सीधे—सीधे देखते हैं, विस्मय—विमुग्ध होते हैं—हर चीज के प्रति। वे सदा देखते हैं परिस्थिति को। असल में उनके पास कुछ और होता नहीं देखने के लिए—कोई रेडीमेड तैयार उत्तर नहीं होते। कई बार बच्चे इतने सुंदर और जीवंत ढंग से उत्तर देते हैं कि उस ढंग से ज्यादा उम्र के व्यक्ति नहीं दे सकते। ज्यादा उम्र वालों के पास हमेशा मन मौजूद होता है उत्तर देने के लिए। उनके पास एक नौकर है, एक यंत्र है, एक बायो—कंप्यूटर है, और वे उस पर निर्भर रहते हैं। जितनी ज्यादा तुम्हारी उम्र होती जाती है, उतने ज्यादा तुम मूढ़ होते जाते हो!

निश्चित ही, के यही सोचते हैं कि वे बहुत बुद्धिमान हो गए हैं, क्योंकि उन्हें बहुत से उत्तर पता हैं। लेकिन यदि यही बुद्धिमत्ता है तो फिर कंप्यूटर तो सर्वाधिक बुद्धिमान व्यक्ति होंगे! तब तुम्हें कोई जरूरत नहीं बुद्ध और जीसस और जरथुस्त्र के विषय में सोचने की, बिलकुल भी नहीं। कंप्यूटर

ज्यादा बुद्धिमान होंगे क्योंकि वे ज्यादा जानते होंगे। वे सब कुछ जान सकते हैं, उनमें प्रत्येक जानकारी भरी जा सकती है। और वे बेहतर ढंग से काम करेंगे, क्योंकि वे यंत्र हैं।

नहीं, बुद्धिमत्ता का जानकारी से कोई भी संबंध नहीं है। उसका संबंध है सजगता से, प्रज्ञा से, समझ से। ज्यादा सजग होओ। फिर तुम मन की जकड़ में नहीं रहते। फिर तुम मन का उपयोग कर सकते हो जब उसकी जरूरत हो। लेकिन मन तुम्हारा उपयोग नहीं करता। फिर मन मालिक नहीं रहता—तुम मालिक होते हो, और मन सेवक होता है। जब भी तुम्हें जरूरत होती है सेवक की तुम उसे बुला लेते हो, लेकिन तुम नियंत्रित नहीं होते, तुम प्रभावित नहीं होते मन के द्वारा।

सामान्यतया तो मन की स्थिति ऐसी है जैसे कि कार चला रही हो ड्राइवर को। कार कहती है, 'इधर जाओ,' और ड्राइवर को मानना पड़ता है। कई बार ऐसा होता है : ब्रेक फेल हो जाते हैं, पहिया ठीक काम नहीं करता, तुम जाना चाहते हो दक्षिण और कार जाती है उत्तर की ओर। सारी व्यवस्था अस्तव्यस्त हो जाती है। यह एक दुर्घटना है।

लेकिन दुर्घटना एक सामान्य बात हो गई है मानव—मन के लिए। निरंतर ही यह होता है कि तुम कहीं जाना चाहते हो और मन कहीं और जाता है। तुम जाना चाहते थे मंदिर और मन सोच रहा था थिएटर जाने की, और तुम स्वयं को थिएटर में पाते हो। तुम शायद घर से चले होओगे मंदिर जाने के लिए, प्रार्थना करने के लिए। और बैठे होते हो तुम थिएटर में—क्योंकि कार उसी ओर जाना चाहती थी, और तुम विवश होते हो।

बुद्धिमत्ता है मालकियत—अपने ऊपर मालकियत। शरीर है एक यंत्र, मन है एक यंत्र. तुम मालिक हो। कोई तुमको चलाता नहीं, मन तुम्हारी आज्ञा से चलता है। यह है बुद्धिमत्ता।

तो अगर तुम पूछते हो, 'क्या कुछ लोग दूसरों की अपेक्षा अधिक मूढ़ होते हैं?' यह निर्भर करता है। मेरे देखे, कुछ बहुत जानने वाले मूढ़ हैं, कुछ कम जानने वाले मूढ़ हैं। ये दो साधारण कोटियां हैं, क्योंकि तीसरी कोटि इतनी अनूठी है कि तुम उसे कोटि नहीं कह सकते। बहुत दुर्लभ, कभी—कभार, कोई बुद्ध होता है : बुद्ध होते हैं विवेकपूर्ण, प्रज्ञावान। लेकिन फिर वे विद्रोही मालूम होते हैं क्योंकि वे तुम्हारे अनुकूल नहीं पड़ते; तुम्हारे बंधे—बंधाए उत्तर नहीं देते। वे राजपथ पर नहीं चलते; उनका अपना ही पथ होता है। वे अपना रास्ता स्वयं बनाते हैं। बुद्धिमत्ता सदा अपना अनुसरण करती है, वह किसी दूसरे का अनुसरण नहीं करती। बुद्धिमत्ता अपना रास्ता स्वयं बनाती है। केवल मूढ़ व्यक्ति अनुसरण करते हैं।

यदि तुम यहां मेरे साथ हो तो तुम यहां दो ढंग से हो सकते हो। तुम बुद्धिमत्तापूर्ण ढंग से यहां हो सकते हो मेरे साथ : तब तुम सीखोगे मुझ से, लेकिन तुम मेरा अनुसरण न करोगे। तुम अनुसरण करोगे तुम्हारी अपनी समझ का। लेकिन यदि तुम मूढ़ हो, तो तुम सीखने की फिक्र नहीं करते. तुम केवल मेरा अनुसरण करते हो। वह बात आसान, कम जोखम की, कम खतरनाक, ज्यादा सुरक्षित,

निरापद मालूम पड़ती है, क्योंकि तुम सदा मुझ पर जिम्मेवारी डाल सकते हो। लेकिन यदि तुम सुरक्षित—निरापद ढंग चुनते हो, तो तुम मृत्यु को चुन रहे हो। तुम जीवन को नहीं चुन रहे हो। जीवन खतरनाक और असुरक्षित होता है। बुद्धिमत्ता सदा जीवन को चुनेगी—किसी भी कीमत पर, चाहे कुछ भी दाव पर लगाना पड़े, क्योंकि केवल वही एकमात्र ढंग है जीवंत होने का।

बुद्धिमत्ता गुणवत्ता है सजगता की। सजग व्यक्ति मूढ़ नहीं होते।

दूसरा प्रश्न :

आत्म—विश्लेषण और आत्म—स्मरण के बीच क्या फर्क है?

बहुत बड़ा फर्क है। आत्म—विश्लेषण है स्वयं के विषय में सोचना। आत्म—स्मरण है बिलकुल न सोचना. आत्म—स्मरण है स्वयं के प्रति सजग होना। भेद सूक्ष्म है लेकिन फिर भी बड़ा है। पश्चिमी मनोविज्ञान जोर देता है आत्म—विश्लेषण पर और पूरब का मनोविज्ञान जोर देता है आत्म—स्मरण पर।

जब तुम आत्म—विश्लेषण करते हो, तो तुम क्या करते हो? उदाहरण के लिए तुम क्रोधित हो, तो तुम सोचने लगते हो क्रोध के विषय में—कैसे यह उत्पन्न होता है। तुम विश्लेषण करने लगते हो कि यह क्यों उत्पन्न हुआ। तुम निर्णय करने लगते हो कि यह अच्छा है या बुरा। तुम तर्क बिठाने लगते हो कि तुम्हें इसलिए क्रोध आया क्योंकि स्थिति ही ऐसी थी। तुम क्रोध को लेकर सोच—विचार करते हो। तुम क्रोध का विश्लेषण करते हो।

लेकिन ध्यान का केंद्र—बिंदु क्रोध रहता है, 'आत्म' नहीं। तुम्हारी सारी चेतना क्रोध पर केंद्रित हो जाती है। तुम देखते हो, विश्लेषण करते हो, मनन करते हो, चिंतन करते हो। यह हिसाब लगाने की कोशिश करते हो कि इससे कैसे बचें, कि क्या करें कि फिर क्रोध न आए! यह सोचने की प्रक्रिया है। तुम निर्णय लोगे कि यह बुरा है, क्योंकि यह विनाशकारी है। तुम प्रतिज्ञा करोगे कि मैं फिर यही गलती कभी नहीं करूंगा। तुम इस क्रोध पर संकल्प द्वारा नियंत्रण करने की कोशिश करोगे। इसीलिए पश्चिमी मनोविज्ञान विश्लेषणात्मक हो गया है—वह विश्लेषण करता है, तोड़ता है।

पूरब का जोर क्रोध पर नहीं है। पूरब का जोर है अंतस चेतना पर। जब तुम्हें क्रोध आए तो सजग हो जाना, बहुत होश से भर जाना—सोचना नहीं, क्योंकि सोचना नींद का हिस्सा है। तुम गहरी नींद में

सोए—सोए भी सोच सकते हो, सजगता की कोई जरूरत नहीं होती। असल में तुम निरंतर सोचते रहते हो जरा भी सजग हुए बिना। सोचना जारी रहता है—हमेशा। जब तुम रात गहरी नींद सोए होते हो, तब भी सोचना जारी रहता है; मन अपना भीतरी वार्तालाप जारी रखता है। यह यंत्रवत चलता रहता है।

पूरब का मनोविज्ञान कहता है, 'सजग रहो। क्रोध का विश्लेषण मत करो, उसकी कोई जरूरत नहीं है। बस उसे देखते रहो, लेकिन देखना सजगता के साथ। सोचने मत लगना।' असल में यदि तुम सोचने लगते हो, तो सोचना क्रोध को देखने में एक बाधा बन जाएगा। तब सोच —विचार ढंक लेगा क्रोध को। तब सोच—विचार बादल की भांति उसे आच्छादित कर लेगा, स्पष्टता खो जाएगी। बिलकुल मत सोचो। निर्विचार अवस्था में रहो, और केवल देखते रहो।

जब तुम्हारे और क्रोध के बीच विचार की हलकी सी तरंग भी नहीं बचती तो क्रोध से साक्षात्कार होता है। तुम उसका विश्लेषण नहीं करते। तुम उसके स्रोत तक पहुंचने की फिक्र नहीं करते, क्योंकि स्रोत है अतीत में। तुम उसके बारे में कोई निर्णय नहीं लेते, क्योंकि जिस क्षण तुम कोई निर्णय लेते हो, सोचना शुरू हो जाता है। तुम कोई प्रतिज्ञा नहीं करते कि मैं ऐसा नहीं करूंगा, क्योंकि प्रतिज्ञा तुम्हें भविष्य में ले जाती है। सजगता के साथ तुम क्रोध की भाव—दशा में रहते हो—एकदम अभी और यहीं। तुम्हें उसे बदलने में कोई रुचि नहीं होती, तुम्हें उसके बारे में सोचने में कोई रुचि नहीं होती। तुम्हें रुचि होती है उसे सीधे—सीधे, प्रत्यक्ष रूप से देखने में। तब यह आत्म—स्मरण है।

और यही इसका सौंदर्य है कि यदि तुम क्रोध को ठीक से देख लो, तो वह तिरोहित हो जाता है। न केवल इस क्षण क्रोध तिरोहित हो जाता है तुम्हारे भर आख देखने से उसका खो जाना तुम्हें कुंजी दे जाता है कि संकल्प का उपयोग करने की कोई जरूरत नहीं। भविष्य के लिए निर्णय लेने की कोई जरूरत नहीं, और उसके मूल—स्रोत तक जाने की कोई जरूरत नहीं जहां से वह आता है। वह बात ही व्यर्थ है। अब तुम्हारे हाथ कुंजी आ जाती है. देखते रहो क्रोध को, और क्रोध मिट जाता है। और यह देखना हमेशा तुम्हारे हाथ में है। जब भी क्रोध आए, तुम देख सकते हो; तब यह देखना और— और गहरा होता जाता है।

देखने की तीन अवस्थाएं हैं। पहली, जब क्रोध आकर जा चुका होता है। तुम बस पूंछ देखते हो जाते हुए—हाथी तो निकल गया होता है, केवल पूंछ होती है। क्योंकि जब क्रोध था, तो असल में तुम इतने ग्रस्त थे उससे कि तुम उसे देख नहीं सकते थे। जब क्रोध करीब—करीब जा चुका होता है, निन्यानबे प्रतिशत खो चुका होता है—केवल एक प्रतिशत, उसका अंतिम हिस्सा खो रहा होता है, विलीन हो रहा होता है कहीं सुदूर क्षितिज पर—तब तुम उसके प्रति होशपूर्ण होते हो : यह है सजगता की पहली अवस्था। ठीक है, लेकिन पर्याप्त नहीं।

दूसरी अवस्था है जब हाथी ही मौजूद होता है, पूंछ मात्र नहीं : जब स्थिति अपने शिखर पर होती है। तुम सचमुच ही क्रोध के शिखर पर होते हो—उबल रहे होते हो, भभक रहे होते हो—तब तुम सजग हो जाते हो।

फिर एक तीसरी अवस्था है. क्रोध अभी आया नहीं है, अभी आने—आने को है—पूछ नहीं, बल्कि सिर दिख रहा है। वह बस प्रवेश कर ही रहा होता है तुम्हारी चेतना के क्षेत्र में और तुम सजग हो जाते हो—तब हाथी प्रवेश ही नहीं कर पाता। तुमने पैदा होने से पहले ही मार दिया जानवर को। यह है संतति—निरोध। घटना घटी ही नहीं, तो वह कोई चिहन नहीं छोड़ती।

यदि तुम उसे बीच में रोकते हो, तो सिर तो प्रवेश कर ही चुका, आधी घटना तो घट ही चुकी। वह कुछ न कुछ प्रभाव छोड़ जाएगी तुम पर—कोई निशान, कोई बोझ, कोई घाव—तुम खरोंच अनुभव करोगे। चाहे तुम अब इसका पूरा असर न भी होने दो, तो भी वह प्रवेश कर चुका है। यदि तुम पूंछ को देखते हो, तब तो सारी घटना घट ही चुकी होती है। ज्यादा से ज्यादा तुम पछता सकते हो; और पछताना है सोच—विचार। फिर तुम शिकार हो जाते हो मन के।

एक सजग व्यक्ति कभी नहीं पछताता। पछताने में कोई सार भी नहीं है, क्योंकि सजगता जैसे—जैसे और गहरी होती है, तो वह पूरी प्रक्रिया को शुरू होने से पहले ही रोक सकता है। तो पछताने की जरूरत ही क्या है? और ऐसा नहीं कि वह उसे रोकने का प्रयास करता है—यही है उसका सौंदर्य—वह केवल उसे देखता है। जब तुम देखते हो किसी भाव—दशा को, किसी परिस्थिति को, किसी भावना को, अनुभूति को, विचार को—जब तुम पूरी सजगता से देखते हो—तो वह देखना प्रकाश की भांति होता है. अंधकार खो जाता है।

आत्म—विश्लेषण और आत्म—स्मरण के बीच बहुत फर्क है। मैं आत्म—विश्लेषण के पक्ष में नहीं हूं। असल में आत्म—विश्लेषण थोड़ा रुग्ण है यह अपने घाव उघाड़ने जैसा है। इससे मदद न मिलेगी। इससे घाव भरेंगे नहीं। वस्तुत: इसका उलटा ही असर होगा : यदि तुम अपने घाव में अंगुली डालते रहो तो घाव हमेशा हरा रहेगा।

आत्म—विश्लेषण ठीक नहीं है। आत्म—विश्लेषण करने वाले व्यक्ति सदा विकृत होते हैं, बीमार होते हैं। वे बहुत ज्यादा सोचते रहते हैं। आत्म—विश्लेषण करने वाले लोग बंद होते हैं। वे अपने घावों से और अपनी पीड़ा से और अपनी चिंता, उद्विग्नता से खेलते रहते हैं—और तब पूरा जीवन ही एक समस्या मालूम पड़ता है, जिसका कोई हल नजर नहीं आता। हर चीज समस्या मालूम पड़ती है आत्म—विश्लेषण करने वाले व्यक्ति को। कुछ भी बात होती है, वह समस्या बन जाती है!

और फिर वह बहुत ज्यादा भीतर जीने लगता है; वह बाहर नहीं जीता। संतुलन खो जाता है।

आत्म—विश्लेषण करने वाले लोग जीवन से भाग जाते हैं और हिमालय चले जाते हैं। वे विकृत हैं बीमार हैं, रोगग्रस्त हैं। स्वस्थ व्यक्ति में एक संतुलित गति होती है. वह भीतर भी जा सकता है, वह बाहर भी जा सकता है। उसके लिए भीतर—बाहर की कोई समस्या नहीं होती। असल में वह आंतरिक जीवन और बाहरी जीवन को बांटता ही नहीं। उसका प्रवाह मुक्त होता है, उसकी गति मुक्त होती है। जब जरूरत होती है तो वह भीतर मुड़ जाता है। जब जरूरत होती है तो वह बाहर आ जाता है। वह बाहरी संसार के विरुद्ध नहीं होता, वह भीतरी संसार के पक्ष में नहीं होता। भीतर और बाहर ठीक अंदर जाती और बाहर जाती श्वास की भांति होने चाहिए दोनों की जरूरत है।

आत्म—विश्लेषक बहुत सोच—विचार में उलझ जाते हैं, बहुत भीतर बंद हो जाते हैं। वे बाहर जाने में डरते हैं, क्योंकि जब भी वे बाहर जाते हैं, चारों तरफ समस्याएं हैं, तो वे बंद होकर बैठ जाते हैं। वे झरोखों, खिड़कियों से रहित गुफा बन जाते हैं। और फिर समस्याएं ही समस्याएं हैं—मन बनाए चला जाता है समस्याएं और वे उनको सुलझाने की कोशिश करते रहते हैं!

आत्म—विश्लेषण करने वाले आदमी की पागल होने की बहुत संभावना होती है। अंतर्मुखी व्यक्ति बहिर्मुखी व्यक्तियों की अपेक्षा ज्यादा पागल होते हैं। यदि तुम पागलखाने में जाओ तो तम पाओगे कि वहां निन्यानबे प्रतिशत लोग अंतर्मुखी हैं, आत्म—विश्लेषक हैं, और बहुत से बहुत एक प्रतिशत ही बहिर्मुखी हैं। बहिर्मुखी लोगों को चीजों की भीतरी अवस्था की फिक्र नहीं होती। वे सतत पर जीते हैं। वे सोचते ही नहीं कि समस्याएं हैं। वे सोचते हैं कि जीवन मजा करने के लिए है। खाओ, पीओ और मौज करो—यही उनका कुल धर्म है, इसके अलावा कुछ भी नहीं है।

तुम बहिर्मुखी व्यक्तियों को सदा ही अंतर्मुखी व्यक्तियों की अपेक्षा ज्यादा स्वस्थ पाओगे क्योंकि कम से कम उनका संपर्क तो होता है समग्र के साथ। अंतर्मुखी सारा संपर्क खो देता है समग्र के साथ। वह जीता है अपने सपनों में। वह श्वास बाहर नहीं छोड़ता। जरा सोचो, यदि तुम श्वास बाहर न आने दो, तो बीमार पड़ जाओगे, क्योंकि भीतर गई श्वास सदा ताजी न रहेगी। कुछ पलों के भीतर ही वह बासी पड जाएगी, कुछ पलों में ही वह आक्सीजन खो देगी, जीवन खो देगी। कुछ पलों में ही वह चुक जाएगी—और तब तुम बासी हवा में, मृत हवा में जीओगे। तुम्हें बाहर जाना होगा जीवन के नए स्रोत खोजने के लिए ताजी हवा पाने के लिए। तुम्हें सतत बाहर से भीतर, भीतर से बाहर गति करते रहना होगा।

मेरे देखे, यदि तुम अंतर्मुखी और बहिर्मुखी के बीच चुनना चाहते हो, तो मैं तुम से कहूंगा कि बहिर्मुखी चुनना। वह कम बीमार है—सतह पर जीता है, सत्य को बिलकुल नहीं जान सकता, लेकिन कम से कम पागल तो नहीं होता। अंतर्मुखी जान सकता है सत्य को, लेकिन वह सौ में से एक संभावना है। निन्यानबे प्रतिशत संभावना तो यही है कि वह पागल हो जाएगा।

मैं गतिशील जीवन के पक्ष में हूं। जीवन में एक लयबद्धता होनी चाहिए : तुम बाहर जाओ, तुम भीतर आओ, और कहीं भी रुकना नहीं। केवल सजग रहना। स्मरण बनाए रखना। सतत स्मरण बना रहे। जब तुम बाहर के संसार में हो, तब भी स्मरण बना रहे। और जब तुम अपने भीतर होओ, तब भी स्मरण बना रहे। होश को सदा जगाए रखना, रोशन रखना, जीवंत रखना। सजगता की लौ खो न जाए—बस यही असली बात है। फिर बाजार में रहो कि मठ में रहो—तुम कभी जीवन में चूकोगे नहीं। तुम जीवन की आत्यंतिक गहराई को उपलब्ध हो जाओगे।

वह आत्यंतिक गहराई है परमात्मा। परमात्मा गतिशीलता है। बाहर और भीतर, अंतर्मुखी और बहिर्मुखी दोनों ही—लेकिन होशपूर्ण।

तीसरा प्रश्न :

अब कभी— कभी आप प्रवचन के दौरान हंसते हैं!

मैं जरूर ज्यादा आध्यात्मिक, ज्यादा धार्मिक हो रहा होऊंगा; क्योंकि जितना तुम धर्म में गहरे उतरते हो, उतना ही तुम जीवन को गैर—गंभीर ढंग से लेते हो। तुम हंसते हो, मुस्कुराते हो। तब जीवन कोई बोझ नहीं रहता। तब तुम्हारा पूरा जीवन एक मुस्कुराहट हो जाता है; वह कोई गंभीर बात नहीं रहती।

लेकिन पूरे संसार में तथाकथित धार्मिक व्यक्ति लोगों को बहुत गंभीर होना सिखाते रहे हैं—लटके हुए, उदास चेहरे। यह रुग्णता है, स्वास्थ्य नहीं। तुम तो हंसी को अपनी प्रार्थना बना लेना। खूब जी भर कर हंसना। हंसी तुम्हारी बंधी ऊर्जाओं को जितना निर्मुक्त करती है उतना और कोई चीज नहीं करती। हंसी तुम्हें जितना निर्दोष बनाती है उतना और कोई चीज नहीं बनाती। हंसी तुम्हें जितना बच्चों जैसा बनाती है उतना और कोई चीज नहीं बनाती। बच्चे हंसते हैं और खिलखिलाते हैं और मुस्कुराते हैं। निश्चित ही वे रोते भी हैं, लेकिन उनका रोना सुंदर होता है।

तो रोओ और हंसो, और इन्हें तुम्हारी प्रार्थना बनने दो। मंदिर जाओ तो शब्दों का उपयोग मत करो। चर्च जाओ तो फिक्र मत करो प्रार्थना के स्वीकृत, अधिकृत पाठ की। ऐसा कुछ है नहीं; कोई प्रार्थना अधिकृत नहीं है। तुम अपनी प्रार्थना निर्मित करो। यदि रोने का भाव हो, तो रोओ। आंसू किन्हीं भी शब्दों की अपेक्षा ज्यादा अर्थपूर्ण होते हैं; वे तुम्हारे हृदय की खबर लाते हैं। वे ज्यादा प्रार्थनापूर्ण, ज्यादा सुंदर, ज्यादा अर्थपूर्ण होते हैं। शब्द मुर्दा होते हैं। आंसू जीवंत होते हैं, ताजा होते हैं—तुम से बह

रहे होते हैं, तुम्हारी गहराई से आ रहे होते हैं। या फिर हंसो. खूब दिल खोल कर हंसों मंदिर के देवता के साथ।

तालमुद में कहा गया है.. और तालमुद एक अदभुत ग्रंथ है। गीता है, बाइबिल है, कुरान है—सारे ग्रंथ गंभीर हैं। तालमुद बहुत अदभुत है। तालमुद में कहा गया है, 'ईश्वर उन लोगों से प्रेम करता है जो दूसरों को हंसाते हैं।' तुम कल्पना नहीं कर सकते ऐसे धर्मग्रंथ की जो यह कहे, 'ईश्वर उन लोगों से प्रेम करता है जो दूसरों को हंसाते हैं।' वे असली संत हैं।

यदि तुम लोगों को गंभीर बनाते हो तो तुम पापी हो। संसार पहले से ही बहुत बोझिल है; कृपा करके इसे और बोझिल मत बनाओ। थोड़ी हंसी—खुशी बिखेरो। जहां भी तुम हो, वहां हंसी की एक तरंग निर्मित करो। थोड़ा और मुस्कुराओ और दूसरों की मदद करो मुस्कुराने में। यदि सारा संसार खिलखिला कर हंस सके, तो युद्ध विदा हो जाएं, क्योंकि युद्ध संचालित किए जाते हैं गंभीर व्यक्तियों द्वारा; अदालतें विदा हो जाएं, क्यों अदालतें चलती हैं गंभीर व्यक्तियों द्वारा।

इसीलिए तो यदि तुम किसी अदालत में हंस दो तो यह अपराध माना जाता है। कोई अदालत इसकी आज्ञा नहीं देती—तुम अपमान कर रहे हो अदालत का। प्रत्येक को गंभीर रहना पड़ता है। जरा देखो अदालतो में बैठे जजों की तरफ : वे कितने मूढ़तापूर्ण ढंग से गंभीर दिखाई पड़ते हैं! थोड़ी हंसी उन्हें मदद देगी ज्यादा न्यायसंगत होने में, मनुष्य को। ज्यादा गहरे से समझने में। उनकी उदासीनता, उनका ठंडापन न्याय नहीं कर सकता है, क्योंकि ठंडापन अमानवीय होता है। थोड़ी सी ऊष्मा..।

लेकिन जज डरता है। यदि अदालत में खड़ा चोर हंसने लगे, और जज भी शामिल हो जाए उसमें, और सारी अदालत हंसने लगे—तो जज डरता है। क्योंकि तब मामला बहुत मानवीय हो जाएगा; और इस हंसते हुए चोर को चार—पांच साल के लिए जेल में डाल देना कठिन हो जाएगा। किसी बड़ी बात के लिए नहीं—उसने कुछ पैसे ही चुराए हैं। उसने थोड़ी सी माया चुरा ली है, और जज शायद वेदांती हो। तो उसने थोड़ा भ्रम चुराया है—पैसे, हीरे—जवाहरात—और उसे जेल में डाल देना! बेजान हीरों के लिए एक जीवंत प्राणी को पांच साल के लिए फेंक देना अंधेरे में सड़ने के लिए! या किसी गहरे क्रोध में, आवेश में, किसी पागलपन में शायद उसने हत्या कर दी हो। जज भी कई बार हत्या करने की सोचते रहते हैं। ऐसा आदमी खोजना कठिन है जिसने कई बार अपने जीवन में किसी की हत्या करने की बात न सोची हो। यह विचार आ जाना मानवीय है।

मैं नहीं कह रहा हूं कि जाओ और किसी की हत्या कर दो, और मैं नहीं कह रहा हूं कि जजों को माफ कर देना चाहिए हत्या करने वालों को, नहीं। लेकिन थोड़ी हंसी मदद देगी। एक व्यक्ति की हत्या हो गई है : यदि जज थोड़ा हंस सके और अदालत में बैठे लोग भी थोडा हंस सकें जज के साथ, तो उसके लिए कठिन होगा अपराधी को फांसी की सजा देना। क्योंकि वह भी हत्या है, और कैसे तुम कोई व्यवस्था निर्मित कर सकते हो जब एक हत्या के लिए अदालत दूसरी हत्या का निर्णय दे? शायद

इस आदमी को मनोचिकित्सा की जरूरत है। शायद इस आदमी को किसी मठ में जाकर दो साल तक ध्यान करने की जरूरत है। लेकिन फांसी नहीं—क्योंकि फांसी.. यदि हत्या करना बुरा है, तो न्याय के नाम पर हत्या करना भी बुरा है; यह अच्छा नहीं हो सकता।

लेकिन जज बड़े गंभीर होते हैं; राजनीतिज्ञ बड़े गंभीर होते हैं—ससार का सारा बोझ उनके कंधों पर है! संसार में हर जगह वे सोचते रहते हैं : 'माओत्से—तुंग के बाद कौन?' जैसे कि माओत्से—तुंग के पहले संसार था ही नहीं। संसार बहुत सुखी था। असल में संसार ज्यादा सुखी हो जाएगा यदि सारे माओत्से—तुंग विलीन हो जाएं।

मैं इधर एक पुस्तक पढ़ रहा था, बड़ी अदभुत पुस्तक है। लेखक कहता है कि भारत बहुत पहले स्वतंत्र हो गया होता यदि गांधी न होते। मैं थोड़ा चकित हुआ, लेकिन फिर मैंने उसके तर्क को समझा और मुझे लगा कि वह ठीक कहता है। गांधी ने बात—बात पर मुसीबत खड़ी की—जिद्दी, अड़ियल—सारे राजनीतिज्ञ ऐसे होते हैं। बड़ी मुसीबत खड़ी की उन्होंने। उन्होंने कभी किसी चीज पर समझौता नहीं किया। उनके अपने रंग—ढंग थे, जिन्ना के अपने रंग—ढंग थे। वे समझौता नहीं कर सकते थे। दोनों जिद्दी थे, अड़ियल थे—पत्थर की तरह। ऐसा लगता है कि लेखक के पास एक अंतर्दृष्टि है जब वह कहता है कि भारत और पहले स्वतंत्र हो गया होता यदि कोई गांधी और कोई जिन्ना न होते।

और यदि तथाकथित धर्म न होते तो भारत कभी परतंत्र न होता। यदि राजनीतिज्ञ समाप्त हो जाएं संसार से, तो पूरा संसार स्वतंत्र हो जाए; स्वतंत्रता के लिए लड़ने की जरूरत ही न रहे. पूरा संसार स्वतंत्र ही होगा। यदि पंडित—पुरोहित विदा हो जाएं और ये गंभीर चर्च—जो जीवन की बजाय मृत्यु जैसे ज्यादा लगते हैं—अगर ये विदा हो जाएं और नृत्य के, आनंद के, समाधि के मंदिर निर्मित हों, तो संसार ज्यादा धार्मिक होगा।

तो जब तुम कहते हो, ' अब, कभी—कभी, आप प्रवचन के दौरान हंसते हैं।' तो मुझे लगता है कि मैं जरूर ज्यादा धार्मिक हो रहा होऊंगा। वरना और तो कोई कारण दिखाई नहीं पड़ता।

चौथा प्रश्न :

विजय आनंद को सौ प्रतिशत पक्का था कि उसकी फिल्म 'जान हाजिर है' बहुत सफल होगी क्योंकि उसके गुरु उसकी आशातीत सफलता के लिए भविष्यवाणी कर चुके थे। फिल्म असफल हो गई क्या गुरुजी कृपा करके इसे स्पष्ट करेने मूत्र —प्रश्न है 'स्टारडस्ट' पत्रिका से।

पहली तो बात : विजय आनंद इतना मूढ़ नहीं कि मुझ से ऐसे प्रश्न पूछे। वह कभी अपने काम के बारे में कोई बात नहीं करता। उसने फिल्म 'जान हाजिर है' के बारे में कभी कुछ पूछा नहीं और मैंने कभी कुछ कहा नहीं। मैं तो यह भी नहीं जानता कि उसने 'जान हाजिर है' नाम की कोई फिल्म बनाई है! लेकिन इन लोगों ने, स्टारडस्ट के संपादक—मंडल ने जरूर कोई सपना देखा है। उन्होंने सपना देखा है, और अपने सपने में ही उन्होंने शायद मुझे यह कहते हुए सुना है, 'विजय, तुम्हारी फिल्म बहुत सफल होगी।' फिर भी उन्होंने मेरी बात को गलत समझा। मैंने उनके सपने में उस फिल्म के बहुत सफल होने की बात लाओत्सु की भाषा में कही होगी।

लाओत्सु कहता है, 'क्योंकि बहुत थोड़े से लोग मुझे समझते हैं, इसलिए मैं सफल हूं।'

तो यदि इस ढंग से समझो तो परम सफलता का अर्थ है कि कोई देखने नहीं जाता फिल्म। क्योंकि भीड़ इतनी मूढ़ है कि वह समझ ही नहीं सकती उसे; यह सम्मानजनक है, यह परम सफलता है। जब भीड़ जाती है किसी फिल्म को देखने, तो वह फिल्म असफल है, बेकार है। वह मूढ़तापूर्ण होनी ही चाहिए; वरना कैसे वह आकर्षित करेगी इतने मूढ़ों को?

मैंने कुछ भी नहीं कहा है, लेकिन यदि उन्होंने कुछ सुन लिया है अपने सपनों में, तो उन्होंने मुझे गलत समझा है। यदि वह असफल हुई है, तो यही परम सफलता है। उसमें जरूर कुछ न कुछ होगा जो साधारण मन के पार का होगा। यही है परम सफलता।

हिटलर सफल नहीं है; भीड़ ने पूजा उसको। भीड़ की पूजा बताती है कि उसका संबंध भीड़ के साथ था। वह एक साधारण मूढ़ व्यक्ति था। लाओत्सु है परम सफल : कोई नहीं जाता उसके पास, किसी ने नहीं सुना उसके बारे में—स्व खबर भी नहीं सुनी। उसके आने—जाने का भी किसी को पता नहीं चलता। वह था परम सफल, और वह जानता था यह बात। वह ताओ —तेह—किंग में कहता है : 'मैं महिमावान हूं क्योंकि बहुत थोड़े से लोग ही मुझे समझ सकते हैं। सारा संसार मुझे गलत समझता है; इसीलिए मैं महिमावान हूं।' बात जितनी गहरी और नाजुक होती है, उतनी ही वह कम समझी जाएगी; ज्यादा संभावना तो गलत समझे जाने की है।

मेरा एक बहुत ही अदभुत व्यक्ति से मिलना हुआ। वे संन्यासी थे। जब मैं छोटा था तो वे मेरे गांव आया करते थे और हमारे घर पर ठहरा करते थे। एक बात के कारण ही मेरा उनसे बहुत लगाव हो गया था. जब भी उनके प्रवचन के दौरान लोग तालियां बजाते, तो वे मेरी तरफ देखते और कहते, 'रजनीश, कुछ न कुछ गलत कह दिया है, वरना लोग तालियां क्यों बजा रहे हैं? लोग केवल तभी ताली बजाते हैं जब कुछ गलत हो, क्योंकि वे गलत हैं।' जब कोई ताली नहीं बजाता और कोई नहीं समझता कि वे क्या कह रहे हैं, जब हर कोई ऐसे दिखाई पड़ता जैसे अपना समय नष्ट कर रहा हो, तो वे घर आते और कहते, 'रजनीश, मैंने जरूर कोई महत्वपूर्ण बात कही। देखा तुमने, कोई कुछ नहीं समझा!'

भीड़ के साथ सफलता असफलता है।

पांचवां प्रश्न :

आत्म— स्मरण और साक्षी के बीच क्या भेद है?

अभी मैंने तुम से आत्म—विश्लेषण और आत्म—स्मरण के बीच के भेद की चर्चा की। अब आत्म—स्मरण और साक्षी के बीच का भेद।

ही, इनमें भी बहुत भेद है. क्योंकि आत्म—स्मरण में जोर है 'आत्म' पर। आत्म—विश्लेषण में जोर है विचार पर, अनुभूति पर, भावना पर, भावावेग पर—क्रोध पर, कामवासना पर या ऐसी ही अन्य बातों पर—और स्वयं को भुला दिया जाता है। आत्म—स्मरण में अपना स्मरण रखा जाता है और सारी ऊर्जा अपने पर केंद्रित हो जाती है, और तुम बस देखते हो भीतर की भाव—दशा को, स्थिति को, अनुभूति कों—तुम सोचते नहीं उसके विषय में, क्योंकि सोचने में तो देखना खो जाता है, दृष्टि की शुद्धता खो जाती है।

साक्षी एक कदम और आगे की बात है। साक्षी में ' आत्म' भी गिरा देना होता है; केवल स्मरण बचता है। ऐसा नहीं कि 'मैं' स्मरण करता हूं।'मैं' साक्षी का हिस्सा नहीं है। मात्र स्मरण! साक्षी है स्वयं का साक्षी होना। आत्म—स्मरण शुरुआत है, साक्षी अंत है। आत्म—स्मरण में तुम देखते हो क्रोध को—स्वयं में केंद्रित, स्वयं में स्थिर—मन में उठती तरंगों को देखते हो। लेकिन जब तुम देखते हो मन को, तो धीरे— धीरे मन खो जाता है। जब मन खो जाता है और वहां शून्य होता है तब एक कदम आगे बढ़ा जा सकता है : अब तुम देखते हो स्वयं को। अब वही ऊर्जा जो क्रोध को देख रही थी, कामवासना को, ईर्ष्या को देख रही थी, वह मुक्त हो जाती है—क्योंकि ईर्ष्या, क्रोध और काम खो चुके होते हैं। अब वही ऊर्जा तुम्हारी अपनी तरफ मुड़ जाती है।

जब वही ऊर्जा देखती है 'स्वयं' की तरफ, तो 'स्वयं' भी खो जाता है; तब केवल स्मरण बचता है। वह स्मरण ही साक्षी है। साक्षी में कहीं कोई 'केंद्र' नहीं होता। क्रोध को 'तुम' देखते हो; लेकिन जब तुम स्वयं को देखते हो, तो तुम फिर 'तुम' नहीं रह जाते : केवल एक विराट, असीम, अनंत साक्षी होता है। शुद्ध चेतना होती है—असीम और अनंत, लेकिन कहीं कोई केंद्र नहीं होता है।

यह बात ठीक से समझ लेनी है। गुरजिएफ ने जीवन भर आत्म—स्मरण की विधि पर काम किया क्योंकि पश्चिम में साक्षी की बात करना करीब—करीब असंभव ही है, क्योंकि पश्चिम जीता रहा है आत्म—विश्लेषण में। तमाम ईसाई मठ हैं, जो आत्म—विश्लेषण सिखाते आए हैं। गुरजिएफ ने कुछ ऐसी बात कही जो आत्म—विश्लेषण से हट कर थी; उसने उसे आत्म—स्मरण कहा। वह चाहता था कि साक्षी की बात भी सामने रखे, लेकिन ऐसा हो न सका क्योंकि साक्षी केवल तभी संभव है जब आत्म—स्मरण जड़ें पकड़ चुका हो; उससे पहले साक्षी संभव नहीं है। आत्म—स्मरण के पकने से पहले साक्षी की बात करना किसी काम का न होगा; बिलकुल व्यर्थ होगा। उसने बहुत प्रतीक्षा की, लेकिन वह साक्षी की बात नहीं सामने रख सका।

पूरब में हमने दोनों का उपयोग किया है। असल में हमने तीनों का उपयोग किया है : आत्म—विश्लेषण बहुत साधारण धार्मिक लोगों के लिए था, उनके लिए जो गहरे नहीं जाना चाहते, जो गहरे जाना चाहते हैं, उनके लिए आत्म—स्मरण है, और जो इतने गहरे जाना चाहते हैं कि खो जाएं गहराई में, उनके लिए साक्षी है। साक्षी अंतिम है। उसके पार कुछ नहीं है। तुम साक्षी के साक्षी नहीं हो सकते, क्योंकि वह भी साक्षी होना होगा। तो साक्षी के पार जाने की कोई संभावना नहीं है. तुम अंत पर आ गए। साक्षी जगत का अंत है।

तो आत्म—विश्लेषण से बढ़ो आत्म—स्मरण की ओर, और प्रतीक्षा करो कि किसी दिन आत्म—स्मरण से साक्षी की ओर बढ़ सको। लेकिन यह बात ध्यान रहे कि आत्म—स्मरण लक्ष्य नहीं है। वह सेतु के रूप में अच्छा है, लेकिन तुम्हें उसे पार कर जाना है, तुम्हें उसके पार चले जाना है।

छठवां प्रश्न :

क्या यह संभव है कि कोई साधक कुछ समय के लिए शुद्ध चेतना की स्थिति में रहे और फिर वापस गिर जाए?

नहीं, यह संभव नहीं है। लेकिन ऐसा होता है कि तुम्हें शुद्ध चैतन्य की एक झलक मिलती है;

तुम उसमें प्रविष्ट नहीं हुए होते। यह ऐसा ही है जैसे तुम सैकड़ों मील की दूरी से हिमालय के शिखरों को देखते हो। तुम उन तक अभी पहुंचे नहीं हो, तो भी तुम उन्हें बहुत दूर से देख सकते हो। तुम शिखरों को देख सकते हो; तुम्हें उनका सौंदर्य आंदोलित कर सकता है। तुम खोल सकते हो अपनी खिड़की और दूर चांद को देख सकते हो, और किरणें छू सकती हैं तुम्हें और तुम प्रकाशित हो सकते हो, तुम्हें गहरी अनुभूति हो सकती है। लेकिन इस झलक से तुम बार—बार गिरोगे।

जब शुद्ध चैतन्य उपलब्ध हो जाता है—दूर से मिली झलक नहीं, बल्कि तुम प्रविष्ट हो चुके होते हो उसमें—तो फिर तुम उसे नहीं खो सकते। एक बार वह उपलब्ध हो जाता है तो हमेशा—हमेशा के लिए उपलब्ध हो जाता है। तुम उससे बाहर नहीं आ सकते। क्यों? क्योंकि जिस क्षण तुम उसमें प्रवेश करते हो, तुम मिट जाते हो। तो कौन बाहर आएगा? बाहर आने के लिए कम से कम तुम्हें तो होना चाहिए। लेकिन शुद्ध चैतन्य में प्रवेश करते ही अहंकार एकदम मिट जाता है, 'स्व' पूरी तरह तिरोहित हो जाता है। तो कौन आएगा वापस!

झलक में तुम नहीं मिटते; तुम मौजूद रहते हो। तुम एक झलक ले सकते हो और फिर बंद कर सकते हो आंखें। तुम एक झलक ले सकते हो और फिर बंद कर सकते हो खिड़की। वह झलक स्मृति बन जाएगी, वह तुम्हें पुकारेगी, तुम्हारा पीछा करेगी। वह तुम्हारे सपनों में आएगी। कई बार, अचानक, तुम्हें एक गहन अभीप्सा होगी उस झलक को पाने की, लेकिन वह सदा—सदा की उपलब्धि नहीं हो सकती। झलक केवल झलक है। अच्छी है, सुंदर है, लेकिन उसी पर रुक मत जाना; क्योंकि वह शाश्वत नहीं है। वह बार—बार खो जाएगी—क्योंकि तुम अभी भी बचे हो।

जब भी कोई झलक मिले, तो बढ़ जाना शिखरों की ओर, चल देना चांद की ओर—चांद के साथ एक हो जाना। जब तक तुम मिट नहीं जाते तुम वापस गिरोगे, तुम्हें वापस आना होगा संसार में, क्योंकि अहंकार घुटन अनुभव करेगा झलक के साथ। अहंकार को मृत्यु जैसा भय पकड़ेगा। वह कहेगा, 'बंद करो खिड़की। बहुत देख लिया तुमने चांद को। अब मूढ़ता मत करो। पागल मत बनो, लूनाटिक मत बनो।' लूनाटिक का अर्थ है चांदमारा। यह शब्द आया है कार से, चांद से। पागलों को लूनाटिक कहते हैं, चांदमारा, स्वप्नदर्शी—दूर के सपनों की सोचने वाला।

तो तुम्हारा मन, तुम्हारा अहंकार कहेगा, 'लूनाटिक मत बनो। अच्छा है, कभी—कभी खिड़की खोल लो और देख लो चांद को, लेकिन उससे आविष्ट मत हो जाओ। संसार प्रतीक्षा कर रहा है तुम्हारी। तुम पर जिम्मेवारियां हैं, जिन्हें पूरा करना है।' और अहंकार तुम्हें राजी कर लेगा, फुसला लेगा, बुला लेगा संसार की तरफ; क्योंकि अहंकार केवल संसार में बना रह सकता है। जब भी संसार के पार की कोई झलक तुम्हें पकड़ती है, तो अहंकार भयभीत हो जाता है, आतंकित हो जाता है, डर जाता है। वह बात मौत जैसी लगती है।

यदि उस झलक को तुम अपनी स्थायी जीवन—शैली बनाना चाहते हो, अपनी अंतस सत्ता बनाना चाहते हो तो तुम्हें यात्रा करनी पड़ेगी, दूरी को मिटाना होगा, अंतराल को पार करना होगा। तुम्हें विकसित होना पड़ेगा। एक बार तुम शुद्ध चैतन्य को उपलब्ध हो जाते हो, तब फिर उससे बाहर गिरना नहीं होता। वह है वापस न होने की अवस्था। तुम केवल भीतर जाते हो; तुम बाहर कभी नहीं आते। वहां कोई बाहर आने का द्वार नहीं है; केवल एक ही द्वार है—प्रवेश द्वार।

सातवां प्रश्न :

आपने कहा कि बुद्ध स्वार्थी थे क्या जीसस भी स्वार्थी थे? यदि ऐसा है तो उनके इस कथन का क्या अर्थ है : 'यदि किसी को मेरे पीछे आना है तो उसे स्वयं को इनकार करना होगा उठाओ अपना क्रॉस और आओ मेरे पीछे।'

हां, जीसस भी स्वार्थी हैं; अन्यथा संभव ही नहीं है। जीसस, कृष्ण, जरथुस्त्र, बुद्ध—सभी स्वार्थी हैं; क्योंकि इतनी करुणा है उनमें! वह संभव नहीं है यदि वे आत्म—केंद्रित न हों। वह संभव नहीं है यदि उन्होंने अपना आनंद उपलब्ध न कर लिया हो। पहली तो बात, आनंद पास में होना चाहिए; केवल तभी कोई बांट सकता है। और उन्होंने खूब बांटा—इतना बांटा कि कई सदियां बीत गई हैं, लेकिन वे अभी भी बांट रहे हैं।

यदि तुम प्रेम करते हो जीसस को, तो अचानक तुम उनकी करुणा से भर जाते हो। उनका प्रेम अब भी बह रहा है। शरीर मिट चुका है, लेकिन उनका प्रेम नहीं मिटा है। वह जगत की एक शाश्वत घटना बन गया है। वह सदा उपलब्ध रहेगा। जब भी कोई तैयार होगा, ग्रहणशील होगा, तो उनका प्रेम बहेगा। लेकिन यह इसीलिए संभव है क्योंकि वे अपने मूल—स्रोत को उपलब्ध हुए. वे निश्चित हां स्वार्थी हैं।

तो फिर इस कथन का क्या अर्थ है, क्योंकि ये शब्द तो विरोधाभासी मालूम पड़ते हैं : 'यदि किसी को मेरे पीछे आना है तो उसे स्वयं को इनकार करना होगा...।' हां, यह विरोधाभासी लगता है। यदि मैं सत्य हूं तो ये शब्द मेरे विपरीत लगते हैं।

मेरा कथन सत्य है और उनका कथन भी मेरे विपरीत नहीं है। विरोधाभास केवल बाह्य प्रतीति है, क्योंकि जीसस कह रहे हैं. 'यदि तुम स्वयं को उपलब्ध होना चाहते हो तो तुम्हें स्वयं को खोना पड़ेगा, यही मार्ग है।' तो जब जीसस कहते हैं, 'यदि किसी को मेरे पीछे आना है तो उसे स्वयं को इनकार करना होगा...।' तो इसीलिए कहते हैं क्योंकि यही मार्ग है अपने तक आने का। तुम स्वयं को

केवल तभी उपलब्ध हो सकते हो जब तुम इनकार कर देते हो अपने अहंकार को। तुम स्वयं को तभी उपलब्ध हो सकते हो जब तुम पूरी तरह मिट जाते हो।

जीसस कहते हैं, 'यदि तुम चिपकते हो जीवन से, तो तुम खो दोगे उसे। यदि तुम तैयार हो उसे खोने के लिए, तो वह सदा—सदा तुम्हारे साथ रहेगा, तुम अनंत जीवन को उपलब्ध हो जाओगे।'

जब पानी की बूंद गिर जाती है सागर में, तो वह स्वयं को खो देती है—इनकार कर देती है स्वयं को—और सागर बन जाती है। वह ना—कुछ खोती है और पा लेती है सागर को, वह अपनी सीमाएं गिरा देती है। जब जीसस कहते हैं, 'यदि किसी को मेरे पीछे आना है, तो उसे स्वयं को इनकार करना होगा..।' तो यह सागर कह रहा है बूंद से, 'आओ, छोड़ो अपनी सीमाएं, ताकि तुम भी सागर हो सको।' और यह सबसे बड़ा स्वार्थ है—सागर हो जाना।

एक बूंद बड़ी परोपकारी होती है, लेकिन वह बूंद ही बनी रहती है— क्षुद्र, सीमित, पीड़ित। लगता है जैसे वह स्वार्थी हो, वह होती नहीं। यदि तुम जाकर देखो संसार के स्वार्थी लोगों को, तो तुम उन्हें सच में स्वार्थी नहीं पाओगे। वे मूड़ हैं, स्वार्थी नहीं।

असली स्वार्थी व्यक्ति प्रज्ञावान हो जाते हैं। असली स्वार्थी व्यक्ति तो वे हैं जो प्रयास करते हैं निर्वाण की उपलब्धि के लिए, जो प्रयास करते हैं परमात्मा को पाने के लिए, जो प्रयास करते हैं मोक्ष पाने के लिए—मुक्ति, स्वतंत्रता पाने के लिए। वे हैं असली स्वार्थी व्यक्ति; वे नहीं जो संसार में स्वार्थी माने जाते हैं, क्योंकि वे कोशिश कर रहे हैं धन इकट्ठा करने की। वे बिलकुल मूढ़ हैं, स्वार्थी नहीं। ऐसा सुंदर शब्द मत उपयोग करो उनके लिए। वे मूढ़ हैं।

क्यों तुम उनको स्वार्थी कहते हो? वे धन इकट्ठा करते रहते हैं और अपनी आत्मा बेचते रहते हैं। वे एक बड़ा घर बना लेते हैं और वे स्वयं खोखले, रिक्त हो जाते हैं। उनके पास बड़ी कार होती है और कोई आत्मा नहीं होती। और तुम उन्हें स्वार्थी कहते हो? वे सबसे ज्यादा निःस्वार्थी लोग हैं। उन्होंने कौड़ियों में अपनी आत्मा बेच दी है।

ऐसा हुआ. एक आदमी रामकृष्ण के पास बहुत से सोने के सिक्के लेकर आया, और वह उन सिक्कों को रामकृष्ण को अर्पित करना चाहता था।

रामकृष्ण ने कहा, 'मैं सोना छूता नहीं। इन्हें वापस ले जाओ।'

वह आदमी बड़ा प्रभावित हुआ। उसने कहा, ' आप कितने निःस्वार्थी हैं!'

रामकृष्ण हंसे और उन्होंने कहा, 'निःस्वार्थी और मैं? मैं तो बहुत स्वार्थी आदमी हूं। इसीलिए तो मैं सोना छूता नहीं। मैं इतना कु नहीं। तुम हो निःस्वार्थी। तुमने स्वयं को बेच दिया है सोने के सिक्कों के लिए।'

कौन है स्वार्थी? जो अपनी आत्मा बेच देता है सोने के सिक्कों के लिए वह स्वार्थी है? या जो संसार की हर चीज छोड़ देता है अपनी आत्मा उपलब्ध करने के लिए वह स्वार्थी है? संसार में लोग स्वयं को खो देते हैं और पाते कुछ भी नहीं, और तुम उन्हें स्वार्थी कहते हो। वे निःस्वार्थी लोग हैं, मूढ़ लोग हैं। फिर बुद्‌ध हैं, जीसस हैं, कृष्ण हैं—वे परम महिमा को, परम आनंद को उपलब्ध हुए। बुद्‌ध ने कहा है, '''मैं श्रेष्ठतम समाधि को उपलब्ध हुआ हूं, परम समाधि को उपलब्ध हुआ हूं।' और तुम उन्हें निःस्वार्थी कहते हो? जो परम आनंद को उपलब्ध हुए हैं, तुम उन्हें निःस्वार्थी कहते हो? तुम ने एक सुंदूर शब्द को विकृत कर दिया है।

जीसस ठीक कहते हैं, 'यदि किसी को मेरे पीछे आना है तो उसे स्वयं को इनकार करना होगा।' क्योंकि वही एकमात्र ढंग है स्वयं को उपलब्ध होने का। वे स्वार्थ सिखा रहे हैं।'और वह अपना क्रॉस उठाए और आए मेरे पीछे।' क्योंकि वही एकमात्र ढंग है पुनरुज्जीवित होने का।

यदि तुम नया जीवन चाहते हो तो तुम्हें मरना होगा। यदि तुम पुनरुज्जीवित होना चाहते हो, तो तुम्हें उठाना ही होगा अपना क्रॉस। पदार्थ के संसार में सूली चढ़ जाओ और तुम पुनरुज्जीवित हो उठोगे अध्यात्म के जगत में। अतीत के प्रति क्षण— क्षण मरते जाओ, ताकि तुम वर्तमान में क्षण— क्षण पुनरुज्जीवित हो सको।

मरना एक कला है, एक मूलभूत कला है। और जो मरना जानते हैं, वे ही जीना जानते हैं। जो व्यक्ति भयभीत हैं मरने से, भयभीत हैं मृत्यु से और मिटने से, वे अक्षम हो जाते हैं जीने में, क्योंकि मृत्यु जीवन का ही हिस्सा है।

जब जीसस कहते हैं, 'उठाओ अपना क्रॉस और आओ मेरे पीछे।' तो वे कह रहे हैं, 'मरने के लिए तैयार हो जाओ यदि तुम शाश्वत जीवन पाना चाहते हो।' यह स्वार्थ है।

और जब जीसस जैसे लोग कहते हैं, 'मेरे पीछे आओ', तो तुम उनको गलत समझोगे। जब कृष्ण गीता में अर्जुन से कहते हैं, 'सर्व धर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज—मुझ एक की शरण में आ जाओ।' तो वे क्या कह रहे हैं? क्या ये लोग अहंकारी हैं? वे कहते हैं, 'आओ, मेरे पीछे आओ।'

असल में जब जीसस कहते हैं, 'आओ, मेरे पीछे आओ', तो वे कह रहे हैं, 'मैं तुम्हारी आत्यंतिक आत्मा हूं।' जब कृष्ण कहते हैं, 'समर्पण करो मुझे', तो वे इस बाहरी कृष्ण के प्रति समर्पण करने के लिए नहीं कह रहे हैं। वे कह रहे हैं : 'तुम्हारी गहराई में मैं छिपा हुआ हूं। जब तुम मेरे प्रति समर्पित होते हो, तो मैं सिर्फ एक बहाना हूं समर्पण के लिए। पहुंचोगे तो तुम अपनी सत्ता के अंतरतम केंद्र पर। मेरे पीछे आओ, ताकि तुम अपने आत्यंतिक केंद्र को उपलब्ध हो सको। मैं उस आत्यंतिक केंद्र को उपलब्ध हो चुका हूं।' वे जीसस का या कृष्ण का अनुसरण करने के लिए नहीं कह रहे हैं। वे कह रहे हैं, 'समर्पण करो,' क्योंकि समर्पण में तुम स्वयं ही कृष्ण, जीसस हो जाओगे। और यह परम स्वार्थ है।

लेकिन यह 'स्वार्थ' शब्द निंदित हो गया है। जब कोई कहता है, 'स्वार्थी मत बनो', तो उसने निंदा कर दी होती है। मैं फिर उस सुंदर शब्द को शुद्ध करना चाह रहा हूं। मैं कोशिश कर रहा हूं उसे उसकी मूल महिमा तक लाने की। वह शब्द तो हीरे जैसा है, चाहे वह कीचड़ में ही क्यों न पड़ा हो। उसे साफ किया जा सकता है और धोया जा सकता है। और यदि तुम मुझे समझते हो तो तुम पाओगे कि जब तुम सच में ही स्वार्थी हो, केवल तभी तुम निःस्वार्थी हो सकते हो। मैं तुम्हें स्वार्थी होना सिखाता हूं क्योंकि मैं चाहता हूं कि तुम निःस्वार्थी होओ।

आठवां प्रश्न:

बाहरी घटनाओं, जैसे कि मृत्यु धोखा देना इत्यादि में मेरे मन का कितना हिस्सा है? इन बातों के लिए मैं कैसे जिम्मेवार हूं?

तुम जिम्मेवार नहीं हो इन बातों के लिए। यदि कोई आदमी मर जाता है, तो तुम उसकी मृत्यु के लिए जिम्मेवार नहीं हो; लेकिन जिस ढंग से तुम मृत्यु की व्याख्या करते हो, उसके लिए तुम जिम्मेवार हो। जब कोई धोखा देता है तुम्हें, तो तुम उसके धोखा देने के लिए जिम्मेवार नहीं हो। कैसे जिम्मेवार हो सकते हो तुम? लेकिन तुम उसे धोखा कह रहे हो; शायद वह धोखा न हो। उसे धोखा कहना तुम्हारी व्याख्या है, और उस व्याख्या के लिए तुम जिम्मेवार हो।

तुम उसे मृत्यु कहते हो. यदि तुम्हारी मां मरती है, तुम उसे मृत्यु कहते हो और तुम दुखी होते हो। तुम इसलिए दुखी नहीं होते क्योंकि मां मर गई है। तुम दुखी होते हो क्योंकि तुम सोचते हो कि यह मृत्यु है। यदि तुम जीवन को समझो तो तुम जानोगे कि कहीं कोई मृत्यु नहीं है। तब मां की मृत्यु होगी—मां की मृत्यु तो कभी न कभी होनी ही है—लेकिन तुम दुखी नहीं होओगे। उसने पुराना शरीर बदल लिया है। असल में यह घड़ी तो आनंद मनाने की है। क्योंकि उसे कैंसर था या टी .बी. थी, बुढ़ापा था और हजारों बीमारियां थीं, और वह खींच रही थी। तुम इसे मृत्यु कहते हो? मैं इसे कहता हूं नए में प्रवेश के लिए पुराने शरीर को छोड़ देना। क्यों दुखी होना इसके लिए? इसके लिए तो प्रसन्न होना चाहिए और आनंदित होना चाहिए।

तो यह निर्भर करता है व्याख्या पर, और व्याख्या तुम्हारी जिम्मेवारी है। कोई तुमको धोखा दे देता है। लेकिन कौन कह रहा है कि यह धोखा है? उदाहरण के लिए : तुम्हारा पति, तुम्हारी पत्नी, तुम्हारा प्रेमी तुमसे अलग हो जाता है। तुम इसे धोखा कहते हो, यह तुम्हारी व्याख्या है। शायद तुम बहुत

मालकियत का भाव रखते थे। उसने तुम्हें धोखा नहीं दिया है; वह केवल अपने को बचाने की कोशिश कर रहा है। तुम बहुत मालकियत जमा रहे थे, तुम बहुत चिपके हुए थे। तुम उसकी गर्दन को कस कर पकड़े हुए थे। तुम उसकी स्वतंत्रता की हत्या कर रहे थे। उसने तो केवल अपना जीवन बचाने की कोशिश की, तुमको धोखा नहीं दिया। वह किसी और स्त्री की तरफ आकर्षित हुआ होगा इस आशा में कि शायद कहीं और प्रेम का फूल खिल सके। लेकिन तुमने उसे मजबूर किया; और अब तुम कहते हो कि धोखा हुआ! तुमने सारी परिस्थिति निर्मित की जिसमें यह बात घटी; और अब तुम इसे धोखा कहते हो!

जरा ध्यान देना, सजग होना, देखना कि क्यों ऐसा हुआ। अगर तुम इतना पीछे न पड़े होते, तो शायद वह न भागा होता। तुम्हारा पीछे पड़े रहना उसे पागल किए दे रहा था। या तुम्हारा पीछे पड़े रहना उसे संवेदनहीन बना रहा था।

केवल दो ही ढंग हैं परेशान करने वाली पत्नी या परेशान करने वाले पति के साथ रहने के। एक, जो कि करीब—करीब सभी पति करते हैं, कि संवेदनहीन हो जाओ। तुम घर में आते हो; तुम अपने को कठोर कर लेते हो। वह बड़बड़ाती रहती है, तुम परवाह ही नहीं करते। तुम अपना अखबार पढते रहते हो। वह क्या कह रही है, तुम सुनते ही नहीं।

लेकिन तब तुम अपने को ही धोखा दे रहे हो, क्योंकि जितने ज्यादा तुम संवेदनहीन होते हो, उतने ही तुम कम प्रेमपूर्ण होओगे। जितने ज्यादा संवेदनहीन होते हो तुम, उतनी ही कम संभावना होती है प्रार्थना की, उतनी ही कम संभावना होती है जीवंत होने की। तुम पहले से ही मुर्दा होते हो। तुम अपने प्राणों को ही धोखा दे रहे हो। बेहतर है स्त्री से दूर हट जाना—स्वयं को बचाने के लिए और उसे भी अवसर देना समझ पाने के लिए। तो दूसरा ढंग है—दूर हट जाना।

यदि पति अपने को धोखा दिए जाता है, तो पत्नी कहती है कि वह बड़ा निष्ठावान है। वह धोखा दे रहा है अपने को। और कोई जिम्मेवार नहीं है किसी दूसरे के जीवन के लिए। तुम यहां अपने लिए हो; मैं यहां मेरे लिए हूं। यहां कोई किसी की अपेक्षाएं पूरी करने के लिए नहीं है। मुझे जीना है अपना जीवन; तुम्हें जीना है तुम्हारा जीवन। यदि मैं विकसित होता —हूं तुम्हारे साथ, यदि हम साथ—साथ विकसित हो सकते है—तो ठीक है, हम साथ—साथ रह सकते हैं। लेकिन यदि तुम मेरी हत्या करना शुरू कर दो और मैं तुम्हें जहर देने लग र तो बेहतर है कि हम अलग हो जाएं; क्योंकि अलग होना दो जीवन बचा लेगा, दो कैदियों को मुक्त कर देगा। यह कोई धोखा नहीं है।

धोखा एक ही है. और वह है अपने को धोखा देना। और कोई धोखा नहीं है। यदि तुम परेशान करने वाली, मालकियत जमाने वाली पत्नी के साथ या पति के साथ बिना किसी प्रेम के रहना जारी रखते हो, तो तुम अपनी ही संभावना को नष्ट कर रहे हो।

तालमुद में कहा गया है कि ईश्वर तुम से पूछेगा. 'मैंने तुम्हें प्रसन्न होने के इतने अवसर दिए। तुमने क्यों खो दिए?' वह नहीं पूछेगा, 'तुमने कौन—कौन से पाप किए?' वह पूछेगा, 'तुमने प्रसन्न होने के कितने अवसर खोए? तुम जवाबदेह होओगे उनके लिए।' यह बात बहुत सुंदर है : 'तुम केवल उन अवसरों के लिए जवाबदेह होओगे जो तुम्हें उपलब्ध थे और तुम ने खो दिए।'

तो ईमानदार रहना स्वयं के प्रति—वही एकमात्र ईमानदारी है जिसकी जरूरत है—और फिर हर बात ठीक ही होगी। यदि तुम स्वयं के प्रति ईमानदार हो तो तुम सदा ढूंढ लोगे साथी, जीवन—साथी, जिसके साथ तुम विकसित होते हो, अन्यथा अलग हो जाना। इसमें कुछ बुरा नहीं है। और यह तुम्हारे साथी के लिए भी अच्छा है, क्योंकि यदि तुम विकसित नहीं हो रहे हो, तो तुम बदला लोगे। यही तो करते हैं प्रत्येक पति—पत्नी।

यदि तुम विकसित नहीं हो रहे हो और तुम बंद, कैदी अनुभव करते हो, तो तुम दूसरे से बदला लेने लगते हो, क्योंकि उस दूसरे के कारण तुम बंधन में हो, उस दूसरे के कारण तुम कारागृह में हो। तब तुम क्रोधित रहोगे, लगातार क्रोधित रहोगे। तुम्हारा पूरा जीवन क्रोध से भर जाएगा। और तुम प्रेम नहीं कर सकते ऐसी हालत में। कैसे कोई प्रेम कर सकता है अपने कारागृह को? चाहे वह कारागृह कोई भी हो—तुम्हारी पत्नी, तुम्हारा पति, तुम्हारे पिता, तुम्हारी मां, तुम्हारा गुरु—उससे कुछ अंतर नहीं पड़ता है।

यदि तुम यहां हो और तुम बंधन अनुभव करते हो, तो भाग जाओ—जितनी जल्दी भाग सको भाग जाओ—मेरे आशीर्वाद तुम्हारे साथ हैं। क्योंकि उस ढंग से यहां रहना खतरनाक है। तुम्हें मेरे प्रति श्रद्धालु नहीं होना है। पहली श्रद्धा होनी चाहिए अपने प्रति; शेष सब गौण है। यदि तुम बंधन अनुभव करते हो—अवरुद्ध, पंगु—तो भाग निकलना। एक पल की भी प्रतीक्षा मत करना, और कभी पीछे मुड़ कर मत देखना। कहीं और खोजना। जीवन विराट है, अनंत है। तुम्हें कोई और मिल सकता है जो तुम्हारे ज्यादा अनुकूल हो और जो तुम्हारे लिए बंधन न हो, मुक्ति हो। जाओ वहां। खोजो। सदा खोजते रहो। अन्यथा यदि तुम यहां अटका हुआ अनुभव कर रहे हो, सोच रहे हो कि तुम बंधन में हो, तो तुम मुझसे बदला लोग। तुम दिखाओगे जैसे कि तुम शिष्य हो, लेकिन तुम शत्रु बन जाओगे। और किसी न किसी दिन तुम फूट पड़ोगे।

सभी संबंधों में यह बात स्मरण रखने की है कि इस जीवन में तुम आए हो सीखने के लिए, विकसित होने के लिए ज्यादा बुद्धिमान होने और सजग होने के लिए। यदि कोई बात पंगु करती है, तो उसी अवस्था में बने रहना पाप है। आगे बढ़ो। इस ढंग से तुम अधिक प्रेमपूर्ण जगत निर्मित करोगे।

लेकिन ठीक उलटी बात सिखाई गई है : यदि तुम्हें अपनी पत्नी से प्रेम नहीं है, तो भी प्रेम करो उसे। और कोई नहीं पूछता, 'कैसे कोई किसी को प्रेम कर सकता है यदि उसे प्रेम नहीं है?' हो सकता है, शुरू में प्रेम रहा हो, फिर वह मिट गया। लेकिन तुम्हें सिखाया जाता है कि प्रेम कभी मिटता नहीं है। यह

भी नितांत मूढ़ता की बात है। हर चीज जो है, मिट सकती है। हर चीज जो जन्म लेती है, मर सकती है। हर चीज जो आरंभ होती है, समाज हो सकती है।

तो प्रामाणिक रहना और सजग रहना। यदि प्रेम समाप्त हो चुका हो, तो उस स्त्री के साथ रहना पाप है। तब यदि तुम सोते हो उस स्त्री के साथ तो तुम पापी हो। तब यह एक तरह से वेश्यावृत्ति है। स्त्री तुम्हारे साथ रहती है क्योंकि कहीं और जाने की जगह नहीं है। अब वह तुम्हारे साथ केवल

इसलिए है क्योंकि आर्थिक रूप से वह तुम पर निर्भर है।

लेकिन फिर वेश्यावृत्ति क्या है? वह आर्थिक सौदा ही है। अब प्रेम तो रहा नहीं। यदि तुम किसी वेश्या के पास जाते हो और वह तुम्हारे प्रेम में पड़ जाती है और पैसे लेने से इनकार कर देती है, तो फिर वह वेश्या न रही। वेश्या का जन्म होता है पैसे के साथ। जब प्रेम की बजाए पैसा जोड़ता है दो व्यक्तियों को, तो वह वेश्यावृत्ति है।

यदि तुम बिना प्रेम के किसी स्त्री के साथ रहते हो और स्त्री बिना प्रेम के तुम्हारे साथ रहती है, केवल एक आर्थिक व्यवस्था है—कि मुश्किल होगी; किधर जाओ, क्या करो, बड़ी असुरक्षा है! तो चिपके रहो, और नाराज होओ, एक—दूसरे की जिंदगी नर्क बना दो, और लगातार लड़ते—झगड़ते रही लेकिन फिर भी साथ रहो, यह तुम्हारा कर्तव्य है—तुम बहुत खतरनाक व्यक्ति हो।

और इस वेश्यावृत्ति से किस प्रकार के बच्चे पैदा होंगे? तुम केवल स्वयं को ही नष्ट नहीं कर रहे, तुम आने वाली पीढ़ियों को भी नष्ट कर रहे हो। वे बच्चे तुम्हारे बीच बड़े होंगे—दों व्यक्ति निरंतर लड—झगड़ रहे हैं, निरंतर संघर्ष में रह रहे हैं। और जो बच्चे पैदा होंगे, सदा संघर्ष में रहेंगे। उनका एक हिस्सा मां से संबंधित रहेगा, एक हिस्सा पिता से, और गहरे में निरंतर एक गृह—युद्ध छिड़ा रहेगा। वे सदा द्वंद्व में रहेंगे।

जब तुम आते हो मेरे पास और कहते हो, 'मैं उलझन में हूं...।' अभी कुछ दिन पहले एक संन्यासी आया और उसने कहा, 'मैं समर्पण करना चाहता हूं लेकिन मैं समर्पण नहीं भी करना चाहता!' अब क्या करो इस आदमी के साथ? और वह कहता है, 'मेरी मदद करें।' वह समर्पण करना चाहता है और समर्पण नहीं भी करना चाहता है। एक हिस्सा कहता है, 'समर्पण करो', एक हिस्सा कहता है, 'नहीं'। यह है खंडित व्यक्तित्व, स्कीजोफ्रेनिक। लेकिन करीब—करीब प्रत्येक व्यक्ति ऐसी ही स्थिति में है। कहा से आता है यह खंडित व्यक्तित्व?

यह खंडित व्यक्तित्व सदा संघर्ष में रहने वाले माता—पिता से आता है। बच्चा कई बार मां जैसा अनुभव करता है, क्योंकि वह दोनों को अनुभव करता है। वह संसार में दोनों के द्वारा आया है। उसके शरीर के आधे कोशाणु पिता से संबंध रखते हैं; आधे कोशाणु मां से संबंध रखते हैं। अब वे द्वंद्व में रहते हैं। वह निरंतर गृहयुद्ध में रहेगा; वह कभी चैन से न बैठेगा, शांत न होगा। कुछ भी वह करेगा,

एक हिस्सा कहता रहेगा, 'व्यर्थ है यह। मत करो ऐसा।' यदि मां वाला हिस्सा कहता है, 'करो', तो पिता वाला हिस्सा कहता है, 'नहीं'। शायद बहुत जोर से न भी कहे। पिता कभी बहुत जोर से नहीं कहते, लेकिन पिता वाला हिस्सा 'नहीं' में सिर हिलाएगा। यदि पिता वाला हिस्सा कहता है, 'हां', तो मां वाला हिस्सा कहता है—निश्चित ही बहुत जोर से कहता है—'नहीं'।

मुल्ला नसरुद्दीन का बेटा एक लड़की के प्रेम में पड़ गया। वह घर आया। उसने नसरुद्दीन से पूछा—चुपके से अकेले में पूछा उससे—कि क्या करें? पिता ने उसके कान में फुसफुसा कर कहा, 'यदि तुम सच में ही उस लड़की से प्रेम करते हो तो जाओ और अपनी मां से कहना कि पिताजी ने मना किया है, कि पिताजी तो इस बात के बिलकुल खिलाफ हैं। और तुम्हारी मां के सामने मैं कहूंगा, ऐसा कभी नहीं होने दूंगा मैं। तब तो सुनिश्चित ही है कि तुम्हारा विवाह हो जाएगा।'

बड़ी राजनीति चलती है। और प्रत्येक संवेदनशील बच्चा जिंदगी की चालबाजिया सीख लेते

है, और फिर वह उन्हें पूरे जीवन भर चलता रहेगा। वह खंडित रहेगा, और जब भी वह किसी स्त्री

को घर लाएगा, तो वह पिता की भूमिका निभाना शुरू कर देगा और स्त्री मां की श्रइमका निभाने लगेगी। और यही कहानी चलती रहती है... और संसार और—और पागलपन में उतरता जाता है।

यह सारी व्यर्थ की बकवास इसीलिए निर्मित हो गई है क्योंकि तुम्हें गलत बातें सिखाई गई हैं। मैं तुम्हें केवल एक जिम्मेवारी सिखाता हूं : वह है तुम्हारे अपने जीवन के प्रति जिम्मेवारी। यह बात बड़ी खतरनाक लगेगी। यह ऐसी लगेगी जैसे कि मैं अराजकता फैलाने की, अव्यवस्था फैलाने की कोशिश कर रहा हूं। ऐसा मैं कुछ नहीं कर रहा हूं। अराजकता तो तुमने पहले से ही बनाई हुई है, उसमें और अराजकता नहीं लाई जा सकती। मैं कोशिश कर रहा हूं एक व्यवस्था लाने की, लेकिन स्वतंत्रता से आई व्यवस्था, अंतर– अनुशासन के रूप में आई व्यवस्था—बाहर से थोपी गई, जबरदस्ती लादी हुई व्यवस्था नहीं।

नौवां प्रश्न :

क्या बच्चों को आभा– मंडल दिखाई देते हैं?

हां, लेकिन केवल तब तक दिखाई देते हैं जब तक उन्होंने बोलना शुरू नहीं किया होता। जब बच्चा

बोलने लगता है तो चीजें खोने लगती हैं। बोलते ही बच्चा समाज का हिस्सा बन जाता है। जब तक

बच्चा चुप रहता है, बोलना नहीं सीखा होता, तब तक बच्चा वह सब चीजें देखता है जिन्हें कोई संत देखता है, जिन्हें कोई बुद्ध पुरुष देखता है। ठीक उसी तरह ही देखता है। बच्चा करीब—करीब संत ही होता है। लेकिन वह केवल एक समय तक ही ऐसा रहता है। यदि बच्चा छह महीने तक, नौ महीने तक, एक साल तक नहीं बोलता—तो उस समय तक बच्चा आभा—मंडल देखेगा, अनुभव करेगा गहराई से। जब बच्चा बोलना शुरू कर देता है, तो वह बच्चा फिर बच्चा नहीं रहता। फिर बच्चा संसार का हिस्सा हो जाता है; भाषा के, बुद्धि के, मन के संसार का हिस्सा हो जाता है। तब धीरे— धीरे वे गुण तिरोहित होने लगते हैं।

भारत में हमारे पास एक मान्यता है, और बड़ी सच्ची बात छिपी है उसमें। भारत में ऐसा कहा जाता है कि छह महीने तक बच्चे को पिछले जन्म की स्मृति रहती है। यह बात सच है, क्योंकि छह महीने तक बच्चा बहुत शांत और मौन रहता है और उसका बोध बहुत गहरा होता है। फिर रोज—रोज संसार और— और ज्यादा जुड़ता जाता है उसके साथ—हम सिखाते हैं उसे, संस्कारित करते हैं उसे—तो बच्चा समाज का हिस्सा ज्यादा हो जाता है और अस्तित्व से उसका संबंध टूटता जाता है। बच्चा संसार में खो जाता है। यही है आदम का गिरना. ज्ञान का फल चख लिया जाता है। ज्ञान के श्रृक्ष का फल तब चखा जाता है जब बच्चा बोलना शुरू करता है।

फिर दोबारा अगर तुम उस निर्दोषता को पाना चाहते हो, उसे फिर आविष्कृत करना चाहते हो, तो तुम्हें मौन सीखना होगा—इसीलिए तो मौन के लिए, ध्यान के लिए इतना ज्यादा जोर है। तुम्हें फिर भाषा को भूलना होगा। भीतर की सब बातचीत, भीतर का सारा शोरगुल बंद करना होगा। तुम्हें फिर निर्दोष, भाषाविहीन होना होगा—भीतर कोई शब्द न रहें, शुद्ध अंतस सत्ता मात्र रह जाए, फिर से तुम बच्चे हो जाओ। स्मरण रखना, जीसस बार—बार कहते हैं, 'जो बच्चों की भांति हैं केवल वही प्रवेश करेंगे मेरे प्रभु के राज्य में।'

अंतिम प्रश्न:

ऐसा क्यों है कि बुद्धत्व को उपलब्ध पुरुषों की अपेक्षा बुद्धत्व को उपलब्ध स्त्रियों का हमें बहुत कम पता है?

इसका बुनियादी कारण यह है कि आत्मप्रशंसा में पुरुष बहुत कुशल हैं, स्त्रियां नहीं। बहुत स्त्रियां बुद्धत्व को उपलब्ध हुई हैं। बुद्धत्व को उपलब्ध स्त्रियों की संख्या ठीक उतनी ही है जितनी कि

पुरुषों की—इससे अन्यथा हो नहीं सकता, क्योंकि अस्तित्व एक संतुलन रखता है—लेकिन स्त्रियां बहुत चर्चा नहीं करतीं। वे ज्यादा शेखी नहीं बघारतीं। यदि वे उपलब्ध हो जाती हैं तो वे उसका आनंद लेती हैं। वे उसे लेकर ज्यादा शोरगुल नहीं करतीं।

पुरुष बिलकुल अलग तरह के होते हैं। यदि वे कुछ पा लेते हैं, तो वे बहुत शोर मचाते हैं इस बात को लेकर; वे इस विषय में खूब चर्चा करते हैं। और समाज चलता है पुरुषों द्वारा। जब कोई पुरुष बुद्धत्व को उपलब्ध होता है, तो बाकी पुरुष खूब विज्ञापन करते हैं इस बात का। जब कोई स्त्री बुद्धत्व को उपलब्ध होती है, तो कोई फिक्र नहीं करता, क्योंकि समाज स्त्रियों से नहीं चलता है। वे शासक नहीं हैं।

पुरुष मूल रूप से ज्यादा बहिर्मुखी होता है स्त्री की अपेक्षा। स्त्री स्वयं में सीमित रहती है, या ज्यादा से ज्यादा अपने परिवार तक सीमित रहती है। उसे चिंता नहीं होती वियतनाम की, उसे चिंता नहीं होती रिचर्ड निक्सन की—इतने दूर की बात उसके लिए कोई महत्व नहीं रखती। वह आने वाले पीढ़ियों की, और तमाम बातों की कोई चिंता नहीं करती। वह अपने घर में प्रसन्न रहती है, वही उसका अपना छोटा सा संसार होता है। असल में वह चाहती ही नहीं कि कोई दखलंदाजी करे। वह अपने संसार में रहना चाहती है।

जब कोई स्त्री बुद्धत्व को उपलब्ध होती है, तब फिर उसका ढंग वही होता है : वह सारे संसार को उपदेश देने नहीं जाती। वह बात उसके स्वभाव में ही नहीं होती। वह शिष्य नहीं बनाती, संगठित धर्म निर्मित नहीं करती। वह बात उसके लिए स्वाभाविक नहीं है। वह खुश होती है, वह आनंदित होती है। वह नाच सकती है, वह गा सकती है। लेकिन वह अपने घर में शाति से रहती है। वह कोई चिंता नहीं लेती संसार की। स्त्री गुरु नहीं बनती। जितने पुरुष बुद्धत्व को उपलब्ध होते हैं, उतनी ही स्त्रियां भी उपलब्ध होती हैं। लेकिन स्त्री में गुरु बनने के गुण नहीं होते। यह बात समझने जैसी है।

स्त्री में पूरे गुण हैं शिष्य बनने के। समर्पण उसके लिए आसान है। समर्पण स्वाभाविक है; स्त्रैण चित्त का हिस्सा है। समर्पण आसान है; समर्पण सरल है। स्त्री एक अच्छी शिष्य हो सकती है। और तुम सदा पाओगे : जहां चार शिष्य होंगे, उनमें तीन स्त्रियां होंगी। सारे संसार में यही अनुपात होता है। महावीर के पास चालीस हजार शिष्य थे—उनमें तीस हजार स्त्रियां थीं। यही अनुपात रहा है बुद्ध के निकट। तुम जरा जाओ किसी चर्च में, मंदिर में, और गिन लो संख्या—तुम सदा तीन और एक का अनुपात पाओगे। असल में सभी धर्म स्त्रियों द्वारा ही चलते हैं, लेकिन वे शिष्य होती हैं।

समर्पण उनके लिए आसान है, क्योंकि समर्पण पैसिव है। यदि तुम किसी स्त्री के चरणों में समर्पण कर दो तो वह घबड़ाहट और बेचैनी अनुभव करेगी। यदि कोई पुरुष आकर गिर उसके चरणों में, तो वह कभी प्रेम न कर पाएगी इस पुरुष से। वह व्यक्ति पुरुष जैसा नहीं लगता।

करके देखो, जरा पीछे पड़ जाओ किसी स्त्री के। जितना ज्यादा तुम उसके पीछे भागते हो, और जितनी ज्यादा तुम विनती करते हो, और जितना ज्यादा तुम उसके चरणों में गिरते हो—उतना ही ज्यादा

उसके लिए समर्पण करना असंभव होगा। स्त्री को कोई ऐसा पुरुष चाहिए जिसके प्रति वह समर्पण कर सके—कोई जो पौरुषेय हो। स्त्री का व्यक्तित्व निष्क्रिय है, पुरुष का व्यक्तित्व सक्रिय है. यिन और यांग। वे एक—दूसरे के परिपूरक हैं।

स्त्री के लिए समर्पण बहुत आसान है। वह उसके स्वभाव का हिस्सा है। लेकिन समर्पण को स्वीकार करना उसके लिए बहुत कठिन है—और गुरु को स्वीकार करना होता है शिष्यों का समर्पण। तो बहुत थोड़ी स्त्रियां गुरु हुई हैं—बहुत ही कम। लेकिन मुझे सदा संदेह रहा है कि उन स्त्रियों में जरूर थोड़े पुरुष हार्मोन्स रहे होंगे। वे पूरी तरह स्त्रियां नहीं रही होंगी।

भारतीय इतिहास में एक उदाहरण है : जैनों के चौबीस तीर्थंकरों में एक स्त्री थी, मल्लीबाई उसका नाम था। लेकिन जैनों का एक सर्वाधिक रूढ़िवादी संप्रदाय, दिगंबर संप्रदाय, वे उसे स्त्री नहीं मानते। वे उसका नाम 'मल्लीबाई' नहीं लिखते, वे उसका नाम 'मल्लीनाथ' लिखते हैं। वह पुरुष का नाम है, वह स्त्री का नाम नहीं है। मैंने बहुत सोच—विचार किया इस बात पर कि ऐसा क्यों है! फिर मैंने अनुभव किया कि दिगंबर ठीक कहते हैं। वह स्त्री केवल नाम को ही स्त्री रही होगी, अन्यथा वह पुरुष ही थी। तीर्थंकर हो जाना, यह बड़ी गैर—स्त्रैण बात है। लाखों व्यक्तियों को और उनके समर्पण को स्वीकार करना इतनी अस्त्रियोचित बात है कि वह स्त्री केवल शारीरिक रूप से ही स्त्री रही होगी। उसका अंतस पुरुष का था।

तो दिगंबर ठीक कहते हैं। श्वेतांबर कहते हैं कि वह स्त्री थी। वे ज्यादा यथार्थ कह रहे हैं लेकिन फिर भी सही नहीं हैं। ज्यादा तथ्यात्मक—लेकिन ज्यादा ठीक नहीं। वे तथ्य की सूचना दे रहे हैं। और कई बार तथ्य सच नहीं होते। कई बार तथ्य बड़े भ्रामक होते हैं; और कई बार तथ्य इतना ज्यादा झूठ कह सकते हैं कि काल्पनिक कथाएं झेंप जाएं। यह एक तथ्य है—कि यह मल्लीबाई एक स्त्री थी—लेकिन सच्चाई यह नहीं है। दिगंबरों के पास ठीक आधार है। उन्होंने इस तथ्य को भुला दिया कि वह स्त्री थी; उन्होंने उसे पुरुष के रूप में माना है। उसका संपूर्ण अस्तित्व जरूर पुरुष जैसा रहा होगा।

ऐसा बहुत कम होता है। राजनीति में, धर्म में, जब भी कोई स्त्री सफल होती है तो वह स्त्रैण होने की अपेक्षा पुरुष जैसी ज्यादा होती है। लक्ष्मीबाई हो या जोन ऑफ आर्क, वे स्त्रियों जैसी नहीं जान पड़ती। केवल शरीर, बाहय आवरण ही स्त्री का होता है। भीतर पुरुष होता है।

इसीलिए उनके विषय में ज्यादा पता नहीं है, क्योंकि जब तक तुम गुरु न बनो, तो कैसे लोग तुम्हें जानेंगे? तुम्हारा बुद्धत्व, तुम्हारा प्रकाश भीतर ही रहता है। तुम दूसरों को राह नहीं दिखाते; दूसरों को कभी पता ही नहीं चलता इस बारे में। लेकिन मेरी समझ यह है कि प्रकृति में सदा एक संतुलन रहता है।

संसार में स्त्रियों की उतनी ही संख्या है, जितनी पुरुषों की। जीवशास्त्रियो को बहुत आश्चर्य भी है कि ऐसा कैसे होता है! कैसे प्रकृति इसे व्यवस्थित करती है! कैसे प्रकृति जानती है कि वही अनुपात

चाहिए—समान अनुपात। पुरुषों और स्त्रियों की संख्या सदा बराबर होती है। किसी को लड़कियां ही लड़कियां पैदा होती हैं, किसी को लड़के ही लड़के पैदा होते हैं, लेकिन यदि तुम सारी पृथ्वी को देखो तो स्त्रियों की कुल संख्या करीब उतनी ही रहती है जितनी पुरुषों की।

जब बच्चे पैदा होते हैं, तो सौ लड़कियों के पीछे एक सौ पंद्रह लड़के पैदा होते हैं। क्योंकि प्रकृति जानती है कि लड़के कमजोर होते हैं; थोड़े मर ही जाएंगे। तो विवाह की उम्र तक उनकी संख्या बराबर हो जाएगी। लड़कियां ज्यादा जिद्दी होती हैं; ज्यादा मजबूत होती हैं। लड़कियां ज्यादा शक्तिशाली होती हैं। वे कम बीमार पड़ती हैं। उनके पास ज्यादा सहनशक्ति होती है बहुत सी बातों के लिए; वे परेशानियां झेल सकती हैं। यह तो पुरुष का अहंकार है जो कहता रहता है, 'हम ज्यादा शक्तिशाली हैं।' शारीरिक शक्ति पुरुष में ज्यादा हो सकती है; लेकिन सहनशक्ति ज्यादा नहीं होती है—क्योंकि एक सौ पंद्रह में से पंद्रह लड़के मर जाते हैं और चौदह वर्ष की अवस्था तक संख्या बराबर हो जाती है : सौ लड़के, सौ लड़कियां।

प्रकृति किसी न किसी तरह संतुलन करती रहती है। जब युद्ध होता है, तो युद्ध के बाद ज्यादा लड़के पैदा होते हैं, लड़कियां कम पैदा होती हैं, क्योंकि युद्ध में ज्यादा पुरुष मरते हैं। यह एक बड़ी अदभुत घटना मालूम पड़ती है—अविश्वसनीय! कैसे होता है यह? युद्ध में—दूसरा महायुद्ध हुआ, पहला महायुद्ध हुआ—दोनों युद्धों में देखा गया और पाया गया कि युद्ध के बाद ज्यादा लड़के पैदा हुए, उनकी संख्या बढ़ गई, और लड़कियां कम पैदा हुईं। क्योंकि युद्ध में पुरुष ज्यादा मरते हैं और उनकी कमी को पूरा करना होता है।

यही बात आध्यात्मिक जागरण में भी है. उतनी ही स्त्रियां बुद्धत्व को उपलब्ध होती हैं, जितने पुरुष। संतुलन बना रहता है। लेकिन स्त्रियों को ज्यादा कोई जानता नहीं, क्योंकि वे कभी गुरु नहीं बनतीं; या यदि कभी—कभी वे गुरु बन भी जाती हैं, तो यह बहुत दुर्लभ घटना होती है।

आज इतना ही।

प्रवचन 57 - आसन और प्राणायाम के आत्यंतिक रहस्य

योग—सूत्र

(साधनपाद)

स्थिरसुखमासनम्।। 46।।

स्थिर और सुखपूर्वक बैठना आसन है।

प्रयत्नशैथिल्यानन्तसमापत्तिभ्याम्।। 47।।

प्रयत्न की शिथिलता और असीम पर ध्यान से आसन सिद्ध होता है।

ततो द्वन्द्वनभिधात: ।। 48।।

जब आसन सिद्ध हो जाता है, तब द्वंदों से उत्पन्न अशांति की समाप्ति होती है।

तस्मिन्सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेद: प्राणायाम।। 49।।

आसन की सिद्धि के बाद का चरण है प्राणायाम। यह सिद्धि होती है श्वास और प्रश्वास पर कुंभक करने से, या अचानक श्वास को रोकने से।

बाह्मभ्यन्तरस्त्म्भवृतिर्देशकालसंख्याभिः परिदृष्टो दीर्धसूक्ष्मः।। 50।।

उपरोक्त प्राणायामों की अवधि आवृति देश, काल और संख्या के अनुसार ज्यादा लंबी और सूक्ष्म होती है।

बाह्माभ्यन्तरविषयाक्षेपी चतुर्थः।। 51।।

प्राणायाम का चौथा प्रकार आंतरिक होता है और वह प्रथम तीन के पार जाता है।

अभी कल ही मैं एक पुरानी भारतीय कहानी, एक लकड़हारे की कहानी पढ रहा था। कहानी इस प्रकार है एक का लकड़हारा जंगल से लौट रहा था। एक बड़ा भारी लकड़ियों का गट्ठर अपने सिर पर रखे हुए था। वह बहुत बूढ़ा था, थक गया था—न केवल रोज—रोज के काम—काज से थक गया था—जीवन से ही थक गया था। जीवन का कोई बहुत मूल्य न रह गया था उसके लिए। जीवन एक थकान भरी पुनरुक्ति था। रोज—रोज वही सुबह जंगल जाना, दिन भर लकड़ियां काटना, फिर सांझ गट्ठर लेकर आना शहर में। और कुछ उसे याद न था; यही उसका कुल जीवन था। वह ऊब गया था। जीवन उसके लिए बेकार था; उसके लिए जीवन में कोई अर्थ नहीं रह गया था। विशेषकर उस दिन वह बहुत थका हुआ था, पसीना बह रहा था, सांस लेना भी मुश्किल हो रहा था, गट्ठर का बोझ उठाए वह किसी तरह घसिट रहा था।

अकस्मात, जैसे जिंदगी का बोझ फेंक रहा हो, उसने अपना गट्ठर नीचे पटक दिया। प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में एक घड़ी आती है, जब व्यक्ति सारा बोझ फेंक देना चाहता है। केवल सिर पर रखा वह लकड़ी का गट्ठर ही नहीं, वह तो केवल प्रतीक है, उसके साथ वह पूरा जीवन ही फेंक देता है। वह घुटनों के बल गिर पड़ा जमीन पर, आकाश की तरफ उसने आंखें उठाई और कहा, 'हे मौत! तू हर आदमी को आती है, लेकिन तू मुझे क्यों नहीं आती? और कितने दुख देखने हैं मुझे? अभी और कितने बोझ ढोने हैं मुझे? क्या मुझे काफी सजा नहीं मिल चुकी है? और मैंने ऐसा क्या गलत किया है?'

उसे अपनी आंखों पर भरोसा न आया—अचानक, मौत प्रकट हो गई। उसे भरोसा न आया। उसने चारों तरफ देखा, बहुत चकित रह गया। जो वह कह रहा था, वैसा उसका इरादा बिलकुल नहीं था। और उसने कभी ऐसा सुना भी नहीं था कि तुम बुलाओ मृत्यु को और मृत्यु आ जाए।

और मृत्यु ने कहा, 'क्या तुमने मुझे बुलाया?'

वह बूढ़ा अचानक सारी थकान, सारी ऊब, मुर्दा पुनरुक्ति भरी जिंदगी की सब बात भूल गया। वह उछल पड़ा और उसने कहा, 'ही —ही, मैंने बुलाया था तुम्हें। क्या तुम इस गट्ठर को उठवाने में जरा मेरी मदद करोगी? यहां किसी को मदद के लिए आस—पास न देख कर मैंने तुम्हें बुलाया था।'

ऐसी घड़ियां होती है जब तुम थक जाते हो। ऐसी घड़ियां होती है जब तम मर जाना चाहते हो। लेकिन मरना एक कला है, इसे सीखना पड़ता है। और जीवन से थकने का अर्थ सच में ही यह नहीं होता कि गहरे में जीवन के प्रति तुम्हारी लालसा मिट चुकी हो। तुम शायद थक गए हो किसी एक ढंग के जीवन से, लेकिन तुम जीवन मात्र से नहीं थके हो। हर कोई थक जाता है जीवन के एक ही ढांचे से—वही उबाऊ दिनचर्या, वही रोज का थकान भरा चक्कर, फिर—फिर वही बात, एक पुनरुक्ति—लेकिन तुम जीवन से ही नहीं थके होते। और यदि मौत आ जाए तो तुम भी वही करोगे जो उस लकड़हारे ने किया। उसने एकदम मनुष्य की भांति व्यवहार किया। उस पर हंसो मत। बहुत बार तुमने भी सोचा है कि खतम करें इस अंतहीन बकवास को। किसलिए चलाए रहें इसे? लेकिन यदि मृत्यु अचानक तुम्हारे सामने आ जाए तो तुम तैयार न होओगे।

केवल योगी ही मरने के लिए तैयार हो सकता है, क्योंकि केवल योगी ही जानता है कि स्वेच्छा—मृत्यु से, मृत्यु को स्वेच्छा से स्वीकार करने से अनंत जीवन का द्वार खुल जाता है। केवल योगी जानता है कि मृत्यु एक द्वार है; वह अंत नहीं है। असल में वह शुरुआत है। असल में उसके पार खुलता है भगवत्ता का अनंत विस्तार। असल में उसके पार तुम पहली बार सच में प्रामाणिक रूप से जीवंत होते हो। न केवल तुम्हारा शारीरिक हृदय धड़कता है, बल्कि तुम ही धड़कते हो। न केवल तुम बाहरी चीजों का सुख लेते हो, तुम भीतर के आनंद में भी डुबकी लगाते हो। मृत्यु के द्वार से सनातन जीवन, शाश्वत जीवन प्रवेश करता है।

प्रत्येक व्यक्ति मरता है, लेकिन तब मृत्यु तुम्हारा चुनाव नहीं होती, तब तो मृत्यु जबरदस्ती थोपी गई होती है तुम पर। तुम्हारी मर्जी नहीं होती है : तुम प्रतिरोध करते हो, तुम चीखते—चिल्लाते हो, तुम रोते हो; तुम थोड़ी देर और रुके रहना चाहते हो इस धरती पर, इस शरीर में। तुम भयभीत होते हो। तुम अंधेरे के सिवाय, अंत के सिवाय और कुछ नहीं देख पाते। प्रत्येक व्यक्ति बिना मर्जी के मरता है, लेकिन तब मृत्यु द्वार नहीं होती है। तब तो तुम भयभीत होकर आंखें बंद कर लेते हो।

जो लोग योग के मार्ग पर हैं, उनके लिए मृत्यु एक स्वैच्छिक घटना है, वे सहर्ष स्वीकार करते हैं उसे। वे आत्मघाती नहीं हैं; वे जीवन—विरोधी नहीं हैं; वे विराट जीवन के पक्ष में हैं। वे विराट जीवन के लिए अपने क्षुद्र जीवन को छोड़ते हैं। वे अपना अहंकार छोड़ते हैं ज्यादा बड़ी आत्मा के लिए। वे अपनी आत्मा भी छोड़ देते हैं परमात्मा के लिए। वे सीमित को छोड़ते हैं असीमित के लिए। और यही

तो विकास है : जो तुम्हारे पास है उसे छोड़ते जाना उसके लिए जो कि संभव ही तभी होता है जब तुम खाली होते हो, जब तुम्हारे पास कुछ नहीं होता है।

पतंजलि की सारी कला यही है कि कैसे उस अवस्था को उपलब्ध हो जाओ जहां तुम स्वेच्छापूर्वक मर सको, प्रसन्नतापूर्वक, बिना किसी प्रतिरोध के समर्पण कर सको। ये सूत्र तैयारी हैं, तैयारी हैं मरने के लिए और तैयारी हैं विराट जीवन के लिए।

स्थिर सुखम् आसनम्।

स्थिर और सुखपूर्वक बैठना आसन है।

पतंजलि के योग को बहुत गलत समझा गया है, उसकी बहुत गलत व्याख्या हुई है। पतंजलि कोई व्यायाम नहीं सिखा रहे हैं, लेकिन योग ऐसा मालूम पड़ता है जैसे वह शरीर का व्यायाम मात्र हो। पतंजलि शरीर के दुश्मन नहीं हैं। वे तुम्हें शरीर को तोड़ना—मरोड़ना नहीं सिखा रहे हैं। वे तुम्हें शरीर का सौंदर्य सिखा रहे हैं। क्योंकि वे जानते हैं कि एक सुंदर शरीर में ही एक सुंदर मन हो सकता है; और केवल सुंदर मन में ही सुंदर आत्मा संभव है; और केवल सुंदर आत्मा में ही परमात्मा उतर सकता है। एक एक कदम सौंदर्य में गहरे उतरना होता है। शरीर के सौंदर्य, शरीर के प्रसाद को ही वे आसन कहते हैं। वे कोई मैसोचिस्ट नहीं हैं। वे तुम्हें अपने शरीर को सताना नहीं सिखा रहे हैं। वे शरीर के जरा भी विरुद्ध नहीं हैं। वे कैसे हो सकते हैं शरीर के विरुद्ध? वे जानते हैं कि शरीर ही बुनियाद है। वे जानते हैं कि अगर तुम शरीर को चूक जाते हो, यदि तुम शरीर को प्रशिक्षित नहीं करते, तो और ऊंचा प्रशिक्षण संभव न होगा।

शरीर एक वाद्य—यंत्र की भाति है। उसके तार ठीक कसे होने चाहिए; केवल तभी उससे अदभुत संगीत पैदा होगा। यदि वाद्य—यंत्र ही ठीक स्थिति और ठीक व्यवस्था में नहीं है, तो कैसे तुम कल्पना कर सकते हो कि उससे मधुर संगीत उठेगा त्र केवल शोरगुल ही होगा। शरीर एक वीणा है।

'स्थिर सुखम् आसनम्।'

आसन को स्थिर और सुखद होना चाहिए। तो कभी अपने शरीर को तोड़ने —मरोड़ने की कोशिश मत करना, और कभी उन आसनों के लिए कोशिश मत करना जो सुखद नहीं हैं।

पश्चिम के लोगों के लिए जमीन पर बैठना, पद्यासन में बैठना कठिन है, उनके शरीर इसके लिए प्रशिक्षित नहीं हैं। तो इस बारे में चिंता करने की कोई जरूरत नहीं है। पतंजलि कोई भी आसन तुम पर जबरदस्ती थोपना नहीं चाहते। पूरब में लोग जन्म से ही जमीन पर बैठते हैं, छोटे—छोटे बच्चे

जमीन पर बैठते हैं। पश्चिम में, सर्द मुल्कों में कुर्सियां चाहिए; जमीन बहुत ठंडी होती है। लेकिन इस बारे में चिंतित होने की कोई जरूरत नहीं है। यदि तुम पतंजलि की व्याख्या पर ध्यान दो कि आसन क्या है, तो तुम समझ जाओगे. उसे स्थिर और आरामदेह होना चाहिए।

यदि तुम कुर्सी में स्थिर और आराम से बैठ सकते हो, तो बिलकुल ठीक है—पद्‌यासन में बैठने का प्रयत्न जरूरी नहीं है और व्यर्थ ही शरीर को इसके लिए सताने की जरूरत नहीं है। असल में, यदि पश्चिम का व्यक्ति पदासन में बैठने की कोशिश करे तो उसके शरीर को अभ्यास करने में छह महीने लगते हैं; और वह परेशान हो जाता है। कोई जरूरत नहीं है इसकी। पतंजलि किसी तरह तुम्हें फुसला नहीं रहे हैं—किसी तरह का कोई जोर नहीं डाल रहे हैं तुम पर—शरीर को सताने के लिए। तुम जबरदस्ती बैठ सकते हो किसी कठिन आसन में, लेकिन तब पतंजलि के अनुसार यह आसन न होगा।

आसन ऐसा होना चाहिए कि तुम अपने शरीर को भूल सको। आरामदेह होने का मतलब क्या है? जब तुम भूल जाते हो अपने शरीर को, तब तुम आराम में होते हो। जब तुम्हें बार—बार याद आती है शरीर की, तब तुम आराम में नहीं हो। तो चाहे तुम कुर्सी पर बैठो चाहे जमीन पर बैठो, सवाल उसका नहीं है। आराम में रहो, क्योंकि यदि तुम शारीरिक रूप से आराम में नहीं हो, तो तुम दूसरी धन्यताओं की आकांक्षा नहीं कर सकते जो ज्यादा गहरी पर्तों से संबंधित हैं; यदि पहली पर्त चूक जाती है, तो दूसरी सब पर्तें बंद रहती हैं। यदि तुम सच में ही प्रसन्न और आनंदित होना चाहते हो, तो एकदम प्रथम से ही आनंदित होना प्रारंभ करना। जो व्यक्ति भीतर के आनंद की तलाश में है उसके लिए शरीर का आराम एक मूलभूत आवश्यकता है।

'स्थिर और सुखपूर्वक बैठना आसन है।'

और जब भी आसन सुखद होता है तो वह स्थिर होगा ही। यदि आसन आरामदेह न हो तो तुम बेचैनी अनुभव करते हो। यदि आसन आरामदेह न हो तो तुम हिलते—डुलते रहते हो। यदि आसन सचमुच आरामदेह है, तो क्या जरूरत है अशांत होने की और बेचैन होने की—और बार—बार हिलने—डुलने की?

और ध्यान रहे, जो आसन तुम्हारे लिए आरामदेह है, हो सकता है कि वह तुम्हारे पड़ोसी के लिए आरामदेह न हो, तो कृपया अपना आसन किसी अन्य व्यक्ति को मत सिखाने लगना। प्रत्येक व्यक्ति अनूठा है। जो चीज तुम्हारे लिए सुखद हो सकती है शायद वह दूसरे के लिए सुखद न हो।

प्रत्येक व्यक्ति अनूठा है, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति के भीतर अनूठी आत्मा है। तुम्हारे अंगूठे की छाप तक अनूठी है, बेजोड़ है। तुम संसार भर में कोई दूसरा आदमी नहीं खोज सकते जिसके अंगूठे का निशान बिलकुल तुम्हारे जैसा हो। और न केवल आज. तुम पूरे पिछले इतिहास में ऐसा व्यक्ति नहीं खोज सकते जिसके अंगूठे का निशान तुम्हारे जैसा हो। और जो जानते हैं, वे कहते हैं, भविष्य में भी ऐसा कोई व्यक्ति नहीं होगा जिसके अंगूठे का निशान तुम्हारे जैसा हो। अंगूठे का निशान कोई खास

बात नहीं है, कोई महत्व नहीं है उसका, लेकिन फिर भी वह बेजोड़ है। इससे पता चलता है कि प्रत्येक व्यक्ति के भीतर एक अनूठी आत्मा है। यदि तुम्हारे अंगूठे का निशान भी दूसरे से इतना अलग है, तो तुम्हारा शरीर, तुम्हारा पूरा शरीर जरूर ही अलग होगा।

तो कभी किसी दूसरे की बात मत सुनना। तुम्हें अपना आसन ढूंढ लेना है। इसे सीखने के लिए किसी शिक्षक के पास जाने की जरूरत नहीं; सुख की तुम्हारी अपनी अनुभूति ही शिक्षक है। और यदि तुम प्रयोग करो—तो कुछ दिन उन सभी आसनों को आजमा लेना जिनकी तुम्हें जानकारी है, सभी तरह से बैठ कर देख लेना। एक दिन तुम पा लोगे, ढूंढ लोगे अपना आसन। और जिस क्षण तुम्हें अपना आसन मिल जाएगा तुम्हारे भीतर की हर चीज शांत और मौन हो जाएगी। और दूसरा कोई तुम्हें नहीं बता सकता है, क्योंकि कोई नहीं जान सकता तुम्हारे शरीर की समस्वरता को कि वह किस आसन में एकदम स्थिर और आराम में होगी।

तो अपना आसन ढूंढ लेना, अपना योग पहचान लेना। और कभी बंधे —बंधाए नियमों का अनुसरण मत करना, क्योंकि नियम औसत के लिए बने होते हैं। वे बिलकुल ऐसे होते हैं जैसे कि पूना में एक लाख व्यक्ति हैं. कोई पांच फीट है, कोई पांच फीट पांच इंच है, कोई साढ़े छह फीट है। एक लाख व्यक्ति हैं : तुम उनकी ऊंचाई नाप लो और फिर तुम एक लाख व्यक्तियों की कुल ऊंचाई में एक लाख से भाग दे दो, तो तुम्हें औसत ऊंचाई मिल जाएगी। वह हो सकती है चार फीट आठ इंच या ऐसी ही कुछ। फिर तुम जाओ और खोजो औसत व्यक्ति को —तुम कभी न पाओगे उसे। औसत व्यक्ति कहीं होता नहीं।' औसत' संसार की सबसे झूठी बात है। कोई व्यक्ति औसत नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति अनूठा है; कोई औसत नहीं है। औसत गणित की दुनिया की बात है—वह सत्य नहीं है, वह वास्तविक नहीं है।

सारे नियम औसत के लिए बने होते हैं। वे अच्छे हैं किसी विशेष बात को समझने के लिए, लेकिन उनका अनुसरण बिलकुल मत करना, अन्यथा तुम बेचैनी अनुभव करोगे। चार फीट आठ इंच औसत ऊंचाई है! अब तुम हो पांच फीट के, चार इंच ज्यादा हैं—काट कर कम करो! बड़ी बेचैनी होती है। तब तुम ऐसे चलते हो, जिससे तुम औसत दिखाई पड़ो : तुम भद्दे दिखोगे, अष्टावक्र मालूम पड़ोगे। तुम ऊंट जैसे हो जाओगे, हर कहीं से आड़े —तिरछे। जो व्यक्ति औसत का अनुसरण करने की कोशिश करता है वह चूकेगा।

औसत एक गणितीय घटना है, और गणित कहीं अस्तित्व नहीं रखता समग्र अस्तित्व में। वह केवल मनुष्य—मन की ईजाद है। यदि तुम अस्तित्व में गणित को खोजने की कोशिश करो तो तुम उसे कहीं नहीं पाओगे। इसीलिए गणित एकमात्र पूर्ण विज्ञान है, क्योंकि वह नितांत असत्य है। केवल असत्य के साथ ही तुम परिपूर्ण हो सकते हो। वास्तविकता तुम्हारे नियमों की, निर्धारित व्यवस्थाओं की फिक्र नहीं करती। वास्तविकता अपने ढंग से चलती है। गणित एक पूर्ण विज्ञान है, क्योंकि वह

बौद्धिक है, मनुष्य—निर्मित है। यदि मनुष्य खो जाए पृथ्वी से, तो गणित सबसे पहले खो जाएगा। बाकी दूसरी चीजें तो बनी रह सकती हैं, लेकिन गणित नहीं बच सकता।

सदा स्मरण रहे, सारे नियम और अनुशासन औसत के लिए हैं; और औसत कोई है नहीं। और औसत होने की कोशिश मत करना; कोई हो भी नहीं सकता। व्यक्ति को अपना रास्ता खोजना होता है। औसत को जानना—समझना, उससे मदद मिलेगी, लेकिन उसे नियम मत बना लेना। समझने के लिए उसका उपयोग कर लेना। बस समझ लेना उसे, और भूल जाना उसके विषय में। उससे थोड़ा इशारा मिल सकता है, लेकिन सुनिश्चित समझ नहीं मिल सकती। वह एक अस्पष्ट नक्यो जैसी बात होगी, एकदम सही नहीं। वह नक्यग़ तुम्हें केवल कुछ संकेत दे सकता है, लेकिन तुम्हें अपनी अनुभूति के हिसाब से चलना पड़ता है। तुम कैसा अनुभव करते हो, यही बात निर्णायक है। इसीलिए पतंजलि यह परिभाषा देते हैं, ताकि तुम अपनी अनुभूति से चल सको।

'स्थिर सुखम् आसनम्।'

इससे बेहतर कोई और व्याख्या नहीं हो सकती आसन की : 'आसन को स्थिर और सुखद होना चाहिए।' असल में मैं इसे दूसरे ढंग से कहना चाहूंगा—और संस्कृत के सूत्र की व्याख्या दूसरे ढंग से हो सकती है—आसन वही है जो स्थिर और सुखद हो। स्थिर सुखम् आसनम्. जो स्थिर और सुखद हो वही आसन है। और यही ज्यादा सही अनुवाद है। जिस क्षण तुम 'चाहिए' बीच में ले आते हो, चीजें कठिन हो जाती हैं। संस्कृत के सूत्र में कहीं कोई 'चाहिए' नहीं है। लेकिन अनुवाद में वह आ जाता है। मैंने पतंजलि के बहुत से अनुवाद देखे हैं। वे सब यही कहते हैं. 'आसन को स्थिर और सुखद होना चाहिए।' संस्कृत का मूल पाठ कहता है—स्थिर सुखम् आसनम्—कहीं कोई 'चाहिए' नहीं है। स्थिर सुखम् आसनम्—खत्म हो जाती है बात। स्थिर हो, सुखद हो, वही आसन है। यह 'चाहिए' क्यों जोड़ा गया है? क्योंकि हम इसमें से नियम बना लेना चाहते हैं। यह तो एक सीधी—सादी परिभाषा है—एक इंगित है, एक इशारा है। यह कोई नियम नहीं है।

और सदा स्मरण रहे कि पतंजलि जैसे व्यक्ति कभी नियम नहीं देते; वे इतने मूढ़ नहीं हैं। वे केवल इशारे देते हैं, संकेत देते हैं। तुम्हें संकेत का अर्थ अपने अंतस में खोलना पड़ता है। तुम्हें अनुभव करना है उसे, समझना है और प्रयोग करना है उसे, तब तुम नियम तक पहुंचोगे। लेकिन वह नियम केवल तुम्हारे लिए होगा—किसी और के लिए नहीं।

यदि लोग इस बात पर ध्यान रख सकें, तो यह संसार बहुत ही सुंदर संसार होगा—कोई किसी को कुछ करने के लिए मजबूर नहीं कर रहा होगा; कोई किसी दूसरे को अनुशासित करने की कोशिश नहीं कर रहा होगा। क्योंकि तुम्हारा अनुशासन तुम्हारे लिए ठीक रहा होगा, वह किसी दूसरे के लिए जहर हो सकता है। जरूरी नहीं है कि तुम्हारी औषधि सबके लिए औषधि हो। उसे दूसरों को मत देना। लेकिन मूढ़ व्यक्ति सदा नियमों द्वारा जीते हैं।

मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन एक बड़े चिकित्सक के पास चिकित्सा—विज्ञान सीख रहा था। वह ध्यान से देखता अपने डाक्टर को ताकि कुछ चूक न जाए। जब डाक्टर मरीजों को देखने के लिए जाता, तो मुल्ला साथ हो लेता। एक दिन मुल्ला बड़ा हैरान हुआ। डाक्टर ने नब्ज पकड़ी मरीज की, अपनी आंखें बंद कीं, थोड़ी देर चुप रहा और फिर कहा, 'तुमने बहुत आम खाए हैं।'

मुल्ला हैरान रह गया। कैसे नब्ज देख कर वह पता लगा सका? उसने कभी नहीं सुना था कि कोई नब्ज देख कर पता लगा सकता हो कि तुमने आम खाए हैं। वह उलझन में पड़ गया। घर लौटते समय उसने पूछा, 'गुरु जी, कृपया मुझे थोड़ा समझाएं। कैसे आप बता सके...?'

डाक्टर हंसा, उसने कहा, 'नब्ज देख कर पता नहीं चल सकता, लेकिन मैंने मरीज के बिस्तर के नीचे झांका तो वहां बहुत से आम थे—कुछ बिना खाए हुए और कुछ खाए हुए। तो मैंने अनुमान लगा लिया, वह एक अनुमान की बात थी।'

फिर एक दिन डाक्टर बीमार था तो मुल्ला को जाना पड़ा मरीजों को देखने। वह एक नए मरीज के घर गया। उसने उसकी नब्ज पकड़ी, अपनी आंखें बंद कीं, थोड़ा सोच—विचार किया—ठीक पुराने डाक्टर की भांति ही—और फिर उसने कहा, 'तुमने बहुत घोड़े खाए हैं!'

मरीज ने कहा, 'क्या कहते हो! क्या आप पागल हो गए हो?'

मुल्ला बहुत उलझन में पड़ गया। वह बहुत बेचैन और उदास घर आया।

के डाक्टर ने पूछा, 'क्या हुआ?'

उसने कहा, 'मैंने भी बिस्तर के नीचे देखा था। घोड़े की जीन और दूसरी कई चीजें वहां थीं—घोड़ा भर नहीं था—तो मैंने सोचा, इसने घोड़े खाए होंगे।'

ऐसे ही मूढ़ मन नकल करता रहता है। मूढ़ मत बनो। इन सूत्रों को इशारों की तरह समझो। उन्हें हिस्सा बनने दो अपनी समझ का, लेकिन उनकी नकल करने की कोशिश मत करो। उन्हें गहरे उतरने दो अपने भीतर, ताकि वे तुम्हारी समझ बन जाएं; और फिर तुम खोज लेना अपना मार्ग। गहरी शिक्षा हमेशा परोक्ष होती है।

कैसे उपलब्ध हो यह आसन? कैसे मिले यह स्थिरता? पहले ध्यान दो कि शरीर कब सुख में होता है। यदि तुम्हारा शरीर गहन सुख में, गहन विश्राम में होता है, अच्छा अनुभव कर रहा होता है, एक स्वास्थ्य घेरे होता है तुमको : तो वही निर्णय का मापदंड होना चाहिए, वही कसौटी होनी चाहिए। और यह खड़े हुए संभव है, यह बैठे हुए संभव है, यह लेटे हुए संभव है। यह कहीं भी संभव है, क्योंकि यह आंतरिक अनुभूति है सुख की, आराम की।

और जब तुम इसे उपलब्ध तुम इसे उपलब्ध हो जाते हो तो तुम नहीं चाहते हिलाना—डुलना, क्योंकि जितना ज्यादा, तुम हिलते —डुलते हो उतना ज्यादा तुम चूकोगे इसे। यह एक सुनिश्चित अवस्था में घटित होता है। यदि तुम हिलते—डुलते हो, तो तुम इससे हट जाते हो; तुम इसे डावाडोल कर देते हो।

और सुख की स्वाभाविक इच्छा होती है प्रत्येक व्यक्ति की—और योग सर्वाधिक स्वाभाविक है—यह सबकी स्वाभाविक इच्छा है सुख में होने की, आराम में होने की। और जब भी तुम आराम में नहीं होते तो तुम बदलना चाहोगे उस स्थिति को—यह स्वाभाविक है। तो सदा अपने भीतर की सहज—स्वाभाविक अनुभूति को सुनना। वह करीब—करीब हमेशा सही होती है।

प्रयत्न की शिथिलता और असीम पर ध्यान से आसन सिद्‌ध होता है।

सुंदर शब्द हैं, बड़े सूचक और सांकेतिक हैं. प्रयत्न शैथिल्य—प्रयास की शिथिलता—पहली बात है, यदि तुम आसन की सिद्‌धि चाहते हो, जिसे पतंजलि आसन कहते हैं सुखद और स्थिर। शरीर इतनी गहन स्थिरता में होता है कि कोई चीज हिलती—डुलती नहीं; शरीर इतने आराम में होता है कि उसे हिलाने—डुलाने की इच्छा बिलकुल खो जाती है; तुम आराम की अनुभूति से आनंदित होने लगते हो, शरीर एकदम अकंप हो जाता है।

और तुम्हारी भाव—दशा के बदलने से शरीर बदलता है; शरीर के बदलने से तुम्हारी भाव—दशा बदलती है। क्या तुमने कभी ध्यान दिया! तुम किसी थिएटर में जाते हो कोई फिल्म देखने. क्या तुमने ध्यान दिया कि कितनी बार तुम अपने बैठने का ढंग बदलते हो? क्या तुमने कोशिश की इन बातों के आपसी संबंध को देखने की? अगर पर्दे पर कोई बहुत सनसनीखेज सीन चल रहा होता है, तो तुम नहीं बैठे रह सकते कुर्सी पर आराम से टिके हुए। तुम सीधे बैठ जाते हो; तुम्हारी रीढ़ सीधी हो जाती है। अगर कुछ उबाऊ बात चल रही होती है और तुम उत्तेजित नहीं होते, तो तुम शिथिल रहते हो। अगर कुछ बहुत ही अप्रीतिकर सीन चल रहा होता है, तो तुम बार—बार अपना बैठने का ढंग बदलते हो। अगर सच में कोई सुंदर बात वहां चल रही होती है, तो तुम्हारी आख का झपकना तक रुक जाता है; उतनी गति भी बाधा हो जाती है। कोई गति नहीं होती, तुम बिलकुल स्थिर हो जाते हो, अकंप, जैसे कि शरीर हो ही नहीं।

तो आसन की सिद्‌धि में पहली बात है. प्रयास की शिथिलता, जो इस संसार की सर्वाधिक कठिन बातों में से एक है। वैसे सरलतम है, लेकिन फिर भी कठिनतम हो गई है। यदि तुम उसे समझ लेते हो तो बहुत सरल है, यदि तुम नहीं समझते तो बहुत कठिन है। यह किसी अभ्यास की बात नहीं है; यह समझ की बात है।

पश्चिम में एमाइल कुए ने एक विशिष्ट नियम खोजा है जिसे वह ली आफ रिवर्स इफेक्ट कहता है— 'विपरीत प्रभाव का नियम'। वह मनुष्य—मन की सर्वाधिक आधारभूत बातों में से एक है। कुछ चीजें हैं जिन्हें यदि तुम करना चाहते हो, तो कृपया उन्हें करने की कोशिश मत करना, अन्यथा विपरीत प्रभाव होगा।

उदाहरण के लिए, तुम्हें नींद नहीं आ रही है. तो प्रयास मत करना नींद लाने का। यदि तुम प्रयास करते हो, तो नींद और मुश्किल हो जाएगी। यदि तुम बहुत ज्यादा प्रयास करते हो तो नींद असंभव हो जाएगी, क्योंकि प्रत्येक प्रयास नींद के विपरीत है। नींद तभी आती है जब कोई प्रयास

नहीं होता। जब तुम्हें नींद की कोई फिक्र नहीं होती, तुम बस अपने तकिए पर लेटे होते हो, बस आनंद लेते हो तकिए की शीतलता का या कंबल की उष्मा का, उस अंधेरे मखमली वातावरण का जो तुम्हें घेरे हुए है। तुम बस विश्राम में होते हो—और कुछ नहीं। तुम नींद के विषय में सोच तक नहीं रहे होते। कुछ चित्र गुजरते हैं मन से. तुम उन्हें तटस्थ भाव से देखते हो, उनमें भी कोई बहुत ज्यादा रस नहीं होता है तुम्हें, क्योंकि यदि रस पैदा हो जाए तो नींद खो जाती है। बस तुम उनसे अलग बने रहते हो, लेटे रहते हो, विश्राम कर रहे होते हो, कोई लक्ष्य नहीं होता—और नींद आ जाती है।

अगर तुम कोशिश करने लगो कि नींद आनी ही चाहिए, तो जब यह 'चाहिए' बीच में आ जाता है तो बात करीब—करीब असंभव हो जाती है। तब तुम सारी रात जागते रह सकते हो। और यदि तुम्हें नींद आ भी जाती है, तो केवल इसीलिए कि प्रयास द्वारा तुम थक जाते हो। और जब कोई प्रयास नहीं रहता—क्योंकि तुमने सब कुछ कर लिया होता है और तुम हार कर सब छोड़ देते हो—तब नींद आ जाती है।

एमाइल कुए ने अभी इसी सदी में ही 'विपरीत प्रभाव का नियम' खोजा। पतंजलि इसे करीब पांच हजार वर्ष पहले ही जानते थे। वे कहते हैं—प्रयत्न शैथिल्य—प्रयास की शिथिलता। तुमने ठीक उलटी बात सोची होती कि बहुत प्रयास करना होगा आसन सिद्ध करने के लिए। और पतंजलि कहते हैं, 'यदि तुम बहुत ज्यादा प्रयास करते हो, तो यह संभव नहीं होगा। अप्रयास में ही यह घटता है।'

सारे प्रयास छूट जाने चाहिए पूरी तरह से, क्योंकि प्रयास संकल्प का ही हिस्सा है और संकल्प समर्पण के विपरीत है। यदि तुम कुछ 'करने' की कोशिश करते हो, तो तुम परमात्मा को नहीं करने दे रहे हो। जब तुम समर्पण कर देते हो, जब तुम कह देते हो, 'ठीक है; तेरी मर्जी पूरी हो। अगर तुम भेज रहे हो नींद को, बिलकुल ठीक। अगर तुम नहीं भेज रहे हो नींद को, वह भी ठीक। मेरी कोई शिकायत नहीं; मैं कोई शिकायत नहीं— करता। तुम बेहतर जानते हो। अगर मेरे लिए नींद जरूरी है तो भेज दो। अगर जरूरी नहीं है तो बिलकुल ठीक—मत भेजो। कृपया, मेरी मत सुनो! तुम्हारी मर्जी पूरी होनी चाहिए।' इसी भांति कोई प्रयास को छोड़ता है।

अप्रयास एक अदभुत घटना है। एक बार तुम यह जान लेते हो तो लाखों —लाखों बातें तुम्हारे लिए संभव हो जाती हैं। प्रयास से मिलता है बाजार; अप्रयास से मिलता है परमात्मा। प्रयास से तुम कभी नहीं पहुंच सकते निर्वाण तक—तुम नई दिल्ली पहुंच सकते हो, लेकिन निर्वाण तक नहीं। प्रयास से तुम संसार की वस्तुएं पा सकते हो; वे कभी बिना प्रयास के नहीं मिलती, इसे याद रखना। यदि तुम ज्यादा धन की तलाश में हो, तो मेरी मत सुनना, क्योंकि तब तुम बहुत नाराज होओगे मुझ पर कि इस आदमी ने मेरी पूरी जिंदगी बरबाद कर दी। यह कहता था, 'प्रयास करना छोड़ो, और बहुत सी बातें संभव हो जाएंगी,' और मैं बैठा हूं और इंतजार कर रहा हूं और धन आ ही नहीं रहा है! और कोई नहीं आ रहा है निमंत्रण लेकर कि आइए और कृपा करके राष्ट्रपति बन जाइए देश के!

कोई नहीं आएगा। ये मूढ़ताएं प्रयास द्वारा प्राप्त करनी होती हैं। यदि तुम राष्ट्रपति बनना चाहते हो तो तुम्हें इसके लिए बड़ा विक्षिप्त प्रयास करना पड़ता है। जब तक तुम पूरी तरह पागल न हो जाओ, तुम कभी किसी देश के राष्ट्रपति न बनोगे। ध्यान रहे, तुम्हें ज्यादा पागल होना पड़ता है दूसरे प्रतिद्वाद्वियों की अपेक्षा, क्योंकि तुम अकेले नहीं हो। बड़ी प्रतियोगिता है; दूसरे कई और भी कोशिश कर रहे हैं। असल में प्रत्येक व्यक्ति कोशिश कर रहा है उसी जगह पहुंचने की। बड़े कठिन प्रयास की जरूरत है। और सौम्य ढंग से, सज्जनता से मत करना प्रयास, अन्यथा तुम हार जाओगे। कोई सौम्यता—सज्जनता काम नहीं आती वहां। कठोर, हिंसक, आक्रामक होना पड़ता है। इसकी फिक्र नहीं कि तुम दूसरों के साथ क्या कर रहे हो। बस, अपने लक्ष्य पर डटे रहना है। यदि दूसरे मरते भी हों तुम्हारी सत्तागत राजनीति की खातिर, तो मरने दो उन्हें। प्रत्येक व्यक्ति को सीढ़ी बना लो—एक साधन। लोगों के सिरों पर पैर रख कर बढ़ते जाओ; केवल तभी तुम राष्ट्रपति या प्रधानमंत्री बन सकते हो। और कोई उपाय नहीं है।

संसार के मार्ग हैं हिंसा और संकल्प के मार्ग। यदि तुम शिथिल कर देते हो संकल्प को, तो तुम हटा दिए जाओगे; कोई छलांग लगा कर तुम्हारे ऊपर चढ़ जाएगा। तुम साधन बना दिए जाओगे।

यदि तुम संसार के मार्गों पर सफल होना चाहते हो, तो कभी मत सुनना पतंजलि जैसे लोगों की, तो बेहतर है मैक्यावेली को, चाणक्य को पढना—जो चालाक हैं, संसार के सर्वाधिक चालाक व्यक्ति हैं। वे तुम्हें बताएंगे कि कैसे सब का शोषण करना और किसी को अपना शोषण नहीं करने देना। कैसे निर्दयी होना—बिना किसी करुणा के, एकदम कठोर। केवल तभी तुम पा सकते हो सत्ता, प्रतिष्ठा, धन—संसार की तमाम चीजें। लेकिन यदि तुम कुछ पारलौकिक अनुभूति पाना चाहते हो, तो एकदम विपरीत बात चाहिए—अप्रयास चाहिए, प्रयास—शून्यता चाहिए, विश्रांति चाहिए।

बहुत बार ऐसा हुआ है.। राजनीति की दुनिया के, धन की, बाजार की दुनिया के बहुत से मित्र हैं मेरे। वे आते हैं मेरे पास और वे कहते हैं, 'हमें किसी भांति शांत होना सिखा दें। हम आराम से नहीं बैठ सकते, शांत नहीं बैठ सकते!' एक मंत्री आया करते थे मेरे पास, और उनकी एक ही समस्या थी, 'मैं शांत नहीं हो सकता। मेरी मदद करें।'

मैंने उनसे कहा, 'अगर सच में ही शाति पाना चाहते हो तो तुम्हें राजनीति छोड़नी होगी। यह मंत्रीपद नहीं चल सकता शांत होने के साथ। यदि तुम शांत होते हो, तो तुम मंत्री न रहोगे। तो तुम निर्णय कर लो। मैं तुम्हें शांत होना सिखा सकता हूं लेकिन फिर नाराज मत होना, क्योंकि ये दोनों बातें एक साथ संभव नहीं हैं। तो पहले अपनी राजनीति से छुटकारा पा लो, फिर आना मेरे पास।'

उन्होंने कहा, 'ऐसा संभव नहीं। मैं तो शांत इसीलिए होना चाहता हूं ताकि मैं और मेहनत कर सकूं और मुख्यमंत्री बन सकूं। मन के इन तनावों और हमेशा की चिंताओं के कारण मैं ज्यादा मेहनत नहीं कर पाता। और दूसरे—वे लगे ही रहते हैं! वे बड़े प्रतियोगी हैं, और बाजी मेरे हाथ से निकली जा रही है। मैं राजनीति छोड़ने के लिए नहीं आया हूं।'

तब मैंने कहा, 'तो कृपया, मेरे पास मत आइए। भूल जाइए मेरे बारे में। राजनीति में ही रहिए। सचमुच थक जाइए, ऊब जाइए। पहले पूरी बात को जी लीजिए, फिर आइए मेरे पास।'

शांत होना एक बिलकुल ही अलग आयाम है—ठीक विपरीत आयाम है। तुम संसार में सफल होते हो संकल्प के साथ। नीत्से ने एक किताब लिखी है, 'दि विल टु पावर।' संसार में सफलता का यही सूत्र है. विल टु पावर। पतंजलि का मार्ग नहीं है 'विल टु पावर', वह है समग्रता के प्रति समर्पण। पहली बात है. 'प्रयत्न शैथिल्य'—अप्रयास। तुम्हें तो बस विश्राम में होना है। बहुत प्रयास मत करना इस विषय में; अनुभूति को ही काम करने देना। संकल्प को मत ले आना बीच में कैसे तुम आराम को जबरदस्ती थोप सकते हो अपने ऊपर? यह असंभव है। तुम विश्राम में हो सकते हो यदि तुम सहजता से शिथिल हो जाओ। तुम उसे जबरदस्ती नहीं ला सकते।

कैसे तुम जबरदस्ती ला सकते हो प्रेम को? यदि तुम किसी व्यक्ति से प्रेम नहीं करते, तो नहीं करते। क्या कर सकते हो तुम? तुम कोशिश कर सकते हो, दिखावा कर सकते हो, जबरदस्ती कर सकते हो अपने साथ, लेकिन एकदम विपरीत परिणाम होगा। यदि तुम कोशिश करते हो किसी व्यक्ति से प्रेम करने की तो तुम उससे और घृणा करने लगोगे। तुम्हारे प्रयत्नों का एकमात्र परिणाम यही होगा कि तुम घृणा करने लगोगे उस व्यक्ति से, क्योंकि तुम बदला लोगे। तुम कहोगे, 'यह कैसा अजीब व्यक्ति है, क्योंकि मैं तो इतनी कोशिश कर रहा हूं प्रेम करने की और कुछ घटता ही नहीं!' तुम उसे जिम्मेवार ठहराओगे। तुम उसे अपराधी ठहराओगे, जैसे कि वही कर रहा है कुछ।

वह कुछ नहीं कर रहा है। प्रेम संकल्प से नहीं हो सकता, प्रार्थना संकल्प से नहीं हो सकती, आसन संकल्प से नहीं हो सकता। तुम्हें इनकी अनुभूति में उतरना पड़ता है। अनुभूति एकदम अलग बात है संकल्प से।

बुद्ध संकल्प के मार्ग से बुद्ध नहीं बन सके। उन्होंने लगातार छह वर्ष तक प्रयत्न किया संकल्प से। वे संसारी व्यक्ति थे, राजकुमार की भांति शिक्षा—दीक्षा हुई थी उनकी। सम्राट बनने का प्रशिक्षण मिला था उन्हें। उन्हें जरूर वही सब सिखाया गया होगा जो चाणक्य ने कहा है।

चाणक्य भारत का मैक्यावेली है, और कुछ ज्यादा ही चालाक है मैक्यावेली से, क्योंकि भारतीय चित्त की एक खूबी है—एकदम जड़ों तक जाने की। यदि वे बुद्ध होते हैं, तो सच में वे बुद्ध होते हैं। यदि वे चाणक्य होते हैं, तो तुम मुकाबला नहीं कर सकते उनके साथ। जहां भी वे उतरते हैं, वे एकदम जड़ों तक उतरते हैं। मैक्यावेली थोड़ा बचकाना है चाणक्य के सामने। चाणक्य परम शिखर है।

तो बुद्ध को जरूर शिक्षा दी गई होगी; प्रत्येक राजकुमार को तैयार किया जाता है। मैक्यावेली की सब से महत्वपूर्ण पुस्तक का नाम है : 'दि प्रिंस'। बुद्ध को सिखाए गए होंगे संसार के ढंग; उनको जीना था सांसारिक व्यक्तियों के बीच। उन्हें अपना साम्राज्य सम्हालना था। और फिर वे सब छोड़ कर चले गए। लेकिन महल छोड़ कर चले जाना आसान है, राज्य छोड़ कर चले जाना आसान है, मन के प्रशिक्षण को छोड़ना कठिन है।

छह वर्ष तक उन्होंने संकल्प द्वारा परमात्मा को पाने का प्रयास किया। उन्होंने वह सब किया जो किसी मनुष्य के लिए संभव है—वह भी किया जो मनुष्य के लिए संभव नहीं है। उन्होंने सब कुछ किया, उन्होंने कुछ भी अनकिया नहीं छोड़ा। लेकिन कुछ भी नहीं हुआ। जितनी ज्यादा उन्होंने कोशिश की, उतना ही दूर उन्होंने अपने को पाया। असल में जितना ज्यादा संकल्प उन्होंने किया और जितने कठिन प्रयास किए, उतना ही उन्होंने अनुभव किया कि वे दूर हैं—परमात्मा कहीं नहीं है। कुछ उपलब्धि नहीं हुई।

फिर एक शाम उन्होंने सब छोड़ दिया। उसी रात वे बुद्धत्व को उपलब्ध हो गए। उसी रात घटित हुआ 'प्रयत्न शैथिल्य'—प्रयास की शिथिलता। वे संकल्प द्वारा बुद्ध नहीं हुए, वे बुद्ध हुए जब उन्होंने समर्पण किया, जब उन्होंने सारा प्रयास छोड़ दिया।

मैं तुम्हें ध्यान सिखाता हूं और मैं तुम से कहता रहता हूं 'हर संभव प्रयास करो जो कि तुम कर सकते हो,' लेकिन सदा स्मरण रहे, हर संभव प्रयास पर यह जोर केवल इसीलिए है ताकि तुम्हारा संकल्प बिखर जाए, ताकि तुम्हारा संकल्प हार जाए और संकल्प के साथ जुड़ा सपना टूट जाए। तुम संकल्प से इतने थक जाओ कि एक दिन तुम गिर पड़ो, तुम हार कर सब छोड़ दो। उसी दिन तुम सबुद्ध हो जाते हो। लेकिन जल्दी मत करना, क्योंकि तुम बिना प्रयास किए हुए ही सब प्रयास छोड़ सकते हो, वह बात मदद न करेगी। उससे कोई मदद न मिलेगी। वह एक चालबाजी होगी। और तुम परमात्मा से नहीं जीत सकते चालबाजी द्वारा। तुम्हें बहुत निर्दोष होना होगा। बुद्धत्व अपने आप घटित होता है।

ये सीधी—साफ परिभाषाएं हैं। पतंजलि नहीं कह रहे हैं, 'ऐसा करो।' वे तो बस मार्ग दिखा रहे हैं। यदि तुम समझ लेते हो उसे, तो वह प्रभावित करने लगेगा तुमको, तुम्हारे मार्ग को, तुम्हारे अंतस को। आत्मसात करो उसको। उसे गहरे उतरने दो अपने में। उसे बहने दो अपने रक्त में। उसे बनने दो मांस—मज्जा। बस इतना ही। भूल जाओ पतंजलि को। ये सूत्र रटने के लिए नहीं हैं। इन्हें स्मृति में

रख लेने की जरूरत नहीं है, इन्हें प्राणों में उतारने की जरूरत है। तुम्हारे संपूर्ण अस्तित्व को समझ में आनी चाहिए बात, बस इतना काफी है। फिर भूल जाना इन बातों को। वे अपना काम शुरू कर देती हैं।

'प्रयत्न की शिथिलता और असीम पर ध्यान से आसन सिद्ध होता है।'

दो बातें। पहली बात. प्रयास को शिथिल करना, उसे जबरदस्ती मत थोपना, उसे सहज होने देना। वह नींद जैसा है; उसे सहज होने देना। वह बहने जैसा है; होने देना उसको.। उसे जबरदस्ती थोपना मत; अन्यथा तुम उसकी हत्या कर दोगे। और दूसरी बात : जब शरीर विश्राम में उतर रहा हो, गहन विश्राम में थिर हो रहा हो, तो तुम्हारा मन केंद्रित होना चाहिए असीम पर।

मन बहुत कुशल है सीमित के साथ। यदि तुम धन के विषय में सोचते हो, तो मन कुशल है, यदि तुम सत्ता के विषय में, राजनीति के विषय में सोचते हो, तो मन कुशल है। यदि तुम शब्दों के विषय में, दर्शन के, सिद्धांतो के विषय में, धारणाओं के विषय में सोचते हो, तो मन कुशल है—ये सब सीमित बातें हैं। लेकिन यदि तुम परमात्मा के विषय में सोचते हो, तो अचानक मन ठिठक जाता है, एक शून्य आ जाता है। तुम क्या सोच सकते हो परमात्मा के विषय में?

यदि तुम कुछ भी सोच सकते हो, तो फिर वह परमात्मा परमात्मा नहीं है; वह सीमित हो गया। यदि तुम परमात्मा का विचार करते हो कृष्ण के रूप में, तो वह परमात्मा नहीं है; तब कृष्ण वहां हो सकते हैं अपनी बांसुरी बजाते हुए, लेकिन सीमा आ गई। यदि तुम परमात्मा का विचार करते हो क्राइस्ट के रूप में, तो तुम चूक गए। वह परमात्मा न रहा, तुमने एक सीमा दे दी। सुंदर है छवि, लेकिन असीम के सौंदर्य की तुलना में कुछ भी नहीं है।

दो प्रकार के परमात्मा हैं। पहला, धारणा का परमात्मा. ईसाई परमात्मा, हिंदू परमात्मा, मुसलमान परमात्मा। और दूसरा, अस्तित्वगत परमात्मा, धारणागत नहीं. वह असीम है। यदि का मुसलमान परमात्मा के विषय में सोचते हो तो तुम मुसलमान होओगे, लेकिन धार्मिक नहीं। यदि तुम ईसाई परमात्मा के विषय में सोचते हो, तो तुम ईसाई होओगे, लेकिन धार्मिक नहीं। अगर तुम परमात्मा का सीधा साक्षात करते हो तो ही तुम धार्मिक होओगे—फिर तुम हिट' नहीं रहते, मुसलमान नहीं रहते, ईसाई नहीं रहते।

और वह परमात्मा कोई धारणा नहीं है। धारणा तो एक खिलौना है जिससे तुम्हारा मन खेलता है। वास्तविक परमात्मा तो बड़ा विराट है। तब परमात्मा खेलता है तुम्हारे मन के साथ न कि तुम्हारा मन खेलता है परमात्मा के साथ। तब परमात्मा तुम्हारे हाथ का खिलौना नहीं होता; तुम एक खिलौना होते हो परमात्मा के हाथ में। सारी बात बदल जाती है। अब तुम नियंत्रण नहीं करते—नियंत्रण तुम्हारे हाथ से छूट जाता है, अब परमात्मा तुम्हें चलाता है। इसके लिए सही शब्द है 'आविष्ट होना, ' असीम द्वारा आविष्ट होना, संचालित होना।

फिर यह बात तुम्हारे मन के पर्दे पर किसी चित्र की भांति नहीं रहती। नहीं, वहां कोई चित्र नहीं होता। एक विराट शून्यता होती है—और उस विराट शून्यता में तुम खो रहे होते हो। न केवल परमात्मा की परिभाषा खो जाती है, सीमाएं खो जाती हैं; जब तुम असीम के संपर्क में आते हो, तो तुम भी अपनी सीमाएं खोने लगते हो। तुम्हारी सीमाएं भी धुंधली— धुंधली हो जाती हैं। तुम्हारी सीमाएं खोने लगती हैं, ज्यादा लोचपूर्ण हो जाती हैं; तुम आकाश में धुएं की भाति विलीन होने लगते हो। एक घड़ी आती है, तुम देखते हो स्वयं को—और तुम वहां नहीं होते।

तो पतंजलि दो बातें कहते हैं : अप्रयास और चैतन्य का असीम पर केंद्रित होना। इस भांति तुम आसन सिद्‌ध करते हो। और यह केवल शुरुआत है, यह केवल शरीर है। व्यक्ति को और गहरे उतरना होता है।

ततो द्‌वन्द्‌वानभिघात:।

जब आसन सिद्‌ध हो जाता है तब द्‌वंद्‌वों से उत्पन्न अशांति की समाप्ति होती है।

जब शरीर सच में ही सुख में होता है, विश्रांत होता है, शरीर की लौ कैप नहीं रही होती स्थिर होती है, कोई गति नहीं होती—अचानक जैसे समय रुक गया हो, कोई हवा न चल रही हो; प्रत्येक चीज थिर और शांत हो और शरीर में कोई उत्पेरणा न हो हिलने —डुलने की, वह थिर हो, गहनरूप से संतुलित, शांत, मौन, अपने स्वभाव में स्थित. उस अवस्था में सभी द्‌वंद्‌व समाप्त हो जाते हैं और द्‌वंद्‌वों के कारण उत्पन्न अशांति समाप्त हो जाती है।

क्या तुमने ध्यान दिया कि जब भी तुम्हारा मन अशांत होता है तो तुम्हारा शरीर भी अशांत और बेचैन होता है, तुम चुपचाप नहीं बैठ सकते? या जब भी तुम्हारा शरीर बेचैन होता है तो तुम्हारा मन मौन नहीं हो सकता? वे दोनों जुड़े हैं। पतंजलि अच्छी तरह से जानते हैं कि शरीर और मन दो चीजें नहीं हैं, तुम शरीर और मन, दो में बंटे हुए नहीं हो। शरीर और मन एक ही चीज है। तुम साइकोसोमैटिक हो; तुम मनोशरीर हो। शरीर केवल प्रारंभ है तुम्हारे मन का और मन तुम्हारे शरीर के अंतिम छोर के सिवाय और कुछ भी नहीं है। दोनों एक ही घटना के दो पहलू हैं; वे दो नहीं हैं। तो जो कुछ भी शरीर में घटता है वह मन को प्रभावित करता है और जो कुछ भी मन में घटता है वह शरीर को प्रभावित करता है। वे साथ—साथ चलते हैं।

इसलिए शरीर पर इतना जोर है, क्योंकि अगर तुम्हारा शरीर विश्राम में नहीं है, तो तुम्हारा मन भी शांत नहीं हो सकता। और शरीर के साथ शुरू करना ज्यादा आसान होता है, क्योंकि वह सब से बाहरी पर्त है। मन के साथ शुरू करना कठिन होता है। बहुत से लोग मन के साथ प्रारंभ करने का प्रयास

करते हैं और असफल होते हैं, क्योंकि उनका शरीर सहयोग नहीं देता। हमेशा अच्छा होता है क, ख, ग से प्रारंभ करना, और धीरे— धीरे कम में आगे बढ़ना। शरीर सबसे पहली बात है, बिलकुल प्रारंभिक है। व्यक्ति को शरीर से प्रारंभ करना चाहिए। यदि तुम शरीर की शांत अवस्था को उपलब्ध हो जाते हो, तो अचानक तुम पाओगे कि मन स्थिर हो रहा है।

मन हमेशा बाएं—दाएं डोलता रहता है। मन बाप—दादों के जमाने की पुरानी घड़ी के पेंडुलम जैसा है—दाएं से बाएं, बाएं से दाएं डोलता रहता है। और यदि तुम पेंडुलम को ध्यान से देखो तो तुम अपने मन के विषय में बहुत कुछ जान सकते हो। जब पेंडुलम बाईं तरफ जा रहा होता है, तो प्रकट में वह बाईं तरफ जा रहा होता है, किंतु असल में वह दाईं तरफ जाने की शक्ति इकट्ठी कर रहा होता है। जब आंखें कहती हैं कि पेंडुलम बाईं तरफ जा रहा है, तो बाईं ओर की वह गति ही पेंडुलम के फिर से दाईं ओर जाने के लिए एक शक्ति, एक मोमेंटम पैदा कर देती है। और जब वह दाईं तरफ जा रहा होता है तो वह बाईं ओर जाने के लिए शक्ति इकट्ठा कर रहा होता है।

तो जब भी तुम प्रेम में पड़ते हो, तब तुम घृणा करने की शक्ति इकट्ठी कर रहे होते हो। जब तुम घृणा करते हो तो तुम प्रेम करने की शक्ति इकट्ठी कर रहे होते हो। जब तुम सुखी अनुभव कर रहे होते हो, तब तुम दुखी होने के लिए ऊर्जा इकट्ठी कर रहे होते हो। जब तुम दुखी अनुभव कर रहे होते हो, तब तुम सुखी होने की शक्ति इकट्ठी कर रहे होते हो। इसी भांति मन डोलता रहता है।

मैंने सुना है कि जब भारत सन उन्नीस सौ सैंतालीस में स्वतंत्र हुआ, तो दिल्ली में एक सुंदर हाथी था। स्वतंत्रता से पहले हाथी का उपयोग किया जाता था विवाह की शोभायात्राओ में और ऐसे ही दूसरे समारोहों में, लेकिन स्वतंत्रता के बाद राजनैतिक दलों ने भी हाथी का उपयोग करना आरंभ कर दिया अपने समारोहों के लिए, जुलूसों के लिए, विरोध—प्रदर्शनों के लिए। उस हाथी में थोड़ी गड़बड़ थी। उसकी बाईं ओर की टांगें थोड़ी छोटी थीं, इसलिए जब वह हाथी चलता था तो बाईं तरफ झुका रहता था।

कम्मुनिस्ट बड़े खुश थे, सोशलिस्ट बड़े खुश थे—यह हाथी तो लेफ्टिस्ट है, वामपंथी है। तो वे उस हाथी को किराए पर लेने के लिए उसके मालिक को पैसे देते, और वे ताली बजाते, और उनके अनुयायी फूल बरसाते हाथी पर। वस्तुत: ऐसा ही तो होना चाहिए हाथी—वामपंथी। निश्चित ही, हाथी के लिए चलना कठिन था, लेकिन कौन परवाह करता है हाथी की? हाथी के लिए चलना कठिन था क्योंकि दो टांगें छोटी थीं और सारा बोझ बाईं टांगों पर पड़ रहा था। हाथी बहुत भारी होता है; कठिन था चलना। मनों बोझ उठाना पड़ता। लेकिन फूलों की बौछार, फूलमालाएं और उसका सम्मान किया जाता, और तस्वीरें छपती अखबारों में. कि यह रहा कम्युनिस्ट हाथी।

यह देख कर कि कम्मुनिस्ट और सोशलिस्ट और दूसरे वामपंथियों के पास एक सुंदर हाथी है, दक्षिणपंथियों ने भी अपने जुलूसों और समारोहों का समय आने पर उस हाथी को किराए पर लिया—

यह न जानते हुए कि यह वामपंथी हाथी है। लेकिन जब हाथी चला दक्षिणपंथियों के साथ तो वे बहुत नाराज हुए। यह हाथी तो उनके विरुद्ध था. उसे तो दाईं तरफ झुके रहना चाहिए। उन्होंने पुराने जूते, टमाटर, केले के छिलके, और तमाम सड़ी—गली चीजें फेंकनी शुरू कर दो। संक्षिप्त में कहा जाए, तो उन्होंने उसे वी. आई .पी. सत्कार दिया। वे बहुत क्रोधित थे। उन्हें उसके मालिक पर भी क्रोध आया, और उन्होंने मालिक से कहा, अगली बार जब हम इसे किराए पर लें, तो तुम ठीक इंतजाम करना।

तो मालिक ने इंतजाम किया, क्योंकि उसकी रोटी—रोजी चलती थी हाथी से; वही उसकी एकमात्र कमाई थी। तो उसने बड़े—बड़े जूते बनवाए। फिर जब भी दक्षिणपंथियों का जुलूस निकलता तो वह उसे बड़े—बड़े जूते पहना देता, और हाथी दाईं तरफ झुक जाता; और जब वामपंथियों का जुलूस निकलता, तो वह जूते उतार देता। किसी ने हाथी की चिंता नहीं की।

एक दिन हाथी गिर गया, ठीक कनॉट—प्लेस में ही गिर गया, क्योंकि जूतो के साथ इतने बोझ को उठाना बहुत ज्यादा हो गया। और बहुत तकलीफदेह था यह—यह 'आसन' नहीं था। उसका चलना बहुत मुश्किल था। वह गिर पड़ा और मर गया।

यही स्थिति है तुम्हारे मन की भी. निरंतर एक अति से दूसरी अति में डोलता रहता है. बाईं ओर, दाईं ओर; दाईं ओर, बाईं ओर। मध्य में कभी नहीं। और मध्य में होना वस्तुत: 'होना' है। दोनों अतियां बोझिल होती हैं, क्योंकि तुम आराम में नहीं हो सकते। आराम होता है मध्य में, क्योंकि मध्य में बोझ नहीं होता। ठीक—ठीक मध्य में तुम निर्भार होते हो। बाईं ओर झुको, और बोझ हो जाता है। दाईं ओर झुको, और बोझ हो जाता है। और बढ़ते ही चलो. तो जितना ज्यादा तुम मध्य से दूर जाते हो, उतना ही ज्यादा बोझ बढ़ता जाता है। तुम मर जाओगे किसी दिन किसी कनॉट—प्लेस में!

मध्य में रही। धार्मिक व्यक्ति न वामपंथी होता है और न दक्षिणपंथी। धार्मिक व्यक्ति अतियों में नहीं जीता है। वह अतियों में जीने वाला व्यक्ति नहीं होता है। और जब तुम ठीक मध्य में होते हो—तुम्हारा शरीर और तुम्हारा मन दोनों ही—तो सारे द्वैत खो जाते हैं, क्योंकि सारे द्वैत हैं तुम्हारे डोलते रहने के कारण, तुम निरंतर इस ओर से उस ओर डोलते रहते हो।

'ततो द्वन्द्वानभिघात।'

'जब आसन सिद्ध हो जाता है, तब द्वंद्वों से उत्पन्न अशांति की समाप्ति होती है।'

और जब कहीं कोई द्वैत नहीं बचता, तब कैसे तुम तनावपूर्ण रह सकते हो? कैसे तुम परेशानी में रह सकते हो? कैसे तुम संघर्ष में रह सकते हो? जब तुम्हारे भीतर दो होते हैं, तो संघर्ष होता है। वे दो लड़ते ही रहते हैं, और वे तुम्हें विश्राम में कभी न रहने देंगे। तुम्हारा घर बंटा हुआ होता है, तुम सदा शीतयुद्ध में जीते हो। तुम बुखार में जीते हो। जब यह द्वैत तिरोहित हो जाता है, तो तुम शांत, केंद्रस्थ, मध्य में स्थिर हो जाते हो।

बुद्ध ने अपने मार्ग को कहा है, 'मज्झिम निकाय' —मध्य मार्ग। वे अपने शिष्यों से कहा करते थे, 'केवल एक बात ध्यान रखने की है. सदा मध्य में रहो; अतियों पर मत जाओ।'

संसार भर में अतियां हैं। कोई निरंतर स्त्रियों के पीछे दौड़ रहा है—रोमियो, मजनू—निरंतर भाग रहा है स्त्रियों के पीछे। और फिर किसी दिन वह सारी भाग—दौड़ से थक जाता है। तब वह छोड़ देता है संसार और वह संन्यासी हो जाता है। और फिर वह हर किसी को स्त्रियों के विरुद्ध समझाता रहता है, और फिर वह कहता रहता है. 'स्त्री नरक का द्वार है। सचेत रहो। स्त्री ही फांसी है।' जब भी तुम किसी संन्यासी को स्त्री के विरुद्ध बोलते हुए पाओ, तो तुम समझ सकते हो कि वह पहले जरूर रोमियो रहा है। वह स्त्री के बारे में कुछ नहीं कह रहा है; वह अपने अतीत के बारे में कुछ कह रहा है। अब एक अति समाप्त हो गई, वह दूसरी अति की तरफ जा रहा है।

कोई पागल है धन के पीछे। और बहुत हैं धन के पीछे पागल, एकदम आविष्ट, जैसे कि उनका पूरा जीवन धन के अंबार इकट्ठे करने के लिए ही हो। लगता है कि उनके यहां होने का एकमात्र अर्थ इतना ही है कि जब उनकी मृत्यु हो तो वे धन के अंबार छोड़ जाएं—दूसरों से बड़े अंबार! वही उनके जीवन का कुल अर्थ मालूम पड़ता है। जब ऐसा आदमी थक जाता है तो वह सिखाने लगता है, ' धन दुश्मन है।' जब भी तुम किसी को यह कहते हुए सुनो कि धन दुश्मन है, तो तुम समझ सकते हो कि यह आदमी जरूर धन के पीछे पागल रहा होगा। अभी भी वह पागल ही है—दूसरी अति पर है।

एक ठीक संतुलित व्यक्ति किसी चीज के विरुद्ध नहीं होता है, क्योंकि वह किसी चीज के पक्ष में नहीं होता है। यदि तुम मेरे पास आओ और पूछो, 'क्या आप धन के विरोधी हैं?' मै केवल अपने कंधे बिचका सकता हूं। मैं धन के विरोध में नहीं हूं क्योंकि मैं कभी उसके पक्ष में नहीं था। धन एक साधन है, एक उपयोगिता है, विनिमय का एक माध्यम है—उसके पीछे पागल होने की कोई जरूरत नहीं है। यदि वह तुम्हारे पास है तो उसका उपयोग कर लो। यदि वह तुम्हारे पास नहीं है तो उसके न होने का मजा लो। यदि तुम्हारे पास धन है तो धन का उपयोग करो। यदि तुम्हारे पास धन नहीं है तो उसके न होने का आनंद लो। संतुलित व्यक्ति यदि महल में है, तो वह महल का सुख लेता है। यदि महल न हो तो वह झोपड़ी का आनंद लेता है। कैसी भी स्थिति हो, वह प्रसन्न और संतुलित रहता है। न तो वह महल के पक्ष में होता है और न वह, उसके विरोध में होता है। जो व्यक्ति पक्ष में या विरोध में होता है, वह असंतुलित है, वह संतुलित नहीं है।

बुद्ध अपने शिष्यों से कहा करते थे, 'बस संतुलित रहो, और सब कुछ अपने आप सध जाएगा। मध्य में रहो।' और यही पतंजलि कहते हैं जब वे आसन के विषय में कह रहे हैं। बाह्य आसन है शरीर से संबंधित; आंतरिक आसन है मन से संबंधित। दोनों जुड़े हुए हैं। जब शरीर मध्य में होता है, विश्राम में होता है, थिर होता है, तो मन भी मध्य में होता है—शांत और मौन होता है। जब शरीर शांत होता है, तो शरीर— भाव तिरोहित हो जाता है, जब मन विश्राम में होता है, तो मन तिरोहित हो जाता है। तब तुम केवल आत्मा होते हो, इंद्रियातीत, जो न शरीर है और न मन।

आसन की सिद्धि के बाद का चरण है प्राणायाम। यह सिद्ध होता है श्वास और प्रश्वास पर कुंभक करने से या अचानक श्वास को रोकने से।

शरीर और मन के बीच श्वास एक सेतु है। ये तीनों बातें समझ लेनी हैं। आसन में थिर शरीर, असीम में विलीन होता मन और श्वास का सेतु जो कि उन्हें जोड़ता है, ये तीनों चीजें एक सम्यक लय में होनी चाहिए। क्या तुमने कभी ध्यान दिया है? यदि नहीं, तो अब ध्यान देना कि जब भी तुम्हारा मन बदलता है, तो श्वास बदल जाती है। इसके विपरीत बात भी सच है कि यदि तार श्वाश का ढंग बदलो तो मन बदल जाता है।

जब तुम कामवासना से आविष्ट होते हो तो तुमने ध्यान दिया कि कैसे श्वास लेते हो तुम? तुम बहुत अराजक, अस्तव्यस्त, उत्तेजित ढंग से श्वास लेते हो। यदि तुम उसी ढंग से श्वास लेते रहो तो तुम जल्दी ही थक जाओगे, निढाल हो जाओगे। वह तुम्हें जीवन न देगी; असल में उस ढंग से तुम जीवन खो रहे हो। जब तुम शांत और मौन होते हो, अच्छा अनुभव करते हो—अचानक किसी सुबह की शांति में या शाम तारों की ओर देखते हुए, कुछ न करते हुए, छुट्टी के दिन, बस विश्राम करते हुए—देखना, ध्यान देना श्वास पर। वह बहुत धीमी चलती है। तुम उसे अनुभव भी नहीं करते कि वह चल भी रही है या नहीं। जब तुम क्रोधित होते हो, तो ध्यान देना। श्वास तुरंत बदल जाती है। जब तुम प्रेम से भरे होते हो, तो ध्यान देना। प्रत्येक भाव—दशा के साथ श्वास की लय भिन्न होती है। श्वास एक सेतु है। जब तुम्हारा शरीर स्वस्थ होता है, तो श्वास अलग ढंग से चलती है। जब तुम्हारा शरीर अस्वस्थ होता है तो श्वास अलग ढंग से चलती है। जब तुम पूर्णरूपेण स्वस्थ होते हो तो तुम बिलकुल भूल जाते हो श्वास को। जब तुम पूरी तरह स्वस्थ नहीं होते तो श्वास पर बार—बार तुम्हारा ध्यान जाता है, कुछ गड़बड़ है।

'आसन की सिद्धि के बाद का चरण है प्राणायाम।'

प्राणायाम का अर्थ 'श्वास पर नियंत्रण' नहीं है। यह प्राणायाम शब्द की ठीक व्याख्या नहीं है। प्राणायाम का अर्थ श्वास पर नियंत्रण बिलकुल नहीं है। इसका अर्थ है प्राण—ऊर्जा का विस्तार। प्राण—आयाम : प्राण का अर्थ है श्वास में छिपी प्राण—ऊर्जा, और आयाम का अर्थ है असीम विस्तार। यह 'श्वास पर नियंत्रण' नहीं है।

यह शब्द 'नियंत्रण' थोड़ा भद्दा है, क्योंकि यह 'नियंत्रण' शब्द ही तुम्हें कर्ता की अनुभूति देता है—संकल्प आ जाता है। प्राणायाम बिलकुल अलग बात है। प्राण—ऊर्जा का विस्तार—इस ढंग से श्वास लेना कि तुम अस्तित्व की श्वास के साथ एक हो जाते हो; इस ढंग से श्वास लेना कि तुम अलग से श्वास नहीं ले रहे, तुम समग्र के साथ श्वास ले रहे हो।

प्रयोग करके देखना। कई बार ऐसा होता है : दो प्रेमी साथ—साथ बैठे हैं हाथ में हाथ लिए—यदि वे सच में ही प्रेम में होते हैं तो वे अचानक पाते हैं कि वे एक साथ श्वास ले रहे हैं, वे अलग— अलग श्वास नहीं ले रहे हैं। जब स्त्री श्वास भीतर लेती है, तब पुरुष भी श्वास भीतर लेता है। जब पुरुष श्वास बाहर छोड़ता है, तब स्त्री भी श्वास बाहर छोड़ती है। प्रयोग करके देखना। कभी अचानक सजग होकर देखना। यदि तुम अपने मित्र के साथ बैठे हो, तो तुम साथ—साथ श्वास ले रहे होओगे। यदि कोई दुश्मन बैठा है और तुम उससे पीछा छुड़ाना चाहते हो—या कोई उबाने वाला बैठा है और तुम उससे छुटकारा पाना चाहते हो, तो तुम अलग— अलग श्वास लोगे; तुम्हारी श्वास आपस में बिलकुल लयबद्ध न होगी।

किसी वृक्ष के पास बैठना। यदि तुम शांत हो, आनंदित हो, आह्लादित हो, तो अचानक तुम पाओगे कि वृक्ष, आश्चर्य की बात है, उसी ढंग से श्वास ले रहा है, जिस ढंग से तुम श्वास ले रहे हो। और एक घड़ी आती है जब तुम अनुभव करते हो कि तुम समग्र के साथ श्वास ले रहे हो। तुम समग्र की श्वास के साथ लयबद्ध हो जाते हो। तुम फिर लड़ नहीं रहे होते, संघर्ष नहीं कर रहे होते, तुम समर्पित होते हो कि अलग श्वास लेने की जरूरत नहीं रह जाती है।

गहन प्रेम में लोग साथ—साथ श्वास लेते हैं। घृणा में ऐसा कभी नहीं होता। मेरी ऐसी अनुभूति है कि अगर तुम किसी के प्रति विरोध रखते हो तो चाहे वह हजारों मील दूर क्यों न हो—यह एक अनुभूति ही है क्योंकि इसके लिए कोई वैज्ञानिक प्रमाण उपलब्ध नहीं है, लेकिन किसी दिन संभावना है वैज्ञानिक प्रमाण उपलब्ध होने की—लेकिन मेरी अत्यंत गहन अनुभूति है कि यदि तुम किसी के प्रति विरोध रखते हो, तो चाहे वह अमरीका में हो और तुम भारत में हो, तुम अलग—अलग श्वास लोगे; तुम एक साथ श्वास नहीं ले सकते। और हो सकता है तुम्हारा प्रेमी चीन में हो और तुम यहां पूना में हो—हो सकता है तुम्हें पता भी न हो कि तुम्हारा प्रेमी कहां है—लेकिन तुम साथ—साथ ही श्वास लोगे। ऐसा ही होना चाहिए, और मैं जानता हूं कि ऐसा ही है। लेकिन कोई वैज्ञानिक प्रमाण उपलनग नहीं है। इसीलिए मैं कहता हूं कि यह मेरी अनुभूति है। किसी दिन कोई वैज्ञानिक इसके लिए प्रमाण भी जुटा देगा।

कुछ प्रमाण हैं जो संकेत देते हैं। उदाहरण के लिए. रूस में टेलीपैथी पर कुछ प्रयोग चलते हैं। इस टेलीपैथी के प्रयोग में दो व्यक्ति, बहुत दूर, सैकड़ों मील दूर होते हैं. एक व्यक्ति संदेश भेजता है, दूसरा व्यक्ति संदेश ग्रहण करता है। निश्चित समय पर, कोई बारह बजे दोपहर, पहला व्यक्ति संदेश भेजना शुरू करता है। वह त्रिभुज का आकार बनाता है, उस पर चित्त को एकाग्र करता है और संदेश भेजता है कि 'मैंने त्रिभुज बनाया है।' और दूसरा व्यक्ति उसे ग्रहण करने की कोशिश करता है। बस खुला रहता है, अनुभव करता है, संवेदनशील रहता है—क्या संदेश आ रहा है। और वैज्ञानिकों ने निरीक्षण किया है कि यदि वह त्रिभुज को पकड़ पाता है, तो वे दोनों एक ही ढंग से श्वास ले रहे होते हैं; यदि वह चूक जाता है त्रिभुज को तो वे एक ही ढंग से श्वास नहीं ले रहे होते हैं।

श्वास की गहन लयबद्धता में कोई सेतु तुम्हें जोड़ता है; तुम एक हो जाते हो, क्योंकि श्वास जीवन है। तब अनुभूति दूसरे तक पहुंच सकती है, विचार दूसरे तक पहुंच सकते हैं।

यदि तुम किसी संत से मिलने जाओ तो सदा उसकी श्वास पर ध्यान देना। और यदि तुम एक संवाद अनुभव करते हो, उसके साथ एक गहन प्रेम अनुभव करते हो, तो फिर अपनी श्वास पर भी ध्यान देना। तुम अचानक अनुभव करोगे कि तुम उसके जितने ज्यादा पास आते हो, तुम्हारी भाव—दशा, तुम्हारी श्वास उसके साथ मेल खाने लगती है। जाने या अनजाने, सवाल उसका नहीं है; लेकिन यह होता है।

यह मेरा अनुभव रहा है. यदि मैं देखता हूं कि कोई आया है और वह श्वास के विषय में कुछ भी नहीं जानता है और वह मेरी श्वास की लय में श्वास लेने लगता है तो मैं जान लेता हूं कि वह संन्यासी होने वाला है, और मैं संन्यास के लिए उससे पूछता हूं। यदि मुझे लगता है कि वह मेरी श्वास की लय में श्वास नहीं ले रहा है, तो मैं संन्यास की बात भूल ही जाता हूं तो मुझे प्रतीक्षा करनी होगी। और कई बार मैंने आजमाया है, केवल प्रयोग करने के लिए मैंने पूछ लिया, और वह व्यक्ति कहता है, 'नहीं, मैं तैयार नहीं हूं।' मैं जानता था यह बात कि वह तैयार नहीं है — बस जांच ने के लिए ही पूछता हूं कि मेरी अनुभूति ठीक है या नहीं, कि क्या वह मेरे साथ संवाद मैं है? जब तुम संवाद में होते हो, तो तुम साथ —साथ श्वास लेते हो। यह अपने आप होता है; कुछ अज्ञात नियम काम करते हैं।

प्राणायाम का मतलब है : समग्र के साथ श्वास लेना—यह है मेरा अनुवाद; 'श्वास का नियंत्रण' नहीं। प्राणायाम है समग्र के साथ श्वास लेना, इसमें नियंत्रण कहीं आता ही नहीं! यदि तुम नियंत्रण करते हो, तो कैसे तुम समग्र के साथ श्वास ले सकते हो? तो 'प्राणायाम' को 'श्वास का नियंत्रण' कहना गलत है। सच्चाई इसके ठीक विपरीत है।

प्राणायाम है समग्र के साथ श्वास लेना—शाश्वत और समग्र की श्वास के साथ एक हो जाना। तब तुम विस्तार पाते हो। तब तुम्हारी जीवन—ऊर्जा फैलती चली जाती है पेड़ों और पहाड़ों और आकाश और सितारों के साथ। तब एक घड़ी आती है, जब तुम बुद्ध हो जाते हों—तुम पूरी तरह खो जाते हो। अब तुम श्वास नहीं लेते, समग्र श्वास लेता है तुम में। अब तुम्हारी श्वास और समग्र की श्वास अलग नहीं होती। वे एक होती हैं। इतनी एक होती हैं कि अब यह कहना व्यर्थ होता है कि 'यह मेरी श्वास है।'

'आसन की सिद्धि के बाद का चरण है प्राणायाम। यह सिद्ध होता है श्वास और प्रश्वास पर कुंभक करने से, या अचानक श्वास को रोकने से।'

जब तुम श्वास भीतर लेते हो, तो एक घड़ी आती है जब श्वास पूरी तरह भीतर होती है और कुछ क्षणों के लिए श्वास ठहर जाती है। ऐसा ही तब होता है जब तुम श्वास बाहर छोड़ते तो। तुम श्वास बाहर छोड़ते हो, जब श्वास पूरी तरह बाहर होती है, तब फिर कुछ क्षणों के लिए श्वास ठहर जाती है।

उन घड़ियों में तुम्हारा मृत्यु से साक्षात्कार होता है, और मृत्यु से साक्षात्कार परमात्मा से साक्षात्कार है। मैं फिर से दोहरा दूं : मृत्यु से साक्षात्कार परमात्मा से साक्षात्कार है। क्योंकि जब तुम मिट जाते हो, परमात्मा अवतरित होता है तुम में। केवल सूली के बाद ही पुनर्जीवन होता है। इसीलिए मैं कहता हूं : पतंजलि मरने की कला सिखा रहे हैं।

जब श्वास ठहर जाती है; जब श्वास न बाहर जाती है न भीतर आती है, तब तुम ठीक उसी अवस्था में होते हो जहां तुम मृत्यु की घड़ी में होओगे। एक पल को तुम्हारा मृत्यु से साक्षात्कार हो जाता है— श्वास ठहर गई होती है। पूरा 'विज्ञान भैरव तंत्र' इस प्रक्रिया पर आधारित है, क्योंकि यदि तुम प्रवेश कर सको उस अंतराल में, तो वही द्वार है। लेकिन वह बहुत सूक्ष्म और संकरा है।

जीसस ने बार—बार कहा है, 'मेरा मार्ग संकरा है—सीधा है, लेकिन संकरा है, बहुत संकरा है।' कबीर ने कहा है, 'दो नहीं गुजर सकते साथ—साथ, केवल एक ही गुजर सकता है।'

इतना संकरा है मार्ग कि यदि तुम्हारे भीतर भीड़ है, तो तुम नहीं गुजर सकते। यदि तुम दो में भी बंटे हुए हो—बाएं और दाएं—तो भी तुम नहीं गुजर सकते। यदि तुम एक हो, एक समस्वरता, एक अखंडता, तो तुम गुजर सकते हो। संकरा है मार्ग। सीधा है, निश्चित ही; वह कोई आड़ा—तिरछा नहीं है। वह सीधा जाता है परमात्मा के मंदिर की तरफ, लेकिन बहुत संकरा है।

तुम अपने साथ किसी को नहीं ले जा सकते। तुम अपने साथ अपनी चीजें नहीं ले जा सकते। तुम अपना ज्ञान नहीं ले जा सकते। तुम अपना त्याग नहीं ले जा सकते। तुम अपनी प्रेमिका को नहीं ले जा सकते, अपने बच्चों को नहीं ले जा सकते। तुम किसी को नहीं ले जा सकते। असल में तुम अपना अहंकार भी नहीं ले जा सकते—स्वयं को भी नहीं ले जा सकते! 'तुम्हीं' गुजरोगे वहां से, लेकिन तुम्हारे शुद्धतम अस्तित्व के अतिरिक्त बाकी हर चीज छोड़ देनी होती है द्वार पर।

हां, संकरा है मार्ग। सीधा है, लेकिन संकरा है।

और यही क्षण हैं मार्ग को देख लेने के. जब श्वास भीतर जाती है और ठहर जाती है पल भर को; जब श्वास बाहर जाती है और ठहर जाती है पल भर को। इन अंतरालों के प्रति, इन क्षणों के प्रति और—और सजग होना। इन अंतरालों के द्वारा परमात्मा तुम में प्रवेश करता है मृत्यु की भांति।

मुझ से कोई कह रहा था, 'पश्चिम में हमारे पास यम के समानांतर कोई शब्द नहीं है—यम अर्थात मृत्यु का देवता।' और वह मुझ से पूछ रहा था, 'आप मृत्यु को देवता क्यों कहते हैं? मृत्यु तो दुश्मन है। मृत्यु को देवता क्यों कहा गया है? यदि मृत्यु को शैतान कहा जाए तो ठीक है। लेकिन आप इसे देवता क्यों कहते हैं?' मैंने कहा कि हम इसे बहुत सोच—समझ कर देवता कहते हैं. क्योंकि मृत्यु द्वार है परमात्मा का। असल में मृत्यु ज्यादा गहरी है जीवन की अपेक्षा—उस जीवन की अपेक्षा जिसे तुम जीवन जानते हो। वह जीवन नहीं जिसे मैं जानता हूं। तुम्हारी मृत्यु ज्यादा गहरी होती है तुम्हारे

जीवन से, और जब तुम मृत्यु से गुजरते हो, तो तुम्हें वह जीवन मिलेगा जिसका तुमसे या मुझ से या किसी से कोई लेना—देना नहीं है। यह समग्र का जीवन है। इसीलिए मृत्यु को देवता कहा है। एक पूरा उपनिषद है, कठोपनिषद : वह पूरी कथा, पूरा उपनिषद यही है कि एक छोटा बच्चा मृत्यु के पास जाता है—जीवन का रहस्य सीखने के लिए। असंगत लगती है बात, बिलकुल असंगत लगती है। जीवन का रहस्य सीखने के लिए मृत्यु के पास क्यों जाना? विरोधाभास मालूम पड़ता है, लेकिन सच्चाई यही है। यदि तुम जीवन को जानना चाहते हों—वास्तविक जीवन कों—तो तुम्हें पूछना होगा मृत्यु से, क्योंकि जब तुम्हारा तथाकथित जीवन समाप्त होता है, केवल तभी वास्तविक जीवन सक्रिय होता है।

'आसन की सिद्धि के बाद का चरण है प्राणायाम। यह सिद्ध होता है श्वास और प्रश्वास पर कुंभक करने से......।'

तो जब तुम श्वास भीतर लेते हो, तो उसे थोड़ी देर रोकना, ताकि 'द्वार' अनुभव किया जा सके। जब तुम श्वास बाहर छोड़ते हो, तो उसे थोड़ी देर बाहर रोकना, ताकि तुम ज्यादा आसानी से अनुभव कर सको उस शून्य अंतराल को; तुम्हारे पास थोड़ा ज्यादा समय होता है।

'... या अचानक श्वास को रोकने से।'

या, कभी श्वास को अचानक रोक देना। रास्ते पर चलते हुए उसे रोक देना—स्व अचानक झटका, और मृत्यु प्रवेश कर जाती है। कभी भी, किसी भी समय तुम अचानक रोक सकते हो श्वास को, कहीं भी—उसी श्वास के रुकने में मृत्यु प्रवेश कर जाती है।

उपरोक्त प्राणायामों की अवधि और आवृत्ति देश काल और संख्या के अनुसार ज्यादा लंबी और सूक्ष्म होती जाती है।

इन अंतरालों का जितना ज्यादा तुम अभ्यास करते हो, उतना ज्यादा विस्तीर्ण होता है द्वार; तुम उसे उतना ज्यादा अनुभव करने लगते हो। इसे हिस्सा बना लेना अपने जीवन का। जब भी तुम कुछ नहीं कर रहे हो, तो श्वास को भीतर लेना—रोक लेना। अनुभव करना उसे वहां; वहीं कहीं द्वार है। वहां अंधेरा है; टटोलना होगा तुम्हें। द्वार तुरंत ही नहीं मिल जाता है, तुम्हें टटोलना होगा—लेकिन तुम पा लोगे।

और जब भी तुम श्वास को रोकोगे, तुरंत ही विचार ठहर जाएंगे। प्रयोग करके देखना। अचानक रोक देना श्वास. और तुरंत प्रवाह रुक जाता है और विचार ठहर जाते हैं, क्योंकि विचार और श्वास दोनों संबंधित हैं जीवन से—इस तथाकथित जीवन से। दूसरे जीवन में, दिव्य जीवन में, श्वास की जरूरत नहीं है। तुम जीते हो, श्वास की कोई जरूरत नहीं होती, तुम जीते हो, विचारों की कोई जरूरत नहीं

होती। विचार और श्वास भौतिक संसार का हिस्सा हैं। निर्विचार, निःश्वास—वे शाश्वत जीवन का हिस्सा हैं।

प्राणायाम का चौथा प्रकार आंतरिक होता है और वह प्रथम तीन के पार जाता है।

पतंजलि कहते हैं. ये प्राणायाम के तीन प्रकार हैं— भीतर रोकना, बाहर रोकना, अचानक रोकना। और चौथा प्रकार है—जो आंतरिक है।

इस चौथे प्रकार पर बुद्ध ने बहुत जोर दिया है, वे इसे कहते हैं, 'अनापानसतीयोग'। वे कहते हैं, 'कहीं भी श्वास को रोकने की कोशिश मत करना। बस श्वास की पूरी प्रक्रिया को देखते रहना।' श्वास भीतर जाती है—तुम देखना, एक भी श्वास चूकना मत। श्वास भीतर जाती है—तुम देखते रहना। फिर एक ठहराव आता है—जब श्वास भीतर जा चुकी होती है तो एक पल के लिए ठहरती है—उस ठहराव को देखना। कुछ करना मत; बस देखते रहना। फिर श्वास चल देती है बाहर की यात्रा पर—देखते रहना। जब श्वास पूरी तरह बाहर होती है तो फिर एक क्षण के लिए ठहरती है—उसको भी देखना। फिर श्वास भीतर आती है, बाहर जाती है, भीतर आती है, बाहर जाती है—तुम बस देखना। यह चौथा प्रकार है. केवल देखते रहने से ही तुम श्वास से अलग हो जाते हो।

जब तुम श्वास से अलग हो जाते हो, तब तुम विचारों से अलग हो जाते हो। असल में शरीर में श्वास की प्रक्रिया मन में विचारों की प्रक्रिया के समानांतर ही है। विचार चलते हैं मन में; श्वास चलती है शरीर में। वे समानांतर शक्तियां हैं, एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। पतंजलि भी इसकी ओर संकेत करते हैं, यद्यपि उन्होंने जोर नहीं दिया है चौथे प्राणायाम पर। वे केवल संकेत करते हैं इसकी ओर, लेकिन बुद्ध ने तो अपना पूरा ध्यान चौथे प्राणायाम पर ही केंद्रित कर दिया। वे प्रथम तीन की बात ही नहीं करते। संपूर्ण बौद्ध ध्यान चौथे प्राणायाम पर ही आधारित है।

'प्राणायाम का चौथा प्रकार'—जो कि साक्षी होना है—' आंतरिक होता है और वह प्रथम तीन के पार जाता है।'

लेकिन पतंजलि बहुत वैज्ञानिक हैं। वे चौथे प्राणायाम का कभी उपयोग नहीं करते, फिर भी वे कहते हैं कि वह तीनों के पार है। हो सकता है कि पतंजलि के पास उतने विकसित शिष्यों का समूह न रहा हो, जैसा बुद्ध के पास था। पतंजलि जरूर उन लोगों पर काम कर रहे होंगे जो शरीर के साथ ज्यादा जुड़े थे, और बुद्ध उन लोगों पर काम कर रहे थे जो मन के साथ ज्यादा जुड़े थे। पतंजलि कहते हैं कि चौथा प्राणायाम बाकी तीनों के पार है, लेकिन वे स्वयं कभी उसका उपयोग नहीं करते।

पतंजलि योग के विषय में जो भी कहा जा सकता है वह सब कहते जाते हैं। इसीलिए मैं कहता हूं कि वे योग के अल्फा और ओमेगा हैं—आदि और अंत हैं। उन्होंने एक भी बात नहीं छोड़ी है। पतंजलि के योग—सूत्रों में कुछ भी जोड़ा—घटाया नहीं जा सकता है।

केवल दो ही व्यक्ति हैं संसार में जिन्होंने अकेले पूरा विज्ञान निर्मित किया है। एक है पश्चिम में अरस्तू जिसने तर्कशास्त्र का पूरा विज्ञान निर्मित किया—अकेले ही—किसी का भी सहयोग नहीं रहा। और इन दो हजार वर्षों में कोई चीज उसमें जुड़ी नहीं, संशोधित नहीं हुई; वह वैसा का वैसा है। वह इतना परिपूर्ण है। दूसरे हैं पतंजलि, जिन्होंने योग का पूरा विज्ञान निर्मित किया—जो कई गुना, लाख गुना ज्यादा विराट है तर्कशास्त्र से—अकेले ही पूरा विज्ञान निर्मित किया! और उसमें कुछ भी जोड़ा—घटाया नहीं जा सकता। वह बिलकुल वैसा ही है। और मैं इसकी कोई संभावना नहीं देखता कि आगे भी कभी उसमें कुछ जोड़ा जा सकता है। योग—सूत्र में पूरा विज्ञान मौजूद है—संपूर्ण, अपनी पराकाष्ठा पर।

आज इतना ही।

प्रवचन 58 - ध्यान : अज्ञात सागर का आमंत्रण

प्रश्न—सार:

1—कई बार आपके प्रवचनों के दौरान मैं 'छ' खुली नहीं रख पाता और एकाग्र नहीं हो पाता, और पता नहीं कहां चला जाता हूं, और एक झटके से वापस लौटता हूं। कोई स्मृति नहीं रहती कि मैं कहां रहा! क्या मैं कहीं गहरे उतर रहा हूं या बस नींद में जा रहा हूं?

2—आपने कहा कि पतंजलि का योग—सूत्र एक संपूर्ण शास्त्र है।

लेकिन इसमें कहीं भी चुंबन के योग क्यों नहीं आती है?

3—अपनी अनुभूतियों में कैसे कोई समग्र हो सकता है, बिना अतियों में गए?

4—क्या आप मुस्कुराते है—जब हम आपकी सभा में गंभीर और लंबे चेहरे लिए बैठे होते हैं?

5—आपने एक बार कहा है कि मादक द्रव्य रासायनिक स्वप्न और काल्पनिक अनुभव निर्मित करते है। लेकिन क्या योग—साधना और ध्यान की सब विधियां भी केवल रासायनिक परिवर्तन ही नहीं करती? फिर मादक द्रव्यों में और साधना में क्या फर्क है?

6—सेल्फ—कांशसनेस—जिसे आप एक रोग कहते है—और सेल्फ—अवेयरनेस में क्या फर्क है?

7—श्वास तो अनुभव है, उसे देखेंगे कैसे?

8—क्या साक्षी—भाव एक ठंडी और भाव शून्य घटना होनी चाहिए?

9—आपने कहा: ध्यान है मरने की कला। तो फिर आप ऐसा कुछ क्यों नहीं करते कि हमारी मृत्यु तत्काल घट जाए?

10—कहां से आते है आपके वचन? और आप उनके साथ कैसे संबंधित होते है?

पहला प्रश्न :

कई बार आपके प्रवचनों के दौरान मैं अपनी आंखें खुली नहीं रख पाता और एकाग्र नहीं हो पाता और पता नहीं कहां चला जाता हूं और फिर एक झटके के साथ वापस लौटता हूं। कोई स्मृति नहीं रहती कि मैं कहां रहा। क्या मैं कहीं गहरे उतर रहा हूं या बस नीदं में जा रहा हूं?

मन बहुत सूक्ष्म विद्युत तरंगों द्वारा काम करता है। उस यांत्रिक प्रक्रिया को समझ लेना है। अब इस दिशा में खोज करने वाले कहते हैं कि मन चार अवस्थाओं में काम करता है। साधारण जाग्रत मन काम करता है अठारह से लेकर तीस आवर्तन प्रति सेकेंड के हिसाब से—यह मन की 'बीटा' अवस्था है। अभी तुम उसी अवस्था में हो, जाग्रत अवस्था में, दैनंदिन काम करते हुए।

उससे ज्यादा गहरे में है द्वितीय अवस्था—'अल्फा'। कई बार, जब तुम कुछ नहीं कर रहे होते, निष्क्रिय होते हो—बस विश्राम कर रहे होते हो सागर—तट पर, कुछ नहीं कर रहे होते, संगीत सुन रहे होते हो, या गहरे डूब गए होते हो प्रार्थना में या ध्यान में—तब मन की सक्रियता गिर जाती है. अठारह से

तीस आवर्तन प्रति सेकेंड से वह करीब चौदह से अठारह आवर्तन प्रति सेकेंड तक आ जाती है। तुम सजग होते हो, लेकिन निष्क्रिय होते हो। एक गहन विश्राम तुम्हें घेरे रहता है।

सारे ध्यानी जब वे ध्यान करते हैं या प्रार्थना करते हैं तो इसी दूसरी लय में, 'अल्फा' लय में उतर जाते हैं। संगीत सुनते हुए भी यह घट सकती है। वृक्षों को देखते हुए, चारों तरफ फैली हरियाली को देखते हुए भी यह घट सकती है। कुछ विशेष न करते हुए बस मौन बैठे हुए भी यह घट सकती है। और एक बार तुम जान लेते हो इसका ढंग, तो तुम मन की क्रिया को शिथिल कर सकते हो; तब विचार बहुत भाग—दौड़ नहीं करते। वे चलते हैं, वे होते हैं वहां, लेकिन वे बड़ी धीमी गति से चलते हैं, जैसे बादल तैर रहे हों आकाश में—वस्तुत: कहीं जा नहीं रहे, बस तैर रहे हैं। यह दूसरी अवस्था, 'अल्फा' अवस्था, बड़ी कीमती अवस्था है।

इस दूसरी के पीछे होती है तीसरी अवस्था, सक्रियता और भी कम हो जाती है। वह अवस्था 'थीटा' कहलाती है—आठ से चौदह आवर्तन प्रति सेकेंड। यह वह अवस्था है जिससे तुम तब गुजरते हो जब तुम्हें रात नींद आ रही होती है, उनींदापन घेरे होता है। जब तुम शराब पी लेते हो, तब तुम इसी तंद्रा से गुजरते हो। देखना किसी शराबी को चलते हुए : वह तीसरी अवस्था में होता है। वह बेहोशी में चल रहा है। कहां जा रहा है वह, उसे कुछ पता होता वह क्या रहा है, कुछ स्पष्ट बोध नहीं है। शरीर काम किए जाता है यंत्र—मानव की भांति। मन की सक्रियता इतनी धीमी पड़ जाती है कि वह करीब—करीब नींद की सीमा पर ही होता है।

बहुत गहरे ध्यान में भी यह बात घटेगी—तुम 'अल्फा' से 'थीटा' में उतर जाओगे। लेकिन ऐसा केवल बड़ी गहरी अवस्थाओं में ही घटता है। साधारण ध्यानी इसका स्पर्श नहीं कर प्राते। जब तुम इस तीसरी अवस्था को स्पर्श करने लगते हो तो तुम बहुत आनंद अनुभव करोगे।

और सारे शराबी इसी आनंद को उपलब्ध करने की कोशिश कर रहे होते हैं, लेकिन वे चूक जाते हैं, क्योंकि आनंद केवल तभी संभव है यदि तुम इस तीसरी अवस्था में पूरी सजगता से उतरते हो—निष्क्रिय लेकिन सजग। शराबी उस अवस्था तक पहुंचता है, लेकिन वह बेहोश होता है; जब वह वहां पहुंचता है, वह बेहोश होता है। अवस्था मौजूद होती है, लेकिन वह उसका आनंद नहीं ले सकता; उसमें प्रसन्न नहीं हो सकता; उसमें विकसित नहीं हो सकता। सारे संसार में सब तरह के मादक द्रव्यों के लिए आकर्षण इसी 'थीटा' अवस्था के आकर्षण के कारण है। लेकिन यदि तुम रासायनिक पदार्थों द्वारा उस तक पहुंचने की कोशिश कर रहे हो तो तुमने गलत साधन चुना है। व्यक्ति को इस अवस्था तक मन की सक्रियता को धीमा करके ही पहुंचना होगा और सजग बने रहना होगा।

फिर चौथी अवस्था है; वह 'डेल्टा' कहलाती है। सक्रियता अब और कम हो जाती है. शून्य से चार आवर्तन प्रति सेकेंड। मन करीब—करीब रुक गया होता है। ऐसे क्षण होते हैं जब वह शून्य—बिंदु छू लेता है, एकदम रुक गया होता है। यहीं तुम गहरी नींद की अवस्था में डूब जाते हो, जब स्वप्न भी

नहीं होते; और इसे ही हिंदुओं ने, पतंजलि ने, बौद्धों ने समाधि कहा है। पतंजलि ने तो वस्तुत: समाधि की यही व्याख्या की है : बोध के साथ गहन निद्रा। केवल एक शर्त है कि सजगता होनी चाहिए।

पश्चिम में, इधर अभी बहुत खोज हुई है इन चार अवस्थाओं के विषय में। वे सोचते हैं कि चौथी अवस्था में सजग रहना असंभव है, क्योंकि वे सोचते हैं कि यह विरोधाभासी है—सजग होना और गहरी नींद में होना। लेकिन यह विरोधाभासी नहीं है। और एक व्यक्ति ने, एक बड़े असाधारण योगी ने, अब इसे वैज्ञानिक ढंग से प्रमाणित कर दिया है। उसका नाम है स्वामी राम। सन उन्नीस सौ सत्तर में में त्रिनगर इंस्टीटधूट की प्रयोगशाला में उसने वैज्ञानिकों से कहा कि वह मन की चौथी अवस्था में जाएगा—संकल्पपूर्वक। लोगों ने कहा, 'यह असंभव है, क्योंकि चौथी अवस्था केवल तभी होती है जब तुम गहरी नींद में होते हो और संकल्प काम नहीं करता और तुम सजग नहीं होते।' लेकिन स्वामी राम ने कहा, 'मैं करके दिखाऊंगा।' वैज्ञानिक विश्वास करने के लिए राजी न थे, वे शंका से भरे थे, लेकिन फिर भी उन्होंने प्रयोग करके देखा।

स्वामी राम ने ध्यान करना आरंभ किया। धीरे— धीरे, कुछ मिनटों के भीतर ही वह करीब—करीब सो गया।'ई ई जी' रेकॉर्ड्स ने, जो उसके मन की तरंगों को अंकित कर रहे थे, दिखाया कि वह चौथी अवस्था में था, मन की क्रिया करीब—करीब रुक गई थी। फिर भी वैज्ञानिकों को भरोसा न आया, क्योंकि शायद वह सो गया हो, तब तो कुछ सिद्ध हुआ नहीं; असली बात यह है कि वह सजग है या नहीं। फिर स्वामी राम वापस लौट आए अपने ध्यान से, और उसने सारी बातचीत जो उसके आस—पास चल रही थी, वह सब बतलाई—और उनसे ज्यादा अच्छी तरह बतलाई जो पूरी तरह जागे हुए थे।

किसी वैज्ञानिक प्रयोगशाला में पहली बार कृष्ण के प्रसिद्ध वचन प्रमाणित हुए। कृष्ण गीता में कहते हैं, 'या निशा सर्वभूतायाम् तस्याम् जागर्ति संयमी—जो सब के लिए गहरी निद्रा है, योगी वहां भी जागा रहता है।' पहली बार यह बात वैज्ञानिक सिद्धात की भांति प्रमाणित हुई। गहरी नींद में होना और सजग होना संभव है, क्योंकि नींद घटित होती है शरीर में, नींद घटित होती है मन में, लेकिन साक्षी आत्मा कभी सोती नहीं। जब तुम शरीर—मन की यांत्रिक—व्यवस्था के साथ तादात्म्य हटा लेते हो, जब तुम सक्षम हो जाते हो देखने में कि शरीर में, मन में क्या चलता है, तो तुम सोते नहीं : शरीर सो जाएगा, तुम सजग बने रहोगे। तुम्हारे भीतर कहीं गहरे में कोई केंद्र पूरी तरह जागा रहेगा।

अब, यह प्रश्न : 'कई बार आपके प्रवचनों के दौरान मैं अपनी आंखें खुली नहीं रख पाता..।'

मत कोशिश करो उन्हें खुली रखने की। यदि तुम किसी गहरी लय में उतर रहे हो तो डूबो उसमें। क्योंकि जब तुम मुझे सुन रहे हो, तब यदि तुम एकाग्र होने की कोशिश करते हो, तो तुम पहली अवस्था में रहोगे, 'बीटा' में रहोगे, क्योंकि मन सक्रिय रहता है। उसकी चिंता मत लेना। जो मैं कह रहा हूं वह इतना महत्वपूर्ण नहीं है जितना तुम्हारा स्वयं में गहरे डूबना महत्वपूर्ण है। असल में जो मैं

कह रहा हूं वह तुम्हें अपने अंतस में ज्यादा गहरे उतरने की तैयारी ही है। तो यदि तुम कुछ सुनने में चूक जाते हो तो चिंता मत लेना—तुम बाद में टेप से सुन सकते हो। और यदि तुम उसे न भी सुनो, तो कुछ अंतर नहीं पड़ता।

यदि आंखें बंद होती हों, तो बंद हो जाने देना। केवल एक बात याद रखनी है : वह यह है कि सजग रहना। आंखों को बंद हो जाने देना। असल में और ज्यादा सजग हो जाना, क्योंकि जितने ज्यादा तुम गहरे उतरते हो मन में, उतनी ज्यादा सजगता की जरूरत होगी। तुम गहरे डुबकी लगा रहे होते हो चेतना में। लेकिन तुम सो भी सकते हो : तब तुम प्रवचन भी चूक गए और भीतर देखना भी चूक गए। तो व्यर्थ हुआ यहां होना।

'कई बार आपके प्रवचनों के दौरान मैं अपनी आंखें खुली नहीं रख पाता...।'

कोई जरूरत नहीं है। बंद कर लेना आंखें। बस भीतर सजग रहना—ज्यादा सजग रहना।

'...और पता नहीं कहा खो जाता हूं। और फिर एक झटके से वापस लौटता हूं।'

वही है तीसरी अवस्था, 'थीटा'। यदि तुम दूसरी अवस्था में, 'अल्फा' में हो, तो तुम जानते रहोगे कि तुम कहां हो और कोई झटका महसूस नहीं होगा। सरलता से तुम पहली अवस्था से दूसरी तक जा सकते हो, ' थीटा' से ' अल्फा' तक बड़ी सरलता से जा सकते हो, क्योंकि अंतर केवल सक्रियता और निष्क्रियता का ही है—तुम सजग रहते हो। लेकिन जब तुम दूसरी से तीसरी अवस्था में जाते हो, तब अंतर बड़ा गहरा होता है। साधारण रूप से अब तुम जा रहे हो जाग्रत अवस्था से निद्रा में। तब यदि तुम वापस लौटते हो, तो तुम एक झटके के साथ लौटते हो और तुम्हें स्मरण नहीं रहता है—इसीलिए तुम नहीं जानते कि तुम कहां रहे।

'कोई स्मृति नहीं रहती कि मैं कहां रहा।'

यदि तुम्हें नींद ही आई होती, तो तुम्हें स्मृति रहती। यदि तुम सपना देख रहे थे, तो तुम्हें स्मृति रहेगी सपने की। यदि तुम सपना नहीं देख रहे थे, तो तुम्हें स्मृति रहेगी कि तुम सोए थे और कोई सपना नहीं आया। या तो विधायक रूप से तुम सपना याद या नकारात्मक रूप से तुम याद रखोगे कि कोई सपना नहीं आया और बहुत गहरी नींद आई; लेकिन यदि वह नींद होती तो तुम्हें याद रहता।

इसीलिए तो सुबह तुम याद रखते हो कि रात बहुत सपने देखे, या किसी दिन तुम कहते हो, 'मैं बहुत गहरी नींद सोया, कोई सपने नहीं देखे।' ये दोनों ही स्मृतियां हैं—एक विधायक है, एक नकारात्मक है। यदि सपने होते हैं, तो विधायक स्मृति होगी—कुछ हो रहा था, कुछ चल रहा था। यदि कोई सपना नहीं देखा तो तुम्हें बस शांतिपूर्ण स्मृति रहेगी कुछ न होने की, कि कुछ नहीं घटा। लेकिन इतना तुम्हें याद रहेगा कि कुछ नहीं घटा और कोई सपना मेरे मन से नहीं गुजरा और नींद सच में ही गहरी थी,

बहुत गहरी थी, कहीं कोई तरंग भी नहीं थी। लेकिन तुम्हें याद रहेगा और तुम कहोगे, 'मैं बड़ा आनंदित था।'

लेकिन यदि तुम नींद में नहीं बल्कि ध्यान की गहरी अवस्था में उतर जाते हो—वे एक जैसी ही होती हैं, करीब—करीब मिलती—जुलती लगती हैं—तब तुम कोई बात याद नहीं रख पाओगे। क्योंकि जब तुम ध्यान की गहरी अवस्था में, 'थीटा' में उतरते हो, या कई बार तुम चौथी अवस्था में भी उतर सकते हो, 'डेल्टा' में, तो कहीं कोई स्मृति न होगी; क्योंकि तुम ऐसी गहराई में उतर रहे होते हो, जो मन का हिस्सा नहीं, कहीं ऐसी जगह गति कर रहे होते हो जहां स्मृति काम नहीं करती, कहीं अज्ञात पगडंडी पर चल रहे होते हो। तुम किसी बड़े राजपथ पर नहीं चल रहे होते, तुम अपने अचेतन अंतस के जंगल में चल रहे होते हो : अनजाना— अज्ञात मार्ग, कोई नक्शे नहीं, कोई सोच—विचार काम नहीं करता—कोई सिद्धात लागू नहीं होते वहां। तब तुम झटके के साथ वापस आओगे जैसे कि तुम कहीं खो गए थे। तुम फिर से बाहर के राजपथ पर लौट आओगे झटके के साथ, जहां कि मील के पत्थर लगे हैं और हर चीज साफ—सुथरी है और नक्शा पास में है—और तुम समझ सकते हो कि तुम कहां हो।

तुम नींद में नहीं उतर रहे हो, वरना तो तुम जान लोगे, क्योंकि तुम नींद को जानते हो। बहुत जन्मों से तुम नींद में उतरते रहे हो; तुम पूरी तरह परिचित हो इस घटना से। यदि तुम साठ साल जीते हो, तो बीस साल नींद में जाते हैं। यह कोई साधारण घटना नहीं है। साठ साल का जीवन, बीस साल नींद में जाते हैं. प्रतिदिन, तुम्हारे समय का एक तिहाई हिस्सा नींद में जाता है। तुम जानते हो यह बात, तुम अच्छी तरह जानते हो इसे। और ऐसा केवल एक ही जन्म में नहीं है, लाखों—लाखों जन्मों से तुम सोते आ रहे हो, प्रत्येक जन्म के एक तिहाई हिस्से में तुम सोए रहे हो। असल में दूसरी और कोई क्रिया नहीं जो इतना समय लेती हो। कोई अन्य एक क्रिया इतना ज्यादा समय नहीं लेती है। न तो तुम प्रेम करते हो आठ घंटे, और न ही तुम भोजन करते हो आठ घंटे, और न ही तुम ध्यान करते हो आठ घंटे। नींद सर्वाधिक महत्वपूर्ण बात है। कैसे तुम असहजता रह सकते हो इसके प्रति? हो सकता है कि कम सजग होओ, लेकिन तो भी तुम सजग हो—स्मृति काम करेगी।

लेकिन तुम परिचित मार्ग से कहीं अनजानी राह में जा रहे हो, जहां कि तुम कभी गए नहीं हो। इसीलिए तुम झटके के साथ लौटते हो। कोई अज्ञात तुम्हारी अंतस सत्ता को छू रहा है। इसीलिए तुम निर्णय नहीं कर पा रहे हो कि 'मैं गहरे उतर रहा हूं या बस नींद में जा रहा हूं।' प्रसन्न होओ। यदि तुम निर्णय कर सकते, तो यह नींद होती, तो तुम पहचान लेते, तो यह नींद होती। यदि तुम नहीं पहचान पा रहे हो, तो कहीं पार का कुछ और भी तुम में और तुम कहीं अज्ञात को स्पर्श कर रहे हो।

प्रसन्न होओ, आनंदित होओ, और घटने दो उसे। एक दिन यह संभव हो जाता है कि तुम बार—बार अज्ञात में उतरते हो, और तब तुम परिचित हो जाते हो उस क्षेत्र से। तब चाहे कोई सामान्य नक्शे न भी हो, लेकिन तुम्हारे पास अपना नक्शा होता है। कम से कम तुम जानते हो कि तुम कहां जा रहे हो।

इसलिए करना केवल इतना ही है : जब तुम अपनी आंखें बंद करते हो तो ज्यादा सजग हो जाना, क्योंकि बहुत सजगता की जरूरत होगी। ज्यादा गहरे अंधकार में ज्यादा प्रकाश की जरूरत होगी। तो ज्यादा सजग हो जाना और जैसे—जैसे तुम कहीं उतरने लगते हो, अज्ञात में—सजगता बनाए रखने की कोशिश करना।

धीरे— धीरे, तुम कुशल हो जाते हो। और फिर रात जब तुम सोते हो, तो फिर आजमाना इसे—बस इसका अभ्यास करना। जब तुम नींद में उतरने लगो, तब भीतर सजग रहना और देखते रहना कि क्या हो रहा है। एक दिन तुम देखोगे : नींद उतर आई है, नींद ने तुम्हें घेर लिया है, सजगता फिर भी मौजूद है। यह दिन सुंदरतम दिन होता है जिंदगी का। जब तुम सजग रह कर गहरी नींद में उतरते हो तो तुम चौथी अवस्था में, 'डेल्टा' में उतर जाते हो। वह तुम्हारे अंतस का गहनतम केंद्र है।

निश्चित ही तुम्हें अर्जित करना होता है इसे, तुम्हें सीखना होता है इसे, तुम्हें पात्र होना पड़ता है इसका। साधारणतया यह नहीं घटती। यह मन की साधारण अवस्था नहीं है; यह बड़ी असाधारण अवस्था है मन की। इसीलिए कृष्ण ने घोषणा कर दी थी पांच हजार वर्ष पहले, और पांच हजार वर्ष तक इसके लिए कोई वैज्ञानिक प्रमाण उपलब्ध नहीं था—यह केवल एक दर्शन—सिद्धात लगता था: 'या निशा सर्वभूतायाम् तस्याम् जागर्ति संयमी।' पांच हजार वर्ष बाद अब कुछ वैज्ञानिक प्रमाण उपलब्ध हो रहे हैं। तुम भी इस अनुभव में उतर सकते हो, और जब यह तुम्हारी अपनी समझ का वैज्ञानिक प्रमाण बन जाता है, तब एक क्रांति घटित होती है।

दूसरा प्रश्न :

आपने कहा कि पतंजलि का योग— सूत्र एक संपूर्ण शास्त्र है लेकिन कहीं भी उन्होंने चुंबन के योग की बात नहीं की है क्या आप इसे समझा सकते हैं?

उसके लिए पतंजलि को अमरीकी के रूप में जन्म लेना होगा। केवल तभी वे चुंबन के योग के विषय में लिख सकते हैं। ऐसी मूढ़ बातें केवल अमरीका में चलती हैं, और कहीं नहीं सेक्स का योग,

चुंबन का योग—किसी भी चीज का योग—भोजन पकाने का योग! लेकिन तुम्हें थोड़ी प्रतीक्षा करनी पड़ेगी, कोई न कोई मूढ़ जरूर लिखेगा।

तीसरा प्रश्न :

अपनी अनुभूतियों में कैसे कोई समग्र हो सकता है— बिना अतियों में गए?

चिंता मत करो। बस समग्र होओ, और तुम कभी अति पर न जाओगे। साधारणतया यदि तुम इस विषय में सोचते हो, तो ऐसा लगता है कि यदि तुम समग्र होओ, तो तुम अति में चले जाओगे। क्योंकि तुम नहीं जानते कि समग्रता क्या है। समग्रता सदा ध्यान में घटती है। वह मध्य की घटना है। क्योंकि समग्रता संतुलन है। अति पर वह कभी नहीं घटती; अति पर तुम कभी समग्र नहीं हो सकते। इसे समझने की कोशिश करो।

तुम किसी को प्रेम करते हो. तुम अतिशय प्रेम में हो सकते हो, लेकिन वह समग्रता नहीं होगी, क्योंकि प्रेम का एक और हिस्सा है, वह है घृणा। तो तुम एक अति पर जा सकते हो, जो है प्रेम; यह एक अति है। फिर कभी—कभी तुम उसी व्यक्ति को घृणा कर सकते हो। तुम दूसरी अति पर चले जाते हो और तुम पूरी तरह घृणा कर सकते हो—या ऐसा तुम्हें लगता है कि तुम पूरी तरह घृणा में हो—लेकिन वह भी एक हिस्सा ही है। पूरी घटना है प्रेम—घृणा दोनों की। यदि तुम एक को चुनते हो तो तुमने एक अति चुन ली है।

मेरा बायां हाथ और मेरा दायां हाथ—वे दोनों जुड़े हैं मुझ से। यदि मैं बाएं को चुनता हूं तो मैं बाईं तरफ झुक जाता हूं। यदि मैं दाएं को चुनता हूं तो मैं दाईं तरफ झुक जाता हूं। और जब मैं किसी को नहीं चुनता, तो मैं मध्य में होता हूं। तब दोनों हाथ मेरे हैं, लेकिन मैं उनमें से किसी एक का नहीं हूं। यदि तुम घृणा को चुनते हो, तो तुमने एक हिस्सा चुना। यदि तुम प्रेम को चुनते हो, तो तुमने दूसरा हिस्सा चुना।

और यही मुसीबत है : यदि तुम घृणा को चुनते हो, तो देर—अबेर तुम प्रेम करोगे। यदि तुम शत्रु को बहुत समय तक घृणा करते रहते हो, तो तुम प्रेम में पड़ोगे। यदि तुम बहुत समय तक मित्र से प्रेम करते रहते हो, तो तुम घृणा करने लगोगे। क्योंकि कोई बहुत समय तक एक अति पर नहीं रह सकता है। इसीलिए प्रेमी लड़ते—झगड़ते हैं और शत्रु भी गहरे में प्रेमी होते हैं। वे शत्रु के बिना नहीं रह सकते; वे भी एक—दूसरे का सहारा होते हैं। यह विपरीत ढंग का प्रेम है—लेकिन है प्रेम ही।

क्या घटता है जब कोई समग्र होता है? प्रेम और घृणा, दोनों होते हैं। और जब प्रेम और घृणा दोनों होते हैं, तो वे एक—दूसरे को काट देते हैं, और एक तीसरी गुणवत्ता पैदा होती है, जिसे बुद्ध ने करुणा कहा है। करुणा के विपरीत कुछ नहीं है। या तुम कह सकते हो, 'जब घृणा वाला हिस्सा नहीं होता, केवल तभी प्रेम संपूर्ण होता है।' लेकिन तब प्रेम मध्य में होता है। जो कुछ भी तुम इसे कहना चाहो, सवाल उसका नहीं है, लेकिन एक गहन संतुलन घटता है। विपरीतताए एक—दूसरे को काट देती हैं; वे बराबर शक्ति की होती हैं। वे एक—दूसरे को काट देती हैं और तुम संतुलन में रहते हो। संतुलन है समग्रता। तब तुम अपनी समग्रता में संबंधित होते हो।

जब बुद्ध में करुणा पैदा होती है, तो कुछ पीछे नहीं छूट जाता। वे समग्र रूप से करुणा में बहते हैं। जब जीसस प्रेम करते हैं, तो वे समग्र रूप से प्रेमपूर्ण होते हैं। लेकिन जब तुम प्रेम करते हो, तब तुम्हारा एक हिस्सा घृणा करने के लिए तैयार हो रहा होता है। जब तुम घृणा करते हो, तब तुम्हारा एक हिस्सा प्रेम करने के लिए तैयार हो रहा होता है। तुम बंटे हुए हो—एक बंटा हुआ व्यक्तित्व सदा अतियों में डोलता रहता है। समग्रता आती है अनबंटे मन से, अखंड मन से : तुम सीधे खड़े होते हों—मध्य में, पूरे संतुलित—न तो इधर झुकते हो न उधर। उस अकंप क्षण में तुम समग्रता को उपलब्ध होते हो।

उपनिषदों के पास इसके लिए एक खास शब्द है। वे इसे कहते हैं, 'नेति—नेति।' वे कहते हैं, 'न यह, न वह'—विपरीतताओं खड़े होओ। विपरीतताओ को परिपूरक बना लेना। उन दोनों को एक—दूसरे को संतुलित करने देना। तुम चुनावरहित रहना। इसीलिए कृष्णमूर्ति निरंतर एक शब्द पर जोर दिए जाते हैं—'चुनावरहित सजगता'—क्योंकि जैसे ही तुम चुनते हो, तुम अति को चुन लेते हो।

सारे चुनाव अति के चुनाव हैं। तुम किसी न किसी चीज के विरुद्ध कुछ चुनते हो। जब भी तुम कहते हो, 'यह सुंदर है', तुमने किसी चीज की असुंदर की तरह निंदा कर दी होती है। अन्यथा कैसे कह सकते हो तुम कि 'यह सुंदर है'? इस कथन में कि यह सुंदर है, यह कथन छिपा होता है कि कुछ असुंदर है, कुरूप है। जिस क्षण तुम कहते हो, 'यह आदमी संत है', तुमने किसी की पापी के रूप में निंदा कर दी होती है।

यदि पापी खो जाएं तो संत भी खो जाएंगे। संत कैसे हो सकते हैं यदि पापी न हों? संतो के होने के लिए पापी जरूरी हैं। पापी भी खो जाएंगे यदि संत न रहें। कौन कहेगा उनको पापी? कैसे निर्णय करोगे तुम कि कोई पापी है? एक बेहतर मनुष्यता में न कोई संत होगा, न कोई पापी होगा, क्योंकि पूरी बात संतुलित होगी गहरे रूप में। पापी और पुण्यात्मा एक—दूसरे के विपरीत हैं; वे एक साथ अस्तित्व रखते हैं।

कई बार, जब मैं भारत में भ्रमण करता था, बहुत स्थानों पर बहुत लोग मुझ से एक प्रश्न बार—बार पूछते थे। प्रश्न बहुत उचित और प्रासंगिक जान पड़ता है। वे मुझ से पूछते थे, 'ऐसा क्यों है कि भारत में इतने सारे संत हुए, और फिर भी देश इतना अनैतिक है?'

मैं उनसे कहता कि ऐसा स्वाभाविक है। जब कोई देश इतने सारे संतो को पैदा करता है तो उसे उतनी ही संख्या में पापी पैदा करने पड़ते हैं, वरना संतुलन नहीं रहेगा। जब कोई देश इतने सारे तीर्थंकर—चौबीस तीर्थंकर, इतने अवतार—चौबीस अवतार, इतने बुद्ध—चौबीस बुद्ध पैदा करता है; तो पापी कहां जाएंगे? और कोई बुद्ध यहां कैसे हो सकते हैं यदि तमाम पापियों की भीड़ न हो? बुद्ध होते हैं पापियों के महासागर में; और कोई ढंग नहीं है। एक बुद्ध के होने के लिए लाखों पापी चाहिए। असल में उन्हीं पापियों के कारण वे इतने सबुद्ध दिखाई पड़ते हैं. तुलना चाहिए। ब्लैक—बोर्ड की काली पृष्ठभूमि पर तुम सफेद खड़िया से लिखते हो, वह इतना उभर कर दिखाई पड़ता है—और भी सफेद—सामान्य सफेद से ज्यादा सफेद दिखाई पड़ता है। सफेद दीवार पर लिखो सफेद चाक से, तो कुछ पता नहीं चलता। जब मनुष्यता सच में ही प्रौढ़ होगी, संतुलित होगी, तब कोई बुद्ध न होंगे : वह सफेद दीवार पर सफेद खड़िया से लिखने जैसा होगा। उन्हें पहचानने के लिए बड़ी अंधकारपूर्ण मनुष्यता चाहिए। इसलिए अगर तुम मुझसे पूछते हो, तो मैं ऐसे संसार की आशा करता हूं जहां किसी बुद्ध की कोई जरूरत नहीं होगी—चीजें इतनी संतुलित होंगी।

यही लाओत्से बार—बार कहते हैं, 'ऐसा समय था अतीत में जब कोई संत न थे —क्योंकि कोई पापी न थे।' ऐसा समय था अतीत में जब चीजें इतनी स्वाभाविक थीं और इतनी संतुलित थीं कि का गलत है और क्या सही है—ऐसी कोई धारणा न थी। लाओत्सु कहते हैं, 'सही की धारणा के साथ ही गलत प्रवेश कर जाता है।' विपरीतताएं साथ—साथ होती हैं। वे साथ—साथ आती हैं; वे साथ शान चलती हैं। वे एक ही सिक्के के दो पहलू हैं, एक ही के दो रूप हैं।

यदि तुम चुनते हो, तो तुम एक छोर को चुनते हो और संतुलन नहीं चुना जा सकता। तुम्हें चुनावरहित रहना पड़ेगा, तो संतुलन आता है—न यह, होता है नेति— नेति।' अचानक तुम संतुलन को उपलब्ध हो जाते हो, मध्य में आ जाते हो, और अस्तित्व की सारी महिमा तुम पर बरस जाती है। तुम तृप्त हो जाते हो।

यह प्रश्न महत्वपूर्ण लगता है, लेकिन है नहीं : ' अपनी अनुभूतियों में कैसे कोई समग्र हो सकता है—बिना अतियों में गए?' यदि तुम समग्र हो, तो तुम अति पर नहीं होओगे; यदि तुम किसी अति पर हो, तो तुम समग्र नहीं होओगे। समग्र और संतुलित होने की कोशिश करो, और अतियां अपने आप खो जाएंगी। वे तुम्हारे चुनाव के कारण हैं, क्योंकि तुम चुनते हो, इसलिए वे हैं।

चुनी मत। मत कहो कि 'यह अच्छा है'' और मत कहो कि 'वह बुरा है।' सजग रहो, बस इतना ही। मत कहो कि 'यह संत है और वह पापी है।' सजग रहो, बस इतना ही—और समग्र को स्वीकार करो। पापी

भी है, संत भी है; अस्तित्व दोनों को स्वीकार करता है। तुम भी स्वीकार करो दोनों को। पापी के लिए कोई निंदा न हो, संत के लिए कोई प्रशंसा न हो; तुम चुनावरहित हो जाओ। उस चुनावरहितता में तुम संतुलित हो जाओगे, और तुम समग्र हो जाओगे।

चौथा प्रश्न :

क्या आप मुस्कुराते है— जब हम आपकी सभा में गंभीर होते हैं और लंबे चेहरे लिए बैठे होते हैं?

और मैं कर भी क्या सकता हूं!

पांचवां प्रश्न :

आपने एक बार कहा कि मादक द्रव्य रासायनिक स्वप्त निर्मित करते है— काल्पनिक अनुभव। और कृष्णमूर्ति कहते हैं कि सारी योग— साधनाएं और सारी ध्यान— विधियां मादक द्रव्यों जैसी ही हैं— वे भी रासायनिक परिवर्तन पैदा करती हैं और अनुभव घटित होते हैं। कृपया इस विषय पर कुछ कहें।

कृष्णमूर्ति ठीक कहते हैं। बहुत कठिन है इसे समझना, लेकिन वे ठीक कहते हैं। सारे अनुभव रासायनिक परिवर्तन द्वारा ही होते हैं—सारे अनुभव, बिना किसी अपवाद के। चाहे तुम एल एस डी लो या तुम उपवास करो, दोनों प्रकार से शरीर रासायनिक परिवर्तन से गुजरता है। चाहे तुम मारिज़ुआना लो या तुम कोई विशेष प्राणायाम, कोई श्वास का अभ्यास करो, दोनों प्रकार से शरीर रासायनिक परिवर्तन से गुजरता है।

इसे समझने की कोशिश करो। जब तुम उपवास करते हो, तो क्या होता है? तुम्हारे शरीर में कुछ रासायनिक तत्वों की कमी हो जाती है, क्योंकि प्रतिदिन भोजन द्वारा उनकी पूर्ति करनी होती है। यदि तुम उन रासायनिक तत्वों की पूर्ति नहीं करते, तो शरीर में वे रासायनिक तत्व कम हो जाते हैं। तब

रासायनिक तत्वों का साधारण संतुलन, खो जाता है; और क्योंकि उपवास से एक असंतुलन निर्मित हो जाता है तो तुम कुछ बातें अनु_बीटी 'करने लग सकते हो।

यदि तुम काफी लंबे समय तक उपवास करो, तो तुम्हें कई भ्रम होने लगेंगे। यदि तुम इक्कीस दिन या ज्यादा दिन का उपवास रखो, तो यह निर्णय करना कठिन हो जाएगा कि जो तुम देख रहे हो, वह वास्तविक है या काल्पनिक, क्योंकि इसके लिए एक खास रासायनिक तत्व चाहिए और वह कम हो जाता है।

साधारणतया, यदि तुम्हें कृष्ण अचानक मिल जाएं रास्ते पर तो पहला जो विचार उठेगा वह यही कि तुम जरूर दृष्टिभ्रम में पड़ गए हो; कोई भ्रम हो रहा है; कोई सपना देख रहे हो। तुम अपनी आंखें मलोगे और तुम देखोगे चारों तरफ, या तुम किसी और से पूछोगे, 'यहां आओ। जरा देखो। क्या तुम मेरे सामने खड़े किसी कृष्ण जैसे व्यक्ति को देख रहे हो?' लेकिन यदि तुम इक्कीस दिन तक उपवास करो, तो वास्तविकता और स्वप्न के बीच का भेद खो जाता है। तब यदि कृष्ण दिखाई पड़ते हैं, तो तुम विश्वास कर लेते हो कि वे सच में खड़े हैं।

क्या तुमने छोटे बच्चों को देखा? वे वास्तविकता और स्वप्न के बीच भेद नहीं कर पाते। रात वे स्वप्न देखते हैं किसी खिलौने का, और सुबह वे रोते हैं—'कहां गया मेरा खिलौना?' वह खास रसायन जो निर्णय लेने में तुम्हारी मदद करता है, वह अभी नहीं बना होता है बच्चे में; जब वह बनेगा केवल तभी बच्चा वास्तविक और काल्पनिक के बीच भेद करने के योग्य होगा।

जब तुम शराब पी लेते हो, तब भी वह निर्णय करने वाला रसायन नष्ट हो जाता है।

मुल्ला नसरुद्दीन अपने बेटे को समझा रहा था, एक शराबघर में बैठे हुए वह उसे समझा रहा था कि कब शराब पीना बंद कर देना चाहिए। तो उसने कहा, 'देखो, उस कोने में देखो। जब तुम्हें दो की बजाय चार आदमी दिखने लगें तब समझ लेना कि शराब पीना बंद करने का और घर जाने का वक्त हुआ।' लेकिन बेटे नै कहा, 'डैडी, वहां दो आदमी नहीं हैं, सिर्फ एक आदमी बैठा हुआ है।'

तो डैडी पहले से ही धुत हैं!

जब तुम शराब पीते हो तो क्या होता है? एक रासायनिक परिवर्तन होता है। जब तुम एल एस डी लेते हो तो क्या होता है? या मारिजुआना या ऐसी ही दूसरी चीजें लेते हो तो क्या होता है? एक रासायनिक परिवर्तन होता है और तुम ऐसी चीजें देखने लगते हो, जिन्हें तुमने कभी नहीं देखा होता है। तुम्हें कुछ बातों की अनुभूति होने लगती है; तुम बहुत संवेदनशील हो जाते हो।

और यही मुसीबत है : तुम किसी शराबी को शराब छोड़ने के लिए राजी नहीं कर सकते, क्योंकि वास्तविकता बड़ी नीरस और सपाट लगती है। जब वह वास्तविकता को अपने रासायनिक तत्वों द्वारा, रासायनिक परिवर्तन द्वारा देखता है, तब वृक्ष ज्यादा हरे दिखते हैं और फूलों में ज्यादा सुगंध

मालूम होती है। इसीलिए क्योंकि वह प्रक्षेपण कर सकता है; वह अपना एक काल्पनिक संसार निर्मित कर सकता है। अब तुम उससे कहते हो, 'बंद करो यह सब। तुम्हारे बच्चे परेशान हो रहे हैं, तुम्हारी पत्नी दुखी हो रही है; तुम्हारी नौकरी छूटी जा रही है! बंद करो यह सब।' लेकिन वह बंद नहीं कर सकता, क्योंकि उसे एक काल्पनिक संसार की झलक मिल गई है, वह झलक बहुत सुंदर मालूम होती है। अब यदि वह पीना बंद कर दे, तो संसार बहुत रूखा—सूखा, बहुत साधारण मालूम पड़ता है। वृक्ष उतने हरे नहीं दिखाई पड़ते और फूलों की सुगंध उतनी मोहक नहीं मालूम पड़ती; वह पत्नी भी—जिसे सुखी करने की सीख तुम दे रहे हो उसको—वह भी बड़ी साधारण, रोजमर्रा की, मुर्दा सी चीज मालूम पड़ती है। जब वह किसी मादक द्रव्य के प्रेम में पड़ता है, तो वही पत्नी क्लियोपैट्रा, संसार की सर्वाधिक सुंदर स्त्री मालूम पड़ती है। वह एक भ्रम में जीवन जीता है।

सारे अनुभव रासायनिक हैं—बिना किसी अपवाद के। जब तुम तेज सांस लेते हो, तो तुम्हारे शरीर में आक्सीजन की मात्रा बढ़ जाती है, कार्बन डायआक्साइड की मात्रा कम हो जाती है। ज्यादा आक्सीजन भीतर के रासायनिक तत्वों को बदल देती है। तुम ऐसी चीजें अनुभव करने लगते हो जिन्हें तुमने पहले कभी अनुभव न किया था। यदि तुम तेजी से गोल घूमते हो, जैसा कि दरवेश नृत्यों में घूमते हैं तेज लट्टू की तरह, तो शरीर बदलता है; रासायनिक तत्व बदलते हैं तेज घूमने से। तुम चकराया हुआ अनुभव करते हो, एक नया संसार खुल जाता है।

सारे अनुभव रासायनिक हैं। जब तुम भूखे होते हो, तो संसार अलग दिखाई पड़ता है। जब तुम्हारा पेट भरा होता है, तुम तृप्त होते हो, तब संसार अलग ही मालूम पड़ता है। गरीब आदमी का संसार अलग होता है और अमीर आदमी का संसार अलग होता है। उनके रासायनिक तत्वों में भेद होता है। बुद्धिमान व्यक्ति का संसार अलग होता है, और एक मूठ व्यक्ति का संसार अलग होता है। उनके रासायनिक तत्व भिन्न होते हैं। स्त्री का संसार अलग होता है, पुरुष का संसार अलग होता है। उनके रासायनिक तत्व भिन्न होते हैं।

जब कोई कामवासना की दृष्टि से प्रौढ़ होता है, चौदह या पंद्रह वर्ष की उम्र में, तो एक अलग ही संसार प्रकट होता है, क्योंकि उसके खून में नए रसायन बह रहे होते हैं। सात साल के बच्चे से यदि तुम बात करो कामवासना की या आर्गाज्य की, तो वह सोचेगा कि तुम मूढ़ हो—'क्या बेकार की बातें कर रहे हो? '—क्योंकि वे रसायन प्रवाहित नहीं हो रहे हैं; वे हार्मोन्स मौजूद नहीं हैं रक्त में। लेकिन चौदह—पंद्रह वर्ष की अवस्था आते—आते आंखें नए रासायनिक तत्वों से भर जाती हैं—एक साधारण स्त्री अचानक रूपांतरित हो जाती है।

मुल्ला नसरुद्दीन छुट्टियों में पहाड़ पर जाया करता था। कभी वह पंद्रह दिन के लिए जाता और दस दिन में ही वापस आ जाता। बीस ने उससे पूछा, 'बात क्या है? तुमने पंद्रह दिन की छुट्टी मांगी थी, और तुम पांच दिन पहले ही लौट आए!' और कई बार वह दो हफ्ते की छुट्टी लेता और चार हफ्तों के बाद आता।'तो बात क्या है?' बीस ने पूछा।

मुल्ला ने कहा, 'इसमें एक गणित है। पहाड़ पर मेरा एक बंगला है और एक बुढ़िया, बड़ी ही बदसूरत स्त्री उस बंगले की देख— भाल करती है। वही मेरी कसौटी है : जब वह बदसूरत स्त्री मुझे खूबसूरत दिखाई देने लगती है, तब मैं भाग खड़ा होता हूं। तो कभी आठ दिन के बाद, कभी दस दिन के बाद.। वह बहुत बदसूरत और भयंकर है। सोचा भी नहीं जा सकता कि वह सुंदर लग सकती है। लेकिन जब मैं उसके बारे में सोचने लगता हूं और वह मेरे सपनों में आने लगती है और मुझे लगने लगता है कि वह सुंदर है, तो मैं समझ लेता हूं कि अब वापस घर जाने का समय आ गया है; वरना खतरा है। इसीलिए कुछ पक्का नहीं रहता। यदि मैं स्वस्थ होता हूं तो यह बात जल्दी अनुभव में आ जाती है— सात दिन के भीतर ही। यदि मैं स्वस्थ नहीं होता, तो दो हफ्ते लगते हैं। यह रासायनिक तत्वों पर निर्भर करता है।

सारे अनुभव रासायनिक हैं। लेकिन एक भेद समझ लेना है। दो ढंग हैं। एक ढंग है रासायनिक पदार्थों को बाहर से शामिल कर लेने का—इंजेक्शन द्वारा, धूम्रपान द्वारा, खाने—पीने से। वे चीजें बाहर से आती हैं; वे बहृम कल्पित चीजें हैं। यही तो मादक द्रव्य के आदी तमाम लोग संसार भर में कर रहे हैं। दूसरा ढंग है उपवास या श्वास द्वारा शरीर को बदलने का। यही पूरब के सभी योगी करते रहे हैं। वे दोनों एक ही मार्ग पर हैं; अंतर बहुत थोड़ा है। अंतर यही है कि मादक द्रव्य लेने वाले लोग बाहर से मादक द्रव्य लेते हैं, वे जबरदस्ती कुछ आरोपित करते हैं शरीर के जैविक—रसायन में, और योगी बिना कुछ बाहर से डाले अपने शरीर का ही संतुलन बदलने का प्रयास करते हैं। लेकिन जहां तक मेरा संबंध है, दोनों एक समान हैं।

लेकिन यदि तुम्हें अनुभवों में रस है, तो मैं तुमसे योगियों का मार्ग चुनने को कहूंगा, तुम ज्यादा स्वतंत्र रहोगे। और उस ढंग से तुम कभी भी किसी व्यसन के आदी न होओगे। और उस ढंग से तुम्हारा शरीर अपनी शुद्धता, अपना स्वाभाविक संतुलन कायम रखेगा। और उस ढंग से कम से कम, तुम कानून के प्रति अपराधी नहीं होओगे—किसी पुलिस, किसी अदालत की कोई संभावना नहीं है। और उस ढंग से तुम आसानी से बाहर आ सकते हो—यह सबसे महत्वपूर्ण बात है।

यदि तुम शरीर में बाहर से रासायनिक तत्व डालते हो, तो तुम उन्हें छोड़ नहीं सकते। छोड़ना रोज और—और कठिन होता जाएगा। असल में तुम और—और निर्भर होते जाओगे। इतने निर्भर हो जाओगे कि तुम जीवन की पुलक, जीवन का पूरा आकर्षण खो दोगे, और वह मादक द्रव्य का अनुभव ही तुम्हारा पूरा जीवन बन जाएगा, जीवन का पूरा केंद्र हो जाएगा।

यदि तुम योग के मार्ग पर चलते हो, शरीर के रसायन में आए आंतरिक परिवर्तनों द्वारा बढ़ते हो, तो तुम कभी निर्भर नहीं होओगे, और तुम हमेशा उनके पार जाने में सक्षम रहोगे। क्योंकि धर्म का मूल तत्व ही है अनुभवों के पार जाना। चाहे तुम सुंदर रंग अनुभव करते हो.. .एल एस डी द्वारा निर्मित सतरंगे इंद्रधनुष—या तुम योग—साधनाओं द्वारा स्वर्ग अनुभव करते हों—मौलिक रूप से कोई अंतर नहीं है। असल में जब तुक तुम सभी अनुभवों के पार नहीं हो जाते, सभी विषयगत अनुभवों के पार

नहीं हो जाते, जब तक तुम उस जगह नहीं आ जाते जहां केवल साक्षी बचता है और कोई अनुभव नहीं होता अनुभव करने के लिए, केवल अनुभव करने वाला बचता है—तब तक तुमने धर्म के जगत में प्रवेश नहीं किया है।

तो कृष्णमूर्ति ठीक कहते हैं। लेकिन जो लोग उनको सुन रहे हैं, वे गलत समझ रहे हैं। उनको सुनने वाले सोचते हैं कि सारे अनुभव व्यर्थ हैं। निश्चित ही अंततः तुम्हें छोड़ देना है उन्हें, लेकिन इससे पहले कि तुम उन्हें छोड़ सको, तुम्हें उन्हें अनुभव करना होगा। वे सीढ़ी की भांति हैं सीढ़ी को छोड़ना पड़ता है, लेकिन पहले ऊपर चढ़ना भी पड़ता है। केवल तभी छोड़ा जा सकता है उसे, जब कोई उसे पार कर लेता है।

सारे अनुभव बचकाने हैं, लेकिन परिपक्व होने के लिए तुम्हें उनसे गुजरना पड़ता है।

सच्चा धार्मिक अनुभव, अनुभव होता ही नहीं। धार्मिक अनुभव सामान्य अनुभव की तरह नहीं होता है। वह केवल साक्षी होना है, जहां परिचित—अपरिचित, ज्ञेय— अज्ञेय सब तिरोहित हो जाता है। केवल साक्षी, केवल शुद्ध चैतन्य बचता है। उस शुद्धता में कोई 'अनुभव' की अशुद्धि नहीं होती—न तुम जीसस को देखते हो, न तुम बुद्ध को देखते हो, न तुम कृष्ण को देखते हो।

इसीलिए झेन गुरु कहते हैं, 'यदि तुम्हें बुद्ध कहीं मिल जाएं मार्ग पर, तो उन्हें तुरंत मार डालना।' बुद्ध के अनुयायी ही कहते हैं, 'यदि तुम्हें बुद्ध, मिल जाए कहीं मार्ग पर, तो उन्हें तुरंत मार डालना!' बड़ी साहस की बात है! क्यों? क्योंकि बुद्ध इतने महिमावान हैं कि तुम स्वप्न के प्रलोभन में पड़ सकते हो। और फिर तुम आंखें बंद किए बुद्ध को देखते हुए और कृष्ण को बांसुरी बजाते देखते हुए अपने सपनों में खोए रह सकते हो। तुम शायद बहुत धार्मिक सपना देख रहे हो, लेकिन फिर भी वह सपना ही है, सत्य नहीं है।

सत्य है तुम्हारा चैतन्य। बाकी हर चीज का अतिक्रमण करना है। यदि तुम इसे याद रख सको, तो तुम्हें सभी अनुभवों से गुजरना है ,'लेकिन तुम्हें उनके पार जाना है।

लेकिन यदि तुम्हारा अनुभवों में बहुत ज्यादा रस है, जैसा कि प्रत्येक व्यक्ति को है—वह विकास का हिस्सा है—तो मादक द्रव्यों की अपेक्षा योग—साधना को चुनना बेहतर है। वे ज्यादा सूक्ष्म हैं; वे ज्यादा परिष्कृत हैं।

तुम्हें पता होना चाहिए कि भारत सभी मादक द्रव्यों पर प्रयोग कर चुका है। अमरीका तो बिलकुल नया—नया है इन चीजों की दुनिया में। ऋग्वेद के सोमरस से लेकर गांजे तक, भारत ने सब पर प्रयोग किया है और पाया है कि यह केवल समय गंवाना है। तो भारत ने फिर योग—साधना पर प्रयोग किए। फिर, बहुत बार, बुद्ध—महावीर जैसे लोग उस अवस्था तक पहुंचे जहां उन्होंने पाया कि योग—साधनाएं भी व्यर्थ हैं; उन्हें भी छोड़ देना पड़ता है।

तो कृष्णमूर्ति कोई नई बात नहीं कह रहे हैं। यही सारे बुद्ध पुरुषों का अनुभव है। लेकिन ध्यान रहे, कोई अनुभव तभी तुम्हारा अनुभव बन सकता है, जब तुमने उसे जीया हो। कोई और उसे दे नहीं सकता है तुमको, वह उधार नहीं पाया जा सकता है। यदि तुम अभी भी बचकाने हो और तुम्हें लगता है कि तुम्हें अनुभवों की जरूरत है, तो बेहतर है उन्हें योग—साधना द्वारा पाना। अंततः तो उन्हें भी छोड़ देना पड़ता है। लेकिन यदि तुम्हें एल एस डी और प्राणायाम के बीच चुनना हो, तो प्राणायाम को चुनना बेहतर है। तुम कम निर्भर होओगे और तुम ज्यादा सक्षम होओगे पार जाने में, क्योंकि तब तुम सजगता नहीं खोओगे। एल एस डी में सजगता बिलकुल खो जाएगी।

हमेशा श्रेष्ठ को चुनना। जब भी संभव हो, और तुम चुनना ही चाहते हो, तो श्रेष्ठ को चुनना। एक क्षण आएगा जब तुम कुछ चुनना नहीं चाहोगे—तब आती है चुनावरहितता।

छठवां प्रश्न :

मैं सेल्फ—कांशसनेस— जिसे कि आप रोग कहते है—और सेल्फ— अवेयरनेस सेल्फ— रिमेंबरिग साक्षी की अनुभूति में भेद नहीं कर पा रहा हूं।

हां, सेल्फ—कांशसनेस एक रोग है और सेल्फ—अवेयरनेस स्वास्थ्य है। तो भेद क्या है, क्योंकि शब्द तो एक जैसे ही मालूम पड़ते हैं?

शब्द एक जैसे लग सकते हैं, लेकिन जब मैं उनका उपयोग करता हूं या पतंजलि उनका उपयोग करते हैं, तो हमारा अर्थ एक ही नहीं होता। सेल्फ—काशंसनेस में जोर है 'सेल्फ' पर, अहं पर। सेल्फ—अवेयरनेस में जोर है अवेरनैस पर, सजगता पर। तुम दोनों के लिए एक ही शब्द सेल्फ—काशंसनेस का उपयोग क्यों करते हो। यदि जोर 'सेल्फ' पर है, तो वह रोग है। यदि जोर

'कांशसनेस' पर है, तो वह स्वास्थय है, सूक्ष्म है, लेकिन बहुत बड़ा है।'

सेल्फ—काशंसनेस एक रोग है क्योंकि तुम निरंतर अपने बारे में सोचते रहते हो—कि लोग मेरे विषय में क्या सोच रहे हैं? वे मुझे क्या मान रहे हैं? उनकी क्या राय है? वे मुझे पसंद करते हैं या नहीं? वे मुझे स्वीकार करते हैं या नहीं? वे मुझे प्रेम करते हैं या नहीं? हमेशा 'मुझे', 'मैं', यही अहंकार केंद्र पर रहता है। यह एक रोग है। अहंकार सब से बड़ा रोग है।

और यदि तुम अपना फोकस, अपने ध्यान का केंद्र बदल देते हो—तो 'सेल्फ' से हट कर केंद्र हो जाता है 'कांशसनेस' पर। अब तुम्हें चिंता नहीं रहती कि लोग मुझे अस्वीकार करते हैं या स्वीकार करते हैं। उनकी राय क्या है, इसका कुछ महत्व नहीं रहता। अब तुम प्रत्येक स्थिति में होशपूर्ण रहना चाहते हो। चाहे वे अस्वीकार करें या स्वीकार करें, चाहे वे प्रेम करें या घृणा करें, चाहे वे तुम्हें पापी कहें या संत कहें, कुछ महत्व नहीं होता इस बात का। वे क्या कहते हैं, उनकी राय क्या है, यह उनका अपना मामला है और यह उनकी अपनी समस्या है। तुम तो बस प्रत्येक अवस्था में सजग रहने का प्रयास करते हो।

कोई आता है, तुम्हारे सामने झुकता है; वह मानता है कि तुम संत हो। तुम कुछ फिक्र नहीं करते कि वह क्या कहता है, वह क्या मानता है। तुम केवल सजग रहते हो, तुम पूरी तरह सजग रहते हो, ताकि वह तुम्हें बेहोशी में न खींच सके, बस इतना ही। और फिर कोई आता है और तुम्हारा अपमान कर देता है और एक फटा—पुराना जूता तुम पर फेंक देता है : तुम फिक्र नहीं करते कि वह क्या कर रहा है। तुम तो बस सजग रहने का प्रयास करते हो, ताकि तुम अस्पर्शित रहो—वह तुम्हें डांवाडोल न कर सके। आदर हो या निंदा, असफलता हो या सफलता, तुम वैसे के वैसे बने रहते हो। तुम्हारी सजगता से तुम ऐसी शांत अवस्था को उपलब्ध हो जाते हो जो किसी भी तरह से डांवाडोल नहीं की जा सकती है। तुम दूसरों के मूल्यांकन से मुक्त हो जाते हो।

धार्मिक व्यक्ति और राजनीतिक व्यक्ति के बीच यही भेद है। राजनीतिक व्यक्ति सेल्फ—कांशस होता है, उसका ध्यान होता है 'मैं' पर। वह हमेशा लोगों की राय की फिक्र करता है। वह लोगों के मत पर, वोटों पर निर्भर होता है। अंततः भीड़ ही मालिक है और निर्णायक है। धार्मिक व्यक्ति अपना मालिक होता है, कोई उसके लिए निर्णायक नहीं हो सकता। वह तुम्हारे वोटों पर या तुम्हारे मूल्यांकनों पर, तुम्हारे मतो पर निर्भर नहीं होता। यदि तुम उसके पास आते हो, तो ठीक। यदि तुम उसके पास नहीं आते, तो भी ठीक। कोई समस्या नहीं होती इससे। वह स्वयं में आनंदित होता है।

अब मैं तुम से एक बड़ी ही विरोधाभासी बात कहना चाहूंगा—विरोधाभासी केवल मालूम पड़ती है, वैसे है वह सीधा—साफ सत्य—जों लोग सेल्फ—कांशस होते हैं, अपने प्रति बहुत चिंतित होते हैं, उनकी कोई आत्मा नहीं होती। इसीलिए वे अपने बारे में इतने चिंतित होते हैं, भयभीत होते हैं—कोई भी छीन सकता है उनकी आत्मा। उनके पास होती ही नहीं आत्मा। वे मालिक नहीं होते। उनकी आत्मा, उनका व्यक्तित्व उधार होता है, दूसरों के सहारे होता है। कोई मुस्कुराता है — और उनके व्यक्तित्व को सहारा मिल जाता है। कोई अपमान कर देता है—एक सहारा हट जाता है और उनका ढांचा हिल जाता है। कोई क्रोधित होता है—और हम भयभीत हो जाते हैं। यदि प्रत्येक व्यक्ति क्रोध करने लगे, तो कहां जाएंगे वे! क्या होगा उनका! उसके व्यक्तित्व, उनकी पहचान टूट जाती है। यदि प्रत्येक व्यक्ति मुस्कुराता है और कहता है, 'आप महान है तो आप महान हो जाते हैं!

जो लोग सेल्फ—कांशस होते हैं, राजनीतिक लोग.. और जब मैं कहता हूं 'राजनीतिक लोग' तो मेरा मतलब उन्हीं से नहीं है जो राजनीति में हैं। वे सब जो किसी न किसी ढंग से दूसरों पर निर्भर हैं—राजनीतिक हैं। उनकी कोई आत्मा नहीं होती है। भीतर सब खाली होता है। वे सदा भयभीत रहते हैं अपने खालीपन से। कोई भी उन्हें उनके खालीपन की याद दिला सकता है—कोई भी! एक कुत्ता भी उन्हें उनके खालीपन की याद दिला सकता है!

जो व्यक्ति धार्मिक होता है, सेल्क—कांशस होता है—जोर है कांशसनेस पर, चैतन्य पर—उसकी आत्मा होती है, प्रामाणिक आत्मा होती है। तुम उस आत्मा को डावाडोल नहीं कर सकते। तुम उसे बढ़ा नहीं सकते, तुम उसे डिगा नहीं सकते। उसने उपलब्ध किया है उसको। यदि सारा संसार उसके विरुद्‌ध हो जाए, तो भी उसकी आत्मा उसके साथ होगी। यदि सारा संसार उसका अनुसरण करे, तो उसकी आत्मा में कुछ जुड़ेगा नहीं, कुछ बढ़ेगा नहीं। नहीं, बाहर से कुछ फर्क नहीं पड़ता। उसके पास एक प्रामाणिक सत्य होता है—उसके भीतर एक केंद्र होता है।

राजनीतिक व्यक्ति में कोई केंद्र नहीं होता है। वह एक झूठा केंद्र निर्मित करने का प्रयास करता है। वह कुछ तुम से उधार लेता है, कुछ किसी दूसरे से लेता है, कुछ किसी और से लेता है...। इस तरह व्यवस्था जमाता रहता है वह। एक झूठा व्यक्तित्व, बहुत से लोगों की राय पर खड़ा ढांचा. वही है उसकी पहचान। यदि लोग उसे भुला दें, तो वह खो जाएगा, वह कहीं का न रहेगा; वस्तुत: वह कुछ भी नहीं रह जाएगा।

अभी तुम देखते हो! एक आदमी राष्ट्रपति हो जाता है, तो अचानक वह कुछ हो जाता है। फिर वह नहीं रहता राष्ट्रपति, तो वह ना—कुछ हो जाता है। तब सारे समाचारपत्र भूल जाते हैं उसको। उन्हें केवल तभी उसकी याद आएगी जब वह मर जाएगा। वह भी कहीं कोने में उल्लेख होगा। वे उसे याद करेंगे भूतपूर्व राष्ट्रपति के रूप में—व्यक्ति के रूप में नहीं—भूतपूर्व पदधारी के रूप में। क्या तुमने राधाकृष्णन के साथ नहीं देखा क्या हुआ? क्या तुम नहीं देख रहे हो कि वी. वी गिरि के साथ क्या हो रहा है? कहां हैं गिरि? क्या हुआ? बस व्यक्ति गायब ही हो जाता है! जब तुम किसी पद पर होते हो, तो तुम सभी समाचारपत्रों के मुख्यपृष्ठों पर रहते हो। तुम महत्वपूर्ण नहीं हो—पद महत्वपूर्ण है।

इसीलिए वे सब लोग जो भीतर गहरे में दीन—हीन होते हैं, किसी पद की तलाश में रहते हैं; वे खोजते हैं लोगों के वोट, लोगों की प्रशंसा। इस ढंग से वे एक आत्मा निर्मित कर लेते हैं—निश्चित ही एक झूठी आत्मा।

मनस्विद इस समस्या में गहरे उतरे हैं। वे कहते हैं : जो लोग श्रेष्ठ दिखने की कोशिश करते हैं, वे हीन—ग्रंथि से पीड़ित होते हैं; और जो सच में ही श्रेष्ठ होते हैं, वे इस बात की जरा भी चिंता नहीं करते। वे इतने श्रेष्ठ होते हैं कि उन्हें पता भी नहीं होता कि वे श्रेष्ठ हैं। केवल एक हीन व्यक्ति ही सजग हो सकता है इसके प्रति कि वह महान है—और वह बहुत संवेदनशील होता है इस बारे में।

अगर तुम उसे एक संकेत भी दो कि 'तुम इतने महान नहीं हो जितना कि तुम सोचते हो', तो वह क्रोधित हो जाएगा। केवल एक वास्तविक श्रेष्ठ व्यक्ति ही अंतिम व्यक्ति के रूप में पीछे खड़ा हो सकता है। सारे हीनता से पीड़ित लोग आगे की तरफ भागते हैं, क्योंकि यदि वे पीछे होते हैं, तो वे 'ना—कुछ' मालूम होते हैं। उन्हें जल्दी आगे पहुंचना है! उन्हें राजधानी में होना है। उन्हें धन के अंबार चाहिए। उन्हें बड़ी कार चाहिए। उन्हें सब कुछ चाहिए। जिन लोगों में हीनता की ग्रंथि होती है, वे हमेशा अपनी श्रेष्ठता चीजों द्वारा प्रमाणित करने की कोशिश में रहते हैं।

मैं इसे संक्षिप्त में कह दूं : जिन लोगों के पास कोई आत्मा नहीं होती वे उसे चीजों द्वारा पाने का प्रयास करते हैं—पद से, प्रतिष्ठा से, नाम से, ख्याति से। कभी—कभी तो ऐसा भी होता है अमरीका में एक आदमी ने सात आदमियों की हत्या कर दी। वे सातों के सातों आदमी उसके लिए अपरिचित थे। उससे अदालत में पूछा गया, 'तुमने ऐसा क्यों किया?' उसने कहा, 'मैं प्रसिद्ध नहीं हो सकता था, तो मैंने सोचा कम से कम मैं बदनाम तो हो सकता हूं। लेकिन मैं कुछ तो हो जाऊं। और मैं खुश हूं कि मेरी फोटो अखबारों में मुखपृष्ठों पर आई है हत्यारे के रूप में। अब आप जो चाहें सजा मुझे दे सकते हैं। अब मैं अनुभव करता हूं कि मैं 'कुछ' हूं। और अदालत चिंतित है, सरकार चिंतित है, और लोग घबडाएं हुए हैं, और समाचारपत्र चर्चा कर रहे हैं मेरे बारे में—मैं कल्पना कर सकता हूं कि प्रत्येक होटल में, रेस्तरां में, हर कहीं लोग मेरे बारे में बात कर रहे होंगे। कम से कम एक दिन के लिए तो मैं प्रसिद्ध हो गया, सब लोग मेरे बारे में जान गए।'

सारे राजनीतिज्ञ हत्यारे हैं। तुम इसे नहीं देख सकते, क्योंकि कहीं भीतर गहरे में तुम भी राजनीतिज्ञ हो। अभी— अभी मुजीबुर्रहमान की हत्या कर दी गई, अभी कुछ ही दिन पहले तक वह राष्ट्रपिता था। और राष्ट्रपिता बनने के लिए उसने इतना उपद्रव किया। उसने बहुतो की हत्या की—या उसने ऐसी स्थिति पैदा कर दी जिसमें बहुत लोगों की हत्या हुई। अब उसे उसके अपने ही साथियों ने मार डाला। उसका पूरा मंत्रिमंडल फिर सत्ता में है और जिन लोगों ने उसकी हत्या का षड्यंत्र रचा—अब वे राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री और मंत्री हैं। और वे सभी उसके साथी थे, और कोई कुछ नहीं कह रहा है उनके विरुद्ध। कोई भी उनके विरोध में कुछ नहीं कह रहा है। यह संसार बिलकुल अविश्वसनीय मालूम पड़ता है! अब वे हैं बड़े आदमी। और शायद उसी मंत्रिमंडल का ही कोई व्यक्ति अब मुश्ताक अहमद को मारने की साजिश कर रहा हो।

सारे राजनीतिज्ञ हत्यारे हैं, क्योंकि उन्हें तुम्हारी फिक्र नहीं होती। उन्हें फिक्र होती है उनकी अपनी महत्वाकांक्षा की. उन्हें कुछ बनना है। अगर हत्या से उनकी महत्वाकांक्षा पूरी होती हो, तो ठीक है। अगर हिंसा से उनकी महत्वाकांक्षा पूरी होती हो, तो ठीक है।

मैं अभी कुछ दिन पहले एक किताब पढ़ रहा था। मैं विश्वास न कर सका उस बात पर, लेकिन वह सच है। मैं एक किताब पढ़ रहा था लेनिन के विषय में। किसी ने उसे बीथोवन का संगीत सुनने के लिए निमंत्रित किया। उसने मना किया, और उसने बहुत जोर से मना किया, एकदम दृढ़ता से। वस्तुत:

वह करीब—करीब गुस्से में आ गया मना करने में। वह आदमी जिसने उसे निमंत्रित किया था, हैरत में पड़ गया कि वह इतने क्रोध में क्यों आ गया। उसने कहा, 'लेकिन आप इतने नाराज क्यों हो रहे हैं? बीथोवन के संगीत की गणना तो संसार के महानतम संगीतो में होती है।' लेनिन ने कहा, 'होती होगी, लेकिन सारा अच्छा संगीत क्रांति के विरुद्ध है, क्योंकि वह तुम्हें इतना गहरा संतोष देता है, वह तुम्हें शांत कर देता है। मैं सब संगीत का विरोधी हूं।

यदि संगीत फैलता है संसार में, तो क्रांतिया मिट जाएंगी। उसकी बात में बल है। लेनिन सभी राजनीतिज्ञों के बारे में एक सच कह रहा है। वे नहीं पसंद करते की संसार में महान संगीत हो; वे नहीं पसंद करेंगे कि संसार में श्रेष्ठ काव्य हो; वे नहीं पसंद करेंगे कि संसार में गहरे ध्यानी हों; वे नहीं पसंद करेंगे कि संसार में सुखी, आनंदमग्न व्यक्ति हों, नहीं—क्योंकि फिर क्रांतियों का क्या होगा? युद्धों का क्या होगा? उन सब मूढ़ताओं का क्या होगा जो संसार में चलती रहती हैं ई

जरूरत है कि लोग सदा अशांत रहें, केवल तभी वे राजनेताओं की याद करते हैं। यदि लोग संतुष्ट हैं, तृप्त हैं, प्रसन्न हैं, तो कौन परवाह करता है राजधानियों की? लोग भूल जाएंगे उन्हें। वे नाचेंगे, और संगीत सुनेंगे, और ध्यान करेंगे। वे क्यों चिंता करेंगे राष्ट्रपति फोर्ड की और 'इसकी' और 'उसकी'? उन बातों में कुछ रस नहीं रहता। लेकिन लोग जब संतुष्ट नहीं होते, शांत नहीं होते, तो वे दूसरों के व्यक्तित्व को सहारा दिए चले जाते हैं, क्योंकि यही एकमात्र उपाय है जिससे वे दूसरों का सहारा पा सकते हैं अपने व्यक्तित्व के सहारे के लिए।

तो इसे स्मरण रखना सेल्फ—कांशसनेस—जोर है 'सेल्फ' पर—एक रोग है, गहन रोग है। इससे छुटकारा पाना है। सेल्फ—कांशसनेस—जोर है 'कांशसनेस' पर, चैतन्य पर—तब यह संसार की सबसे स्वस्थ, सबसे पवित्र बात है, क्योंकि यह संबंध रखती है स्वस्थ व्यक्तियों से, जिन्होंने अपना केंद्र पा लिया है। वे बोधपूर्ण हैं, सजग हैं। वे रिक्त नहीं हैं, वे तृप्त हैं।

सातवां प्रश्न:

कैसे कोई श्वास को देखे जब कि वह दिखाई नहीं पड़ती बल्कि अनुभव होती है? जरूरी नहीं है कि देखने का अर्थ आंखों से देखना ही हो—वह अनुभूति भी हो सकती है। असल में यह अनुभूति ही है, क्योंकि कैसे तुम अपनी श्वास को देख सकते हो गु: तुम उसे अनुभव करते हो, उसके स्पर्श को अनुभव करते हो। जब श्वास अपने मार्ग से गुजरती है, तब तुम उसका स्पर्श अनुभव करते हो।

देखने की कोई बात नहीं है। सजग रहने की बात है कि वह भीतर जा रही है, कि वह पहुंच गई बिलकुल तुम्हारे अंतरतम केंद्र तक, कि अब वह रुक गई, कि अब वह लौट कर बाहर आ रही है। उतार और चढ़ाव : अब वह बाहर गई, पूरी तरह बाहर चली गई, रुक गई; फिर वापस आने लगी। वह पूरा वर्तुल— भीतर आना, बाहर जाना, भीतर आना, बाहर जाना—तुम्हें सजग रहना पड़ता है। यदि तुम उसे अनुभव करते हो, तो वही सजगता है—लेकिन उसे अनुभव करने में चूक नहीं होनी चाहिए। यदि तुम एक घंटे रोज यह कर सको, तो तुम्हारा पूरा जीवन बदल जाएगा।

और ध्यान रहे, यदि तुम अपनी श्वास को बदलते नहीं हो, तो कोई रासायनिक परिवर्तन नहीं हो रहा है तुम में। यही पतंजलि और बुद्ध में भेद है। पतंजलि की विधियां तुम्हारी रासायनिक व्यवस्था को बदलेंगी; बुद्ध की विधि तुम्हारी रासायनिक व्यवस्था को बिलकुल नहीं छुएगी। स्वाभाविक श्वास— जैसी कि वह है—तुम केवल ध्यान देते हो, अनुभव करते हो, देखते हो। उसे बिना देखे भीतर —बाहर नहीं होने देते हो, बस इतना ही। उसे बदलते नहीं। उसे वैसी ही रहने देते हो जैसी वह है। बस एक बात जोड़ देते हो कि तुम उसके साक्षी हो जाते हो।

यदि तुम एक घंटे भी यह प्रयोग करते हो तो तुम्हारा पूरा जीवन रूपांतरित हो जाएगा—और बिना ही किसी रासयनिक परिर्वतन के तुम होगा उसके पार का अनुभव, एक अनुभवातीत चैतन्य हो जाओगे। तुम सबुद्धों को जानोगे ही नहीं, तुम स्वयं ही सबुद्ध हो जाओगे। और यही स्मरण रखने योग्य बात है : बुद्धों को देखने का कोई महत्व नहीं है—जब तक कि तुम स्वयं बुद्ध न हो जाओ।

आठवां प्रश्न :

क्या साक्षी— भाव एक ठंडी भाव— शून्य घटना होनी चाहिए?

नहीं, साक्षी— भाव ठंडी घटना नहीं होती, लेकिन शीतल होती है। ठंडी नहीं—बल्कि शीतल। और भेद बड़ा है। जब कोई बात ठंडी, भाव—शून्य होती है, तो तुम उसकी तरफ उदासीन भाव से देख रहे होते हो, परवाह नहीं कर रहे होते, तटस्थ होते हो। शीतलता अलग बात है : तुम उसकी ओर ध्यानपूर्ण होते हो, तुम तटस्थ नहीं होते, लेकिन तुम्हारा मोह भी नहीं होता। तुम आविष्ट नहीं होते; तुम उसके प्रति व्यग्र नहीं होते; तुम उत्तेजित नहीं होते। यदि तुम इन दो अतियों से बच सको—उदासीनता से और उत्तेजना से—तो एक शीतलता, एक शांत—शीतल, समग्र अनुभूति तुम्हें घेर लेती है।

साक्षी होने का मतलब भाव—शून्य होना नहीं है। असल में यदि तुम भाव—शून्य हो तो फिर तुम साक्षी नहीं रह गए; तुम उदासीन हो गए। तुम देख नहीं रहे हो। और तुम भलीभांति जानते हो कि या तो तुम ठंडे हो सकते हो या तुम गरम हो सकते हो। शीतलता ठीक मध्य में होती है। शीतलता न तो गरम होती है और न ठंडी, वह इन दोनों के बीच का मध्यबिंदु है। तुम सजग हो, लेकिन उत्तेजित नहीं हो। तुम ध्यानपूर्वक देख रहे हो, उदासीन नहीं हो, लेकिन तुम उससे उद्वेलित नहीं होते।

कठिन है बात, क्योंकि तुम दो ही अनुभूतियों को जानते हो—ठंडी और गरम। तुम तीसरी अनुभूति को बिलकुल नहीं जानते हो, क्योंकि तुम एक अति से दूसरी अति में डोलते रहते हो। या तो तुम घृणा करते हो किसी से या प्रेम करते हो। करुणा. तुम नहीं जानते कि वह क्या है। करुणा एक शब्द मात्र है, एक अर्थहीन शब्द मालूम पड़ता है। वह शीतल शब्द है।

अगर तुम बुद्ध के पास आते हो, तो वे तुम्हारा स्वागत करेंगे, लेकिन वह स्वागत कोई जोशीला स्वागत न होगा—वह भाव—शून्य भी नहीं होगा। वह एक शांत स्वागत होगा। वे स्वागत करेंगे तुम्हारा पूरे हृदय से, लेकिन वे उत्तेजित नहीं होंगे। ऐसा नहीं होगा कि यदि तुम न आते तो वे उदास हो जाते तुम्हारे न आने से। नहीं, वे सदा की भांति आनंदित रहते। यदि तुम आते हो तो वे प्रसन्न हैं; यदि तुम नहीं आते हो तो भी वे प्रसन्न हैं। उनकी प्रसन्नता अपरिवर्तित रहती है, इसीलिए वह शीतल होती है।

जब तुम्हारा मित्र आता है तुमसे मिलने, तुम उत्तेजित हो जाते हो। और ध्यान रहे, तुम बहुत समय तक उत्तेजित नहीं रह सकते, क्योंकि उत्तेजना थकाती है। जल्दी ही तुम सोचने लगते हो, 'कब जाएगा यह आदमी!' पहले तुम उत्तेजित हो जाते हो; फिर तुम भाव—शून्य हो जाते हो। पहले तुम प्रसन्न हो जाते हो क्योंकि मित्र आया है, और फिर तुम प्रसन्न होते हो जब वह चला जाता है।

बुद्ध आनंदित ही रहते हैं—मित्र आया है या नहीं, उससे कोई लेना—देना नहीं है। उनके आनंद में कोई परिवर्तन नहीं होता। वे शांत हैं। और शांत प्रेम का अपना सच में ही एक बड़ा अदभुत अनुभव है—कठिन है बात क्योंकि तुम्हारा मन शांत प्रेम शुन्य व्याख्या 'तटस्थ' की भांति करेगा। शांत प्रेम से तुम्हारी कोई पहचान नहीं है; तुम केवल ठंडेपन को जानते हो। तुम्हें लगेगा कि बुद्ध ठंडे हैं, तटस्थ हैं। वे ठंडे नहीं हैं। सभी बुद्ध पुरुष शांत होते हैं। शांत होते हैं इसलिए तुम उन्हें डावाडोल नहीं कर सकते—किसी भी ढंग से; तुम उन्हें सुखी नहीं कर सकते; तुम उन्हें दुखी नहीं कर सकते; वे शांत होते हैं, थिर होते हैं, क्योंकि वे केंद्रस्थ होते हैं।

नौवां प्रश्न:

आप हमें ऐसा कुछ क्यों नहीं दे देते जो हमें तुरंत इसी पल बिना किसी पीड़ा के मिटा दे बजाय इसके कि हम इस अंतहीन मालूम होती पीड़ा से गुजरें?

मैं वही दे रहा हूं तुम को, लेकिन तुम सुनते ही नहीं। सवाल इसका नहीं है कि मैं वह नहीं दे रहा हूं तुम्हें। मैं तुम्हें अंतिम जहर दे रहा हूं। वह तुम्हें तत्क्षण मार देगा, लेकिन तुम मुझे सुनते ही नहीं। तुम सोचते रहते हो कि कुछ गलत है, तुम सोचते रहते हो कि तुम गलत हो, और कभी—कभी तुम्हारी इच्छा भी होती है कि कैसे इस झंझट से छूटें? कैसे इसके पार जाएं? लेकिन तुम्हारे बहुत न्यस्त स्वार्थ हैं। तुम सोचते जरूर हो, 'कैसे इसके पार जाएं?' लेकिन तुम चाहते नहीं हो पार जाना। जहर तो मैं दे सकता हूं तुमको। जो मैं तुम्हें सिखा रहा हूं वह मरने की कला ही है। लेकिन तुम्हें मैं जबरदस्ती जहर नहीं दे सकता हूं; वरना अदालत है—मैं मुश्किल में पडूगा। तो मैं बस उसे तुम्हारे सामने रख देता हूं; फिर लेना तो तुम्हें ही है। और वहीं तुम चूक जाते हो।

तुम चाहते हो कि जबरदस्ती कोई तुम्हें दे दे। तुम चाहते हो कि कोई और तुम्हें पिला दे। और यह मृत्यु किसी और के द्वारा जबरदस्ती नहीं लाई जा सकती है। जिस मृत्यु की मैं बात कर रहा हूं वह तुम्हारी इच्छा से होनी चाहिए, तुम्हारी मर्जी से होनी चाहिए। तुम्हें पूरे ह्रदय से उसका स्वागत करना होगा। मैं तुम पर जबरदस्ती थोप नहीं सकता। यदि तुम तैयार हो, तो वह घटेगी, यदि तुम तैयार नहीं हो, तो वह नहीं घटेगी। मेरी तरफ से मैं सदा तैयार हूं। यदि तुम तैयार हो मरने के लिए तो मैं तैयार हूं तुम्हारी मदद करने के लिए।

लेकिन तुम तैयार नहीं हो मरने के लिए। भीतर तुम सोचते रहते हो कि इस मृत्यु के बाद भी 'तुम' बचोगे। तुम ध्यान करते हो, लेकिन तुम इस ढंग से ध्यान करते हो कि तुम इसके बाद बच सको. तुम इसका उपयोग एक विधि की भांति करते हो। तुम्हारा मूल केंद्र अछूता रहता है; तुम सदा सचेत रहते हो इसके लिए। लेकिन यदि तुम इसे मृत्यु की भांति करो—ध्यान मृत्यु की भांति करो—तो तुम्हें मिटना होगा। कोई और ही प्रकट होगा इससे, 'तुम' नहीं। तुम तो मिट जाओगे। एक नई अंतस सत्ता जन्म लेगी तुम से—ताजी, युवा, कुंआरी। तुम उसे पहचान भी न पाओगे। एक अंतराल आ जाएगा; तुम मिट गए पूरी तरह, कुछ नया उदित हुआ—और उन दोनों का एक—दूसरे से कोई संबंध नहीं होता।

बहुत कठिन है इसे समझना। वह न?। जीवन तुम में ही छिपा है, लेकिन वह खोल जिसने उसे ढंका हुआ है, बहुत कठोर है। तुम बीज की भांति हो : भीतर गहरे में सब छिपा है, पूरा वृक्ष छिपा

है—फूल और फल, और सब है। लेकिन बीज का खोल बहुत कड़ा है। खोल राज़ी नहीं है मिटने के लिए। यदि खोल मिटे तो वृक्ष पैदा हो।

और वृक्ष बिलकुल भिन्न होता है उस खोल से, उसका कुछ लेना—देना नहीं उससे। खोल केवल एक सुरक्षा है, एक आवरण है—लेकिन आवरण बहुत महत्वपूर्ण हो गया है।

तुम्हारा अहंकार बिलकुल खोल की भांति है। यदि अहंकार मरता है, तो तुम विकसित होओगे—तुम परमात्मा हो जाओगे। अहंकार के साथ तुम पीड़ित और दुखी रहोगे। बिना अहंकार के तुम परम आनंदित होओगे। लेकिन तुम इसे जानते नहीं; खोल ने कभी कुछ सुना नहीं इस विषय में। और तुम मुझे सुनते रहते हो खोल के, कवच के भीतर से ही। इसीलिए तुम मुझसे कहते रहते हो, 'हमें कुछ दे दें मरने के लिए!' लेकिन तुम ऐसा चाहते नहीं।

मैं मरने की ही व्यवस्था दे रहा हूं प्रतिपल। असल में मैं और कुछ भी नहीं दे रहा हूं। धर्म का संपूर्ण विज्ञान मृत्यु का विज्ञान है। वह तुम्हें सिखाता है कि कैसे पूरी तरह मरा जाए, ताकि कुछ भी बाकी न बचे। पूरा खोल धरती में मिट जाए, घुल जाए, और वृक्ष पैदा हो जाए।

लेकिन क्या तुम सोचते हो कि कोई और तुम्हारे लिए यह करेगा? वह संभव नहीं। तुम्हें आत्महत्या करनी है; कोई और तुम्हारी हत्या नहीं कर सकता है। इसे याद रखना। यह शब्द 'आत्महत्या' बहुत सुंदर है। मैं शरीर की हत्या की बात नहीं कर रहा हूं; मैं मन की हत्या की बात कर रहा हूं—अहंकार की हत्या की बात कर रहा हूं।

अ—मन हो जाओ, निरहंकार हो जाओ, और सारा अस्तित्व उपलब्ध हो जाता है। तुम इसे लाखों जन्मों से अपने भीतर लिए चल रहे हो। वह तुम्हारे भीतर मौजूद ही है। बीज वहां मौजूद ही है, बस ठीक जमीन मिल जाए और खोल टूटने लगती है... और फिर वृक्ष प्रकट होता है अपनी पूरी महिमा और अपने पूरे सौंदर्य के साथ।

अंतिम प्रश्न:

आपके वचन कहां से आते हैं और आपका उनके साथ क्या संबंध है?

कोई भीतर नहीं है जो उनके साथ संबंध बनाए। वे शून्य से प्रकट होते हैं। कोई भीतर व्यवस्था नहीं कर रहा है। मैं भीतर नहीं हूं उनकी व्यवस्था बिठाने के लिए। तुम प्रश्न पूछते हो और शून्य से उत्तर आता है। वे शब्द मेरे नहीं हैं। प्रश्न तुम्हारा है; उत्तर मेरा नहीं है। प्रश्न तुम्हारे मन से आता है;

उत्तर किसी मन से नहीं आ रहा है। मन का उपयोग किया जा रहा है उसे तुम तक पहुंचाने के लिए, लेकिन वह मन से नहीं आ रहा है। मन केवल माध्यम है, स्रोत नहीं है।

आज इतना ही।

प्रवचन 59 - प्रत्याहार—स्त्रोत की और वापसी

योग—सूत्र:

(साधनापाद)

ततः क्षीयते प्रकाशावरणम् ।। 52।।

फिर उस आवरणप का विसर्जन हो जाता है, तो प्रकाश को ढके हुए है।

धारणासु च योग्यता मनसः।। 53।।

और तब मन धारणा के योग्य हो जाता है।

स्वविषयासम्प्रयोगे चित्तस्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः।। 54।।

योग का पांचवां अंग है प्रत्याहार—स्त्रोत पर लौट आना। यह मन की उस क्षमता की पुनर्स्थापना है जिससेबाहम विषय जनित विक्षेपों से मुक्त हो इंद्रियों वश में हो जाती है।

ततः परमा वश्यतोन्द्रियाणाम्।। 55।।

फिर समस्त इंद्रियों पर पूर्ण वश हो जाता है।

सी. एस. लेविस कहता है, 'मनुष्य उखड़ा जा रहा है।' बी. एफ. स्किनर कहता है, 'अच्छा छुटकारा है।' शेक्सपियर का हेमलेट मनुष्य के बारे में कहता है, 'कितना ईश्वर जैसा है!' पावलोव कहता है, 'कितना कुत्ते जैसा है!' समस्या यह है कि मनुष्य दोनों है—ईश्वर जैसा भी है और कुत्ते जैसा भी है। यदि मनुष्य केवल एक होता—कुत्ते जैसा होता या ईश्वर जैसा होता—तो कोई समस्या न होती। समस्या इसलिए है क्योंकि मनुष्य एक विरोधाभास है : परिधि पर वह कुते से भी बदतर है; केंद्र पर वह परम महिमावान है, किसी ईश्वर से ज्यादा महिमावान है।

यदि तुम मनुष्य को सिर्फ बाहर से ही देखते हो, तो तुम नहीं कह सकते कि यदि मनुष्य उखड़ा जा रहा है तो इसमें कुछ बुरा है—'ठीक है, अच्छा छुटकारा है।' स्किनर ठीक कहता है।'यह पृथ्वी बेहतर होगी, कम से कम ज्यादा शांत होगी। प्रकृति खुश होगी।' लेकिन यदि तुम मनुष्य को गहरे में देखो, उसकी असीम गहराई में, तो बिना मनुष्य के पृथ्वी शांत हो सकती है, लेकिन वह शाति मरघट की शाति होगी। उसमें कोई संगीत न होगा। उसमें कोई गहराई न होगी। फूल होंगे, लेकिन अब वे सुंदर न होंगे। कौन अनुभव करेगा उनका सौंदर्य? कौन देखेगा उनका सौंदर्य? पक्षी चहचहाते रहेंगे, लेकिन कौन उनके चहचहाने को गीत कहेगा, मधुर कहेगा? वृक्ष हरे होंगे, लेकिन फिर भी वे हरे नहीं होंगे, क्योंकि उस हरियाली को पहचानने के लिए उससे पुलकित होने वाला मानव—हृदय चाहिए।

मनुष्य के साथ ही जीवन का रस खो जाएगा। मनुष्य के साथ ही प्रार्थना खो जाएगी। मनुष्य के साथ ही परमात्मा खो जाएगा। पृथ्वी होगी, लेकिन परमात्मा से रहित होगी। मौन होगा, लेकिन वह मरघट का सन्नाटा होगा। वह मौन हृदय के साथ धड़कता हुआ न होगा। सारी पृथ्वी पर विस्तार होगा उसका, लेकिन उसमें गहराई का अभाव होगा—और बिना गहराई का मौन कोई मौन नहीं होता। संसार क्षुद्र हो जाएगा, उथला हो जाएगा, उसमें गहराई न होगी, महिमा न होगी।

मनुष्य के साथ महिमा आती है, क्योंकि मनुष्य के पीछे गहरे में परमात्मा छिपा है। मनुष्य मंदिरों के बिना नहीं रह सकता है, चर्चों, मस्जिदों के बिना नहीं रह सकता है, क्योंकि मनुष्य स्वयं एक मंदिर है। वह बनाता रहता है मंदिर—नास्तिक भी मंदिर बनाते हैं। जरा क्रेमलिन के मंदिर को देखो! क्रेमलिन या लेनिन के मकबरे के पास से कम्युनिस्ट उतनी ही श्रद्धा से भरे गुजरते हैं जैसे कि कोई आस्तिक अपने परमात्मा के प्रति श्रद्धा— भाव से भरा हुआ मनुष्य नहीं रह सकता परमात्मा के बिना, क्योंकि गहरे में वह स्वयं परमात्मा है।

समस्या इसीलिए है क्योंकि मनुष्य दोनों है. दो जगतो के बीच एक सेतु है—पदार्थ और मन के बीच, इस संसार और उस संसार के बीच, क्षणभंगुर और सनातन के बीच, जीवन और मृत्यु के बीच एक सेतु है। यही सौंदर्य भी है—मनुष्य के रहस्य का, विरोधाभास का। मनुष्य कोई पहेली नहीं है, मनुष्य एक रहस्य है।

तो क्या करें? यदि तुम पावलोव की और उसके शिष्य बी एफ .स्किनर की बात मान कर बैठ जाते हो, तो तुमने मनुष्य को जाने बिना, समझे बिना, उसे जानने का प्रयास किए बिना ही उनकी बात मान ली। और यदि तुम बुद्ध से, महावीर से, कृष्ण से, क्राइस्ट से या पतंजलि से बहुत जल्दी राजी हो जाते हो—यदि तुम्हारी स्वीकृति अपरिपक्व है—तो यह बात कि मनुष्य परमात्मा है एक विश्वास ही रहेगी, यह श्रद्धा नहीं हो सकती। यदि तुम किसी भी बात को मान लेने की जल्दी में हो, तो तुम चूक जाओगे। मनुष्य को जानने के लिए, समझने के लिए एक गहन धैर्य चाहिए।

और मनुष्य को बाहर से जानने का कोई उपाय नहीं है। यदि तुम मनुष्य को बाहर से जानने की कोशिश करते हो, जैसा कि वैज्ञानिक करते हैं, तो तुम पावलोव जैसी गलती करोगे—मनुष्य कुत्ते जैसा मालूम होगा! मनुष्य को जानने का एकमात्र उपाय उस मनुष्य को जानना है जो तुम्हारे भीतर है। मनुष्य को सीधा—सीधा जानने का एकमात्र उपाय है स्वयं का साक्षात्कार करना।

तुम अपने भीतर एक विराट शक्ति लिए हुए हो। जब तक उससे तुम्हारी पहचान न हो जाए, तुम उसे बाहर दूसरों में नहीं देख पाओगे और नहीं पहचान पाओगे। इसे एक कसौटी की भांति खयाल में ले लेना : कि जितना तुम स्वयं को जानते हो उतना ही तुम दूसरों को जान सकते हो। उससे रत्ती भर ज्यादा नहीं। बिलकुल नहीं—असंभव है यह बात। पहले जानने वाले को जानना होता है; केवल तभी दूसरे के रहस्य में उतरा जा सकता है। तुम्हें पहले अपनी गहराई में उतरना होता है, केवल तभी तुम्हारी आंखें दूसरों की गहराई को पहचानने में सक्षम होती हैं।

यदि तुम अपनी परिधि पर रहते हो तो सारा अस्तित्व उथला मालूम होगा। यदि तुम सोचते हो कि तुम सागर की एक लहर हो, और सागर से तुम्हारा कोई परिचय नहीं है, तो बाकी लहरें भी लहरें ही रहेंगी। जब तुम अपने भीतर उतरते हो और जान लेते हो कि तुम सागर हो—तुम सदा सागर ही रहे हो, तुम्हें बस जानना है—तो बाकी सब लहरें भी खो जाती हैं, अब केवल सागर ही लहरा रहा होता है। अब प्रत्येक लहर के पीछे—सुंदर कि असुंदर, छोटी कि बड़ी, उससे कुछ फर्क नहीं पड़ता—प्रत्येक लहर के पीछे सागर ही लहराता है।

योग एक विधि है तुम्हारे अपने अस्तित्व की आत्यंतिक गहराई के साथ, तुम्हारी आत्मा की निजता के साथ जुड़ने की। वह अथाह है तुम उसमें डुबकी मारते हो, लेकिन तुम कभी उस अवस्था तक नहीं पहुंचते जहां तुम कह सको, 'मैंने सब जान लिया है।' तुम गहरे, और गहरे, और गहरे उतरते जाते हो। वह अथाह है। तुम और— और गहरे उतर सकते हो उसमें, लेकिन फिर भी बहुत सदा ही शेष रहता है।

वह अवस्था कभी नहीं आती जब तुम कह सको, 'अब मैं सीमा तक पहुंच गया हूं।' असल में सीमाएं हैं ही नहीं। इस लिए आस्तित्व में कोई सीमाएं नहीं हैं। बाहर कोई सीमाएं नहीं हैं; अस्तित्व असीम है। तुम्हारे भीतर कोई सीमाएं नहीं हैं। सीमाएं एक झूठ हैं। जितने तुम गहरे उतरते हो, उतना ही असीम आपके पास आता जाता है।

लेकिन जब तुम उसमें गहरे उतर जाते हो, उसमें डूब जाते हो—तो तुम जानते हो। अब क्षुद्र खो जाता है, क्षणभंगुर खो जाता है, सीमित खो जाता है। अब तुम देखते हो किसी की आंखों में और तुम जानते हो कि असीम—अनंत प्रतीक्षा कर रहा है वहां। पहली बार, प्रेम संभव होता है। प्रेम केवल तभी संभव होता है, जब तुम अपनी गहराई को जान लेते हो। केवल परमात्मा जैसे व्यक्ति प्रेम करते हैं, और केवल परमात्मा जैसे व्यक्ति ही प्रेम कर सकते हैं। कुत्ते तो केवल लड़ सकते हैं; प्रेम के नाम पर भी वे लड़ेंगे ही। और यदि परमात्मा जैसे व्यक्ति लड़ते भी हैं, तो उनकी लड़ाई में भी प्रेम ही होता है; इससे अन्यथा संभव नहीं है।

जब तुम अपने अंतस की भगवत्ता को पहचान लेते हो, तो संपूर्ण अस्तित्व तत्क्षण बदल जाता है। वह फिर वही पुनरुक्ति भरा, रोज—रोज का साधारण सा, पुराना अस्तित्व नहीं रहता। नहीं, उसके बाद कोई चीज साधारण नहीं रहती; हर चीज असाधारण हो जाती है, परम महिमा में रंग जाती है। साधारण कंकड़—पत्थर हीरे हो जाते हैं—वे हीरे हैं। प्रत्येक पत्ता जीवंत हो उठता है अपने चारों तरफ छाए अदभुत जीवन से। संपूर्ण अस्तित्व दिव्य हो जाता है। जिस क्षण तुम्हारी अपने अंतस की भगवत्ता से पहचान हो जाती है, तुम हर जगह भगवत्ता को देखने लगते हो। वही जानने का एकमात्र ढंग है। संपूर्ण योग एक विधि है. अप्रकट को कैसे उघाड़ें; अपने भीतर के द्वारों को कैसे खोलें; उस मंदिर में कैसे प्रवेश करें जो हम स्वयं हैं; कैसे स्वयं का साक्षात्कार हो।

तुम हो, तुम प्रारंभ से ही हो, लेकिन तुमने उसे देखा नहीं है। खजाना तुम साथ लिए हुए हो प्रतिपल। हर आती—जाती श्वास के साथ खजाना मौजूद है। शायद तुम्हें पता न हो, लेकिन तुमने उसे कभी खोया नहीं है। तुम बिलकुल भूल सकते हो, लेकिन तुमने उसे कभी खोया नहीं है। तुम शायद उसे पूरी तरह भूल चुके हो, लेकिन उसे खोने का कोई उपाय नहीं है—क्योंकि तुम्हीं हो वह।

तो प्रश्न एक ही है : 'उसे कैसे उघाड़ें?' वह ढंका हुआ है; अज्ञान की बहुत पर्तें उसे आच्छादित किए हैं। योग एक एक कदम, धीरे— धीरे, आंतरिक रहस्य में उतरता है। आठ चरणों में योग पूरा करता है खोज को। प्रारंभिक चरण कहलाते हैं बहिरंग योग, बाहरी योग। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार—ये पांच चरण बाहरी योग के रूप में जाने जाते हैं। शेष तीन, अंतिम तीन—धारणा, ध्यान, समाधि—ये अंतरंग योग के रूप में, भीतरी योग के रूप में जाने जाते हैं।

अब सूत्र.

तत– क्षीयते प्रकाशावरणम्।

फिर उस आवरण का विसर्जन हो जाता है जो प्रकाश को ढंके हुए है।

चार चरण पूरे हो चुके हैं। पांचवां चरण—प्रत्याहार—प्रथम चार (बाहरी योग) के और अंतिम तीन (भीतरी योग) के बीच सेतु के रूप में काम करता है। पांचवां चरण, जो बाहरी योग का हिस्सा है, वह सेतु के रूप में भी काम करता है।

प्रत्याहार का अर्थ होता है : 'स्रोत तक लौट आना केंद्र तक जाना नहीं, बस स्रोत तक लौट आना। लौटने की प्रक्रिया आरंभ हो चुकी है। अब उर्जा कहीं नहीं जा रहीं है; उर्जा का अब विषय—वस्तुओं में रस नहीं रह गया है—ऊर्जा मुड़ चुकी है; बाहर से हट चुकी है; वह मुड़ रही है भीतर। इसे ही जीसस कनवर्सन कहते हैं—वापस लौट आना।

साधारणतया, ऊर्जा बाहर की तरफ गति करती है। तुम देखना चाहते हो, तुम सूंघना चाहते हो, तुम छूना चाहते हो, तुम अनुभव करना चाहते हो : ऊर्जा बाहर जा रही होती है। तुम बिलकुल ही भूल चुके हो कि कौन तुम्हारे भीतर छिपा है। तुम आंखें, कान, नाक, हाथ बन गए हो और तुम भूल गए हो कि कौन इन इंद्रियों के पीछे छिपा है; कौन देखता है तुम्हारी आंखों से।

तुम आंखें नहीं हो। ठीक है, तुम्हारे पास आंखें हैं, लेकिन तुम आंखें नहीं हो। आंखें सिर्फ झरोखे हैं। कौन खड़ा है उन झरोखों के पीछे? कौन देखता है उन आंखों से? मैं तुम्हें देखता हूं; आंखें नहीं देख रही हैं तुम्हें। आंखें अपने आप नहीं देख सकतीं। जब तक मैं खिड़की के पास खड़ा होकर बाहर न देखूं आंखें अपने आप नहीं देख सकतीं!

ऐसा बहुत बार तुमको भी अनुभव होता है : तुम कोई किताब पढ़ रहे हो, तुम कई पन्ने पढ़ जाते हो, और अचानक तुम्हें लगता है कि तुमने एक भी शब्द नहीं पढ़ा है! आंखें पढ़ रही थीं, लेकिन तुम वहां नहीं थे। आंखें घूमती रहीं एक शब्द से दूसरे शब्द तक, एक वाक्य से दूसरे वाक्य तक, एक पैराग्राफ से दूसरे पैराग्राफ तक, एक पृष्ठ से दूसरे पृष्ठ तक, लेकिन तुम मौजूद नहीं थे। अचानक तुम्हें होश आता है कि 'केवल आंखें ही वहां थीं; मैं नहीं था।'

तुम गहन पीड़ा में, दुख में हो : तब आंखें खुली होती हैं, लेकिन तुम देखते नहीं; वे बहुत ज्यादा भरी होती हैं आंसुओ से। या फिर तुम बहुत प्रसन्न होते हो, इतने प्रसन्न होते हो कि तुम फिक्र नहीं करते : अचानक तुम्हारी आंखें इतनी खुशी से भर जाती हैं कि वे देख नहीं सकतीं।

तुम बाजार में हो और कोई तुम से कह देता है, 'तुम्हारे घर में आग लगी है।' तुम भागते हो। तुम सड़क पर बहुत से लोगों को देखते हो। कुछ लोग कहते हैं, 'जय राम जी। कहां जा रहे हो तुम? क्यों

इतनी जल्दी में हो? क्या हुआ है? तुम्हारी आंखें देखती रहती हैं, तुम्हारे कान सुनते रहते हैं, लेकिन तुम वहां नहीं होते—तुम्हारे घर में आग लगी है, तुम अब यहां नहीं हो।

यदि बाद में तुम से पूछा जाए 'क्या तुम्हें याद है कि तुम से किसने पूछा था, कहां जा रहे हो तुम? क्यों इतनी जल्दी में हो?' तो तुम याद नहीं कर पाओगे। तुमने देखा था उस आदमी को, तुमने सुना था जो उसने कहा, लेकिन तुम वहां नहीं थे। कान अपने आप नहीं सुन सकते। आंखें अपने आप नहीं देख सकतीं। तुम्हारी मौजूदगी चाहिए।

तुम खेल के मैदान में हो, फुटबाल, हॉकी या वॉलीबाल या कुछ और खेल खेल रहे हो। जब खेल अपने चरम शिखर पर होता है, तब तुम्हारे पैर में चोट लग जाती है; खून बहने लगता है। लेकिन तुम इतने डूबे होते हो खेल में कि तुम्हें होश नहीं होता। चोट लगी है, लेकिन तुम मौजूद नहीं हो अनुभव करने के लिए। आधे घंटे बाद खेल खतम होता है; अचानक तुम्हारा ध्यान जाता है पैर की तरफ—खून बह रहा है। अब दर्द होता है। आधा घंटा खून बहता रहा, लेकिन कोई दर्द न था—क्योंकि तुम वहां नहीं थे।

इसे गहरे में समझ लेना है इंद्रियां अपने आप में नपुंसक है—जब तक कि तुम सहयोग नहीं देते। यही तो योग की संभवना है यदि तुम सहयोग नहीं देते, इंद्रियां बंद हो जाती हैं। यदि तुम सहयोग नहीं देते, तो वापस लौटना शुरू हो जाता है। यदि तुम सहयोग नहीं देते, प्रत्याहार शुरू हो जाता है। जो वर्षों से रोज कई घंटे शांत बैठ कर ध्यान कर रहे हैं, यही तो वे कर रहे हैं—वे उनके और उनकी इंद्रियों के बीच के सहयोग को तोड़ने की कोशिश कर रहे हैं। जब ऊर्जा बाहर देखने में, सुनने में, छूने में व्यस्त नहीं होती—तो ऊर्जा भीतर की ओर मुड़ने लगती है। वही 'प्रत्याहार' है : स्रोत की ओर लौट पड़ना, उस स्थान की ओर लौट पड़ना जहां से तुम आए हो, केंद्र की ओर लौट पड़ना। अब तुम परिधि की ओर नहीं जा रहे होते।

'प्रत्याहार' केवल शुरुआत है। अंत होगा 'समाधि' में।'प्रत्याहार' तो केवल प्रारंभ है ऊर्जा के घर की ओर लौट पड़ने का।'समाधि' तब है जब तुम घर पहुंच गए, घर आ गए। यम, नियम, आसन, प्राणायाम—ये चारों तैयारी हैं प्रत्याहार के लिए, पांचवें चरण के लिए। और प्रत्याहार प्रारंभ है, मोड़ है; समाधि है अंत।

'फिर उस आवरण का विसर्जन हो जाता है, जो प्रकाश को ढंके हुए है।'

अंतिम सूत्र प्राणायाम के विषय में था। प्राणायाम ब्रह्मांड के साथ लयबद्धता पाने की विधि है, लेकिन फिर भी तुम बाहर रहते हो। तुम ऐसे ढंग से, ऐसी लय से श्वास लेना आरंभ कर देते हो कि तुम्हारा संपूर्ण अस्तित्व के साथ तालमेल बैठ जाता है। तब तुम समग्र के साथ संघर्ष नहीं कर रहे होते, तुमने समर्पण कर दिया होता है। तुम अब शत्रु न रहे समग्र के; तुम प्रेमी बन चुके हो।

यही तो अर्थ है धार्मिक होने का. अब वह संघर्ष में नहीं होता; अब उसके पास अपने कोई निजी लक्ष्य नहीं होते, अब वह अस्तित्व के साथ बहता है; अब उसका वही लक्ष्य है जो समग्र का लक्ष्य है—अगर समग्र का कोई लक्ष्य है तो। अब उसकी कोई निजी नियति नहीं है, समग्र अस्तित्व की नियति ही उसकी नियति है। वह बहता है धारा के साथ; वह धारा के विपरीत नहीं लड़ता है।

जब तुम सच में बहते हो तो तुम मिट जाते हो, क्योंकि अहंकार केवल तभी बच सकता है जब वह लड़ता है। अहंकार केवल तभी बच सकता है जब कोई प्रतिरोध होता है। अहंकार केवल तभी बच सकता है जब तुम्हारे पास कोई निजी लक्ष्य होता है समग्र के विरुद्‌ध।

इसे समझने की कोशिश करना कि अहंकार कैसे बना रहता है। लोग आते हैं मेरे पास और वे कहते हैं, 'हम अहंकार छोड़ देना चाहते हैं।' और मैं उनसे कहता हूं ' अगर तुम अहंकार को छोड़ना चाहते हो तो तुम नहीं छोड़ सकते उसे, क्योंकि तुम कौन हो छोड़ने वाले? यह कौन है जो कह रहा है कि मैं अहंकार छोड़ देना चाहता हूं? यह भी अहंकार है। अब तुम अपने अहंकार से ही लड़ रहे हो।'

तो तुम दिखावा कर सकते हो विनम्र होने का, तुम जबरदस्ती विनम्रता थोप सकते हो अपने ऊपर, लेकिन अहंकार मौजूद रहेगा। तुम पहले सम्राट थे और अब तुम भिखारी हो सकते हो, लेकिन फिर भी अहंकार बना रहेगा। पहले वह सम्राट की भांति था; अब वह विनम्र भिखारी की भांति रहेगा। तुम्हारे चलने—फिरने का ढंग, तुम्हारे देखने का ढंग उसे प्रकट करेगा। जिस ढंग से तुम चलोगे—तुम अहंकार की घोषणा करोगे। जिस ढंग से तुम बात करोगे—तुम अहंकार की घोषणा करोगे। तुम कह सकते हो, 'मैं संसार का सबसे विनम्र व्यक्ति हूं।' उससे कुछ अंतर नहीं पड़ता। पहले तुम सब से महान व्यक्ति थे संसार के, अब तुम कितने विन्रम व्यक्ति हो —लेकिन तुम तो असाधारण। तुम मौजूद हो !

अगर तुम अहंकार के साथ लड़ना शुरू कर देते हो तो तुम और सूक्ष्म अहंकार बना लोगे, जो कि और भी खतरनाक है, क्योंकि वह बहुत सूक्ष्म अहंकार होगा—पवित्र अहंकार होगा। वह धार्मिक होने का दावा करेगा। पहले वह कम से कम 'इस' संसार का था, अब वह 'उस' संसार का होगा—और भी शुद्‌ध, शक्तिशाली, सूक्ष्म—और उसकी पकड़ ज्यादा खतरनाक होगी, और उससे बाहर आना ज्यादा कठिन होगा। तुम छोटे खतरे से बड़े खतरे में कूद गए हो। तुम जाल में और उलझ गए हो। तुम और बड़े कारागृह में प्रवेश कर गए हो।

'प्राणायाम', जिसे निरंतर ही 'श्वास—नियंत्रण' की भांति समझा गया है, वह नियंत्रण बिलकुल नहीं है। प्राणायाम समस्त अस्तित्व के साथ सहजता से होने का, सहजता से जीने का एक ढंग है। वह कोई नियंत्रण नहीं है। सारे नियंत्रण अहंकार से आते हैं; वरना कौन करेगा नियंत्रण? अहंकार नियंत्रण करता है। यदि तुम इसे समझ लो, तो अहंकार तिरोहित हो जाएगा—उसे छोड़ने की कोई जरूरत नहीं।

तुम भ्रम को, झूठ को नहीं छोड़ सकते; तुम केवल सत्य को छोड़ सकते हो—और अहंकार सत्य नहीं है। तुम माया को नहीं छोड़ सकते। भ्रम नहीं छोड़े जा सकते, क्योंकि पहली तो बात, वे होते ही नहीं।

तुम्हें केवल समझना होता है, और वे तिरोहित हो जाते हैं। सपने को नहीं छोड़ा जा सकता है। तुम्हें बस सजग होना होता है कि यह सपना है, और सपना खो जाता है। अहंकार सूक्ष्मतम सपना है. यह सपना कि मैं अस्तित्व से अलग हूं; यह सपना कि मुझे कुछ पाना है 'समग्र' के विरुद्ध; यह सपना कि मैं अलग व्यक्ति हूं। जिस क्षण तुम होशपूर्ण होते हो, सपना मिट जाता है।

तुम समग्र के विपरीत नहीं हो सकते, क्योंकि तुम समग्र के हिस्से हो। तुम समग्र के विरुद्ध नहीं बह सकते, कैसे तुम बह सकते हो? यह तो वैसी ही मूढ़ता हुई जैसे मेरा ही हाथ मेरे विरुद्ध होने की कोशिश कर रहा हो। समग्र के विरुद्ध होने का कोई उपाय नहीं है। केवल एक ही उपाय है. समग्र के साथ बहने लगो।

तुम जब लड़ भी रहे होते हो, तब भी तुम समग्र से अलग नहीं हो सकते—वह तुम्हारी कल्पना ही है। जब तुम सोचते भी हो कि तुम समग्र के विरुद्ध चल रहे हो या समग्र से अलग हो या तुम्हारा अपना कोई अलग लक्ष्य है, तो वह केवल सपना ही है; तुम अलग हो नहीं सकते। वह ऐसा ही है जैसे झील पर उठी तरंग झील के विरुद्ध होने की सोच रही हो : एकदम मूढ़ है—कभी वैसा होने की कोई संभावना नहीं है। कैसे झील पर उठी कोई तरंग अपने आप कहीं जा सकती है? वह रहेगी झील का हिस्सा ही। यदि वह कहीं जाती हुई मालूम भी पड़ती है, तो वह झील की मर्जी रही होगी तभी वह जा रही है।

जब कोई यह समझ लेता है, तो वह जान जाता है। वह हंसने लगता है कि मैं बड़े सपने में जी रहा था—अब सपना तिरोहित हो गया है। मैं अब नहीं हूं। मैं दोनों ही था, स्वप्न भी और स्वप्न— देखने वाला भी। अब 'समग्र' ही है।

प्राणायाम वह स्थिति निर्मित करता है जहां 'लौटना' संभव हो जाता है, क्योंकि अब कहीं जाने को नहीं रहता। संघर्ष समाप्त हो चुका। कोई शत्रुता नहीं बचती। अब तुम अपनी अंतस सत्ता की ओर बहने लगते हो—और सच में नहीं है, वह बहार जाना नहीं है। वह बहना है। यदि तुम संघर्ष छोड़ दो, यदि तुम बहार जाना समाप्त कर देते है भीतर की ओर बहने लगते हो। यह स्वाभाविक है।

प्राणायाम के बाद, पतंजलि कहते हैं, 'फिर उस आवरण का विसर्जन हो जाता है, जो प्रकाश को ढंके हुए है।'

इस सूत्र में गहरे उतरना है, एक—एक शब्द पर ध्यान देना है और समझना है, क्योंकि बहुत सी बातें निर्भर करेंगी इस सूत्र पर।

पतंजलि यह नहीं कह रहे हैं कि प्राणायाम के बाद भीतरी प्रकाश पा लिया जाता है। पतंजलि के बहुत से व्याख्याकारों ने गलत दृष्टिकोण अपनाया है। वे सोचते हैं कि यह सूत्र कहता है कि आवरण हट जाता है और व्यक्ति प्रकाश को उपलब्ध हो जाता है। ऐसा नहीं है। यदि ऐसा होता तो फिर धारणा,

ध्यान, समाधि क्या हैं? यदि तुम प्रत्याहार में ही अपने लक्ष्य तक पहुंच गए होते, अपने अंतरतम केंद्र तक पहुंच गए होते, जान लिया होता उस अंतर—प्रकाश को, तो फिर धारणा का, ध्यान का, समाधि का क्या अर्थ है? फिर करने के लिए बचता ही क्या है?

नहीं, पतंजलि का यह अर्थ नहीं हो सकता। और सूत्र स्पष्ट है। पतंजलि कहते हैं 'आवरण का विसर्जन'—प्रकाश की उपलब्धि नहीं कहते। ये दोनों अलग बातें हैं। आवरण का हटना एक नकारात्मक उपलब्धि है, वह प्रकाश पाने की संभावना निर्मित करती है। लेकिन आवरण का हटना अपने आप में प्रकाश की उपलब्धि नहीं है। और करने को बहुत सारी चीजें शेष हैं।

उदाहरण के लिए, तुम आंखें बंद किए जीते रहे; तुम्हारी पलकों ने सूरज की रोशनी पर पड़े आवरण का काम किया। लाखों—लाखों जन्मों के बाद तुम अपनी आंखें खोलते हो : अब आवरण नहीं है, लेकिन तुम प्रकाश न देख पाओगे—तुम्हारी आंखें अंधेरे की अभ्यस्त हो गई हैं। सूर्य तुम्हारे सामने मौजूद होगा और कोई आवरण न होगा, लेकिन तुम उसे देख न पाओगे।

आवरण हट गया है, लेकिन अंधकार का लंबा अभ्यास तुम्हारी आंखों का हिस्सा बन चुका है। पलकों का स्थूल आवरण अब वहां नहीं है, लेकिन अंधकार का एक सूक्ष्म आवरण अभी भी मौजूद है। और यदि तुम बहुत जन्म जीए हो अंधकार में, तो सूर्य तुम्हारी आंखों के लिए बहुत ज्यादा चमकदार होगा। तुम्हारी आंखें इतनी कमजोर होंगी कि वे इतनी तेज रोशनी बरदाश्त न कर पाएंगी। और जब रोशनी तुम्हारी बरदाश्त करने की क्षमता से ज्यादा होती है, तो वह अंधकार बन जाती है। कभी थोड़ी देर सूरज की तरफ देखने की कोशिश करना : तुम पाओगे तुम्हारी आंखों में अंधेरा छा रहा है। यदि तुम बहुत ज्यादा कोशिश करो देखने की, तो तुम अंधे भी हो सकते हो। बहुत ज्यादा रोशनी भी अंधेरा बन सकती है।

और तुम नहीं जानते कि तुम कितने जन्मों—जन्मों अंधकार में जीते रहे हो। तुमने कोई प्रकाश जाना नहीं; सूर्य की एक किरण भी तुम्हारे अंतस में नहीं उतरी। अंधकार ही तुम्हारा एकमात्र अनुभव रहा है। प्रकाश इतना अपरिचित है कि उसे पहचानना असंभव होगा। आवरण के हटने मात्र से ही तुम उसे नहीं पहचान पाओगे।

पतंजलि यह भलीभांति जानते हैं। इसीलिए वे सूत्र इस भांति प्रतिपादित करते हैं 'ततः क्षीयते प्रकाशावरणम् —फिर उस आवरण का विसर्जन हो जाता है जो प्रकाश को ढंके हुए है।' लेकिन प्रकाश की उपलब्धि नहीं हुई है। यह एक नकारात्मक उपलब्धि है।

एक दूसरे ढंग से इसे समझने की कोशिश करें। तुम्हें अगर कोई औषधि मदद कर सकती है,

बीमारी दूर हो सकती है औषधि से। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं होता कि तुमने स्वास्थ्य पा लिया है। बीमारी छूट सकती है, अब शरीर में कोई बीमारी नहीं है, लेकिन स्वास्थ्य अभी भी नहीं मिला है।

तुम्हें आराम करना होगा थोड़े दिन। जरूरी नहीं कि बीमारी का चला जाना स्वास्थ्य का मिलना हो। स्वास्थ्य एक विधायक घटना है; बीमारी एक नकारात्मक घटना है।

ऐसा संभव है कि तुम किसी चिकित्सक के पास जाओ और वह कहे कि तुम्हें कोई बीमारी नहीं है, लेकिन उसका यह अर्थ नहीं है कि तुम स्वस्थ हो। तुम कह सकते हो, 'मैं स्वस्थ अनुभव नहीं करता। मैं अपने में जीवंतता अनुभव नहीं करता। मैं जीवन का कोई उत्साह अनुभव नहीं करता स्वयं में, मुझे नहीं लगता कि मैं जीवित हूं।'

डाक्टर केवल बीमारी के विषय में कुछ कह सकता है; वह स्वास्थ्य के विषय में कुछ नहीं कह सकता। उसके पास यह पता करने का कोई उपाय नहीं है कि तुम स्वस्थ हो या नहीं। डाक्टर तुम्हें ऐसा सर्टिफिकेट नहीं दे सकता कि तुम स्वस्थ हो; वह तुम्हें केवल यही सर्टिफिकेट दे सकता है कि तुम बीमार नहीं हो। लेकिन जरूरी नहीं है कि बीमार न होना स्वस्थ होना ही हो। निश्चित ही बीमार न होना स्वस्थ होने की मूलभूत शर्त है—यदि तुम बीमार हो, तो तुम स्वस्थ नहीं हो सकते। लेकिन यदि तुम बीमार नहीं हो, तो जरूरी नहीं है कि तुम स्वस्थ हो। स्वास्थ्य एक विधायक बात है।

ऐसा कई लोगों के साथ होता है। कोई व्यक्ति—बूढ़ा, बीमार, जीवन से थका—हारा—जीवन के प्रति तृष्णा खो देता है, जिसे बुद्‌ध तन्हा कहते हैं। उसे कुछ रस नहीं रहता जीवन में। तुम उसका इलाज कर सकते हो—जहां तक औषधि का संबंध है, तुम निरोग होने में उसकी मदद कर सकते हो, वह बीमार नहीं है। लेकिन तुम फिर भी देखते हो : वह बीमार नहीं है, लेकिन वह स्वस्थ भी नहीं है। जीने की चाह मिट गई होती है। बीमारी न रही; अस्पताल राजी है उसे घर भेजने के लिए लेकिन उसकी कोई इच्छा ही नहीं है जीने की। वह स्वस्थ नहीं होगा; वह मर जाएगा। कोई उसकी मदद नहीं कर सकता। स्वस्थ होना एक विधायक घटना है, बीमार होना एक नकारात्मक घटना है।

पतंजलि कहते हैं. अब कोई आवरण न रहा। इसका यह अर्थ नहीं है कि तुमने जान लिया प्रकाश को—तीन चरण अभी और शेष हैं। धीरे— धीरे तुम्हें अपने अंतस—चक्षुओं को तैयार करना होगा—उस प्रकाश को अनुभव करने के लिए जानने के लिए, आत्मसात करने के लिए। कभी—कभी इस तैयारी में वर्षों लग जाते हैं।

'फिर उस आवरण का विसर्जन हो जाता है, जो प्रकाश को ढंके हुए है।'

तो मैं उन सब व्याख्याकारों से सहमत नहीं हूं जो कहते हैं कि अंतप्रकाश पा लिया जाता है—यह अर्थ नहीं है। अब कोई बाधा नहीं रहती, अवरोध मिट जाता है, लेकिन दूरी अभी भी होती है। तुम्हें थोड़ा और चलना होगा, अब पहले से अधिक ध्यानपूर्वक चलना होगा, क्योंकि तुम भी वही गलती कर सकते हो; तुम सोच सकते हो, अब सब मिल गया, अवरोध टूट गया है, आवरण हट गया है। अब मैं वापस घर लौट आया। लेकिन तब तुम मंजिल पर पहुंचने के पहले ही रुक गए।

बहुत से योगी है जो पांचवें पर रुक गए है। फिर वे समझ नहीं पाते कि क्या रहा है।' अब कोई अवरोध भी नहीं है वह अतृप्त है तृप्त नहीं हैं। असल में यदि तुम बहुत अहंकारी हो तो तुम इसी सूत्र पर ठहर जाओगे। अगर अवरोध हो तो अहंकार के पास कुछ लड़ने के लिए होता है।

आवरण हो, तो तुम उसे हटाने की, उठाने की कोशिश करते रहते हो। जब वह हट जाता है, तो लड़ने के लिए कुछ नहीं रहता। जैसे कि तुम जिस चीज से संघर्ष कर रहे थे, वह अचानक खो जाए—तुम्हारे जीवन का सारा अर्थ उसके साथ खो जाता है। अब तुम नहीं जानते कि क्या करें।

ऐसे लोग हैं संसार में जो दूसरों के साथ एक गहरी प्रतियोगिता में उलझे हैं—व्यापार में, राजनीति में, इधर—उधर की बातों में। फिर वे थक जाते हैं। अगर वे थोड़े भी बुद्धिमान हैं, तो वे थक ही जाएंगे। फिर वे अपने अहंकार से ही लड़ने लगते हैं, जो कि एक आवरण है। एक दिन वह आवरण भी हट जाता है, तब लड़ने के लिए, संघर्ष करने के लिए कुछ बचता नहीं। जब संघर्ष करने के लिए कुछ नहीं बचता, तो अहंकार के लिए इंच भर भी सरकना असंभव हो जाता है, क्योंकि अहंकार का पूरा प्रशिक्षण ही किसी न किसी के साथ संघर्ष में रहना है—या तो दूसरे के साथ या फिर अपने अहंकार के साथ ही, लेकिन संघर्ष जरूरी है। जब लड़ने के लिए, संघर्ष करने के लिए कुछ नहीं रहता, कोई बाधा नहीं रहती, तो तुम ठहर जाते हो। अब कहीं जाने के लिए कोई जगह नहीं रहती.. लेकिन तीन चरण अभी भी शेष हैं।

धारणासु च योग्यता मनस:।

और तब मन धारणा के योग्य हो जाता है।

धारणा केवल एकाग्रता नहीं है। एकाग्रता में थोड़ी सी झलक है धारणा की, लेकिन धारणा एकाग्रता से बहुत बड़ी बात है। तो इसे ठीक से समझ लेना जरूरी है।

भारतीय शब्द धर्म भी धारणा से आता है। धारणा का अर्थ होता है. धारण करने की क्षमता, गर्भ बनने की पात्रता। जब प्राणायाम के बाद तुम समग्र के साथ लयबद्ध हो जाते हो, तो तुम गर्भ बन जाते हो—धारण करने की विराट क्षमता बन जाते हो। तुम समाहित कर सकते हो समग्र को। तुम इतने विराट हो जाते हो कि सब कुछ समाहित कर सकते हो।

लेकिन 'धारणा' का अनुवाद निरंतर 'एकाग्रता' की भांति क्यों किया जाता रहा है? क्योंकि इसमें एकाग्रता की थोड़ी झलक मिलती है। एकाग्रता क्या है? एक ही विचार के साथ लंबे समय तक बने रहना, एक ही विचार को लंबे समय तक धारण किए रहना एकाग्रता है।

अभी यदि मैं तुमसे कहूं कि बंदर के विचार पर एकाग्र होओ; केवल कोशिश करो कि बंदर का विचार मन में रहे, बस बंदर का चित्र खयाल में रहे और कुछ नही—तो बहुत कठिन होगा तुम्हारे लिए। हजारों दूसरे खयाल आएंगे। असल में, बंदर को छोड़ कर न जाने क्या—क्या स्मरण आएगा; बंदर बार—बार खो जाएगा।

बड़ा कठिन है मन के लिए किसी चीज पर एकाग्र रहना। मन बहुत संकुचित है। वह किसी चीज के साथ कुछ क्षणों के लिए ही रह सकता है, फिर वह उससे हट जाता है। वह विराट नहीं है; वह लंबे समय तक नहीं रह सकता किसी एक चीज पर न ठहरना मनुष्यता की गहरी समस्याओं में से एक है। तुम किसी स्त्री या किसी पुरुष के प्रेम पड़ते हो। फिर अगले दिन मन किसी दूसरे पर आने लगता है! एक दिन का साथ, और अधिक दूखी लगते हो। तुम्हारा मन हटने लगता है। तुम एक ही व्यक्ति के साथ बहुत समय तक प्रेम में नहीं रह सकते, कुछ घंटे रहना भी भारी हो जाता है। तुम्हारा मन न जाने कहां—कहां चक्कर काटता रहता है। तुम बहुत दिनों से कार के लिए परेशान थे। तुमने श्रम किया, संघर्ष किया; किसी भांति तुम सफल हो गए कार लाने में। अब कार खड़ी है तुम्हारे पोर्च में—लेकिन बात खतम हो गई। अब मन फिर कहीं और भटक रहा है—पड़ोसी की कार। और यही होगा उस कार के साथ भी। यही हमेशा से हो रहा है. तुम कहीं रुक नहीं सकते। यदि तुम पहुंच भी जाते हो अपने लक्ष्य तक, तो जल्दी ही तुम वहां से हट जाते हो।

धारणा का अर्थ है धारण करने की क्षमता। क्योंकि यदि तुम परमात्मा को जानना चाहते हो, तो तुम्हें उसे धारण करने की क्षमता जुटानी होगी। यदि तुम अपने अंतरस्थ केंद्र को जानना चाहते हो, तो तुम्हें उसके लिए गर्भ होने की क्षमता निर्मित करनी होगी। तुम्हें पुन: जन्म देना होगा स्वयं को। एकाग्रता तो केवल उसका एक हिस्सा है। धारणा बहुत विराट शब्द है, वह बहुत व्यापक शब्द है। वह एकाग्रता से बहुत विराट है; एकाग्रता तो केवल उसका एक हिस्सा है।

'और तब मन धारणा के योग्य हो जाता है।’

मैं इसका अनुवाद करूंगा: 'और तब मन एक गर्भ हो जाता है।’ और जब मैं कहता हूं 'गर्भ', तो मेरा मतलब है. स्त्री बच्चे को नौ महीने अपने भीतर धारण करती है; वह उसे बीज की भांति सम्हालती है। हिंदुओं ने स्त्री को पृथ्वी कहा है, क्योंकि वह बच्चे को धारण करती है—बच्चे के बीज को, जैसे पृथ्वी वृक्ष के बीज को महीनों तक धारण करती है। जब बीज भूमि के साथ एक हो जाता है; सारा भय छोड़ देता है; पृथ्वी के प्रति अजनबी नहीं रहता; निश्चित अनुभव करने लगता है।

ध्यान रहे, बीज को पहले निश्चित होना चाहिए, केवल तभी खोल टूटती है; अन्यथा तो खोल कभी टूटेगी नहीं। जब बीज को लगता है कि यह पृथ्वी मां जैसी है—फिर स्वयं की सुरक्षा करने की कोई जरूरत नहीं रहती, अपने चारों ओर खोल का कवच बनाए रखने की कोई जरूरत नहीं रहती—वह

शिथिल हो जाता है। धीरे— धीरे खोल टूटता है और पृथ्वी में खो जाता है। अब बीज अजनबी नहीं है; उसने मां को पा लिया है। और तब अंकुर फूट पड़ते हैं।

भारत में हमने स्त्री को पृथ्वी—तत्व कहा है और पुरुष को आकाश—तत्व कहा है—पुरुष भटकता रहता है। वह अपने भीतर कुछ ज्यादा सम्हाल नहीं सकता है। और ऐसा रोज होता है : यदि कोई स्त्री किसी पुरुष के प्रेम में पड़ती है तो वह जीवन भर प्रेम कर सकती है। यह उसके लिए बहुत आसान है—वह जानती है कि कैसे किसी भाव को गहरे धारण किया जाए और उसके साथ रहा जाए। पुरुष घुमक्कड़ है, भटकता रहता है। अगर स्त्रियां न होतीं तो संसार में घर न होते—ज्यादा से ज्यादा तंबू होते—क्योंकि पुरुष घुमक्कड़ है। वह सदा एक ही जगह नहीं रहना चाहता। वह ईंट—पत्थर के महल और संगमरमर के महल नहीं बनाता। नहीं; वे बहुत स्थायी चीजें हैं। उसका घुमक्कड़ों का सा तंबू होता, ताकि किसी भी क्षण वह उसे उखाड़ सके, और कहीं और जा सके।

दुनिया में घर न होते, यदि स्त्रियां, न होतीं। घर स्त्रियों के कारण हैं। असल में सारी सभ्यता स्त्रियों के ही कारण है। पुरुष खाख छानता ही रहता, घूमता ही रहता। और अभी भी उसका मन ऐसा री है। वह घर में भी रहता है, तो भी मन भटकता ही रहता है। वह अपने भीतर कुछ सम्हाल नहीं सकता है। गर्भ बनने की उसकी शमता नहीं है।

इसलिए मेरे देखने में आया है कि स्त्री पुरुष की अपेक्षा अधिक सरलता से ध्यान में उतर सकती है। पुरुष के लिए यह कठिन है; उसका मन बहुत कंपता रहता है, उसे नए—नए जालों में उलझा लेता है; सदा दौड़ता रहता है. सदा सोचता रहता है हिमालय जाने की, गोवा जाने की, काबुल जाने की, नेपाल जाने की—कही न कहीं जाने की। स्त्री एक जगह रुक सकती है; वह एक ही स्थान में रह सकती है। कहीं जाने की कोई भीतरी आकांक्षा उसमें नहीं होती।

'और तब मन धारणा के योग्य हो जाता है।'

तब मन गर्भ बनने के योग्य हो जाता है—क्योंकि उसी गर्भ से तुममें एक नई अंतस सत्ता का जन्म होगा। तुम्हें स्वयं को जन्म देना है, तुम्हें स्वयं को गर्भ में धारण करना है। एकाग्रता उसी का हिस्सा है। सुंदर है एकाग्रता को समझना। यदि तुम एक ही विचार के साथ ज्यादा देर तक रह सकते हो, तो तुम अपने साथ भी ज्यादा देर तक रहने में सक्षम हो जाते हो। क्योंकि यदि तुम लंबे समय तक स्वयं में घिर नहीं रह सकते तो तुम वस्तुओं द्वारा आकर्षित होते रहोगे : एक कार, फिर कोई दूसरी कार, एक घर, फिर कोई दूसरा घर; एक स्त्री, फिर कोई दूसरी स्त्री, यह पद, फिर कोई और पद। तुम वस्तुओं में भटकते रहोगे। तुम घर वापस न आ पाओगे।

जब कोई चीज तुम्हारे चित्त को भटकाती नहीं, केवल तभी लौटना संभव होता है। जिस मन में गहन धैर्य है—मां की भांति—जो प्रतीक्षा कर सकता है, स्थिर रह सकता है, केवल वही मन जान सकता है अपनी भगवत्ता को।

योग का पांचवां अंग है प्रत्याहार— स्रोत पर लौट आना यह मन की उस क्षमता की पुनर्स्थापना है जिससे बाहय विषय जनित विक्षेपों से मुक्त हो इंद्रियां वश में हो जाती हैं।

जब तक तुम बाहरी चीजों से होने वाले चित्त—विक्षेपों से नहीं छूटते, तुम भीतर नहीं जा सकते, क्योंकि वे चीजें तुम्हें बार—बार बुलाती रहेंगी। यह ऐसा ही है जैसे तुम ध्यान कर रहे हो, लेकिन टेलीफोन भी तुमने ध्यान—कक्ष में रख लिया है। वह बार—बार बजता है, तो कैसे तुम ध्यान कर सकते हो? तुम्हें अपना टेलीफोन हटा देना है।

और यह कोई एक टेलीफोन की बात नहीं है। तुम्हारे आस—पास लाखों—लाखों चीजें चल रही हैं— लाखों टेलीफोन बज रहे हैं लगातार जब तुम ध्यान करने की कोशिश कर रहे हो। तुम्हारे मन का एक हिस्सा कहता है, 'क्या कर रहे हो तुम यहां? यह समय बाजार जाने का है, क्योंकि यही समय है सब से धनी ग्राहक के आने का। क्यों तुम यहां खाली बैठे अपना समय खराब कर रहे हो?' मन का दूसरा हिस्सा कुछ और ही कहता है—और मन में हजारों बातें चलती रहती हैं। वे सब बातें तुम्हारा ध्यान आकर्षित करने का प्रयास कर रही हैं। यदि यही चलता रहा, तो प्रत्याहार संभव नहीं है। कैसे तुम जा पाओगे भीतर? तुम्हें परिधि के लगाव, बाहर के भटकाव छोड़ने होते हैं—केवल तभी लौटना संभव होता है।

'योग का पांचवां अंग है प्रत्याहार—स्रोत पर लौट आना। यह मन की उस क्षमता की पुनर्स्थापना है जिससे बाहय विषय जनित विक्षेपों से मुक्त अविश्वश्निय में हो जाती हैं।'

'बाहय विषय जनित विक्षेपों से मुक्त हो...।'

कैसे कोई मुक्त हो सकता है विक्षेपों से? क्या तुम प्रतिज्ञा कर सकते हो कि 'मेरा धन में जो रस है उसे मैं छोड़ता हूं, या 'मेरा स्त्रियों में जो रस है, मेरा पुरुषों में जो रस है उसे मैं छोड़ता हूं?' मात्र प्रतिज्ञा करने से यह संभव नहीं है।

असल में प्रतिज्ञा से उलटा ही होगा। यदि तुम कहते हो, 'मैं स्त्रियों में रस लेना छोड़ता हूं', तो तुम्हारा मन और ज्यादा भर जाएगा स्त्रियों के चित्रों से; तुम और ज्यादा कल्पना करने लगोगे। असल में, यदि तुम जबरदस्ती छोड़ते हो, तो तुम और ज्यादा मुश्किल में पड़ जाओगे। बहुत से लोग ऐसे ही छोड़ने की कोशिश करते रहे हैं।

जब भी वृद्‌ध संन्यासी मुझसे मिलने आते हैं तो वे हमेशा कहते हैं, 'कामवासना का क्या करें? वह मन में चलती ही रहती है। और वह पहले से अधिक चलती है। और हमने तो सब छोड़ दिया है, तो अब क्या करें?' जितना ज्यादा तुम छोड़ते हो बिना समझ के, जबरदस्ती, उतना ज्यादा तुम मुसीबत में पड़ोगे। समझ चाहिए—संकल्प नहीं। संकल्प अहंकार का हिस्सा है।

और जब तुम किसी चीज के विरुद्ध संकल्प करते हो, तो तुम दो हिस्सों में बंट जाते हो—तुम अपनें से ही लड़ने लगते हो। यदि तुम कहते हो, 'मैं स्त्रियों में कोई रस न लूंगा'—तो तुम ऐसा क्यों कह रहे हो? यदि तुम्हें सच में ही रस नहीं है तो खतम हुई बात। उसे कहने में सार क्या है? क्यों तुम प्रतिज्ञा करने, व्रत लेने जाते हो किसी समारोह में, भीड़ में, मंदिर में, किसी धर्मगुरु के सामने? मतलब क्या है? यदि अब तुम्हें कोई रस नहीं है, तो बात खतम हो गई। क्यों तमाशा बनाना इसका? क्यों ढिंढोरा पीटना?

नहीं, बात कुछ और है। तुम्हारे लिए अभी बात खतम नहीं हुई है। असल में, तुम और भी आकर्षित हो। लेकिन तुम निराश भी हो। जब भी तुम संबंध में उतरे, निराशा हाथ लगी। तो निराशा भी है और आकर्षण भी है—दोनों बातें हैं, यही तकलीफ है। अब तुम कोई सहारा खोज रहे हो जहां तुम इसे छोड़ सको; तुम समाज खोजते हो। यदि तुम भीड़ के सामने स्त्री के प्रति आकर्षण को छोड़ने की कसम खा लेते हो, तो तुम्हारा अहंकार कहेगा, 'अब उस दिशा में जाना ठीक नहीं', क्योंकि सारा समाज जानता है कि तुमने ब्रह्मचर्य का व्रत लिया है। अब यह बात तुम्हारे अहंकार के खिलाफ जाती है; अब तुम्हें लड़ना पड़ता है इसके लिए।

और किसके साथ लड़ रहे हो तुम? तुम्हारी अपनी ही कामवासना से! तुम्हारा संकल्प तुम्हारी अपनी कामवासना से लड़ रहा है। यह ऐसे ही है जैसे तुम्हारा बायां हाथ तुम्हारे दाएं हाथ से लड़ रहा हो। यह मूढ़ता है; यह नासमझी है। तुम कभी जीत नहीं सकते।

तो कैसे छूटे कोई? तुम समझ से छोड़ते हो, तुम अनुभव से छोड़ते हो, तुम पक कर छोड़ते हों—किसी प्रतिज्ञा से नहीं। यदि तुम कोई चीज छोड़ना चाहते हो, तो उसे पूरा—पूरा जीओं। भयभीत मत होओ और घबराओ मत। उसके गहरे में उतरो, ताकि तुम समझ सको। एक बार बात समझ में आ जाती है, तो उसे बिना किसी प्रयास के छोड़ा जा सकता है। यदि प्रयास आ जाता है, संकल्प आ जाता है, तो तुम मुश्किल में पड़ोगे। जबरदस्ती कुछ भी मत करो। प्रयास से कुछ भी मत करो। संकल्पपूर्वक कुछ भी मत करो संकल्प ही सब उलझन खड़ी होती है।

केवल थोड़ी सी समझ की जरूरत है कि जीवन एक पाठशाला है जिससे गुजरना जरूरी है। और जल्दी मत करना। यदि अभी भी तुम्हें लगता है कि धन के लिए इच्छा शेष है, तो बेहतर है कि प्रार्थना में मत उलझो। जाओ, और इकट्ठा करो धन, और खतम करो बात। बात नासमझी की है, इसलिए यदि तुम में समझ है, तो तुम जल्दी मुक्त हो जाओगे। यदि तुम में समझ की थोड़ी कमी है, तो तुम थोड़ा ज्यादा समय लोगे—अनुभव से समझ आएगी।

अनुभव ही एकमात्र उपाय है; और दूसरा कोई सरल उपाय नहीं है। इसमें थोड़ा समय लग सकता है, लेकिन कुछ किया नहीं जा सकता—मनुष्य असहाय है। और सब कुछ छोड़ा जा सकता है। असल में यह कहना कि छोड़ा जा सकता है ठीक नहीं है. वह अपने आप ही छूट जाता है।

बाहरी चीजों द्वारा होने वाले विक्षेपों का त्याग करने से व्यक्ति प्रत्याहार के योग्य हो जाता है, घर लौट आता है। अब बाहर के संसार में कोई रस नहीं रहता, इसलिए तुम हजारों दिशाओं में भटकते नहीं। अब तुम स्वयं को जानना चाहते हो; स्वयं को जानने की आकांक्षा बाकी सारी आकांक्षाओं का स्थान ले लेती है। अब केवल एक ही आकांक्षा बचती है : स्वयं को जानने की।

ततः परमा वश्यतेन्द्रियाणाम्।

फिर समस्त इंद्रियों पर पूर्ण वश हो जाता है।

जब तुम घर लौट आते हो, भीतर आ जाते हो, तो अचानक तुम मालिक हो जाते हो। यही सौंदर्य है इस प्रक्रिया का। यदि तुम बाहर भटकते रहते हो, तो तुम गुलाम रहते हो—और न मालूम कितनी चीजों के गुलाम रहते हो। तुम्हारी गुलामी अनंत होती है, क्योंकि तुम्हारी आकांक्षा के विषय अनंत होते हैं।

ऐसा हुआ. मैं प्रोफेसर था यूनिवर्सिटी में। मेरे पड़ोस में एक दूसरे प्रोफेसर रहा करते थे। मैंने ऐसा कंजूस आदमी नहीं देखा; वे सच में ही असाधारण थे। उनके पास काफी रुपया—पैसा था; उनके पिता काफी धन छोड़ गए थे। वे और उनकी पत्नी वहां रहते थे। बहुत धन था, बड़ा मकान था, हर चीज थी—लेकिन वे ऐसी साइकिल में चलते जिसकी शहर भर में चर्चा थी।

वह साइकिल क्या थी एक चमत्कार थी। कोई और उसे नहीं चला सकता था. वह ऐसी खस्ता हालत में थी कि असंभव था उसे चलाना। शहर भर जानता था कि वे कभी ताला नहीं लगाते साइकिल में, क्योंकि कोई जरूरत न थी—कौन चुराता उसे। लोगों ने एक—दो बार कोशिश की, और फिर लौटा गए। वे थिएटर जाते तो साइकिल बाहर रख देते। वे कभी स्टैंड पर नहीं रखते, क्योंकि एक आना देना पड़ता। वे कहीं भी रख देते उसे। और तीन घंटे बाद जब वे आते, तो उन्हें हमेशा साइकिल वहीं रखी मिलती। उसमें कोई मडगार्ड नहीं थे, कोई हॉर्न नहीं था, कोई चेन कवर नहीं था, और वह इतना शोर करती थी कि एक मील से पता लग जाता था कि वे प्रोफेसर आ रहे हैं।

धीरे— धीरे, वे मेरे मित्र बन गए। मैंने उन्हें राय दी: अब बहुत हुआ और सब तुम्हारी साइकिल का मजाक उड़ाते हैं। इससे छुटकारा क्यों नहीं पा लेते?' उन्होंने कहा, 'क्या करूं? मैंने कोशिश की इसे बेचने की, लेकिन कोई तैयार ही नहीं होता इसे खरीद।

मैंने कहा, 'कोई तैयार नहीं होता इसे खरीदने के लिए, क्योंकि यह किसी काम की नहीं है। जाओ और इसे नदी में फेंक आओ—और परमात्मा को धन्यवाद दो अगर कोई इसे वापस न ले आए।' उन्होंने कहा, 'मैं सोचूंगा इस बारे में।'

लेकिन वे कुछ नहीं सोच सके। तो जब उनका अगला जन्मदिन आया तो मैंने एक नई साइकिल खरीदी। जो अच्छी से अच्छी साइकिल उपलब्ध थी, वह खरीदी और उन्हें भेंट में दी। वे बहुत खुश हुए। अगले दिन मैं प्रतीक्षा कर रहा था कि वे नई साइकिल पर आएंगे, लेकिन वे पुरानी साइकिल पर ही चले आ रहे थे! तो मैंने पूछा, 'बात क्या है?' उन्होंने कहा, 'जो साइकिल आपने मुझे दी है वह इतनी सुंदर है कि मैं उसे इस्तेमाल नहीं कर सकता।'

वह पूजा की चीज हो गई। वे रोज उसे साफ करते, मैं देखता कि वे साफ कर रहे हैं उसे। वे उसको साफ करते और उसको चमकाते और यही सब करते रहते और हमेशा वह साइकिल उनके घर में किसी सजावट की वस्तु की भांति रखी रहती, और वे अपनी पुरानी साइकिल पर सवार भागते रहते—चार—पांच मील कालेज जाते; चार—पांच मील बाजार जाते—सारा दिन वही पुरानी साइकिल। असंभव था उन्हें नई साइकिल का उपयोग करने के लिए राजी करना। वे कहते, 'आज बारिश हो रही है'; 'आज बहुत गरमी है'; और 'मैंने अभी साफ किया है उसे। और आप तो जानते हैं कि विद्यार्थी कैसे हैं—महा शरारती हैं—कोई खरोंच ही लगा दे। मुझे कालेज के बाहर खड़ी करनी पडेगी, और कोई खरोंच मार सकता है और खराब कर सकता है।'

उन्होंने कभी उसे इस्तेमाल नहीं किया, और जहां तक मैं जानता हूं वे अभी भी पूजा ही कर रहे होंगे उसकी। ऐसे लोग हैं जो वस्तुओं की पूजा कर रहे हैं। मैंने उन प्रोफेसर से कहा, 'आप साइकिल के मालिक नहीं हैं, साइकिल मालिक हो गई है आपकी। असल में मैं सोच रहा था कि मैंने आपको साइकिल भेंट दी—अब मैं साइकिल से कह सकता हूं कि मैंने तुम्हें यह प्रोफेसर भेंट में दिया। साइकिल मालिक हो गई है।'

यदि तुम इच्छा करते हो चीजों की, तो तुम मालिक नहीं हो। और यही भेद है : तुम महल में हो सकते हो, लेकिन यदि तुम उसका उपयोग करते हो, तो कुछ फर्क नहीं पड़ता। तुम झोपड़ी में हो सकते हो, लेकिन यदि तुम उसका उपयोग नहीं करते और झोपड़ी तुम्हारा उपयोग करती है, तो तुम बाहर से अपरिग्रही लग सकते हो लोगों को, लेकिन तुम हो नहीं : तुम परिग्रही हो। एक आदमी महल में रह सकता है और संत हो सकता है; और एक आदमी झोपड़ी में रह सकता है और शायद संत न हो। संत होने की गुणवत्ता तुम्हारे मालिक होने पर निर्भर है। यदि तुम उपयोग करते हो चीजों का, तो ठीक है; लेकिन यदि तुम्हारा उपयोग किया जा रहा है, तो तुम बड़ा मूढ़तापूर्ण व्यवहार कर रहे हो।

पतंजलि कहते हैं, 'फिर समस्त इंद्रियों पर पूर्ण वश हो जाता है।'

और इंद्रियों के विषयों पर भी... केवल प्रत्याहार द्वारा! जब तुम्हारी जिंदगी में आत्म—ज्ञान सर्वाधिक महत्वपूर्ण हो जाता है और कुछ भी महत्वपूर्ण नहीं रहता, जब तुम्हारे अपने आत्म—शान के लिए, तुम्हारी अंतस—सत्ता के लिए हर छोड़ी जा सकती है, जब राज्य मूल्यहीन हो जाते हैं—यदि तुम्हें

अपने आंतरिक राज्य और बाहरी राज्य के बीच चुनना हो, तो तुम आंतरिक राज्य चुनोगे—उस क्षण, पहली बार, तुम—तुम नहीं रहते : तुम मालिक हो जाते हो।

भारत में संन्यासियों के लिए हम 'स्वामी' शब्द का प्रयोग करते रहे हैं। स्वामी का अर्थ होता है मालिक, इंद्रियों का मालिक। वरना तो तुम सभी गुलाम हो—और गुलाम हो मुर्दा चीजों के, गुलाम हो भौतिक संसार के।

और जब तक तुम मालिक नहीं हो जाते, तुम सुंदर नहीं हो सकते। तुम कुरूप हो; तुम कुरूप ही रहोगे। जब तक तुम मालिक नहीं हो जाते, तुम नरक में रहोगे। स्वयं का मालिक होना है स्वर्ग में प्रवेश करना। वही एकमात्र स्वर्ग है।

प्रत्याहार तुम्हें मालिक बना देता है। प्रत्याहार का अर्थ है : अब तुम चीजों के पीछे नहीं भटक रहे हो, चीजों के पीछे नहीं भाग रहे हो, चीजों की खोज में नहीं हो। वही ऊर्जा जो संसार में भटक रही थी, अब केंद्र पर लौट आती है। जब ऊर्जा केंद्र में लौटती है, तब रहस्यों पर रहस्य खुलते चले जाते हैं। तुम पहली बार स्वयं के सामने प्रकट होते हो—तुम जानते हो कि तुम कौन हो। और यह जानना कि मैं कौन हूं तुम्हें परमात्मा बना देता है।

शेक्सपियर का हेमलेट सही है, जब वह आदमी के बारे में कहता है, 'कितना ईश्वर जैसा है!' पावलोव सही नहीं है जब वह आदमी के बारे में कहता है, 'कितना कुत्ते जैसा है!' लेकिन यदि तुम चीजों के पीछे भाग रहे हो, तो पावलोव सही है, हेमलेट गलत है। यदि तुम चीजों के पीछे भाग रहे हो, तो स्किनर सही है, लेविस गलत है।

मैं फिर से कह दूं : 'आदमी उखड़ा जा रहा है', सी. एस लेविस कहता है। बी .एफ. स्किनर कहता है, 'अच्छा छुटकारा है।' शेक्सपियर का हेमलेट कहता है, 'कितना ईश्वर जैसा है!' पावलोव कहता है, 'कितना कुत्ते जैसा है।' यह तुम्हारे चुनने की बात है कि तुम क्या होना चाहोगे। यदि तुम भीतर उतरते हो, तो तुम परमात्मा हो। यदि तुम बाहर की यात्रा पर हो, तो पावलोव सही है।

आज इतना ही।

प्रवचन 60 - जीवन : अस्तित्व की एक लीला

प्रश्न—सार:

1—आपने कहा, मनुष्य एक सेतु है—पशु और परमात्मा के बीच। तो हम इस सेतु पर कहां हैं?

2—कभी आप कहते हैं कि गुरु और शिष्य का, प्रेम और प्रेयसी का अंतर्मिलन संभव है। कभी आप कहते हैं कि हम नितांत अकेले है और कोई मिलन संभव नहीं है। कृपया इस विरोधाभाष को समझाये।

3—यदि जीवन अस्तित्व की एक आनंदपूर्ण लीला है,

तो फिर सभी जीव दुख क्यों भोग रहे हैं?

4—कभी—कभी ऐसा लगता है जैसे कि आप एक स्वप्न हैं...!

5—ऐसा कैसे है कि मैं अभी भी भटका हुआ हूं....?

6—मैं खोई हुई अवस्था में हूं—न इस संसार में हूं, न उस संसार में; न तो पशु हूं और न परमात्मा। इस अवस्था से बाहर कैसे निकलुं?

7—यदि विधायक है नकारात्मक के कारण, प्रकाश है अंधकार के कारण; तो कोई मालिक कैसे हो सकता है? बिना किसी को गुलाम बनाए?

8—क्या आपके पास बने रहने कि, आपसे दूर न होने की आकांशा भी एक बंधन है?

9—कैसे कोई झूठी समस्याओं को झूठ की तरह पहचानना सीख सकता है?

10—आप पागल है। और आप मुझे भी पागल बनाए दे रहे है?

11—महावीर, बुद्ध और रजनीश शारीरिक रूप से क्यों नहीं नाचते और गाते?

12—मैं यहां सिखाने के लिए नहीं आया हू, बल्कि तुम्हें हंसाने के लिए आया हूं। हंसो, और समर्पण घटित होगा—और किसी आश्वासन की अब कोई जरूरत नहीं है।' अपने पुराने आश्वासन को क्या आप उपरोक्त ढंग से बदलना चाहेंगे?

पहला प्रश्न:

आपने कहा मनुष्य एक सेतु है— पशु और परमात्मा के बीच। तो हम इस सेतु पर कहां है?

तुम सेतु पर नहीं हो, तुम्हीं सेतु हो। इस बात को ठीक से समझ लेना है। यदि तुम सोचते हो कि तुम सेतु पर हो, तो तुम पूरी बात चूक गए—यह अहंकार ही है जो पूरी बात की गलत व्याख्या कर रहा है। तुम सेतु हो। तुम्हें अपने पार जाना है, अपना अतिक्रमण करना है। तुम, जैसे तुम अभी हो, सेतु हो। तुम्हें अपने को पीछे छोड़ देना है; तुम्हें अपने पार जाना है।

यदि तुम इसे ठीक से समझ लो, तो बात बड़ी स्पष्ट हो जाती है. यदि तुम बहुत सघनता से हो, तो तुम पशु हो जाओगे, तो भी सेतु तिरोहित हो जाता है। यदि अहंकार बहुत ठोस हो जाए, तो भी तुम सेतु नहीं रहते, सेतु खो जाता है और तुम पशु हो जाते हो। यदि तुम बिलकुल शून्य हो जाओ तो भी सेतु खो जाता है, तुम परमात्मा हो जाते हो। यदि केवल अहंकार बचा है, तो तुम कुत्ते हो, अहंकार कुत्ता है। यदि तुम पूर्णतया तिरोहित हो गएहो, तो पीछे छूट गया परम मौन ही परमात्मा है। वह शून्यता, वह खालीपन, वह खाली आकाश—अनंत, असीम—उसे ही बुद्ध ने 'निर्वाण' कहा है। निर्वाण का अर्थ है. जब तुम्हारा 'होना' समाप्त हो गया।'निर्वाण' शब्द का ही अर्थ होता है : दीए की ज्योति का खो जाना—ज्योति खो गई है; विराट अंधकार है, कहीं कोई प्रकाश नहीं। जब अहंकार की ज्योति खो जाती है—तुम्हारी सीमाएं खो जाती हैं, अब तुम कहीं नहीं खोज सकते स्वयं को—तब तुम परमात्मा हो जाते हो।

इन दो ध्रुवों—अहंकार और निरहंकार—इनके बीच है सेतु। वह सेतु तुम हो। इस पर निर्भर करता है कि तुम में कितना अहंकार है यदि बहुत अहंकार है तो तुम पशु की ओर प्रवृत्त हो रहे हो; यदि अहंकार बहुत सघन नहीं है तो तुम परमात्मा की ओर झुक रहे हो। एक रस्सी तनी है पशु और परमात्मा के बीच—लेकिन तुम्हीं हो रस्सी। इसलिए मत पूछो कि तुम सेतु पर कहां हो, क्योंकि अत अहंकार ही पूछ रहा है। बस यह समझने की कोशिश करो कि तुम्हीं सेतु हो। उसका अतिक्रमण करना है, उससे गुजर जाना है; तुम्हें अपने पार चले जाना है।

मुक्त होने की कोशिश मत करो, क्योंकि वह भी सूक्ष्म अहंकार तो सकता है। अहंकार से मुक्त होने की कोशिश करो—क्योंकि मुक्ति भी अहंकार के लिए बहाना हो सकती है, इस तरह तुम कभी मुक्त नहीं हो सकते क्योंकि अहंकार ही बंधन है। तुम्हारी मुक्ति नहीं हो सकती, मुक्ति केवल तभी होगी जब तुम न रहो।

'मैं' की इस अनुभूति को तिरोहित होने दो, और तुम्हें कुछ और करने की जरूरत नहीं है। बस 'मैं' को जाने दो। क्योंकि वह इतनी झूठी बात है कि उसे निरंतर सम्हालना पड़ता है, केवल तभी वह बनी रह सकती है। तुम्हें उसके साथ सहयोग करना पड़ता है प्रतिपल। यह ऐसा ही है जैसे कोई साइकिल सवार साइकिल के पैडल चलाता रहता है : यदि वह रुक जाए, तो साइकिल रुक जाएगी। साइकिल के चलने के लिए पैडल का निरंतर चलते रहना जरूरी है। अहंकार को निरंतर सहयोग चाहिए। तुम्हें उसके विरुद्ध कुछ करने की जरूरत नहीं, तुम तो बस सजग हो जाओ और सहयोग मत करो। सजग रहो, देखते रहो कि अहंकार कैसे खेल खेलता है, उसके रंग—ढंग कितने सूक्ष्म हैं। बस देखो, सहयोग मत करो—उतना पर्याप्त है। अहंकार बिना भोजन के मर जाता है; साइकिल रुक जाती है। तुम्हारे पैडल चलाए बिना वह चल नहीं सकती।

जब तुम मेरे पास आते हो और पूछते हो कि अहंकार को कैसे रोकें, तो तुम उस साइकिल सवार की तरह हो जो पैडल भी मारता जाता है और सड़क पर चिल्लाता भी जाता है और पूछता भी जाता है, 'कैसे रोकु कैसे रोकू!' और पैडल भी मारता जाता है। पैडल मत चलाओ। साइकिल अपने आप नहीं चल सकती; तुम्हारी मदद जरूरी है।

तुम्हारी पीड़ा मिटती नहीं, क्योंकि तुम उसे बने रहने में मदद देते हो। तुम्हारा दुख मिटता नहीं, क्योंकि तुम उसे सहारा देते हो; तुम उसे पोषित करते हो। तुम्हारा नरक मिटता नहीं तुम्हारे सहयोग के कारण। जब तुम इसे समझ लेते हो, तो सहयोग समाप्त हो जाता है; फिर तुम हिस्सा नहीं रहते उस सारे पीड़ा भरे खेल का; तुम एक तरफ खड़े हो जाते हो और देखते हो। अचानक विस्फोट होता है—कोई अहंकार नहीं बचता, कोई साइकिल नहीं बचती, कोई पैडल नहीं बचता। यही वह घड़ी होती है जब सेतु का अतिक्रमण हो जाता है।

दूसरा प्रश्न :

कभी आप कहते हैं कि गुरु और शिष्य के लिए दो प्रेमियों के लिए अंतस से अंतस का मिलन संभव है और कभी आप कहते हैं कि हम एकदम अकेले हैं और किसी के भी साथ होना असंभव है। क्या दूसरे से मिलन की आकांक्षा—अंतस से अंतस के मिलन की आकांक्षा भी— मन की एक इच्छा है एक कल्पना है जिसे गिरा देना है? यदि संभव हो तो कृपया समझाएं।

हां, कठिन है समझाना। सारे समाधान कठिन हैं, क्योंकि पहली तो बात, समस्याएं ही झूठी हैं। कैसे किसी झूठी समस्या को हल किया जाए? तुम बेतुकी बात पूछ रहे हो, तो समझाना कठिन हो जाता है। तो यह ठीक है सभी समस्याओं को समझाना कठिन है। असल में जब तुम समझते हो, तो कहीं कोई समस्या नहीं रहती, जब तुम नहीं समझते, तो समस्या होती है। तो समस्या सुलझाई नहीं जा सकती है, और मैं यहां तुम्हारी समस्याओं को सुलझाने के लिए नहीं हूं; मैं तुम्हारी मूढ़ताओं में बिलकुल भागीदार नहीं हूं। मैं यहां तुम्हें समझ देने की कोशिश कर रहा हूं—तुम्हारी समस्याओं को समझने की कोशिश नहीं कर रहा हूं। वे सुलझ नहीं सकतीं, क्योंकि वे बिलकुल अनर्गल हैं।

तुम्हारी सारी समस्याएं ऐसी हैं जैसे किसी व्यक्ति को तेज बुखार चढ़ा हो —एक सौ सात डिग्री बुखार—और वह अंट—शंट सवाल पूछ रहा हो। वह कहता है, 'यह कुर्सी आकाश में क्यों उड़ रही है?' अब कैसे समझाओ इसे? लेकिन उसका बुखार उतारा जा सकता है, वही एकमात्र उपाय है। वही मैं कर रहा हूं मेरा सारा प्रयास यही है कि तुम्हारा बुखार थोड़ा नीचे उतर आए। जब तुम समझ जाते हो, जब बुखार थोड़ा नीचे उतर आता है, फिर कुर्सी नहीं उड़ती। तब तुम स्वयं पर हंसने लगते हो कि कितने मूढ़ थे तुम।

कठिन है, करीब—करीब असंभव ही है समझाना, क्योंकि पहली तो बात जो भी तुम पूछते हो, वह बेतुका ही होगा। तुम सम्यक प्रश्न, ठीक प्रश्न नहीं पूछ सकते, क्योंकि यदि तुम ठीक प्रश्न पूछ सकते होते, तो फिर पूछने की कोई जरूरत नहीं रह जाती। सम्यक प्रश्न सदा अपने में सम्यक उत्तर लिए रहता है—क्योंकि असली बात है 'सम्यक' होने की। यदि तुम ठीक प्रश्न पूछ सकते हो, तो तुमने समझ ही ली है बात। लेकिन फिर भी मैं कोशिश करूंगा; मैं कोशिश करूंगा तुम्हारे बुखार को थोड़ा नीचे उतारने की। वह कोई समझाना नहीं है।

'कभी आप कहते हैं कि गुरु और शिष्य के लिए, दो प्रेमियों के लिए अंतस से अंतस का मिलन संभव है। और कभी आप कहते हैं कि हम एकदम अकेले हैं और किसी के भी साथ होना असंभव है।'

दोनों बातें सच हैं। हम एकदम अकेले हैं और साथ होना असंभव है—यह बात बिलकुल सच है। और इसी तरह दूसरी बात भी बिलकुल सच है कि दो प्रेमियों का अंतस से अंतस का मिलन हो सकता है; गुरु और शिष्य का अंतस से अंतस का मिलन हो सकता है। विरोधाभास लगता है, क्योंकि तुम्हारे पास कोई अनुभव नहीं है उसका।

जब दो प्रेमी मिलते हैं, तो वे दो प्रेमी नहीं रहते—केवल प्रेम होता है। वे दोनों मिट चुके होते हैं, वे दोनों खो चुके होते हैं, क्योंकि यदि प्रेमी मौजूद हैं तो प्रेम मौजूद नहीं हो सकता। जब दो प्रेमी मिलते हैं, तो वे दो नहीं रहते और वे प्रेमी नहीं रहते : केवल प्रेम ही रहता है। वे दोनों नदी के दो किनारों जैसे होते हैं—असल में नदी बहती है और दोनों किनारों को छूती है। नदी के बिना किनारे दूर—दूर

होते हैं, अलग— थलग होते हैं, मिल नहीं सकते। जब नदी बहती है तो किनारे मिलते हैं नदी के द्वारा, नदी में।

जब गुरु और शिष्य का मिलन होता है तो वहां कोई गुरु नहीं होता, कोई शिष्य नहीं होता। दो नहीं होते; वहां द्वैत नहीं बचता। फिर 'एक' ही होता है अपने समग्र अकेलेपन में, अपने परम एकांत में। दो तो नहीं मिल सकते, लेकिन यदि दो मिट जाते हैं, तो वह सौभाग्य की घड़ी मौजूद हो जाती है।

कठिन है कि उसे क्या कहें। यदि मैं उसे मिलन की घड़ी कहता हूं तो तुम गलत समझोगे, क्योंकि मिलन कहने में ही दो का खयाल आता है। यदि मैं इसे मिलन नहीं कहता, तो असंभव होगा मेरे लिए इसे कुछ और कहना। यही तकलीफ है भाषा के साथ। लेकिन फिर भी तुम समझ सकते हो, यदि तुम मुझे सहानुभूति से सुनते हो—और दूसरा कोई उपाय नहीं सुनने का—यदि तुम मेरे रन। न गहन संवाद में हो, मेरे साथ किसी समस्या पर बहस करने की कोशिश नहीं कर रहे हो, बल्कि इसके विपरीत मेरी कठिनाई को समझने की कोशिश कर रहे हो कि जिसे व्यक्त नहीं किया जा सकता उसे मैं व्यक्त कर रहा हूं एक गहन सहानुभूति —उसे ही श्रद्धा कहते हैं — तब तुम समझ सकते हो कि ये शब्द धोखा न देंगे, तब वे बाधा नहीं बनेंगे। तब वे संकेत बन जाते हैं, तब उनमें एक सार्थकता होती है—अर्थ नहीं, सार्थकता—क्योंकि तुम्हें उनके द्वारा एक झलक मिल सकती है।

तुम जानते हो कि शब्द स्थूल हैं। सारे शब्द स्थूल हैं। भाषा स्थूल है, मौन ही सूक्ष्म है। लेकिन यदि तुम मुझे गहन श्रद्धा से, गहन आस्था से समझते हो, तो शब्द भी मौन की कुछ सुगंध ले आते हैं। तो मुझे समझने की कोशिश करो : दो नहीं मिल सकते, असंभव है; और दो मिल सकते हैं, लेकिन तब वे दो नहीं रह जाते। जब मैं कहता हूं—अंतस से अंतस का मिलन, तो मेरा मतलब है. अब न प्रेमी रहा और न प्रेयसी। दोनों खो जाते हैं, दोनों मिट जाते हैं, कहीं अंतस में वे एक हो जाते हैं। उस गहन मौन में केवल प्रेम होता है, प्रेमी नहीं होते।

जब गुरु और शिष्य साथ होते हैं, तब यदि शिष्य मिटने के लिए तैयार है... क्योंकि गुरु तो वही है, जो पहले ही मिट चुका है, जो एक शून्य है। यदि शिष्य भी तैयार है गुरु की शून्यता के साथ बहने के लिए—बिना किसी माग के, बिना किसी इच्छा के, क्योंकि वे बातें तुम्हें मिटने नहीं देंगी—यदि शिष्य तैयार है शून्यता का हिस्सा बनने के लिए बिना किसी संदेह, बिना किसी झिझक के, तो वह शून्यता दोनों को घेर लेती है। वह आच्छादित कर लेती है दोनों को। शून्यता की उस बदली में दोनों खो जाते हैं। वही है अंतस से अंतस का मिलन। यह एक अर्थ में तो मिलन है, बड़े से बड़ा मिलन है; और मिलन नहीं भी है, क्योंकि मिलने के लिए दो मौजूद नहीं होते।

यह बात विरोधाभासी लगती है कि कभी मैं कहता हूं कि तुम नितांत अकेले हो, और कभी मैं कहता हूं कि मिलन की संभावना है। कब होती है वह संभावना? जब तुम कोशिश नहीं कर रहे होते हो मिलने की, तो मिलन की संभावना होती है। यदि तुम मिलने का प्रयास कर रहे हो तो वह प्रयास ही

पूरी बात को बिगाड़ देगा—क्योंकि कौन करेगा प्रयास? यदि तुम किसी से अंतस से अंतस का मिलन करने की कोशिश कर रहे हो, मिटने की कोशिश कर रहे हो, तो मिटने की वह कोशिश ही एक बाधा हो जाएगी; मिलने की वह कोशिश ही, मिलने की वह इच्छा ही एक दूरी निर्मित कर देगी।

इसीलिए मैं कहता हूं. तुम नितांत अकेले हो। मत कोशिश करो किसी से मिलने की। बस पूरी तरह अकेले हो रहो, और यदि दूसरा भी पूरी तरह अकेला है तो मिलन घटित होगा। ऐसा नहीं कि तुम कोई तैयारी करते हो उसके लिए। ऐसा नहीं कि तुमने कोई प्रयास किया होता है, कोई योजना बनाई होती है उसके लिए। वह बात इतनी विराट है कि तुम उसे प्रयास से उपलब्ध नहीं कर सकते। वह इतनी विराट है कि तुम उसे अपनी मुट्ठी में नहीं पकड़ सकते। तुम केवल अपने को हटा सकते हो कि वह घट सके। प्रेम या परमात्मा—विराट घटनाएं हैं। तुम बहुत छोटे हो। यदि तुम कोशिश करते हो, तो तुम असफल होओगे, तुम्हारी उस कोशिश में ही असफलता छिपी है।

कोई कोशिश मत करो। बस अपने निर्मल एकांत में, अपने शुद्ध स्वात में थिर रहो; मौन, शांत, स्वयं में प्रतिष्ठित, केंद्रित रहो। अचानक कुछ तुममें अवतरित होता है और तुम खो जाते हो। सेतु खो जाता, अहंकार नहीं बचता। पहली बार, यह घटना अचानक ही घटती है। जब गुरु उतरता है शिष्य में, या प्रेमी प्रेयसी में, या प्रेयसी मित्र में—जब भी घटित होती है यह बात तो अचानक ही होती है। यह सदा ही एक अप्रत्याशित घटना होती है। तुम्हें भरोसा नहीं आता कि क्या हो गया है। यह एक अविश्वसनीय घटना है, सब से ज्यादा असंभव घटना है, लेकिन फिर भी घटती है।

तीसरा प्रश्न :

यदि जीवन अस्तित्व की एक आनंदपूर्ण लीला है तो फिर सभी जीव दुख क्यों भोग रहे है?

तुम कृपा करके भूल जाओ सभी जीवों के बारे में। तुम कुछ नहीं जानते हो। मैं नहीं भोग रहा हूं दुख। तुम शायद भोग रहे होगे दुख; तो सब जीवों की बात मत करो। तुम स्वयं को भी नहीं जानते हो तो कैसे तुम दूसरों को जान सकते हो? केवल अपनी बात करो, क्योंकि चीजें वैसे ही बहुत जटिल हैं। जब तुम सभी की बात करने लगते हो, तो तुम करीब—करीब असंभव ही बना लोगे इसे समझ पाना। केवल तुम से काम चल जाएगा। केवल इतना ही कहो. 'मैं क्यों दुख भोग रहा हूं? यदि जीवन अस्तित्व की एक आंनदपूर्ण लीला है, तो मैं क्यों दुख भोग रहा हूं?' केवल इतने से काम चल जाएगा। सारे जीवों की बात भूल जाओ, उससे तुम्हारा कुछ लेना—देना नहीं है। यदि वे दुख भोगना चाहते हैं,

तो भोगने दो उन्हें दुख। तुम कृपा करके केवल अपने बारे में निर्णय करो। वह भी बहुत है; वह भी आसान नहीं है।

क्यों तुम दुख भोग रहे हो? क्योंकि तुम 'हो'। होना ही दुख है; न होना दुख के बाहर हो जाना है। अहंकार दुखी होता है। संपूर्ण जगत एक विराट लीला है; सुंदर लीला है। एक अदभुत उत्सव चल रहा है— क्षण— क्षण ऊंचे से ऊंचे शिखरों को छू रहा है। तुम दुख भोग रहे हो क्योंकि तुम उसमें सम्मिलित नहीं हो। अहंकार कभी भी हिस्सा नहीं बनना चाहता समग्र का; अहंकार अलग होने का प्रयत्न करता है। अहंकार प्रयत्न करता है अपनी ही योजनाओं के लिए, अपनी ही धारणाओं के लिए, अपने ही लक्ष्यों के लिए। इसीलिए तुम दुख पा रहे हो।

यदि तुम समग्र का अंग हो जाओ, तो कहीं कोई दुख नहीं रह जाता। अचानक तुम धारा के साथ बहने लगते हो। तुम अब धारा के विपरीत जाने का प्रयास नहीं करते। तुम अब तैरते भी नहीं, क्योंकि तैरने में भी प्रयास होता है। तुम तो बस धारा के साथ बहते हो. जहां भी वह ले जाए, वही तुम्हारा लक्ष्य है। तुमने निजी लक्ष्य गिरा दिए हैं, तुमने स्वीकार कर ली है समग्र की नियति। तब तुम सरलता से जीते हो, सरलता से मरते हो। कहीं कोई संघर्ष नहीं होता, कोई प्रतिरोध नहीं होता।

प्रतिरोध ही दुख है—और तुम समग्र के विरुद्ध नहीं जीत सकते। तो जब भी तुम प्रतिरोध करते हो, तुम दुखी होते हो। असफलता से आता है दुख। और तब तुम असहाय और निराश अनुभव करते हो और हर कहीं तुम्हें ऐसा ही लगता है जैसी कि एक कहावत है. 'मैन प्रपोजेज, गॉड डिस्पोजेज'—मनुष्य इरादा करता है, परमात्मा असफल कर देता है।

तुम इससे ज्यादा नासमझी की बात नहीं ढूंढ सकते। परमात्मा कभी नहीं डिस्पोज करता कुछ, लेकिन जैसे ही तुम इरादा करते हो, तुम अपने लिए मुसीबत खड़ी कर लेते हो, क्योंकि सब इरादे निजी होते हैं। इसका अर्थ है कि गंगा बंगाल की खाड़ी में नहीं गिरना चाहती, बल्कि अरब सागर गे गिरना चाहती है! उसे बंगाल की खाड़ी में ही गिरना होगा, समग्र की मर्जी पहले से ही तय तै। —सब गंगा इरादा करती है, 'नहीं, मैं अरब सागर में गिरना चाहूंगी।' और जब वह सफल नहीं होती पश्चिम की ओर बहने में और उसे अनुभव होता है कि सारे प्रयत्न व्यर्थ हैं और वह पूरब की तरफ ही बह रही है, तो मन में विचार उठ खड़ा होता है कि मैन प्रपोजेज, गॉड डिसगेजेज।

परमात्मा क्यों चिंता करे डिस्पोज करने की? परमात्मा कभी डिस्पोज नहीं करता। लेकिन जिस क्षण तुम इरादा बनाते हो, तुमने असफलता की संभावना निर्मित कर दी होती है।

लक्ष्यविहीन जीने की कोशिश करो और फिर देखो : सारा दुख मिट जाता है। बिना अहंकार के जीने की कोशिश करो, और कहीं कोई दुख नहीं रह जाता। दुख एक दृष्टिकोण है; वह कोई वास्तविकता नहीं है। तुम बीमार पड़ते हो, तुम तुरंत बीमारी से लड़ना शुरू कर देते हो; दुख पैदा हो जाता है। यदि तुम

स्वीकार कर लो बीमारी को, तो दुख मिट जाता है। तब तुम जानते हो कि परमात्मा की यही मर्जी है; जरूर कुछ राज होगा इस में। ईसकी जरूरत होगी तुम्हारे विकास के लिए।

ऐसा ही सूली पर जीसस के साथ हुआ : सूली लगने के एक क्षण पहले पूरा मनुष्य—चित्त उनके अंतस में उभर आया। उन्होंने आकाश की तरफ देखा और कहा, 'यह क्या हो रहा है? यह तू क्या दिखला रहा है? तूने मुझे अकेला क्यों छोड़ दिया है?'

यह मनुष्य का मन है। जीसस सुंदर हैं। वे मनुष्य हैं, वे परमात्मा हैं, दोनों हैं—मनुष्यता की सारी कमजोरियां उनमें हैं और परमात्मा की संपूर्ण पराकाष्ठा उनमें है. वे एक मिलन—बिंदु हैं, जहां सेतु खो जाता है और मंजिल प्रकट हो जाती है, वह अंतिम बिंदु जहां सेतु खोता है। वे क्रोध में थे। शिकायत से भरे थे। वे कह रहे थे, 'तूने मुझे निराश किया।'

इस अंतिम घड़ी में हर कोई इंतजार कर रहा था कि कोई चमत्कार होगा—जीसस भी गहरे में जरूर किसी चमत्कार का इंतजार कर रहे होंगे —कि सूली गायब हो जाएगी, फरिश्ते नीचे उतरेंगे और सारा संसार जान जाएगा कि वे ही हैं प्रभु के इकलौते बेटे। अहंकार कहता है, 'तूने क्यों मुझे धोखा दिया? तू मुझे यह क्या दिखला रहा है? तेरा इकलौता बेटा सूली पर चढ़ाया जा रहा है—तू कहां है?' उस घड़ी में, जरूर एक संदेह उनके मन में आया होगा।

और मैं कहता हूं, सुंदर है यह बात—यह बताती है कि जीसस मनुष्य के पुत्र और परमात्मा के पुत्र दोनों हैं। और यही है जीसस का सौंदर्य और उनका आकर्षण। मनुष्य—जाति का इतना बड़ा हिस्सा ईसाई क्यों हो गया है?

यदि तुम बुद्ध को देखो, तो वे बस परमात्मा मालूम पड़ते हैं; मनुष्यों की कोई कमजोरी नहीं है उनमें। यदि तुम महावीर को देखो, तो वे शिखर मालूम पड़ते हैं, गौरीशंकर, परम महिमावान। यदि तुम कृष्ण को देखो, तो तुम एक भी चीज ऐसी नहीं पा सकते जो तुम में संदेह पैदा करे। लेकिन क्राइस्ट—कमजोर, कोमल, कंपित—तमाम आशंकाएं, अनिश्चितताएं, संदेह साथ लिए हैं; वह सारा अंधकार साथ है जिसकी ओर मनुष्य का मन प्रवृत्त होता है। और फिर एक अचानक विस्फोट होता है और उसके बाद वे मनुष्य नहीं रह जाते।

अंतिम घड़ी तक भी वे मेरी और जोसेफ के पुत्र जीसस ही थे; सारी आशंकाएं उठ खड़ी हुईं—स्वभावत:। मैं उनके विरुद्ध कुछ नहीं कह रहा हूं —स्वाभाविक, बिलकुल स्वाभाविक थी बात, वैसा ही होना चाहिए। लेकिन फिर वे सम्हल गए : 'मैं यह क्या कर रहा हूं? परमात्मा ने नहीं छोड़ा है मुझे, मैं ही उसे छोड़े दे रहा हूं। मेरी अपेक्षाएं पूरी नहीं हुई हैं।' बिजली की कौंध की तरह अचानक उन्हें पूरी बात समझ में आ गई, 'मैं अपने अहंकार को पकड़ रहा हूं। मैं मांग कर रहा हूं समझने की। मैं हूं कौन? और क्यों संपूर्ण अस्तित्व मेरी फिक्र करे?'

एक मुस्कुराहट जरूर चली आई होगी उनके चेहरे पर, बदलिया छंट गईं, वे विश्रांत हुए। और उन्होंने कहा, 'प्रभु, तेरी मर्जी पूरी हो। कृपा करके मेरी चिंता न लें। मत सुनें मेरे मूढ़ मन की। मैं कौन होता हूं कहने वाला कि क्या होना चाहिए? मैं कौन होता हूं अपेक्षा रखने वाला? और जब तू है तो मैं क्यों कोई चिंता करूं?'

उस समर्पण में ही जीसस 'क्राइस्ट' हो गए। वे फिर मरियम और जोसेफ के बेटे न रहे। वे परमात्मा के बेटे हो गए। रूपांतरित, परिवर्तित, एक नई अंतस सत्ता का जन्म हुआ जिसका स्वीकार— भाव समग्र है। अब कहीं कोई समस्या नहीं है। यदि परमात्मा की मर्जी है कि उन्हें सूली लगे, तो यही ठीक है— और यह है चमत्कार!

और वस्तुत: सूली चमत्कार प्रमाणित हुई! आज ईसाइयत क्रॉस कारण ही है, क्राइस्ट के कारण नहीं। यदि वे उस दिन बच जाते तो हमने उन्हें एक जादूगर या बाजीगर की भांति याद रखा होता। लेकिन उस गहन समर्पण में, जहां सारी शिकायतें खो जाती हैं, अस्तित्व से अस्तित्व का मिलन घटित हुआ : उन्होंने परमात्मा को अवतरित होने दिया, अपने को पोंछ दिया। इसी भांति—मृत्यु द्वारा, समर्पण द्वारा—वे पुनरुज्जीवित हुए। फिर वे वही न रहे जो सूली लगने के पहले थे। एक नवजीवन—पूरी तरह नए, निर्दोष, निर्मल—स्व नए जीवन का आविर्भाव हुआ। पुराना विदा हो गया, नए ने जन्म लिया, और इन दोनों में कहीं कोई सातत्य नहीं है।

तुम मुझ से पूछते हो कि यदि जीवन अस्तित्व की एक आनंदपूर्ण लीला है, तो फिर क्यों.. .तो फिर इतना दुख क्यों है?

दुख है क्योंकि तुम अभी अस्तित्व की लीला का हिस्सा नहीं हो। तुम्हारा अपना एक छोटा—मोटा नाटक है, और तुम उसे खेलना चाहते हो। तुम समग्र अस्तित्व के हिस्से नहीं हो; तुम कोशिश कर रहे हो अपना ही छोटा सा संसार बनाने की। प्रत्येक अहंकार अपना अलग संसार बना लेता है; यही समस्या है।

समग्र के साथ बहो, और दुख मिट जाता है। दुख सूचक है : वह बताता है कि तुम जरूर समग्र के साथ लड़ रहे हो, बस इतना ही। तुम अतीत में किए अपने पापों के कारण दुख नहीं भोग रहे हो। तुम दुख भोग रहे हो उस पाप के कारण जो तुम अभी कर रहे हो। एक ही पाप है : संघर्ष, द्वंद्व, स्वीकार न करना।

अंग्रेजी का शब्द 'सिन' जिस मूल धातु से आता है उसका अर्थ है. 'अलग होना'।'सिन' शब्द का ही अर्थ होता है अलग होना। तुम अलग हो गए हों—वही एकमात्र पाप है। जब तुम फिर जुड़ जाते हो, तो पाप तिरोहित हो जाता है। सारी ईसाइयत पाप की इस धारणा पर खड़ी है कि मनुष्य अलग हो गया है परमात्मा से, इसीलिए वह पापी है। ठीक इसके विपरीत है पतंजलि की धारणा—विपरीत है, फिर भी पूरक है—वे जोर देते हैं 'योग' पर, जुड़ने पर।

पाप और योग. एक ही पाप है—अलग हो जाना, और योग का अर्थ है—फिर से मिल जाना। यदि तुम्हारा फिर से मिलन हो जाए समग्र के साथ, तो कहीं कोई दुख नहीं रहता। जितना ज्यादा का समग्र से दुर चले जाते हो, उतना ज्यादा तुम दुख भोगते हो। जितना ज्यादा तुम्हारा अहंकार सधन होता है, उतने ज्यादा तुम दुखी होते हो।

चौथा प्रश्न :

कभी— कभी ऐसा लगता है जैसे कि आप एक स्वप्न हैं.......!

यह सच है। अब तुम्हें और गहरा करना है इस अनुभूति को, ताकि कभी तुम अनुभव कर सको कि तुम भी एक स्वप्न हो। और गहरे उतरो इस अनुभूति में। एक घड़ी आती है जब तुम जान लेते हो कि जो भी है, सब सपना ही है। जब तुम यह जान लेते हो कि जो भी है सब सपना है, तो तुम मुक्त हो जाते हो।

यही तो अर्थ है हिंदुओं की माया की धारणा का। वह यह नहीं कहती कि सब कुछ झूठ है; वह इतना ही कहती है कि सब कुछ सपना है। सवाल सच या झूठ का नहीं है। तुम क्या कहोगे सपने को—वह सच है या झूठ? यदि वह झूठ है, तो कैसे दिखाई पड़ता है वह? यदि वह सच है, तो कैसे मिट जाता है वह इतनी आसानी से? तुम अपनी आंखें खोलते हो और वह कहीं नहीं होता। सपना जरूर कहीं सच और झूठ के बीच होगा। उसमें जरूर कुछ न कुछ अंश होगा सच्चाई का और उसमें जरूर कुछ न कुछ अंश होगा झूठ का। सपना भी होता तो है, सपना एक सेतु है—न वह इस किनारे पर है और न उस किनारे पर है; न इधर है, न उधर है।

यदि तुम सपने को सच मान लेते हो, तो तुम सांसारिक हो जाओगे। यदि तुम सपने को झूठ मान लेते .हो तो तुम बच कर भागने लगोगे हिमालय की ओर; तुम असांसारिक हो जाओगे। और दोनों ही दृष्टिकोण अतियां हैं। सपना ठीक मध्य में है. वह सच और झूठ, दोंनों है। उससे भागने की कोई जरूरत नहीं है—वह एक झूठ है। उसे पकड़ने की भी कोई जरूरत नहीं है—वह एक झूठ है। सपनों के पीछे जिंदगी गंवाने की कोई जरूरत नहीं है—वे झूठ हैं। और उन्हें त्याग देने की भी कोई जरूरत नहीं है—क्योंकि कैसे तुम झूठ का त्याग कर सकते हो? उनका उतना भी अर्थ नहीं है।

और इसी समझ से संन्यास की मेरी धारणा का जन्म होता है. तुम सपने को यह जानते हुए जीते हो कि वह एक सपना है। तुम संसार में यह जानते हुए जीते हो कि वह एक सपना है। तब तुम संसार

में होते हो, लेकिन संसार नहीं होता तुम में। तुम संसार में चलते हो, लेकिन संसार नहीं चलता है तुम में। तुम बने रहते हो संसार में। असल में, तुम अब उसका और भी आनंद लेते हो—क्योंकि एक सपना ही है; तुम्हारे पास खोने के लिए कुछ भी नहीं है। तब तुम गंभीर नहीं होते। असल में, तुम खेलने लगते हो बच्चों की भांति—क्योंकि सपना ही है। तुम उसका आनंद ले सकते हो, उसका मजा ले सकते हो। अपराधी अनुभव करने जैसा कुछ नहीं है उसमें। एक उत्सव है जीवन का। संसार में रह कर भी संसार के न होना, संसार में जीना और फिर भी अलग— थलग रहना; क्योंकि जब तुम जानते हो कि यह सपना है, तो तुम बिना किसी अपराध— भाव के उसका आनंद ले सकते हो, और तुम बिना किसी समस्या के उससे अलिप्त रह सकते हो।

तुम थिएटर जाते हो; तुम कोई पिक्चर देखने जाते हो : वह सब सपना है। तीन घंटे तुम रस लेते हो उसमें। फिर बत्तियां जल जाती हैं—तुम्हें याद आता है कि यह तो मात्र एक खेल था, पर्दे पर चलता प्रकाश और छाया का खेल था। अब पर्दा खाली है। तुम घर आ जाते हो; तुम भूल जाते हो सब कुछ। पूरा संसार एक विशाल पर्दे पर चलता धूप—छांव का खेल है। जब तुम समझ जाते हो, तुम्हारी आंखें खुल जाती हैं। तुम जानते हो कि यह एक सपना है—इससे आनंदित होने में कुछ गलत नहीं है, एक सुंदर सपना ही है। लेकिन अब तुम स्वयं में थिर रहते हो!

कठिन है बात। सांसारिक होना आसान है, क्योंकि तुम इसे सच मान लेते हो। असांसारिक होना, हिमालय जाकर साधु—संन्यासी हो जाना भी आसान है, क्योंकि तुम सब कुछ झूठ मान कर छोड़ देते हो। लेकिन इस जगत में जीना, भलीभांति जानते हुए कि यह आभास है, भलीभांति जानते हुए कि यह एक सपना है, इस तरह जीना संसार की सबसे कठिन बात है—और इस सबसे कठिन बात से गुजरना तुम्हारी मदद करता है विकसित होने में।

सांसारिक लोग चालाक होते हैं, लेकिन बुद्धिमान नहीं; गैर—सांसारिक सीधे—सरल होते हैं, लेकिन फिर भी बुद्धिमान नहीं होते। जो लोग बाजार में जीते हैं, बहुत चालाक होते हैं, लेकिन बुद्धिमान नहीं होते। और जो संसार छोड़ देते हैं और मंदिरों में और हिमालय में जाकर बैठ जाते हैं—वे सीधे—सरल होते हैं, चालाक नहीं होते, लेकिन बुद्धिमान भी नहीं होते। क्योंकि बुद्धि केवल तभी विकसित होती है जब तुम सब तरह की स्थितियों से गुजरते हो—लेकिन जागे हुए गुजरते हो। तुम नरक से भी गुजरते हो, लेकिन पूरी तरह जागे हुए गुजरते हो, तब बुद्धि विकसित होती है। बुद्धि को विकसित होने के लिए चुनौती चाहिए। यदि तुम चुनौतियों से भागते हो, तो तुम केवल सड़ते हो, तुम विकसित नहीं होते। इसीलिए मैं इस पर जोर देता हूं. संसार में रहो, और संसार के मत रहो।

पांचवां प्रश्न:

ऐसा कैसे है कि मैं अभी भी भटका हुआ हूं?

इस प्रश्न का उत्तर तुम्हें कोई दूसरा नहीं दे सकता। तुम भटके हुए हो, तुम्हें ही पता होगा। तुम जरूर लुका—छिपी का खेल खेल रहे होओगे। मैं जानता हूं कि तुम जानते हो। तुम भटके रहना चाहते हो, इसीलिए तुम भटके हुए हो। जिस क्षण तुम निर्णय करो कि भटकना नहीं है, तो कोई बाधा नहीं दे रहा है तुम्हें; कोई तुम्हारा रास्ता नहीं रोक रहा है। लेकिन तुम और थोड़ी देर सपना देखना चाहते हो। तुम्हारी कुल प्रार्थना यह है, 'हे परमात्मा, मुझे बुद्धत्व मिले, लेकिन एकदम अभी नहीं।' यह है तुम्हारी प्रार्थना 'मैं जाग जाऊं, लेकिन थोड़ी देर बाद।'

ऐसा हुआ लंका में: एक बड़ा रहस्यदर्शी संत मरणशथ्या पर था; उसके लाखों शिष्य थे। यह जान कर कि वह मरणशथ्या पर है, वे सब इकट्ठे हो गए। अपना पूरा जीवन—और वह लंबा जीवन जीया, करीब—करीब सौ वर्ष जीया—वह बुद्धत्व के विषय में समझाता रहा था। जिस दिन उसे विदा होना था, वह अपनी कुटिया से बाहर आया अंतिम दर्शन देने के लिए और उसने कहा, 'अब मैं जा रहा हूं। क्या कोई मेरे साथ चलने के लिए तैयार है? आज मैं कुछ समझाऊंगा नहीं; आज मैं तैयार तुम्हें अपने साथ ले चलने के लिए। यदि कोई तैयार है, तो वह खड़ा हो जाए।'

लोग एक—दूसरे की तरफ देखने लगे. हजारों लोग इकट्ठे थे, लेकिन कोई खड़ा न हुआ। गुरु ने थोड़ी देर प्रतीक्षा की और फिर उसने कहा, 'देर हो रही है और मुझे जाना है। क्या मैं समझ लूं कि मेरा पूरा जीवन व्यर्थ गया तुम से बुद्धत्व की बातें करते हुए? और अब मैं तुम्हें बुद्धत्व देनें के लिए तैयार हूं। तुम्हें कुछ प्रयास करने की जरूरत नहीं है; मैं तुम्हें अपने साथ ले जा सकता हूं। कोई तैयार है?'

एक आदमी आधे—आधे मन से खड़ा हुआ और उसने कहा, 'थोड़ा ठहरें! कृपया मुझे बता दें कि बुद्धत्व कैसे मिलता है, क्योंकि आप तो जा रहे हैं और मैं अभी तैयार नहीं हूं आपके साथ आने के लिए। संसार में बहुत कुछ करना बाकी है। मेरा बेटा अभी—अभी यूनिवर्सिटी में दाखिल हुआ है, मेरी बेटी की शादी होनी है, मेरी पत्नी बीमार है और उसकी देखभाल करने वाला कोई चाहिए.। जब सब ठीक हो जाएगा, तो मैं भी आऊंगा। तो कृपया, मुझे विधि भर दे दीजिए।'

गुरु हंसा और उसने कहा, 'जिंदगी भर मैं विधियां ही तो देता रहा हूं।'

क्यों तुम अपने को छिपाते हो विधियों के पीछे? लोग सदा विधि चाहते हैं, क्योंकि विधि की आड़ में तुम आसानी से स्थगित कर सकते हो, क्योंकि विधि को तो 'करना' होगा—समय लगेगा करने में। और वह तुम पर निर्भर करता है—करना या न करना, या आधे— आधे मन से करना, या स्थगित कर देना।

विधि एक तरकीब है। जब तुम विधि मांगते हो तो तुम कोई बहाना ढूंढ रहे हो ताकि तुम स्थगित कर सको, क्योंकि विधि को तो पहले पूरा करना होगा।

संसार में दो विचारधाराएं रही हैं। एक विचारधारा कहती है : बुद्धत्व अचानक होता है; दूसरी विचारधारा कहती है : बुद्धत्व क्रमिक होता है। जो कहते हैं कि बुद्धत्व अचानक होता है, उनकी कभी नहीं सुनी ज्यादा लोगों ने। उनके ज्यादा शिष्य नहीं होते। क्योंकि कैसे तुम इन लोगों के साथ हो सकते हो? वे कहते हैं कि यदि तुम तैयार हो तो बुद्धत्व बिलकुल अभी घट सकता है।

लोग हमेशा दूसरे मार्ग का, क्रमिक मार्ग का अनुसरण करते रहे हैं। क्योंकि क्रमिक मार्ग के साथ तुम्हारे पास पर्याप्त स्थान होता है, पर्याप्त समय होता है स्थगित करने के लिए। कोई इमरजेंसी नहीं होती और न ही कोई जल्दबाजी होती है। वह कोई अभी और यहां का सवाल नहीं है। कल! कल सब ठीक हो जाएगा; और दूसरा जीवन, अगला जीवन.. तुम इसी तरह और— और आगे टालते रहते हो।

गुरु तैयार था साथ ले जाने के लिए, लेकिन कोई तैयार न था जाने के लिए। और तुम मुझ से पूछते हो, 'ऐसा कैसे है कि मैं अभी भी भटका हुआ हूं?' तुम जानते हो। यदि मैं तुम से कहूं कि बिलकुल अभी संभावना है—तुम छलांग लगा सकते हो अपने भटकाव के बाहर—तो तुम तुरंत मुझ से पूछोगे कि कैसे? तुम विधि के विषय में पूछोगे।

यह ऐसे ही है जैसे तुम्हारे घर में आग लगी हो और कोई तुम से कहे, 'बाहर निकलो, घर में आग लगी है! तुम जल जाओगे।' यदि सच में ही तुम देखते हो कि घर में आग लगी है, यदि लपटें दिखाई पड़ती हैं तुमको, तो तुम नहीं पूछोगे, 'कैसे?' क्या तुम पूछोगे कि कैसे बाहर आऊं? तुम छलांग लगा कर बाहर आ जाओगे। तुम बालकनी से छलांग लगा दोगे, तुम खिड़की से छलांग लगा दोगे, तुम कहीं न कहीं से भाग निकलोगे—तुम ढूंढ ही लोगे कोई रास्ता। क्योंकि फिर सवाल ठीक रास्ता ढूंढने का नहीं रह जाता—कोई भी रास्ता ठीक हो जाता है। किसी शिष्टाचार का सवाल नहीं रह जाता, कि तुम्हें मुख्य द्वार से ही जाना है। जब घर में आग लगी होती है, तो तुम खिड़की से छलांग लगा देते हो। तुम जोखम उठा लेते हो अपने जीवन का, क्योंकि थोड़ी देर और रूके घर में और तुम जल जाओगे। जल मरने की बजाय बेहतर है तीसरी मंजिल से छलांग लगा देना और जीवन जीने के लिए अपंग हो जाना। तुम बाहर कूद जाओगे।

लेकिन यदि तुम कहते हो, 'ही, मैं जानता हूं कि घर में आग लगी है, लेकिन मैं राय लूंगा शास्त्रों की और मैं पूछूंगा गुरुओं से और मैं खोजूंगा बाहर आने का कोई रास्ता', तो इससे क्या पता चलता है? इससे यही पता चलता है कि तुम्हें इसका पता ही नहीं है कि घर में आग लगी है। तुमने मान ली है किसी की बात कि घर में आग लगी है, लेकिन अपने भीतर तुम जानते नहीं कि आग लगी है। तुम घर में आराम से रह रहे हो, आग तुम्हारा अपना अनुभव नहीं है।

बुद्ध ने अपना महल छोड़ दिया। उनका एक पुराना सेवक छन्ना, जो कि उनका बहुत विश्वासपात्र था, उन्हें शहर से बाहर छोड़ने आया, राजधानी से बाहर छोड़ने आया। उसे मालूम नहीं था कि वे कहं। जा रहे हैं। फिर राज्य के बाहर आकर बुद्ध ने कहा, 'मेरे आभूषण ले जाओ, मेरे कीमती कपड़े ले जाओ।' उन्होंने अपने बाल, सुंदर घुंघराले बाल काट डाले, और उन्होंने कहा, 'यह सब कुछ ले जाओ। यह सब दे देना मेरी पत्नी को। मैं संसार छोड़ कर जा रहा हूं।'

छन्ना रोने लगा, और उसने कहा, 'क्या कर रहे हैं आप? आप जवान हैं। आप संसार को उतना नहीं जानते, जितना मैं जानता हूं। प्रत्येक व्यक्ति महल पाना चाहता है, प्रत्येक व्यक्ति सम्राट होना चाहता है। और आपके पास साम्राज्य है और आप छोड़ कर जा रहे हैं इसे। मेरी बात को गलत न समझें, लेकिन मुझे लगता है कि आप नासमझी कर रहे हैं। मैं का हूं आपके पिता से अधिक मेरी उम्र है। मेरी सुनें, और वापस लौट चलें। आप पागल हुए हैं क्या? आप क्या कर रहे हैं?'

बुद्ध ने कहा, 'छन्ना, क्या तुम्हें नहीं दिखता कि वह महल जलती लपटों के सिवाय और कुछ भी नहीं है? और क्या तुम्हें नहीं दिखता कि पूरा साम्राज्य आग में जल रहा है? मैं इसे छोड़ कर नहीं जा रहा हूं; मैं बच कर भाग रहा हूं! मैं इसका त्याग नहीं कर रहा हूं मैं तो केवल अपनी जान बचा रहा हूं बस इतना ही।'

छन्ना ने पीछे मुड़ कर देखा। कहीं कोई आग नहीं लगी थी—सारा राज्य सन्नाटे में डूबा था। आधी रात का समय था, पूर्णिमा की रात थी, हर कोई गहरी नींद में सोया था. कहां लगी है आग? नींद में तुम उसे नहीं देख सकते, थोड़ा— थोड़ा जब तुम जागने लगते हो तभी तुम्हें यह आग दिखाई पड़ती है।

तो मुझ से मत पूछो कि क्यों तुम अभी भी भटके हुए हो। यही तुमने चाहा है। तुम भटके हुए रहना चाहते हो, इसीलिए तुम भटके हुए हो। यदि तुम ऐसा नहीं चाहते, तो कोई समस्या नहीं है, अभी इसी क्षण तुम इसके बाहर आ सकते हो। लेकिन कोई और तुम्हें इसके बाहर नहीं ला सकता है। मैं तुम्हें इसके बाहर नहीं ला सकता हूं। और यह अच्छा है कि कोई तुम्हें इसके बाहर नहीं ला सकता, इसीलिए तुम्हारी स्वतंत्रता अक्षुण्ण है। तुम चलाए रखना चाहते हो इस खेल को तो चलाए रखो। यदि तुम नहीं चलाए रखना चाहते यह खेल, तो इसके बाहर छलांग लगा दो। कोई तुम्हें रोक नहीं रहा है, कोई तुम्हारा रास्ता नहीं बंद कर रहा है।

जिस क्षण तुम निर्णय ले लेते हो, जिस क्षण तुम्हारा निर्णय पक जाता है, जिस क्षण तुम्हारी सजगता पूरी होती है और तुम इसकी व्यर्थता को देख लेते हो, उसी क्षण तुम उसके बाहर आ जाओगे— बिलकुल उसी क्षण। एक भी क्षण और रुकने की जरूरत नहीं होगी। सवाल समझ का नहीं है, सवाल है समझ का, सवाल है बोध का।

छठवां प्रश्न:

मुझे लगता है कि मैं बीच में लटका हुआ हूं : न तो इस संसार में हूं और न उस संसार में हूं न तो कुत्ता हूं और न परमात्मा हूं इस अवस्था से बाहर कैसे निकलूं?

यदि तुम इससे बाहर आते हो, तो तुम कुत्ता बन जाओगे। यदि तुम खो जाते हो, पूरी तरह खो जाते हो—फिर कोई बचता ही नहीं जो इसके बाहर आ सकता हो—तो तुम परमात्मा हो जाओगे। इसलिए मुझसे मत पूछो कि इससे बाहर कैसे निकलूं। यह अहंकार पूछ रहा है कि इससे बाहर कैसे निकलूं। तुम्हें पता नहीं चल रहा है कि तुम कहां हो। सुंदर है, शुभ है। थोड़े और खो जाओ—और 'ना—कुछ' हो जाओ। और मिट जाओ। तुम थोड़े कम खोए हो : आधा कुत्ता ही खोया है।

भारत में हमारे पास मनुष्य के विकास के संबंध में सुंदर कथाएं हैं। सर्वाधिक अर्थपूर्ण और सुंदर कथाओं में से एक है परमात्मा के अवतार की कथा, नरसिंह अवतार की कथा—आधा मनुष्य, आधा सिंह। हिंदू अवतारों में परमात्मा का एक अवतार है नरसिह—आध मनुष्य, आधा सिंह। यही है खोई हुई अवस्था। जब तुम्हें लगता है कि तुम आधे कुत्ते हो और आधे परमात्मा; जब तुम्हें लगता है कि न तुम कुत्ते हो और न परमात्मा, हर चीज धुंधली—धुंधली है, सीमाएं अस्पष्ट हैं; जब तुम स्वयं को सेतु के मध्य में अनुभव करते हो; तो यह नरसिंह की अवस्था है. आधा मनुष्य, आधा सिंह।

यदि तुम इससे बाहर आने की कोशिश करते हो, तो तुम पूरे सिंह हो जाओगे, क्योंकि तब तुम और ज्यादा सघन हो जाओगे। तुम पीछे लौट जाओगे। इससे बाहर आने का अर्थ है पीछे हट जाना। वह कोई प्रगति न होगी, विकास न होगा। उसकी जरूरत नहीं है। और खो जाओ, और मिट जाओ। तुम इतने भयभीत क्यों हो इस स्थिति से? क्योंकि तुम खोया—खोया अनुभव कर रहे हो; तुम्हारी पहचान अब स्पष्ट नहीं है, तुम कौन हो एकदम पक्का नहीं है, सीमाएं खो रही हैं; तुम्हारा चेहरा एकदम पहचान में नहीं आ रहा है। तुम्हारा जीवन प्रवाह जैसा हो गया है। अब वह पत्थर जैसा नहीं है। वह पानी की भांति ज्यादा है; कोई रूप नहीं, आकार नहीं। तुम भयभीत हो जाते हो।

तुम्हारे भीतर जो भयभीत है, वह कुत्ता है। क्योंकि यदि तुम थोड़ा और आगे बढ़ते हो तो कुत्ता पूरी तरह खो जाएगा, मिट जाएगा।

पहली बात, जब कोई यात्रा आरंभ करता है, तो वह बर्फ की भांति होता है, एकदम ठंडा, पत्थर जैसा होता है। जब थोड़ा आगे बढ़ता है, तो वह पिघलता है, बर्फ पानी बन जाती है। यह होती है धुंधली—धुंधली अवस्था, नरसिंह की अवस्था, आधी— आधी। यदि तुम और आगे जाते हो, तो तुम वाष्पीभूत हो

जाओगे, मिट जाओगे। न केवल तुम पानी हो जाओगे, तुम भाप बन जाओगे, अब तुम दिखाई नहीं पड़ोगे; तुम तिरोहित हो जाओगे। यदि तुम भयभीत हो इस मिटने से, तो तुम सहारा खोजोगे। तुम कोशिश करोगे फिर से जम जाने की, ठोस हो जाने की, ताकि तुम कोई रूप, कोई आकार, कोई नाम पा सको—कोई 'नाम—रूप'। हिंदुओं ने इस संसार को कहा है, नाम—रूप का संसार। तब तुम्हारी एक पहचान होगी, तुम जानोगे कि तुम कौन हो।

केवल कुत्ता जानता है कि वह कौन है—हर चीज निश्चित है, तय है। यदि तुम यात्रा पर आगे बढ़ते हो, पथ पर गतिमान होते हो, तो सब धुंधला— धुंधला हो जाता है—पहाड़ पहाड़ नहीं रहते, नदियां नदियां नहीं रहती। बड़ी अस्तव्यस्तता हो जाती है, एक अराजकता हो जाती है।

लेकिन स्मरण रहे : केवल अराजकता से ही नाचते सितारे पैदा होते हैं। ध्यान रहे, केवल अराजकता में ही परमात्मा पाया जाता है। फिर तीसरी अवस्था है—वाष्पीभूत होने की, इस तरह तिरोहित हो जाने की कि कोई नामो—निशान भी नहीं बचता। एक पदचिह्न भी पीछे नहीं छूटता। तुम खो जाते हो। तुम्हारा होना 'न—होने' जैसा हो जाता है। और यही वह अवस्था है, जिसे मैं परम अवस्था कहता हूं परमात्म अवस्था कहता हूं।

इसीलिए तुम परमात्मा को नहीं देख सकते। तुम खोजते रहो, खोजते रहो : एक दिन तुम खो जाओगे, और वही ढंग है परमात्मा को पाने का। परमात्मा कहीं मिलेगा नहीं। तुम परमात्मा को कहीं खड़े हुए नहीं पाओगे साक्षात्कार करने के लिए, क्योंकि कौन करेगा साक्षात्कार? यदि तुम अभी भी मौजूद हो, बचे हो साक्षात्कार करने के लिए, तो परमात्मा की कोई संभावना नहीं है। और जब तुम्हीं न बचे तो कौन करेगा साक्षात्कार? किसी विषय—वस्तु की भांति परमात्मा का साक्षात्कार नहीं होगा तुमसे। तुम्हारा उससे साक्षात्कार होगा अपने आत्यंतिक कैंद्र की भाति। लेकिन वह केवल तभी संभव है जब तुम पिघल जाओ, तुम तरल हो जाओ पानी की भांति, फिर तुम वाष्पीभूत हो जाते हो—तुम आकाश में उड़ते बादल हो जाते हो, जिसका कोई पता नहीं होता, कोई नाम नहीं होता, कोई रूप नहीं होता; एक निर्मुक्त बादल, जिसका कोई ठौर—ठिकाना नहीं होता।

यही भय है : क्योंकि यह एक महामृत्यु है। यह है संपूर्ण अतीत के प्रति मरना। जो भी तुम हो, जो भी तुम्हारे पास है ,सब छोड़ना होता है; सूली पर चढ़ना होता है। मृत्यु से पहले मर जाओ, वही एकमात्र ढंग है परमात्मा होने का।

तो इस बीच की अवस्था से भयभीत मत होना; अन्यथा तुम पीछे जा सकते हो। तुम फिर ठोस हो जाओगे बर्फ की भांति। तुम कोई नाम—रूप, पहचान पा लोगे, लेकिन तुम चूक गए।

सातवां प्रश्न :

यदि विधायक है नकारात्मक के कारण और प्रकाश है अंधकार के कारण तो कैसे कोई मालिक हो सकता है और वह भी बिना किसी को गुलाम बनाए?

एक ही उपाय है : तुम अपने मालिक हो जाओ। तब तुम्हीं मालिक हो और तुम्हीं गुलाम हो। तब एक अर्थ में तुम गुलाम हो—तुम्हारा शरीर, तुम्हारी इंद्रियां, तुम्हारा मन; और एक अर्थ में तुम मालिक हो—तुम्हारी चेतना, तुम्हारी सजगता। जहां भी मालिक है, वहां गुलाम भी होगा।

अब तक तुमने खुद मालिक होने की कोशिश की है और अपने आस—पास गुलाम इकट्ठे कर लेने की कोशिश की है। हर कोई यही कोशिश कर रहा है—खुद मालिक होने की और दूसरे को गुलाम बना लेने की। पति कोशिश करता है मालिक होने की और पत्नी को मजबूर करता है गुलाम होने के लिए। और पत्नी भी कोशिश करती है उसके अपने सूक्ष्म, स्त्रैण तरीकों से मालिक होने की और पति को मजबूर करती है गुलाम होने के लिए। भीतर— भीतर एक सूक्ष्म राजनीति चलती रहती है।

तुम्हारे सारे संबंध सूक्ष्म राजनीतियां हैं : कि कैसे दूसरे को गुलाम होने के लिए बाध्य कर देना, ताकि तुम मालिक बन सको।'

ऐसे सारे प्रयास राजनीति का हिस्सा हैं। मैं उस मन को राजनीतिक कहता हूं जो स्वयं ही गुलाम हो जाने की कोशिश कर रहा है और दूसरों को गुलाम होने के लिए मजबूर करने की कोशिश रहा है। धर्म एक बिलकुल अलग ही आयाम है : तुम किसी दूसरे को गुलाम होने के लिए मजबूर नहीं करते; फिर भी तुम मालिक होते हो। तुम दोनों होते हो। तुम्हारा शरीर, तुम्हारा स्थूल हिस्सा, तुम्हारा पृथ्वी—तत्व गुलाम होता है; तुम्हारा आकाश—तत्व मालिक होता है। एक बुद्ध पुरुष दोनों होता है : मालिक—परम रूप से; और गुलाम—वह भी परम रूप से। यह तुम्हारे अपने गुलाम और तुम्हारे अपने मालिक का मिलन है, और तब कहीं कोई संघर्ष नहीं रह जाता, क्योंकि शरीर तुम्हारी छाया है। जब तुम कहते हो, 'मैं मालिक हूं, तो शरीर तुम्हारा अनुसरण करता है। उसे अनुसरण करना ही पड़ता है, उसके लिए स्वाभाविक है तुम्हारा अनुसरण करना।

असल में, जब शरीर मालिक हो जाता है और तुम गुलाम हो जाते हो, तो यह बहुत ही अस्वाभाविक स्थिति है। यह ऐसे ही है जैसे तुम्हारी छाया तुम्हें कहीं ले जा रही हो। तुम किसी खड्डे में गिरेगे, क्योंकि छाया में कोई चेतना नहीं है; छाया सजग नहीं हो सकती। असल में छाया का कोई अस्तित्व ही नहीं है। तुम्हारा शरीर तुम्हें चला रहा है, यही पीड़ा है। जब तुम अपने शरीर को चलाने लगते हो, तो पीड़ा तिरोहित हो जाती है; तुम आनंद, सुख, शाति अनुभव करने लगते हो।

हां, विपरीत सब जगह मौजूद होता है। यदि प्रकाश है तो अंधकार है। यदि प्रेम है तो घृणा है। यदि मालिक है तो गुलाम का होना जरूरी है; अन्यथा मालिक कैसे संभव है? तो सब से बड़ी घटना जो मनुष्य को घट सकती है, वह यह है कि वह दोनों हो जाता है—एक साथ मालिक और गुलाम दोनों हो जाता है। यह सब से बड़ी लयबद्धता है जो संभव है।

आठवां प्रश्न:

क्या आपके पास बने रहने की आपसे दूर न होने की आकांक्षा भी एक बंधन है?

यह निर्भर करता है, क्योंकि बंधन किसी स्थिति में नहीं होता, दृष्टिकोण में होता है। यदि तुम दूर जाना चाहते हो और नहीं जा सकते, तो बंधन है। यदि तुम दूर नहीं जाना चाहते, तो कोई प्रश्न ही नहीं उठता। इससे विपरीत बात भी सच है तुम यहां मेरे पास रहना चाहते हो और नहीं रह सकते, तो दूर जाना भी एक बंधन है। यदि तुम मेरे पास होना चाहते हो और आसानी से हो सकते हो, तो कोई समस्या नहीं है, कोई प्रश्न ही नहीं है। तो बंधन हो या मुक्ति, ये दृष्टिकोण हैं। ये स्थितियों पर निर्भर नहीं हैं।

तुम मेरी बात समझे? यदि तुम मेरे पास होना चाहते हो और तुम्हारा मन कहे जाता है, 'चले जाओ, यहां मत रहो', तुम तो रहना चाहते हो यहां लेकिन भीतर कोई शैतान मजबूर किए जाता है,

'भाग जाओ', तो यह बंधन है, दूर चले जाना एक गुलामी है। इसी तरह यदि तुम दूर चले जाना चाहते हो, और तुम्हारे भीतर का कोई भय कहता रहता है, 'मत जाओ! यदि तुम यहां से चले जाओगे तो संपर्क खो जाएगा, तुम गुरु खो दोगे, गुरु के साथ तुम्हारा संपर्क खो जाएगा.....मत जाओ यहां से! एक तरह का भय तुम्हें विवश किए जाता है यहीं रहने के लिए, और तुम यहां से चले जाना चाहते हो तो यह भी एक बंधन है।

तो बंधन क्या है? बंधन वह बात है, जिसे तुम्हें जबरदस्ती करना पड़ता है सम्मोहन की भांति, विवशता की भांति, तुम बिलकुल नहीं चाहते कुछ करना और तुम्हें वह करना पड़ता है। तुम्हें अपने ही विरुद्ध कुछ करना पड़ता है, तो यह बंधन है—फिर वह चाहे कुछ भी हो। और यदि तुम सहजता से बहते हो, यही तुम हमेशा से करना चाहते थे और तुम उसे अपने पूरे हृदय से कर रहे हो, अपने पूरे प्राणों से कर रहे हो, तो वह स्वतंत्रता है।

अब मुझे इसे एक विरोधाभास के रूप में कहने दो. यदि तुम जबरदस्ती स्वतंत्र हो, तो तुम्हारी स्वतंत्रता में भी बंधन है; और यदि तुम समग्र स्वीकार के साथ गुलाम हो, तो तुम्हारे बंधन में भी स्वतंत्रता है। यह निर्भर करता है। यह भीतर के भाव पर निर्भर करता है, परिस्थिति पर नहीं।

इसलिए केवल तुम्हीं इस संबंध में जान सकते हो कि वह क्या है। यदि तुम यहां से चले जाना चाहते हो, तो चले जाओ, सहजता से दूर चले जाओ। कोई समस्या मत खड़ी करो! यदि तुम यहां रहना चाहते हो, तो रहो यहां। फिर कोई झंझट मत खड़ी करो।

लेकिन तुम उलझे हुए हो; तुम सदा ही द्वंद्व में हो। तुम एक नहीं हो, तुम भीड़ हो—यही मुसीबत है। तुम्हारा एक हिस्सा यहां रहना चाहता है; तुम्हारा दूसरा हिस्सा यहां से दूर चले जाना चाहता है। और जब तुम दूर चले जाओगे, तो एक हिस्सा फिर वापस आ जाना चाहेगा। और ऐसा ही चलता रहता है!

तुम्हें अपने भीतर ही निर्णय लेना है। तुम्हें द्वंद्व को छोड़ना है, भीड़ से बाहर आना है। तुम्हें अखंड होना है। तुम्हारी अखंडता में स्वतंत्रता है, तुम्हारी खंड—खंड अवस्था में बंधन है। जब तुम एक होते हो, तब कोई तुम्हें गुलाम नहीं बना सकता—कोई भी नहीं। तुम्हें जेल में डाला जा सकता है, तुम्हें जंजीरों में जकड़ा जा सकता है, लेकिन तुम्हें गुलाम नहीं बनाया जा सकता। तुम्हारे शरीर को जंजीरों में बांधा जा सकता है. तुम्हारी आत्मा पंख पसार आकाश में उड़ती रहेगी, उसके लिए कोई समस्या न होगी। तुम्हारी प्रार्थना कैसे जंजीरों में बांधी जा सकती है? तुम्हारा ध्यान कैसे बंधन में पड़ सकता है? तुम्हारा प्रेम कैसे गुलाम बनाया जा सकता है? असल में आत्मा की ठीक—ठीक परिभाषा ही यही है कि जिसे जबरदस्ती गुलाम नहीं बनाया जा सकता।

लेकिन तुम्हारे पास कोई आत्मा है ही नहीं। तुम तो एक भीड़ हो, इतने लोग भीतर हैं बिना किसी अखंडता के, बिना किसी तालमेल के। यही मुसीबत है। यदि तुम यहां रहते हो, तो तुम बंधन अनुभव करोगे; यदि तुम यहां से चले जाते हो, तो भी तुम बंधन अनुभव करोगे। जहां भी तुम जाओगे, तुम अपना अंतर्द्वंद्व साथ लिए जाओगे।

तो सवाल मेरे पास रहने का या मुझ से दूर होने का नहीं है, उसका कोई सवाल ही नहीं है। सवाल यह है कि यहां रहने में अखंडता आती है या दूर रहने में अखंडता आती है।

और मैं कुछ कहता नहीं कि तुम्हें यहां रहना चाहिए या दूर चले जाना चाहिए—मेरे पास कोई 'चाहिए' नहीं है। वह तुम्हारी अपनी बात है। यदि तुम सहजता से बह सकते हो मेरे साथ, तो बहो।

यदि तुम्हें लगता है कि मुझ से दूर बह जाना सुंदर होगा, तो दूर बह जाओ। मेरी ओर ध्यान मत देना, अपना पूरा ध्यान अपनी आंतरिक आत्मा पर रखना। जहां वह सहजता से बहती हो, जहां वह अपनी मौज से बहती हो, बिना किसी बाधा के, वही तुम्हारी मंजिल है।

नौवां प्रश्न :

कैसे कोई झूठी समस्याओं को झूठ की भांति पहचानना सीख सकता है?

पहचानना सीखने की कोई जरूरत नहीं है, क्योंकि सभी समस्याएं झूठी हैं। समस्याएं झूठी ही होती हैं। जब तुम सत्य होते हो, सभी समस्याएं तिरोहित हो जाती हैं। जब तुम झूठ होते हो, हजारों समस्याएं खड़ी हो जाती हैं।

जब भी कोई व्यक्ति बुद्ध के पास आता तो वे हमेशा उससे कहते, 'कृपा करके एक वर्ष तक कोई प्रश्न मत पूछो। एक वर्ष मेरे साथ मौन बैठो, मेरे साथ बहो। मुझे तुम्हारे भीतर काम करने दो। बस अपने द्वार—दरवाजे खुले रखो और सूरज की किरणों को भीतर आने दो। एक वर्ष तक कोई समस्या नहीं, कोई प्रश्न नहीं; मौन रहो, ध्यान करो। एक वर्ष बाद तुम पूछ सकते हो।'

एक व्यक्ति, कोई जिज्ञासु, एक दिन आया। उसका नाम था मौलुंकपुत्त, एक बड़ा ब्राह्मण विद्वान; पांच सौ शिष्यों के साथ आया था बुद्ध के पास। निश्चित ही उसके पास बहुत सारे प्रश्न थे। एक बड़े विद्वान के पास होते ही हैं ढेर सारे प्रश्न, समस्याएं ही समस्याएं। बुद्ध ने उसके चेहरे की तरफ देखा और कहा, 'मौलुंकपुत्त, एक शर्त है—यदि तुम शर्त पूरी करो, केवल तभी मैं उत्तर दे सकता हूं। मैं देख सकता हूं तुम्हारे सिर में भनभानते प्रश्नों को। एक वर्ष तक प्रतीक्षा करो। ध्यान करो, मौन रहो। जब तुम्हारे भीतर का शोरगुल समाप्त हो जाए, जब तुम्हारी भीतर की बातचीत रुक जाए, तब तुम कुछ भी पूछना और मैं उत्तर दूंगा। यह मैं वचन देता हूं।'

मौलुंकपुत्त कुछ चिंतित हुआ—स्व वर्ष, केवल मौन रहना, और तब यह व्यक्ति उत्तर देगा; और कौन जाने कि वे उत्तर सही भी हैं या नहीं? तो हो सकता है एक वर्ष बिलकुल ही बेकार जाए। इसके उत्तर बिलकुल व्यर्थ भी हो सकते हैं। क्या करना चाहिए? वह दुविधा में पड़ा था। वह थोड़ा झिझक रहा था ऐसी शर्त मानने में; इसमें खतरा था। और तभी बुद्ध का एक दूसरा शिष्य, सारिपुत्त, जोर से हंसने लगा। वह वहीं पास में ही बैठा था—एकदम खिलखिला कर हंसने लगा। मौलुंकपुत्त और भी परेशान हो गया; उसने कहा, 'बात क्या है? क्यों हंस रहे हो तुम?'

सारिपुत्त ने कहा, 'इनकी मत सुनना। ये बहुत धोखेबाज हैं। इन्होंने मुझे भी धोखा दिया। जब मैं आया था—तुम्हारे तो केवल पांच सौ शिष्य हैं—मेरे पांच हजार थे।' वह बड़ा ब्राह्मण पंडित था, देश भर में विख्यात था, अपने ढंग का अनूठा शिक्षक था।'तुम्हारे पास शायद हजारों प्रश्न होंगे—मेरे पास लाखों थे। इन्होंने फुसला लिया मुझे, इन्होंने कहा, साल भर प्रतीक्षा करो। मौन रहो, ध्यान करो, और फिर

पूछना और मैं उत्तर दूंगा। और साल भर बाद कोई प्रश्न ही न बचा, तो मैंने कभी कुछ पूछा नहीं और इन्होंने कोई उत्तर नहीं दिया। यदि तुम पूछना चाहते हो तो अभी पूछ लो! मैं इसी चक्कर में पड़ गया। मुझे इसी तरह इन्होंने धोखा दिया।'

बुद्ध ने कहा, 'मैं पक्का रहूंगा अपने वचन पर। यदि तुम पूछते हो, तो मैं उत्तर दूंगा। यदि तुम पूछो ही नहीं, तो मैं क्या कर सकता हूं?'

एक बीता, मौलुंकपुत्त ध्यान में उतरता गया, उतरता गया, और— और मौन होता गया—भीतर की बातचीत समाप्त हो गई, भीतर का कोलाहल रुक गया। वह बिलकुल भूल ही गया एक वर्ष की घटना कि एक वर्ष बीत गया। कौन फिक्र करता है? जब प्रश्न ही न रहें, तो कौन फिक्र करता है उत्तरों की? एक दिन अचानक बुद्ध ने पूछा, 'यह अंतिम दिन है वर्ष का। इसी दिन तुम यहां आए थे एक वर्ष पहले। और मैंने वचन दिया था तुम्हें कि एक वर्ष बाद तुम जो पूछोगे, मैं उत्तर देने के लिए तैयार रहूंगा। अब मैं तैयार हूं। क्या तुम तैयार हो?'

मौलुंकपुत्त हंसने लगा, और उसने कहा, 'आपने मुझे भी धोखा दिया। वह सारिपुत्त ठीक कहता था। अब कोई प्रश्न न रहा; मैं कोई भी प्रश्न नहीं खोज सकता। जितना ज्यादा मैं भीतर उतरता हूं उतना ज्यादा मैं पाता हूं कि प्रश्न ही नहीं हैं। तो मैं क्या पूछूं? मेरे पास पूछने के लिए कुछ भी नहीं है।' असल में, यदि तुम सत्य नहीं हो तो समस्याएं होती हैं और प्रश्न होते हैं। वे तुम्हारे झूठ से पैदा होते हैं—तुम्हारे स्वप्न, तुम्हारी नींद से वे पैदा होते हैं। जब तुम सत्य, प्रामाणिक, मौन, समग्र होते हो—वे तिरोहित हो जाते हैं।

मेरी समझ ऐसी है कि मन की एक अवस्था है, जहां केवल प्रश्न होते हैं, और मन की एक अवस्था है, जहां केवल उत्तर होते हैं। और वे कभी साथ—साथ नहीं होते। यदि तुम अभी भी पूछ रहे हो, तो तुम उत्तर नहीं ग्रहण कर सकते। मैं उत्तर दे सकता हूं, लेकिन तुम उसे ले नहीं सकते। यदि तुम्हारे भीतर प्रश्न उठने बंद हो गए हैं, तो कोई जरूरत नहीं है मुझे उत्तर देने की. तुम्हें उत्तर मिल जाता है। किसी प्रश्न का उत्तर नहीं दिया जा सकता है। मन की एक ऐसी अवस्था उपलब्ध करनी होती है जहां कोई प्रश्न नहीं उठते। मन की प्रश्नरहित अवस्था ही एकमात्र उत्तर है।

यही तो ध्यान की पूरी प्रक्रिया है. प्रश्नों को गिरा देना, भीतर चलती बातचीत को गिरा देना। जब भीतर की बातचीत रुक जाती है, तो एक असीम मौन छा जाता है। उस मौन में हर चीज का उत्तर मिल जाता है, हर चीज सुलझ जाती है—शाब्दिक रूप से नहीं, अस्तित्वगत रूप से सुलझ जाती है। कहीं कोई समस्या नहीं रह जाती है।

समस्या विक्षिप्त मन के कारण थी। अब मन चला गया, मन का सारा रोग चला गया—अब प्रश्न नहीं बचे। हर चीज सीधी—साफ है। रहस्य तो है, लेकिन समस्या नहीं है। कोई चीज सुलझी नहीं है, लेकिन कुछ बचा भी नहीं है सुलझाने के लिए। हर चीज एक रहस्य है; एक विस्मय का भाव घेरे

रहता है तुम्हें; जहां भी तुम देखते हो, गहराई और गहराई खुलती जाती है रहस्य की। ऐसा नहीं है कि तुम्हारे पास कोई उत्तर होता है! नहीं, तुम्हारे पास प्रश्न ही नहीं होता—बस इतना ही। जब तुम्हारे भीतर कोई प्रश्न नहीं होता, तब सारा जीवन उपलब्ध होता है अपने पूरे रहस्य सहित—और वही उत्तर है।

तो मत पूछो कि कैसे कोई झूठी समस्याओं को झूठ की तरह पहचानना सीख सकता है। कैसे तुम पहचान सकते हो झूठी समस्याओं को? तुम ही झूठ हो, तुम अभी हो ही नहीं। तुम्हारी गैर—मौजूदगी में सब समस्याएं खड़ी होती हैं। जब तुम मौजूद हो जाते हो, वे तिरोहित हो जाती हैं। सजगता में कोई समस्या नहीं होती, कोई प्रश्न नहीं होते। असजगता में प्रश्न होते हैं और समस्गा! होती हैं—और अनंत प्रश्न, अनंत समस्याएं होती हैं। कोई नहीं सुलझा सकता उन्हें। यदि मैं गले उत्तर भी दूर तो तुम उस उत्तर में से और— और प्रश्न बना लोगे। वह कोई उत्तर न होगा, केवल और प्रश्नों के लिए बहाना बन जाएगा।

भीतर चलती बातचीत को बंद करो, और फिर देखो। झेन में वे कहते है कि कोई भी चीज छिपी हुई नहीं है, हर चीज पहले से ही स्पष्ट है, लेकिन तुम्हारी आंखें ही बंद है।

दसवां प्रश्न :

आप पागल हैं और आप मुझे भी पागल बनाए दे रहे हैं।

तुम्हारी बात का पहला हिस्सा बिलकुल सच है, मैं पागल हूं लेकिन दूसरा हिस्सा अभी सच नहीं है। मैं तुम्हें पागल बना तो रहा हूं लेकिन तुम बन नहीं रहे हो, क्योंकि तुम बहुत बुद्धिमान हो—यही तुम्हारी तकलीफ है। थोड़ा और पागलपन—और बात बिलकुल बदल जाएगी। तुम बहुत ज्यादा जड़ हो गए हो अपनी तथाकथित बुद्धिमानी में। तुम्हें बाहर आना है इससे।

समझो इसे, जीसस लोगों को पागल मालूम पड़ते थे जब वे जीवित थे। बुद्ध पागल मालूम पड़ते थे। वे इस अर्थों में पागल मालूम पड़ते थे कि उन्होंने समाज की समझदारी को इनकार कर दिया। यह पागलपन ही तो है कि राज्य छोड़ कर भाग जाना—हर कोई दौड़ रहा है महल की तरफ और बुद्ध सब छोड़ कर भाग रहे हैं! पागल हैं। और उन्होंने बहुत लोगों को पागल बनाया।

यही सदा से बुद्ध पुरुषों का काम रहा है—लोगो को पागल बनाना। क्योंकि समाज ने तुम्हें इतना ज्यादा समझदार बना दिया है कि तुम्हारी समझदारी में तुम करीब—करीब विक्षिप्त ही हो गए हो। तुम इतने सीमित हो गए हो, इतने जीर्ण, एक ही ढर्रे में जड़, बासे, और तुम ऐसी नासमझी की बातें सोचते रहते हो, लेकिन क्योंकि सारा समाज सोचता है कि यह बहुत समझदारी है.।

उदाहरण के लिए कोई आदमी निरंतर धन के बारे में सोचता रहता है और तुम उसे समझदार कहते हो। वह नासमझ है, क्योंकि कैसे कोई सच में समझदार व्यक्ति निरंतर धन के बारे में सोच सकता है? और ज्यादा बड़ी चीजें हैं सोचने के लिए। और कोई व्यक्ति निरंतर सोचता रहता है पद—प्रतिष्ठा के संबंध में; सदा उत्सुक रहता है, प्रतीक्षा करता रहता है—लोगो का समर्थन पाने के लिए। वह विक्षिप्त है, क्योंकि समझदार, स्वस्थ—चित्त व्यक्ति तो स्वयं में ही इतना आनंदित होता है कि वह क्यों चिंता करेगा कि लोग उसके बारे में क्या कहते हैं? वह अपना जीवन जीता है, और दूसरों को उनका जीवन जीने देता है। न वह किसी के जीवन में कोई हस्तक्षेप करता है, न वह किसी को अपने जीवन में हस्तक्षेप करने देता है।

इस जीवन में बहुत संभावनाएं छिपी हैं, और तुम कंकड़—पत्थर ही बीनते रहते हो। बहुत कुछ संभव है—परमात्मा संभव है—और तुम धन—दौलत, पद—प्रतिष्ठा की भाषा में ही सोचते रहते हो। तुम अपना पूरा जीवन एकदम व्यर्थ की बातों में गंवा देते हो, और तुम सोचते हो कि तुम स्वस्थ—चित्त हो! तुम स्वस्थ नहीं हो। असल में पूरा समाज ही इतना विक्षिप्त है कि स्वस्थ होने के लिए तुम्हें 'विक्षिप्त' होना पड़ेगा; वरना तुम कट जाओगे समाज से।

सभी बुद्ध, क्राइस्ट कोशिश करते रहे हैं तुम्हें 'पागल' बना देने की। असल में वे कोशिश कर रहे हैं तुम्हें स्वस्थ, संतुलित बनाने की, लेकिन वह बात पागलपन जैसी मालूम पड़ती है। जब जीसस ने अपने शिष्यों से कहा कि 'जब कोई तुम्हारे एक गाल पर थप्पड़ मारे, तो दूसरा गाल भी उसके सामने कर देना।' तो यह पागलपन की ही बात है। कौन सुनेगा इस व्यक्ति की? क्या कह रहे हैं वे?

जीसस कहते है, 'यदि कोई तुम्हारा कोट छीन ले, तो तुम उसे अपनी कमीज भी दे देना।' पागलपन कोई बात है। लेकिन वे यह कह रहे हैं कि इन बातों का कोई मूल्य नहीं है, इनकी फिक्र करने की जरूरत नहीं है। कोई तुम्हारा कोट छीन लेता है; हो सकता है वह बहुत कठोर न हो—वह चाहता तो था तुम्हारी कमीज भी ले लेना, लेकिन ले नहीं सका—विनम्र आदमी! तो उसे अपनी कमीज भी दे देना, ताकि बात खतम हो जाए। कोई तुम्हारे एक गाल पर थप्पड़ मार देता है. हो सकता है उसमें थोड़ी—बहुत हिंसा अभी भी बाकी हो; उसे उससे भी मुक्त हो जाने दो। उसके सामने दूसरा गाल भी कर दो, ताकि उसके लिए बात खतम हो जाए और वह मुक्त हो जाए—और तुम भी मुक्त हो जाओ।

वरना वह फिर लौट कर आएगा। तो बात खतम होने दो और पूरी होने दो। वे परम बोध की बात कह रहे हैं, लेकिन वे नासमझ लगते हैं, पागल लगते हैं।

हां, मैं तुम्हें पागल बना रहा हूं। मैं पागल हूं—इतना पक्का है। लेकिन प्रश्न का दूसरा हिस्सा पक्का नहीं है। तुम अभी भी अपनी तथाकथित समझदारी को पकड़ रहे हो, लेकिन मैं जो भी प्रयास संभव है, करता ही रहूंगा। और यदि तुम मेरे पास बने रहते हो, तो किसी न किसी दिन तुम पागल हो जाओगे। तुम्हें पागलपन के लिए राजी होना ही होगा, यही धर्म का कुल सार है। इस तथाकथित बुद्धिमान संसार में पागल होना एकमात्र उपाय है समझदार होने का, क्योंकि संसार विक्षिप्त है।

ग्यारहवां प्रश्न :

महावीर, बुद्ध और रजनीश शारीरिक रूप से क्यों नहीं गाते और नाचते?

वे हर पल इसी में संलग्न हैं, लेकिन उसे देखने के लिए गहरी आंखें चाहिए।

तुम कभी असली प्रश्न नहीं पूछते। लोग पूछते रहते हैं, 'परमात्मा कहां छिपा है?' वे कभी नहीं पूछते कि उनकी आंखें खुली हैं या नहीं। वे पूछते हैं, 'कहां खोजूं मैं उसको?' वे कभी नहीं पूछते, 'मैं कैसे परमात्मा के लिए खुला होऊं, ताकि वह मुझे खोज ले?'

तुम पूछते हो, 'महावीर, बुद्ध और रजनीश क्यों नृत्य नहीं करते?'

वे तो हर समय नृत्य कर रहे हैं। उनका पूरा जीवन ही एक नृत्य है, लेकिन उसे देखने के लिए कोई और आंखें चाहिए। तुम्हारे पास ठीक आंखें नहीं हैं। ठीक आंखें पैदा करो।

अंतिम प्रश्न :

क्या आप अपने पुराने आश्वासन को कुछ इस भांति परिवर्तित करना चाहेंगे : 'मैं यहां सिखाने के लिए नहीं आया हूं बल्कि तुम्हें हंसाने के लिए आया हूं। हंसो और समर्पण घटित होगा— और किसी आश्वासन की अब कोई जरूरत नहीं है।'

मैं सरलता से इस पर हस्ताक्षर कर सकता हूं। यह बिलकुल सच है—और पहले वक्तव्य की अपेक्षा ज्यादा ठीक है।

आज इतना ही।